सचित्र मासिक पत्रिका ।

112910

भाग १३] १ जनवरी, १९१२—पौष शुक्ल १२, १९६८। [संख्या १

मेरी यात्रा ।

(क) हंगरी से तुर्क देश ।

(ले० श्रीयुत काशीप्रसाद जायसवाल, बी० ए० (आक्सफ़र्ड) बैरिस्टर-एट-ला ।)

गत वर्ष, स्वदेश आते समय, वैशाख-जेष्ठ के महीने में, मैं हंगरी की राजधानी बुडापेस्ट और तुर्क देश की राजधानी कान्स्टैंटिनोपल होता हुआ आया । तुर्क देश की यात्रा, बुडापेस्ट से चल कर की—अर्थात् स्थल-मार्ग से । यह यात्रा जल-मार्ग से फ़्रान्स या इटली के किसी पत्तन से जहाज़ में सवार होकर भी हो सकती है। पर आमोद-यात्रा में एकही मार्ग से जाना और लैाटना अच्छा नहीं लगता । दूसरे, पूर्व-देशों के लोग अभ्यासतः स्थल-मार्ग से रास्ता काटना जल-मार्ग से अधिक पसन्द करते हैं । कान्स्टैंटिनोपल का वृत्तान्त लिखने के पहले इस लेखांश में हंगरी का हाल लिखा जाता है ।

हंगरी देश योरप में एक पूर्वी, एशियाई जाति का राज्य है । योरप और एशिया में ऊपराचढ़ी बहुत दिनों से चली आती है; इसे योरप वाले सहज सा मानते हैं । पुराने पारस ने पारसी और हिन्दू सिपाही लेकर ग्रीस पर चढ़ाई की; ग्रीस ने सिकन्दर के नायकत्व में पारस और भारत पर आक्रमण किया । बाइज़नटाइन-सम्राटों ने कान्स्टैंटिनोपल से एशिया के पश्चिमी भाग पर राज्य किया । एशियाई हूणों और तातारों ने योरप के साम्राज्यों पर बार बार हमला करके उन्हें बाँट लिया—इत्यादि घटनाचक्र चलाही आ रहा है। हंगरी उसी घटनाचक्र की एक अमिट लीक है—एशियाई प्रयत्न-प्रकाण्डत्व और पराक्रम का योरप में एक ध्वजस्तम्भ है ।

कोई साढ़े दस सौ वर्ष हुए कि हूण जाति ने आर्पाद के नायकत्व में इस प्रदेश को, जो अब हंगरी कहलाता है, स्लाव जाति से जीत लिया*। इस के बाद कोई सौ वर्ष तक इन्होंने योरप में कोई ऐसा कोना बाक़ी न रक्खा जहाँ इनकी तलवार न चमकी हो। पर, अन्त में, ये हंगरी में ही बस रहे और इन्होंने ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया। ईसवी १४४२—४३ में इस जाति का वीर जान हूनयादी योरप के ईसाइयों का, अपने भाई-बन्धु चढ़ते हुए तुर्कों के विरुद्ध, नायक था। ईसवी बारहवीं शताब्दी के आदि में इन्होंने अपनी परिषद् या पार्लिमेंट क़ायम की। ईसवी सोलहवीं शताब्दी में तुर्कों से आत्मरक्षा के लिए इन्होंने अपने पड़ोसी आस्ट्रिया के हापस्बुर्ग-राजवंश से अपना नाता जोड़ा; वहाँ के राजा को अपना राजा चुना। तब से हापस्बुर्ग-वंश से, जो अब भी आस्ट्रिया के साम्राज्य-पद पर प्रतिष्ठित है, और इन से आपस में झगड़ा होता रहा और लड़ाई लगी रही। हापस्बुर्ग इन्हें विजित सा समझ अपनी जर्मन जाति की मातहती में रखना चाहता था। पर ये कहते थे कि नहीं, तुम चुने हुए राजा हो; तुम अपनी जाति की भाषा और प्रभुत्व हम पर नहीं चला सकते। कई बलवे हुए। सब से बड़ा बलवा कोशथ नामक राष्ट्रपक्षी के नायकत्व में, कोई ६० वर्ष हुए, हुआ। उसी कोशथ का लड़का आज कल हंगरी में मंत्रियों में से है। अन्त में, ई० १८६६ में, यह निश्चय हुआ कि आस्ट्रिया के सम्राट् हूणों के राजा कहलायें और हूण-राजधानी बुडापेस्ट में आकर पुराना लोहे का राज-मुकुट, जिसे हंगरी के स्वजातीय राजा दिया करते थे, ग्रहण करें; उनसे उनकी भाषा में बातचीत करें; हंगरी की पार्लिमेंट अलग रहे; उनके सिक्के अलग हों; आस्ट्रिया-हंगरी के नोटों पर एक तरफ़ हंगरी की भाषा और दूसरी ओर जर्मन भाषा छापी जाय। यह सब प्रबन्ध अब भी जारी है। इस तरह आपस का झगड़ा तै हो गया। इस समय आस्ट्रिया का जो सम्राट् है उसी के समय में राष्ट्रीय विद्रोह और यह फ़ैसला हुआ है। सम्राट् फ़्रांसिस जोज़ेफ़ हंगरी के राजा और आस्ट्रिया के सम्राट् कहलाते हैं। आस्ट्रिया की राजधानी वीअन (Vienna) है। बुडापेस्ट और वीअन की पार्लिमेंट मिल कर मन्त्रि-परिषद् चुनती हैं। चुनते समय कोई बोलता नहीं; सब गूँगे की तरह इशारों से काम निकालते हैं। क्योंकि हंगरी वाले अपनी भाषा छोड़ आस्ट्रिया वालों की भाषा, जो जर्मन है, न बोलेंगे और आस्ट्रिया वाले अपनी भाषा छोड़ हंगरी वालों की भाषा न बोलेंगे।

जब विअन से रवाना हूजिए तब बुडापेस्ट का रेलवे-तन्त्र अलग पाइएगा। उनकी गाडियों पर उनकी भाषा, टिकटों पर उनकी भाषा, रेल में टिकट जाँच करने वाले उनकी जाति के और जर्मन जानते हुए भी अपनी ही भाषा बोलनेवाले—यह सब अजीब दृश्य देखने में आता है। हंगरी वाले अब अपने को मगयार और अपनी भाषा को मगयार-भाषा कहते हैं। उनकी भाषा चीनी-जापानी के समान मंगोल-भाषा-वंश की है; पर चीनी भाषा से एक दम विलक्षण है। अपनी भाषा वे रोमन अक्षरों में लिखते हैं। रेल-गाड़ियों की लिपि से, नमूने के तौर पर, एक नक़ल ली थी; पर वह खो गई। तथापि दूसरे उदाहरण दिये जा सकते हैं। "वर"=वह पीटता है; "वरिंत"=वह ज़रा ज़रा पीटता है; "वरहत"=वह पीट सकता है। नेकेम वन्नक केन्वीं= 'मुझे हैं पुस्तकें' अर्थात् पुस्तकें मेरी हैं। केन एम्बर=दो आदमी, अर्थात् "दो"। तोल्लम्=मेरा क़लम; तोल्लियम=मेरे क़लम; तोल्लद=तेरा क़लम; तोल्लुंक= हमारा क़लम; तोल्लाइंक=हमारे क़लम। ओलमोर्शी करोली तनार उर=श्रीयुत प्रोफ़ेसर चार्ल्स (कारोली) ओलमोशी। ज़ावेर ओरवस् एस् बकातोर=डाक्टर ज़ावेर और उसका नौकर। इतना नमूना बस होगा। मेरी भाषा-विषयक हिम्मत इस भाषा को देख जाती

* स्लाव जाति इस समय अधिकतर रूस-साम्राज्य में संगठित है। इसकी भाषा योरप में सब भाषाओं से अधिकतम संस्कृत से मिलती है।

रही ! पर भाषा कैसी ही हो, हर एक को अपनी ही भाषा प्यारी है; और मगयार जाति से बढ़ कर किसी को अपनी भाषा का नाज़ नहीं हो सकता। उसके लिए उन्होंने लड़ाइयाँ लड़ी हैं; वे बलिदान होगये हैं; उन्होंने अपने राजा पर चढ़ाई की है। वे बोलेंगे तो अपनी ही भाषा बोलेंगे, नहीं तो परिषद् में गूँगे बने रहेंगे। अपने राजा और आस्ट्रिया के बादशाह से अपनी भाषा बलात् बुलवाते हैं। इससे बढ़ कर भाषा-ममत्त्व का प्रमाण और क्या हो सकता है ?

वीअन से बुडापेस्ट १६७ मील पूरब-दक्षिण को झुकता हुआ है। रेल में सोच रहा था कि देखें साधारण हंगेरियन कैसे होते हैं। इतिहास में इनकी वीरता का अलौकिक वर्णन पढ़ा था; इनकी जाति की पूर्वी उत्पत्ति और हूण लोगों का विकराल वर्णन जो कुछ किताबों में देखने में आया था, देखें उनके चिह्न अब कहाँ तक देख पड़ते हैं। इसी विचार में चित्त कुतूहलाक्रान्त था। इसके पहले सिर्फ़ एक हंगेरियन आक्सफ़र्ड में देखा था। वह हंगरी के पुराने राजवंश के अवशिष्ट प्रिन्स स्त्रेहाज़ी के पुत्रों में था। यह कौंट स्त्रेहाज़ी दुबला पतला फ़रासीसी रंगत का था। इटालियन या फ़रासीसी मालूम होता था। पूर्वीपन की कोई विशेषता उसमें न थी। न हूणों की रूप-विकरालता ही का चिह्न कुछ उसमें पाया गया। असल हूणों के जबड़े ऊपर को उठे, कपोल चुचके, बाल खुले, क़द ठिँगना और रंग पीला था। वे घोड़े और गधों पर सवार, हाथ में तीर-कमान और कुलहाड़ा लिये, योरप में आये थे। उस वेश-भूषा की अब अपेक्षा तो की ही नहीं जा सकती थी, पर रूप में कुछ विशेषता देखने का कौतूहल अवश्य था। सम्भव था कि राजवंश के घरों में परिवर्त्तन हो गया हो; पर साधारण लोगों में शायद एशिआई चिह्न बाक़ी हों। सोच ही रहा था कि एक आदमी रेल की गली में, जो गाड़ियों की एक ओर योरप में होती है और जिसके द्वारा सारी ट्रेन में एक से दूसरे सिरे तक आदमी हो आ सकता है, आकर बग़ल में खड़ा हो गया। यह जर्मनों का सा लम्बा था। रंग कुछ फीका था। आँख के नीचे की हड्डियाँ कुछ उभड़ी हुई थीं। यह फ़्रेंच भाषा में बातें करने लगा। मालूम हुआ, हंगेरियन था। उसके देश की बातें मैं पूछने लगा। जर्मन अथवा आस्ट्रियन लोगों और हंगरी वालों में बहुत अनबन अब भी है। हंगरी वालों का यह विचार है कि वर्त्तमान सम्राट् फ्रांसिस जोज़ेफ़ के मरने पर राजवंश का कोई कुमार लेकर आस्ट्रिया से एक दम अलग हो जाना चाहिए—इत्यादि। इतने में एक रमणी उधर से गुज़री। हंगेरियन सज्जन ने घमंड से कहा—देखिए, यह हमारी जाति की रमणी है। मध्यकाय, बाल ऐसे कि उत्तर (नारवे, इँगलैंड आदि) की रमणियों के केश से भी हलके रंग के और उनसे भी बारीक, आँखें कुछ स्याह, चेहरे पर अँगरेज़ या जर्मन स्त्रियों की सी शुभ्रता नहीं, कुछ पीली रंगत, पर सुर्ख़ी उन्हीं की सी। यह केश और मुख की ललाई की विशेषता हंगरी की स्त्री-जाति में साधारणतः देखने में आई। स्त्रियों में किसी किसी की आँखों में चीनी-जापानी आँखों की कोणता—जैसे सरपत से आँख के कोने फाड़ दिये गये हों—आँखों की इस अप्रिय काट के चिह्न किसी किसी स्त्री में देखने में आये। पर मरदों में इसका पूर्णतया अभाव है। इससे जान पड़ता है कि विजेता हूण का विजित योरपियन आर्यों के साथ बहुत रक्त-सम्मेलन हुआ है।

बुडा=पेस्ट डान्यु नदी के दोनों तीरों पर बसा हुआ है। ऐसा सुन्दर राज-नगर मेरे देखने में योरप भर में दूसरा नहीं है। यही राय मेरे एक मित्र की भी है, जो भूमिगोलक की परिक्रमा कर आये हैं। नदी के इस पार (बाँयें किनारे पर) पेस्ट है और उस पार बुडा। नगर-युगल अपने नाम के समान पुलों के 'हाइहन' से एक कर दिया गया है। नदी पर ६ पुल हैं, जिनमें २ बहुत सुन्दर लोहे के झूलन पुल हैं। इनमें से लांक नामक दुनिया के बृहत्तम सस्पेन्शन पुलों में गिना जाता है। नदी के कूल पर, पेस्ट में, लंबे लंबे घाट बँधे हुए हैं, जिन पर लोग टहला करते हैं, चाय वग़ैरह की दूकानें हैं, पेड़ों की

क़तारें लगी हुई हैं। दोनों तटों पर आलीशान इमारतें हैं। पारलिमेंट-हौस या परिषद्-गृह ऐसा सुन्दर है कि योरप के सब पारलिमेंट हौसों को मात करता है। वह उन्नीस वर्ष में बन कर पूरा हुआ था। ऐसी राजनैतिक इमारत मेरे देखने में और कहीं नहीं आई। इमारतों में यह पुरुष (नर) मालूम होता है; ऊँचा, विशालकाय, गंभीर भाव से खड़ा हुआ, देखने वाले के मन पर अपना रोब जमा देता है। नदी की लहरें इसके पैर धोती हैं। उस पार बुडा में पहाड़ पर पुराना गढ़ है और शाही महल भी हैं। ये भी नदी में पानी से लग रहे हैं।

नगर का वर्गफल ७८ मील है। सड़क के दोनों ओर मकान ऊँचे ऊँचे ऐसे और इस बहुतायत से हैं कि पैरिस और विश्रन को सर झुकाना पड़ता है। सड़कें इतनी चौड़ी कि और कहीं देखने में न आयेंगी। थियेटर (रंग-शालायें) कोई छः हैं, जिनमें दो सरकारी और एक म्युनिसिपैलिटी की ओर से है। न्यायसदन भी बड़ा श्रीमान् भवन है। गर्म पानी का चश्मा स्वास्थ्याकांक्षी लोगों के स्नान के लिए एक मनोरम निर्माण में क़ैद किया गया है। सड़क की दोनों पटरियों पर पैरिस के 'बूलेवार' के ढाँचे पर वृक्ष रोपे हुए हैं।

हंगरी का सबसे बड़ा विश्वविद्यालय यहाँ है, जिसमें कोई ५००० छात्र पढ़ते हैं। स्टाटिस्टिक्स अर्थात् सम्पत्तिशास्त्र का वह विभाग, जो हिसाब करके सब बातें साबित करता है, उसके एक बहुत नामी पण्डित, Dr. Joseph de Körösy इसी विश्वविद्यालय में हैं। यह विश्वविद्यालय मगयार-भाषा के द्वारा सारी शिक्षा देता है। मगयार-भाषा का साहित्य बहुत आधुनिक है। रूसी-साहित्य के समान कोई ५०-६० वर्ष का इसका वयस् है। इतने ही समय में यह साहित्य सर्वसम्पन्न हो गया है।

इसी तरह वर्त्तमान बुडापेस्ट भी बहुत आधुनिक है। क़िले और महल को छोड़, सारी इमारतें कोई ४० वर्ष के अन्दर की हैं। यही कारण है कि यह नगर इतना अच्छा है। दूसरी राजधानियों से पीछे इसकी मार्जना हुई है। म्युनिस्पैलिटी ने बहुत ऋण कर रक्खा है। यह मगयार जाति का पूर्वीपन ज़ाहिर करता है। क़र्ज़ चाहे हो जाय, पर मकान अच्छा भड़कीला हो। बात यह कि वस्तुतः इनकी बड़ी बड़ी इमारतों की हंगरी ऐसे अल्पधनवान् देश को ज़रूरत नहीं। बड़ी बड़ी दूकानें या बड़े बड़े व्यापारियों की कोठियाँ यहाँ नहीं। बड़ी इमारतों के नीचे 'कफ़े' अर्थात् चाय पीने की दूकानें, बैठ कर जी बहलाने के साधन हैं। लोग धीरे धीरे चलते हैं। कृषि मुख्य और प्रायः एक एव आजीविका है। ग़रीब और ठाकुर दोही प्रकार के लोग हैं। पेशेवालों आदि का मध्य कोटि का जनसमुदाय, जैसा योरप के दूसरों हिस्सों में है, यहाँ नहीं है। व्यापार प्रायः कुछ भी नहीं। व्यापार की गति वह है जिसे चाणक्य 'एकमुख' कहता है—अर्थात् सरकार के हाथ में। कारख़ाने प्रायः सब राज्य के हैं। इसका कारण यह है कि मगयार जाति को ११०० वर्ष से लड़ने से .फ़ुरसत ही न मिली। यह लड़ाई १८६६ में समाप्त हुई, जब वर्तमान सम्राट् फ्रांसिस जोज़ेफ़ ने हंगरी को अलग पार्लिमेंट देना, लाचार होकर, अंगीकृत किया और स्वयं बुडापेस्ट का हूण-जाति का प्राचीन लोह-मुकुट अपने सर पर रक्खा। सम्पत्ति शास्त्रवाले कहते हैं कि यह जाति व्यापार में भी अब आगे बढ़ रही है। पर यों देखने में अभी कुछ विशेषता नहीं मालूम होती। इन्हीं की सी व्यापारिक दशा इनके भाई बन्धु* तुर्कों की भी है। उन्हें देखते भारतवर्ष, व्यापारदृष्टि से, बहुत आगे है। नगर की जन-संख्या तेज़ी से बढ़ रही है, ऐसी कि योरप में और किसी राजधानी की ऐसी बढ़ती नहीं है

* इस समय जो तुर्की और इटली में युद्ध हो रहा है उस पर हंगरी के समाचारपत्रों ने लिखा है कि .ख़ून के नाते तुर्की हंगरी का सहानुभूतिभाजन है। इटली और हंगरी दोनों एक धर्म मानने वाले हैं। और वह धर्म इसलाम द्रोही है। .ख़ून का नाता धर्म के नाते से भी यहाँ बलि साबित हुआ।

समुद्र पास न होने से व्यापार की वृद्धि देर में होगी। पश्चिमी योरप की सजीवता यहाँ अभी नहीं है। इसके अभाव पर मन उदास हुआ। आगे बढ़ा।

पण्डित विशन नारायण दर, बैरिस्टर-एट-ला।

इस वर्ष की कांग्रेस के सभापति पण्डित विशन नारायण दर थे। आपका जन्म बाराबङ्की ज़िले में, १८६४ ईसवी में, हुआ था। बालावस्था में आपको उर्दू और फ़ारसी पढ़ाई गई। कुछ दिनों बाद अँगरेज़ी भी …म करा दी गई। छोटेपन से ही आपकी बुद्धि …तीव्र थी। आप बात को बहुत जल्द समझ …थे। आप अध्ययनशील भी बड़े थे। जब आप …ज़ी के मिडिल और इंट्रन्स क्लासों में थे तभी से …अँगरेज़ी के धुरन्धर लेखकों की बनाई हुई पुस्तकें …ने लगे थे। इंट्रन्स पास कर के आप लखनऊ के …ग कालेज में पढ़ने गये। वहाँ आपने कालेज के …कालय की अधिकांश पुस्तकें पढ़ डालीं। पढ़ते …आप एफ़० ए० ही में थे, परन्तु आपकी योग्यता …तक बढ़ी चढ़ी थी कि उस समय भी आप मिल, …र्ट स्पेन्सर, ह्यम, कारलाइल इत्यादि विख्यात …रेज़-विद्वानों और पण्डितों की बनाई पुस्तकों का …ध्ययन और मनन किया करते थे। आप देश-गति …भी अनभिज्ञ न थे। उन्हीं दिनों आप काश्मीरी …ब के सभासद हो गये थे। उक्त क्लब की राजकीय, …ामाजिक और नैतिक बातों में आप भी योग देते …। आपका कथन है कि काश्मीरी क्लब के कारण …पकी बहुत कुछ मानसिक उन्नति हुई।

आपके हृदय में विलायत जाने की प्रबल इच्छा …हुत दिनों से थी। यह वह समय था जब लोग …देश जाना बहुत बड़ा पाप समझते थे। समाज-दण्ड के भय से कोई विलायत जाने का नाम न लेता था। उस समय तक काश्मीरी समाज में से, जिस के आप एक रत्न हैं, किसी ने भी देश से बाहर पैर रखने का साहस न किया था। काश्मीरी क्लब में सम्मिलित होने पर आपकी विदेश-यात्रा की इच्छा और भी प्रबल हो गई। इसी बीच में, आप गणित में कमज़ोर होने के कारण, एफ़० ए० की परीक्षा में फेल हो गये। फेल होने पर आपकी विलायत जाने की इच्छा और भी प्रबल हो गई। एक दिन बिना किसी से कुछ कहे सुने आप बम्बई चले गये और वहाँ से जहाज़ पर बैठ इँगलैंड पहुँचे।

विलायत में आप तीन वर्ष तक रहे। वहाँ आप बैरिस्टरी का व्यवसाय सीखते रहे। साथ ही आप इतिहास, राजनीति, तत्त्व-शास्त्र इत्यादि का भी अध्ययन करते रहे। अनेक अँगरेज़-विद्वानों के ग्रन्थों को आपने वहाँ बड़े ही अभिनिवेश से पढ़ा। विलायत ही में आपकी भेंट माननीय मिस्टर चन्दावरकर और स्वर्ग-वासी मिस्टर लालमोहन घोष से हुई। इस भेंट का फल यह हुआ कि आप राजनीति की ओर बहुत झुक गये। बैरिस्टरी पास करके आप भारत लौटे।

आपको क़ानून में विशेष रुचि न थी। बैरिस्टरी आपने केवल जीविका उपार्जन के लिए ही पास कर ली थी। देश में आकर आप राजनैतिक विषयों की ओर झुके। देश के राजनैतिक आन्दोलनों में भी आप शरीक होने लगे। १८८७ ईसवी में कांग्रेस का तीसरा अधिवेशन मदरास में हुआ। कांग्रेस से सम्बन्ध जोड़ने का आपने वहीं से श्रीगणेश किया। इस अधिवेशन में आपकी विद्वत्ता-पूर्ण और ओजस्विनी वक्तृता सुन कर कांग्रेस के प्रधान स्तम्भ, मिस्टर ह्यम, आपके ऊपर बड़े प्रसन्न हुए। इसके बाद १९०३ की कांग्रेस में आपने आफ़ीशियल सीक्रेट बिल का अच्छा प्रतिवाद किया। १९०८ में लखनऊ की प्रान्तीय कान्फ़्रेंस में आपने सरकारी कौन्सलों की त्रुटियाँ योग्यता-पूर्वक बतलाईं। गत वर्ष आप प्रान्तीय कानफ़्रेंस के सभा-

पति थे। आपका उस समय का भाषण बड़ा सारगर्भित था। १८९३ में आज़मगढ़ में हिन्दू मुसलमानों में गो-हत्या पर बहुत रक्तपात हुआ था। इस झगड़े में अपराधियों के साथ कितने ही निरपराधी मनुष्य भी पकड़े गये। किसी भी वकील या बैरिस्टर को निर्दोष मनुष्यों के पक्ष में खड़े होने का साहस न होता था। ऐसे समय में आप आज़मगढ़ पहुँचे और वहाँ का सब हाल देख सुन कर आपने एक छोटी सी पुस्तक प्रकाशित की। आपकी कृपा और परिश्रम से कितने ही निर्दोष मनुष्य दण्डित होने से बच गये। इस काम से आपका बड़ा यश हुआ।

आप बहुत अच्छी अँगरेज़ी लिखते हैं। आपके लेखों से आपकी योग्यता का अच्छा परिचय मिलता है। बड़े बड़े अँगरेज़-विद्वानों ने आपके लेखन-कौशल की प्रशंसा की है।

आप उर्दू और फ़ारसी भी अच्छी जानते हैं। आपने फ़ारसी-कवियों के ग्रन्थों का विशेष परिशीलन किया है। उर्दू के आप अच्छे कवि हैं। आपका मत है कि जातीय उन्नति के लिए देशी भाषाओं का जानना परमावश्यक है। आपमें एक और बड़ा भारी गुण यह है कि आप अपनी प्रसिद्धि के इच्छुक नहीं।

इधर कुछ वर्षों से आप राज-यक्ष्मा रोग से पीड़ित थे। दिन रात रोग-शय्या पर पड़े रहते थे। मिहनत करने अथवा चलने फिरने की शक्ति न थी। तो भी आप सदा प्रसन्न-चित्त रहते थे और देश की सामाजिक और राजनैतिक दशा पर बात चीत करके समय व्यतीत करते थे। ख़ुशी की बात है, अब आप पहले से बहुत अच्छे हैं।

विश्वेश-वन्दना।

(१)

वन्दना, विश्वेश ! होती है तुम्हारी नित्य;
नित्य सारी सृष्टि होती कर इसे कृतकृत्य।
मूक-वत् इसमें यदपि रहता मनुज-पाण्डित्य,
जड़-जगत्-कृत वन्दनामय है बना साहित्य॥

(२)

यह धरा, जिसको धरा है शेष ने निश्शेष,
मान कर आदेश तव निज शीश पर विश्वेश !
वृक्षपत्र-असंख्य-रसना-राशि से अनिमेष
वन्दना करती तुम्हारी ही सदा सविशेष॥

(३)

वारिनिधि की वीचियों के बीच वृत्तालाप;
स्रोत-सरिता-कृत-मधुर-सङ्गीत-कीर्ति-कलाप।
शान्त होता है जिन्हें सुन चित्त का परिताप,
प्रध्वनित करते तुम्हारा ही सदैव प्रताप॥

(४)

रवि-उदय से नित्य होना दीप्त भू-आकाश;
दामिनी के मिष प्रकृति-कृत हाव-भाव-विकाश।
अग्नि से तम का तथा शीतादि का भी नाश;
हैं तुम्हारा ही, प्रभो ! करते प्रशस्ति-प्रकाश॥

(५)

स्वच्छ, शीतल, मन्द, सुरभित वायु का सञ्चार;
वेग आंधी का प्रबल, घनघोर धूआंधार।
पंच-वायु-प्रसार है जो प्राण का आधार,
नित्य करते हैं तुम्हारा ही यशोविस्तार॥

(६)

व्योम जो है जगमगाता रात में अत्यन्त,
है न ऐसा और कोई विश्व में द्युतिमन्त।
चित्र हैं सुविचित्र जिसमें, दिव्यवर्ण अनन्त,
वह तुम्हारे स्तोत्र का ही पत्र है भगवन्त !

(७)

विश्व के आरम्भ का है ज्ञात किस को काल ?
पर तुम्हारी वन्दना का नित यही है हाल।
अल्प नर-जीवन; तुम्हारे स्तव विराट विशाल;
फिर करेगा क्षुद्र नर क्या, हो यदपि वाचाल ?

(८)

सुर, असुर, नर,यक्ष, किन्नर, मीन, खग, मृग, नाग,
सब चराचर विश्व के विधि ! भुक्ति-मुक्ति-प्रयाग !
देश में सीखें सभी जन स्वार्थ-सेवा-त्याग;
और हो सब में अचल तव पद-कमल-अनुराग !

तथास्तु।
सत्कविदास।

देहली-दरबार।

इस देहली-दरबार के लिए महीनों से तैयारियाँ हो रही थीं वह अच्छी तरह समाप्त हो गया। पाठकों ने उसका विस्तृत वर्णन समाचारपत्रों में पढ़ा ही होगा। उसके दुहराने की यहाँ आवश्यकता नहीं। अतएव इस संक्षिप्त विवरण में मैं कुछ ही विशेष बातों का उल्लेख करूँगा। देहली के पश्चिम कोई चार मील के फ़ासले पर राजा-महाराजाओं की छोलदारियों की क़तारें एक विस्तीर्ण मैदान में पहले ही से लग गई थीं। इन की शोभा का वर्णन जितना किया जाय थोड़ा है। राजाओं ने अपने अपने ख़ेमों को शक्ति भर सजाने में ज़रा भी कोताही न की थी। जिनके पास जो जो चीज़ें अमूल्य और दर्शनीय थीं दरबार की शोभा बढ़ाने के लिए उन्होंने उन सबको देहली में उपस्थित कर दिया था। सड़कों की सफ़ाई और बिजली की रोशनी का प्रबन्ध बहुत ही अच्छा था। हज़ारों गाड़ियों और लाखों मनुष्यों के चलने पर भी धूल का कहीं नामोनिशान तक भी नज़र न आता था। राजाओं के कैम्प के पास ही महाराज पञ्चम जार्ज का कैम्प सजाया गया था। इसी कैम्प के निकट सरकार के अतिथियों के कैम्प थे। कुछ दूर पर फ़ौजों के कैम्प थे। सुन्दर सुन्दर बाज़ार और सजी हुई दुकानें भी पास ही थीं। सायङ्काल जिधर निगाह डालिए कोसों तक बिजली की रोशनी जगमगाती नज़र आती थी। "God bless the King Emperor—Long live the Emperor and the Empress" अर्थात् परमेश्वर महाराज और महारानी की रक्षा करें—महाराज और महारानी चिरजीवी हों—इत्यादि वाक्य हर तरफ़ फाटकों पर दिखलाई पड़ते थे। बैंड, नौबत और सङ्गीत की ध्वनि चारों ओर गूँजा करती थी। इन्द्रप्रस्थ इन्द्रपुरी सा बन गया था।

सातवीं दिसम्बर को प्रातःकाल ही से लोग महाराज जार्ज का नगर-प्रवेश देखने के लिए उन मार्गों पर जा डटे थे जिन में महाराज की सवारी निकलने को थी। लाखों रुपये देहली की म्यूनिसिपेलिटी ने मचानों की बैठकों के द्वारा वसूल कर लिये होंगे। जिन नगर-निवासियों के कोठे अथवा मकान राजमार्ग पर थे उनके मिज़ाज का तो कहीं ठिकाना ही न था। महाराज की सवारी क़िले से निकल कर जुमा-मसजिद और चाँदनी-चौक होती हुई महाराज के निवासस्थान पर पहुँची। इन सड़कों पर जिधर देखिए मनुष्य-राशि ही दिखाई देती थी। फ़ौजी सिपाहियों की क़तारें, सवारी के रास्ते पर प्रातःकाल ही डट गई थीं। ठीक दस बजे महाराज की रेलगाड़ी देहली पहुँची। पहुँचते ही १०१ तोपों की सलामी हुई। राजाओं ने महाराज का स्वागत स्टेशन ही पर किया। तदनन्तर क़िले में महाराज और महारानी के सम्मान और आधिपत्य की सूचक रस्में अदा की गईं। जुलूस में आगे कुछ सेना और बैंड था। उसके बाद महाराज के शरीररक्षक थे। फिर स्वयं महाराज, महारानी, वाइसराय और भारत-सचिव लार्ड क्रू थे। इन के पीछे इम्पीरियल केडट कोरट की टोली थी। तदनन्तर मर्य्यादा और पदानुक्रम से भारत के रजवाड़े थे। राजाओं की सवारी के साथ, अथवा उनकी बग़ल में, उपस्थित पोलिटिकल रेज़िडेन्टों को देख कर ब्रिटिश साम्राज्य और महाराज पञ्चम जार्ज का सर्वोपरि आधिपत्य दर्शकों के नेत्रों के सामने स्पष्टरूप से आ जाता था। भारतवर्ष के सभी प्रान्तों के राजा और सरदार तरह तरह की पोशाकें पहने हुए महाराज की सवारी की शोभा बढ़ा रहे थे। महाराज अपने वाइसराय और भारतसचिव के साथ घोड़े पर थे, और महारानी गाड़ी पर। अधिकांश दर्शक महाराज को पहचान ही न सके। इस कारण उनको बड़ा रंज हुआ। पत्रों ने इस पर टीका भी की। परन्तु दो ही एक दिन बाद से, जब महाराज अनेकानेक कार्यों के लिए बाहर आने जाने लगे तब, दिल्ली में उपस्थित प्रजामात्र उनके दर्शन कर के प्रमुदित हो गई। जैसे ही लोग महाराज को प्रणाम करते वे तुरन्त ही टोपी उतार कर अथवा

सलाम करके उन्हें उत्तर देते थे। राजाओं की सवारी में भोपाल की बेगम साहबा की सवारी भी थी। बेगम साहबा के साथ बग़ल में पोलिटिकल एजन्ट को बैठा हुआ देख दर्शकों को दुःख हुआ। यदि पोलिटिकल एजंट का उनके साथ गाड़ी में बैठना आवश्यक ही था तो उनके सामने वाली बैठक पर बैठना था। बेगम साहिबा की सवारी लार्ड कर्ज़न वाले दरबार के समय की भाँति हाथी पर निकलती तो और भी शोभा होती।

राजाओं के कैम्प में साधारण लोगों का प्रवेश न हो सकता था। अतः लोग बाहर ही से कैम्पों की शोभा देख कर सन्तोष करते थे। राजाओं के दर्शन भी साधारण लोगों को न हो सकते थे। हाँ, महाराज चरखारी और विजावर के कैम्पों में यह बात न थी। यही कारण है कि देहली में इन राजाओं की कीर्ति साधारण जनों में और राजाओं की अपेक्षा अधिक फैली हुई थी। क्या ही उत्तम होता यदि इन भारतवर्षीय राजाओं के दर्शन लोगों को दुष्प्राप्य न होते।

दूसरे दिन महाराज जार्ज ने देहली में अपने कर-कमलों से अपने पूज्यपाद पिता के स्मारक, एडवर्ड मेमोरियल, की नीव रक्खी। तीसरे दिन पोलो का खेल देखने के लिए पधारे। पुलीस और फ़ौज का निरीक्षण भी किया। रविवार को वे गिर्जे गये। फ़ौजों को नये झंडे देने तथा अन्यान्य रस्मों में भी वे उपस्थित हुए।

दरबार, १२ तारीख़ दिसम्बर को, मध्याह्न में, आरम्भ हुआ। एम्फ़ीथियेटर, अर्थात् वह स्थान जहाँ दरबार लगा था, चन्द्राकार था और बहुत ही सुन्दर बनाया गया था। उसके सामने फ़ौजें थीं और फ़ौजों के आगे दर्शकों के लिए ऊँचे स्थान बनाये गये थे। इस एम्फ़ी-थियेटर के चारों ओर तोपें लगी हुई थीं। एम्फ़ी-थियेटर के भीतर और बाहर चारों ओर नर-समूह का वारापार न था।

एम्फ़ी-थियेटर के बीच में उच्च मञ्च पर सुनहले राजसिंहासन इस तरह रक्खे थे कि लोगों को महाराज के दर्शन सहज में हो जायँ। दरबार के लिए आने जाने के समय भी महाराज की सवारी इस ढँग से निकाली गई थी कि प्रजामात्र को महाराज के दर्शन हो जायँ। एम्फ़ी-थियेटर में भारतवर्ष के राजाओं और सरदारों ने महाराज और महारानी का आधिपत्य स्वीकार करने की रस्म अदा की और यहीं महाराज ने अपने मधुर स्वर से प्रजावत्सलतासूचक मनोहर वक्तृता भी दी।

बादशाही मेले में महाराज ने क़िले के झरोखे में बैठ कर मुग़ल-बादशाहों की तरह प्रजा को दर्शन दिया। देहली को भारत की राजधानी बनाने की नीव भी अपने ही हाथ से डाली। कोई पचास हज़ार फ़ौजों की क़वायद भी देखी। और भी कई एक कार्य्य आपने किये।

१६ दिसम्बर को महाराज देहली से बिदा हो कर नैपाल को पधारे और ३० दिसम्बर को कलकत्ते में उपस्थित हुए। कलकत्ते से महारानी सहित आप इँगलैंड लौट जायँगे। पर अपने प्रजावात्सल्य के चिह्न सदा के लिए भारत में छोड़ जायँगे।

एक दर्शक।

सम्राट् के पीयूषपूर्ण वचन और दयादर्शक कार्य्य।
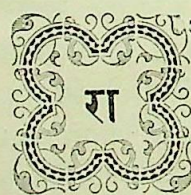
राजा का सबसे बड़ा गुण प्रजारञ्जन है। जो राजा प्रजावत्सल है—जो अपनी प्रजा को प्रसन्न रखने की चेष्टा करता है—वही सच्चा राजा है। महाराज पञ्चम जार्ज में ये गुण हैं। उस साल प्रिन्स आव् वेल्स की हैसियत से जब आप भारत आये थे तब यहाँ से प्रस्थान करते समय आपने बाबू शिशिरकुमार घोष से कहा था—"मैं भारत को न भूलूँगा; मैं उसे भूल भी नहीं सकता। भारतवासियों को मैं सदा याद रक्खूँगा। मैं अपने पिता से कहूँगा कि भारतवासियों को विशेष सहानुभूति की बड़ी आवश्यकता है"। अपने इन पीयूषपूर्ण
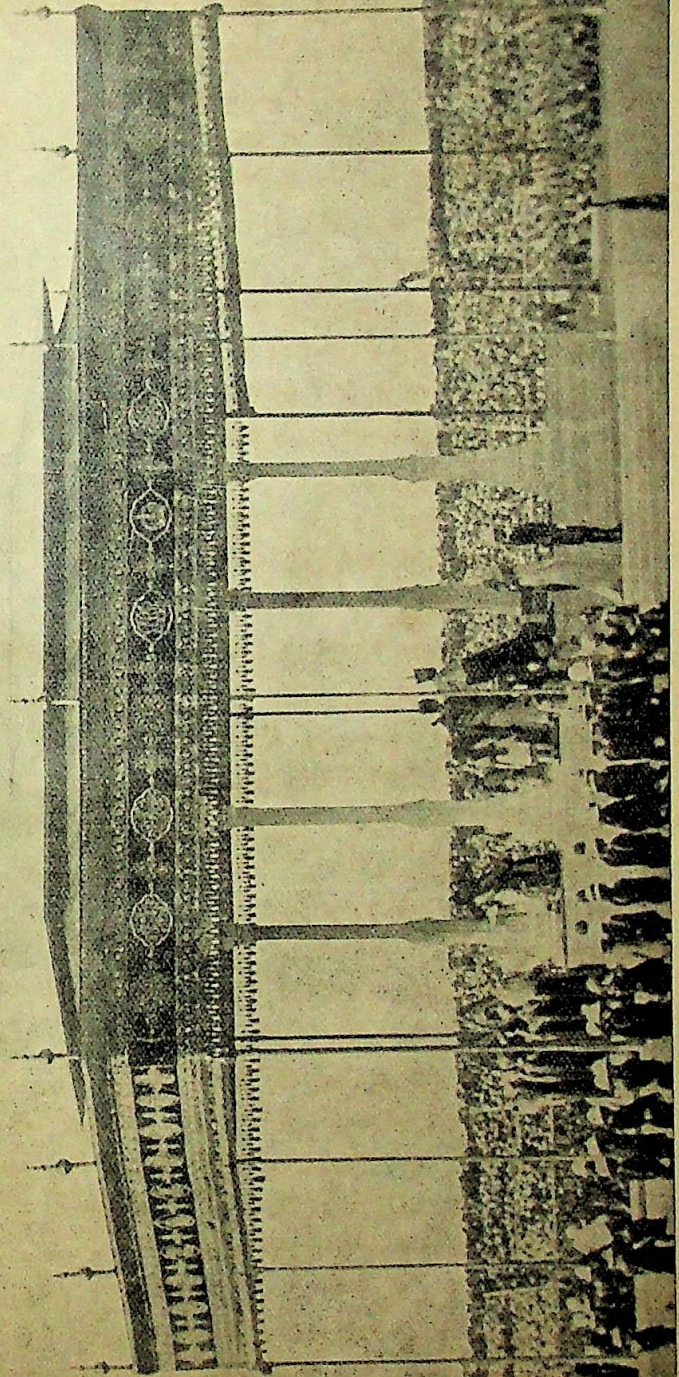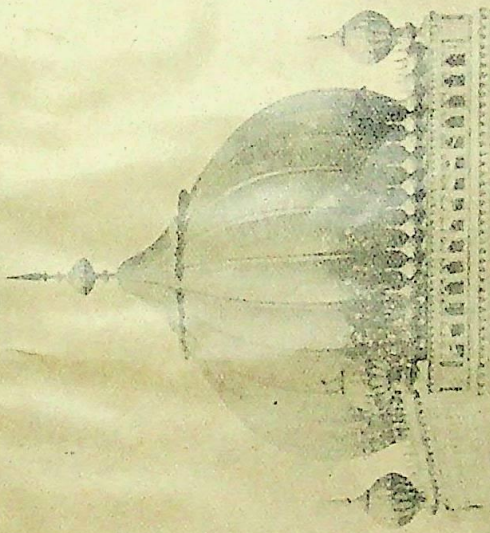
महाराज पञ्चम जार्ज घोषणापत्र सुना रहे हैं।
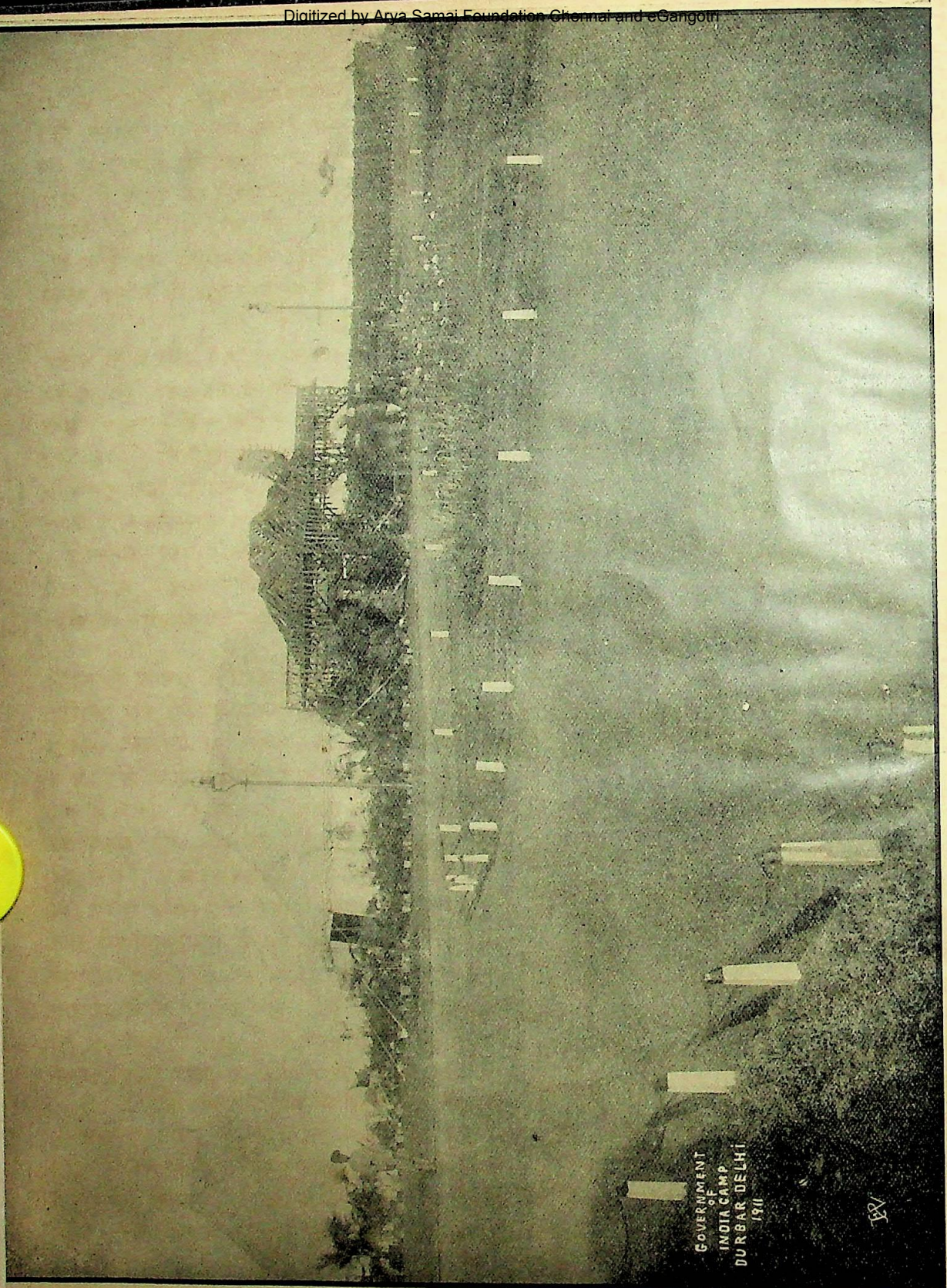
गवर्नमेंट आव् इंडिया का कैम्प—देहली-दरबार ।

वचनों का उन्होंने दृढ़ता से परिपालन किया। उन्होंने भारतवासियों का सन्देश तो पिता से कहा ही होगा। उन्होंने इँगलैंड लौटने पर एक बड़ी भारी सभा तक में शिशिरकुमार बाबू की प्रार्थना पूरी की। उन्होंने साफ़ शब्दों में कह दिया कि यदि भारतवासियों के साथ कुछ अधिक हमदर्दी का व्यवहार किया जाय तो भारत के शासन-कार्य्य की कठिनता बहुत कम हो जाय।

२ दिसम्बर १९११ को, बंबई पहुँचने पर, वहाँ की म्यूनिसिपैलटी की तरफ़ से दिये गये और सर फ़िरोज़शाह मेहता के द्वारा पढ़े गये अभिनन्दनपत्र के उत्तर में भी आपने अनेक औदार्य्यदर्शक और प्रजावात्सल्यसूचक बातें कहीं। अपने उत्तर के अन्त में आपने कहा—"परमेश्वर से हमारी यही प्रार्थना है कि वह हमारे भारतीय साम्राज्य पर कृपापूर्ण दृष्टि रक्खे और उसके निवासियों को शान्ति तथा समृद्धि के सुखोपभोग सदा प्रस्तुत किये रहे"। इस बार भी, पहले की तरह, बंबई और देहली में जब और जो कुछ आपने कहा इस ढँग से और इस स्वर में कहा जिससे यह स्पष्ट सूचित होता था कि आपके अभिवचन हृदय के भीतरी भाग से निकल रहे हैं। आपकी वक्तृताओं में कहीं बनावट का नाम नहीं। आपके मुख से हर बात हमदर्दी से भरी हुई निकली।

७ दिसम्बर को, देहली में, नगर-प्रवेश के बाद, भारतवासी प्रजामात्र की तरफ़ से एक अभिनन्दन पत्र सम्राट् को दिया गया। उसका आपने जो संक्षिप्त उत्तर दिया उसमें आपने कहा—"इस अभिनन्दनपत्र के शब्दों ने हम पर बड़ा भारी असर किया है × × × × विश्वास कीजिए, हमारी सबसे बड़ी आकांक्षा यही है कि भारत का साम्राज्य शान्ति, सन्तोष और समृद्धि के मार्ग की तरफ़ धीरे धीरे बढ़ता जाय"।

देहली की म्यूनिसपैलिटी के द्वारा दिये गये अभिनन्दनपत्र के उत्तर के भी अन्त में आपने कहाः—"मेरी यही प्रार्थना है कि जिस साम्राज्य की राजधानी अब देहली है वह सदा शान्ति, समुन्नति, समृद्धि और न्याय का सुखोपभोग करे"। देहली में नई राजधानी की नीव रखते समय भी आपने फिर अपने हृदय की एक मात्र पूर्वकथित कामना को इस प्रकार व्यक्त किया—"कलकत्ते से देहली में राजधानी उठा लाने से, ईश्वर करे, भारत को विशेष लाभ पहुँचे; उसकी सुख-समृद्धि की वृद्धि हो; और उसका शासन पहले से और भी अधिक अच्छी तरह किया जा सके"।

मदरास के अभिनन्दनपत्र के उत्तर में तो सम्राट् ने हद ही कर दी। मानो अपना हृदय निकाल कर उन्होंने दिखा दिया। उन्होंने कहा—"आप लोगों को मैं दृढ़तापूर्वक विश्वास दिलाता हूँ कि मेरी दादी और मेरे माता-पिता भारत को जिस कृपादृष्टि से देखते रहे हैं और उसकी सुख-समृद्धि से वे जितने प्रसन्न होते रहे हैं वह मैं अच्छी तरह जानता हूँ। मुझे आप इस विषय में उनसे कम न समझें। मैं अपनी भारतीय प्रजा के अभ्युदय का हृदय से अभिलाषी हूँ"।

इस देश में पदार्पण करने के दिन से ही आपने अपने प्रजा-जनों को सुखी, शान्तिभोगी और समृद्धिशाली करने के लिए परमेश्वर से प्रार्थनायें करना आरम्भ कर दिया। उन्हें समुन्नत दशा में लाने के इरादे से की गई अपनी चेष्टाओं का उल्लेख ही कर के आप चुप नहीं रहे। देश-दशा और समय का ख़याल रखते हुए उन्हें आपने कार्य्य में परिणत भी कर दिखाया। जो कार्य्य आपने किये सहर्ष किये। जो वचन आपने मुख से निकाले सहानुभूति-पूर्ण और सदयान्तःकरण के दर्शक निकाले। बात बात पर आपने धन्यवाद दिया। बात बात पर आपने कृतज्ञता प्रकट की। समाचारपत्रों के संवाददाताओं तक को आप नहीं भूले। उनको भी साधुवाद और प्रशंसा-सूचक वचनों से आप्यायित किया।

१२ दिसम्बर के आपके अभिषेक-सम्बन्धी घोषणापत्र का अनुवाद करने की आवश्यकता नहीं। देवनागरी अक्षरों में उसका जो अनुवाद गवर्नमेंट ने प्रकाशित किया है वही हम नीचे अविकल उद्धृत करते हैंः—

महाराजाधिराज-राजराजेश्वर की तरफ़ से ।

शाही इश्तिहार

श्रीमान् महाराजाधिराज-राजराजेश्वर के राज्य में श्रीमान् के राजतिलक की रस्म के हो जाने की सूचना देने के लिये ।

श्रीमान् जार्ज पंचम महाराजाधिराज राजराजेश्वर ।

जो कि हमने अपने राज्य के पहिले वर्ष में सन् उन्नीस सौ दस ई० की उन्नीसवीं जुलाई और सातवीं नवम्बर के अपने शाही इश्तिहारों के ज़रिये से अपने इस शाही इरादः को ज़ाहिर और प्रकाशित किया था कि सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की कृपा और दया से हम अपने राजतिलक की रस्म सन् उन्नीस सौ ग्यारह ई० की बाईसवीं जून को करेंगे;

और जो कि सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की कृपा और दया से हमने पिछली बाईसवीं जून बृहस्पतिवार को वह रस्म करली है ;

और जो कि हमने अपने राज्य के पहले वर्ष में अपने शाही इश्तिहार के ज़रिये से, जो सन् उन्नीस सौ ग्यारह ई० की बाईसवीं मार्च को जारी हुआ था, यह ज़ाहिर किया था कि हमारी यह इच्छा और मरज़ी है कि हम ख़ुद अपनी उन सब प्रेमी-प्रजा पर जो हमारे हिन्दुस्तान के राज्य में हैं यह ज़ाहिर करें कि वह रस्म कर ली गई, और अपने गवर्नरों और लफ़्टिनेन्ट-गवर्नरों और अपने दूसरे ओहदादारों को, और उन हिन्दुस्तानी रियासतों के वालियान और रईसों और अमीरों को जो हमारी रक्षा में हैं, और अपने हिन्दुस्तान के राज्य के सब सूबों के मुख्य मुख्य लोगों को अपने हुज़ूर में बुलायें ;

इस लिए अब हम, अपने इस शाही इश्तिहार के ज़रिये से, यह ज़ाहिर करते हैं कि हमारे राजतिलक की रस्म हो गई, और हम अपनी महाराजाधिराज और राजराजेश्वर की हैसियत से अपने सब ओहदादारों का और सब वालियान-मुल्क और रईसों का और सब क़ौमों का जो इस वक्त दिल्ली में जमा हैं स्वागत करते हैं, और उन सब को इसका यक़ीन दिलाते हैं कि हम को अपने हिन्दुस्तान के राज्य से गहरा प्रेम है, और हम हर वक्त उसकी भलाई और ख़ुशहाली चाहते रहते हैं और ऐसे ही सदा चाहते रहेंगे ॥

यह इश्तिहार हमारे राज्य के दूसरे वर्ष में बारहवीं दिसम्बर सन् उन्नीस सौ ग्यारह ई० को हमारी राज-सभा, मुक़ाम दिल्ली, से जारी हुआ ।

परमात्मा महाराजाधिराज—राजराजेश्वर को सलामत रक्खे ।

यही घोषणापत्र देहली ही में क्यों, सारे भारत में, सुनाया गया था। इसके पढ़े जाने के पहले, देहली दरबार में, कोई अस्सी हज़ार दर्शकों के सामने, महाराज ने श्रीमुख से जो कुछ कहा था उसका सारांश नीचे दिया जाता है :—

"इस अवसर पर यहां उपस्थित होने में मुझे बड़ा ही सन्तोष हुआ है । जिस परमेश्वर की कृपा से यह घड़ी आज आई है उसे मैं धन्यवाद देता हूँ । इस साल मुझे और मेरी महारानी को अनेक बड़े बड़े रस्मों के कारण बहुत कुछ परिश्रम पड़ा है । तथापि यह परिश्रम सर्वथा सुखदायक था । जिस भारतभूमि को प्यार करने का सबक छः वर्ष पहले हमने सीखा था उसका स्मरण हमें पूर्ववत् बना हुआ है । हम उन बातों को अब भी कृतज्ञतापूर्वक याद कर रहे हैं । बहुत समय बीत जाने और बहुत दूर होने के कारण उसमें अन्तर नहीं पड़ा । यही कारण है जो हम आज फिर आपके यहां उपस्थित हुए हैं । उस साल जितने दिन हम यहां रहे, बड़े सुख से रहे । हमें उस समय यही जान पड़ता था कि हम अपने ही घर में हैं । हमारे साथ हमारी भारतीय प्रजा ने जो बरताव किया वह सर्वथा कृपापूर्ण था । अतएव अनेक बड़ी बड़ी आशाओं और अभिलाषाओं को हृदय में धारण किये हुए हमने इस देश के पुनर्वार दर्शन करने के लिए प्रस्थान किया । २२ जून १९११ को वेस्ट मिन्स्टर एबी में, अपने राज्याभिषेक-संस्कार के समय, स्वयमेव इस देश में उपस्थित हो कर अपनी राज्यासन-प्राप्ति की घोषणा करने के लिए हमने जो विचार प्रकट किया था उसकी आज पूर्ति हो गई ।

अपनी महारानी सहित यहां उपस्थित होकर अपनी उपस्थिति से मैं पूर्वोक्त प्रतिज्ञापूर्ति के सिवा यह भी दिखलाना चाहता हूँ कि अपने राजभक्त भारतीय राजाओं तथा साधारण प्रजाजनों को मैं कितना प्यार करता हूँ और भारतीय साम्राज्य को सुखसमृद्धिपूर्ण देखने को मेरा हृदय कितना उत्सुक है । मेरी यह भी इच्छा थी कि लन्दन में जो लोग मेरे राज्याभिषेक-सम्बन्धी उत्सव में शरीक नहीं हो सके वे

यहां देहली में शरीक हो सकें। इस इतने बड़े जनसमूह को देख कर मुझे और महारानी को भी बड़ा ही आनन्द और सन्तोष हुआ है। मेरे गवर्नर, मेरे बड़े बड़े कर्म्मचारी, मेरी फ़ौज के बड़े बड़े अफ़सर, देशी राजे-महाराजे और प्रजा के प्रतिनिधि यहां पर मेरा आधिपत्य स्वीकार करके अपनी राजभक्ति का जो मुझे प्रत्यक्ष परिचय देनेवाले हैं, वह भी मेरे लिए बड़े सन्तोष और सुख की बात है। इस बात ने मेरे हृदय पर बड़ा भारी असर किया है कि राजा और प्रजा सभी ने, इस अवसर पर, अपनी सच्ची सहानुभूति और हार्दिक प्रेम दिखला कर, मेरी मनोवाञ्छा पूर्ण की है। उनके इस सद्भाव से प्रसन्न होकर, अपने राज्याभिषेक की यादगार के तौर पर, मैंने कुछ विशेष कृपासूचक काम करने का निश्चय किया है। मेरे गवर्नर जनरल आजही उनकी सूचना सब उपस्थित जनों के सामने करेंगे।

अन्त में इस अवसर पर प्रत्यक्ष उपस्थित होकर उन प्रतिज्ञाओं को फिर से नई करने में मुझे परमानन्द होता है जो प्रतिज्ञायें मेरे पूज्य पूर्वज आपके स्वत्वों और आपकी क्षमताओं को सुरक्षित रखने के विषय में आपसे कर चुके हैं। इसके सिवा आपकी शान्ति, सन्तुष्टि और मङ्गलाकांक्षा के विषय में मैंने जो कुछ आज तक सच्चे दिल से कहा है उसे भी दुहराने में मुझे इस समय सविशेष आनन्द होता है। परमेश्वर सदैव मेरी प्रजा को कृपादृष्टि से देखता रहे और उसकी सुखसमृद्धि के लिए मैं जो अपनी पूरी शक्ति भर चेष्टा कर रहा हूँ उसे सफल करने में मेरी सहायता करे। राजा-प्रजा सभी लोग जो यहां उपस्थित हैं उनका मैं स्नेहपूर्व्वक अभिवादन करता हूँ"।

इसके अनन्तर लार्ड हारडिंग ने सम्राट् की उन दया-दाक्षिण्य-दर्शक आज्ञाओं को पढ़ सुनाया जिनका उल्लेख सम्राट् ने अपनी वक्तृता में किया था। उनमें से मुख्य मुख्य का सारांश नीचे दिया जाता है :—

(१) सर्वसाधारण में शिक्षा-विस्तार के लिए तुरन्त ही पचास लाख रुपये दिये जायँगे। इसके सिवा भविष्यत् में और भी अधिक उदारतापूर्व्वक इस काम के लिए रुपया ख़र्च किया जायगा।

(२) जिनकी तनख़्वाह पचास रुपया से अधिक नहीं ऐसे जितने लोग फ़ौज में हैं सबको पन्द्रह दिन की तनख़्वाह पुरस्कार दी जायगी।

(३) शूरतासूचक विक्टोरिया-पदक देशी फ़ौज के अफसरों और सिपाहियों को भी मिला करेगा।

(४) प्रतिष्ठापूर्वक बहुत दिन तक काम करनेवाले देशी फ़ौज के अफ़सरों को या तो जागीरें दी जाया करेंगी या उनकी ज़मीन की मालगुज़ारी माफ़ कर दी जायगी।

(५) गवर्नमेंट के उन मुल्की कर्मचारियों को भी पन्द्रह दिन की तनख़्वाह पुरस्कार दी जायगी जिनकी तनख़्वाह पचास से अधिक नहीं।

(६) जितने महामहोपाध्याय और शम्स-उल्-उल्मा इस समय हैं, अथवा जितने आगे होंगे, उनको कुछ पेन्शन मिला करेगी।

(७) भारतीय राजाओं को राजासन पर बैठने पर गवर्नमेंट को जो नज़राना देना पड़ता है वह न देना पड़ेगा।

यह विज्ञापना जब समाप्त हो गई तब, अपनी गाड़ी पर सवार होकर दरबार का स्थान छोड़ने के पहले, सम्राट् ने अपने ही मुख से नीचे लिखे प्रजाहितकर कार्य्यों की सूचना दी। आपने कहा :—

(१) अब से भारत की राजधानी देहली होगी।

(२) दोनों बंगाल एक कर दिये जायँगे और उनका शासन एक गवर्नर के हाथ में रहेगा।

(३) आसाम के लिए एक अलग कमिश्नर नियत किया जायगा।

(४) विहार, छोटा नागपुर और उड़ीसा मिला कर एक नया सूबा बनाया जायगा। उसका शासन एक लफ़्टिनेंट गवर्नर के अधीन होगा।

अन्त में सम्राट् ने यह कामना की कि "मैं हृदय से चाहता हूँ कि इन परिवर्तनों के कारण भारत का शासन करने में विशेष सुभीता हो और मेरी प्यारी प्रजा के सुख और समृद्धि की वृद्धि हो"।

सो जिस समय से सम्राट् इस देश में पधारे उस समय से ही बराबर अपनी प्रजा की सुख-समृद्धि की वृद्धि ही की कामना करते रहे, और, पूर्ण आशा है, यही कामना करते करते वे इस देश से प्रस्थान भी करेंगे। जिस राजा को अपनी प्रजा के सुख और सुभीते का इतना ख़याल है वही प्रकृत राजा है। सम्भव है सम्राट् का कोई कोई दाक्षिण्य-दर्शक कार्य्य कुछ लोगों के असन्तोष का कारण हुआ हो, अथवा कुछ लोग यह समझें कि सम्राट से उन्हें जितनी आशा थी उतनी की प्राप्ति नहीं हुई। परन्तु संसार में सबको सम्पूर्ण प्रसन्न करना प्रायः असम्भव है। राजाओं और राजनीति-विचक्षणों के लिए तो सबको प्रसन्न रखना और भी अधिक असम्भव है। अस्तु। इन बातों पर विचार करना सरस्वती का काम नहीं। वह सम्राट् पञ्चम जार्ज के प्रजा-वात्सल्य और प्रजारञ्जक कार्य्यों का हृदय से अभिनन्दन करती है और उनके आदर-सत्कार में प्रजा से यदि कोई त्रुटि हुई हो तो उसके लिए क्षमा चाहती है।

"किसी फल की प्राप्ति के लिए जान तोड़ कर की गई कोशिशें भी यदि बहुधा व्यर्थ होती देख पड़ें—उनसे मनुष्य की यदि कुछ भी भलाई और उन्नति न हो—यह बात सौ में निन्नानवे बार तक भी हो सकती है; तो भी सौवीं बार फल ऐसा महत् और आश्चर्यकारी होगा जिसका हमें कभी स्वप्न में भी ख़याल न हुआ होगा और यदि कोई मनुष्य उसकी सत्यता पर भविष्यद्वाणी कर देता, तो हम उसको दुरुस्त दिमाग़ वालों की सीमा के बाहर ही समझते।"

—जान स्टुअर्ट मिल।

"संसार में सफल-मनोरथ होना अपनी शक्ति, अपने पराक्रम, अपने मानसिक बल ही पर अवलम्बित है।"

—अज्ञात लेखक।

अनुवादक, बालकृष्ण शर्मा।

गोण्डाल का राज-परिवार।

(विशेषतः सरस्वती के लिए लिखित)

सूर्य्यास्त हो गया था; परन्तु अभी तक आकाश का एक कोना लोहित-वर्ण था। गोधूलि के कारण पास के पदार्थ तो स्पष्ट दिखाई देते थे, पर दूर के पदार्थ अदृश्य हो गये थे। ऐसी ही सन्धि के समय जब कि भगवान् मरीचिमाली तारागण को अपना अपना प्रकाश भूगोल के एक भाग पर प्रकट करने का अवसर देने के लिए भूगोल के दूसरे भाग की ओर प्रयाण कर रहे थे—हम लोग अपनी गाड़ी को तेज़ दौड़ाते हुए काठियावाड़ के अन्तर्गत और गोण्डाल-राज्य की राजधानी गोण्डाल नगर से चार मील के फ़ासले पर बने हुए एक शिवालय के पास पहुँचे। गोण्डाल-राज्य के अधिपति गाड़ी से नीचे उतरे। गाड़ी इतनी बड़ी थी कि उस पर आठ दस आदमी अच्छी तरह बैठ सकते थे। राजा ने रानी को गाड़ी से नीचे उतारा। फिर वे उनका हाथ पकड़ कर मन्दिर की सीढ़ियों पर चढ़ने लगे। यहाँ उन्होंने अपने जूते उतार दिये और नङ्गे पैर रानी का हाथ पकड़े हुए आगे बढ़े। नान्दी के पास से होकर दोनों महादेव जी की मूर्ति के निकट गये। वहाँ भी रानी का हाथ राजा के हाथ में था। दोनों ने बैठ कर विधिवत् नम्रतापूर्वक शङ्कर को प्रणाम किया। फिर उन्होंने कुछ रुपये चढ़ाये और स्तोत्र पढ़े। तत्पश्चात् गाड़ी पर हम लोगों के साथ बैठ कर वहाँ से चल दिये।

काठियावाड़ के इस राज्य में यह घटना रोज़ होती है। प्रति दिन, सूर्य्यास्त के समय, गोण्डाल-नरेश श्रीमान् ठाकुर साहब श्री भगवत्सिंहजी, जी० सी० एस० आई०, एम० डी०, एफ़० आर० सी० पी० ई०, एल० एल० डी०, डी० सी० एल०, एफ़०, आर० एस० ई०, एफ़० बी० डब्ल्यू० के राज-

महल की ड्योढ़ी पर राज-परिवार की सवारी गाड़ी लाई जाती है। राजमहल में पच्चीकारी का काम अच्छा बना हुआ है; परन्तु अपनी बाहरी सादगी के कारण वह केवल "हुज़र बँगला" के नाम से प्रसिद्ध है। गाड़ी में राजा, रानी, राजकुमारियाँ और निमन्त्रित अतिथि बैठते हैं। पहले औरों को बिठा कर तब ठाकुर साहब स्वयं बैठते हैं। गाड़ी में काठियवाड़ी घोड़े जुते रहते हैं। जब जी चाहता है तब ठाकुर साहब घोड़ों की रास स्वयं हाथ में लेते हैं, परन्तु प्रायः वे ऐसा नहीं करते; क्योंकि वायु-सेवन के समय वे अपने परिवार वालों और मित्रों के साथ बातचीत करना अधिक पसन्द करते हैं। वैसे तो राज्य भर की सड़कें बहुत अच्छी दशा में हैं; तथापि राजधानी के चारों ओर की पक्की सड़कें बहुत ही साफ़ सुथरी हैं।

वायु-सेवन करके नौ बजे रात तक, भोजन के समय पर, वे राजमहल को लौट आते हैं। सब परिवार वाले और निमन्त्रित अतिथि एक गोल मेज़ के चारों ओर, बिना वय और पद का लिहाज़ किये, सब लोग जी चाहे वहाँ बैठ जाते हैं। जब किसी विदेशी को निमन्त्रण दिया जाता है तब भोजन अँगरेज़ी ढँग का होता है। साधारणतः हिन्दुस्तानी रीति के अनुसार भोजन बनाया जाता है। भोजन बनानेवाले रसोइये काठियावाड़-निवासी ही होते हैं। भोजन-शाला के पास ही मुलाक़ात करने का कमरा है। उसमें सब कोई, एक ही कुटुम्ब के लोगों की तरह, स्वतन्त्रतापूर्वक क़हवा पीने के लिए एकत्र होते हैं। गोण्डाल में सर्दी बहुत नहीं पड़ती। इस लिए कमरे को गरम करने की ज़रूरत भी नहीं पड़ती। ग्रीष्म ऋतु में गरमी भी विशेष नहीं होती; थरमामीटर का पारा अधिक से अधिक १०२ डिगरी तक ही चढ़ता है। इस कारण उन दिनों सन्ध्या का समय बहुत सुहावना होता है। जिस रात को गरमी अधिक होती है—और विशेषतः चाँदनी रात में—परिवार वाले, भोजनोपरान्त, गाड़ी पर बैठ कर एक दो घंटे हवा खाने के लिए निकल जाते हैं, या मुलाक़ात वाले कमरे के सामने गेंद खेलने के मैदान में जा बैठते हैं। ठाकुर साहब अतिथि-सत्कार के लिए बड़े प्रसिद्ध हैं। महल की सड़क के उस पार अतिथि-शाला बनी हुई है। उसी में अतिथि ठहराये जाते हैं। जब अतिथियों को सन्ध्या समय निमन्त्रण दिया जाता है तब श्रीमती रानी साहबा, राजकुमारों और राजकुमारियों सहित श्रीमान् ठाकुर साहब, अतिथियों के साथ सामयिक साहित्य, शिल्प, यन्त्रा-कला और समाज-सम्बन्धी विषयों पर आधी रात तक बातचीत किया करते हैं। ठाकुर साहब के परिवार के सब लोगों में एक गुण बड़ा भारी है। उन सबको अपना अपना ज्ञान बढ़ाने की धुन सदा लगी रहती है। उनको ज्ञान-वृद्धि की इतनी चिन्ता रहती है कि जब कभी किसी रात को उनको कोई काम नहीं होता तब वे सब बिजली के प्रकाश में अपनी अपनी रुचि के अनुसार पुस्तकें पढ़ने लगते हैं और कभी कभी इतनी देर तक पढ़ते रहते हैं कि उषःकाल हो जाता है।

गोण्डाल के ठाकुर साहब को आडम्बर पसन्द नहीं। अन्य भारतीय राजा-महाराजाओं की सेवा में कितने ही शरीररक्षक और भड़कीले वस्त्रों से सुसज्जित चोबदार सदा उपस्थित रहते हैं। ठाकुर साहब इन बातों को अनावश्यक समझते हैं। उनके पास एक सेक्रेटरी या लेखक रहता है, परन्तु उससे वे अपना ख़ास काम बहुत ही कम लेते हैं। या तो वे अपना काम स्वयं कर लेते हैं या अपनी बड़ी राजकुमारी बाकुवेरबा से करा लेते हैं। ठाकुर साहब को राजकुमारी बाकुवेरबा से हर काम में बड़ी सहायता मिलती है। राजकुमारी कभी उन्हें मोटर गाड़ी पर बिठा कर घुमाने ले जाती हैं; कभी उनको उनके दफ़्तर के कामों में सहायता देती हैं; कभी वे बाग़ की निगरानी करती हैं; कभी कुछ करती हैं, कभी कुछ। पिता के न मालूम कितने काम वे करती हैं। ठाकुर साहब के पास नौकर चाकर बहुत ही कम रहते हैं। भारत में ऐसे बहुत से राजा हैं जिनकी आमदनी ठाकुर साहब की आमदनी से बहुत कम है।

परन्तु वे सदा मुफ़्तख़ोर ख़ुशामदियों से घिरे रहते हैं; और उनका आडम्बर देखते ही बनता है। ठाकुर साहब के यहाँ इन बातों का पूरा अभाव है। उनके परिवार वालों के कपड़े साफ़ और सुथरे तो होते हैं; परन्तु बेश-क़ीमती नहीं। ठाकुर साहब मलमल की कमीज़ और सूती पाजामा पहनते हैं। घर में वे नङ्गे पैर ही रहते हैं। स्त्रियाँ बहु-मूल्य आभूषणों को पसन्द नहीं करतीं। हाँ, साड़ियाँ वे अच्छी अच्छी पहनती हैं। घर में वे भी मोज़ा और जूता नहीं पहनतीं। बहुत हुआ तो चट्टी (सिलीपर) पहन लेती हैं। उन सबका अन्तःकरण बड़ा शुद्ध है। उनका व्यय बहुत परिमित है। बहुत सी वस्तुओं को, जिन्हें अन्य राजा और रानी अपने लिए परमावश्यक समझते हैं, ठाकुर साहब और उनके परिवार के लोगों ने इस लिए छोड़ रक्खा है जिससे राज्य की प्रजा पर उनके ख़र्च का अनुचित बोझ न पड़े। इस सुखी हिन्दू-राज-परिवार की सादगी प्रशंसनीय है।

ठाकुर साहब के परिवार के लोग जिस सादगी से गोण्डाल में रहते हैं उसी सादगी से वे राज्य के बाहर भी रहते हैं। ठाकुर साहब जब बम्बई जाते हैं तब वे वहाँ एक साधारण जन की तरह रानी और राजकुमारियों के साथ बाहर निकलते हैं। साथ में कोई नौकर नहीं रहता। भीड़ में उन्हें कोई नहीं पहचान सकता कि ये राजा हैं। सादे ही वेश में वे बाज़ार जाते और चीज़ें ख़रीदते हैं। दुकानदारों का यह क़ायदा होता है कि वे अपने ग्राहक को राजा-महाराजा जान कर अपनी चीज़ों के दाम बढ़ा कर कहते हैं। परन्तु ठाकुर साहब के साथ उन्हें ऐसा करने का अवसर प्राप्त नहीं होता।

जिस प्रकार सन्ध्या-समय मनोरञ्जन में व्यतीत होता है उसी प्रकार दिन काम करने में व्यतीत होता है। ठाकुर साहब और परिवार के अन्य लोग प्रातःकाल आठ बजे तक नित्यकर्म्म से निवृत्त हो चुकते हैं। रात को देर तक जागते रहने के कारण प्रातःकाल उठने में कुछ विलम्ब हो जाता है। जलपान के बाद वे अपनी अपनी चिट्ठियाँ और समाचारपत्र खोलते और पढ़ते हैं। दस बजे भोजन कर के सब लोग अपने अपने काम में लग जाते हैं। ठाकुर साहब का दफ़्तर उनके पुस्तकालय में है। वे वैद्यविद्या के बड़े प्रेमी हैं। आप एडिनबरा विश्व-विद्यालय के एम० डी० हैं। इस कारण आपके पुस्तकालय में अन्य विषयों की पुस्तकें तो हैं हीं, वैद्यक-सम्बन्धिनी पुस्तकें भी बहुत हैं। दफ़्तर में उनके सेक्रेटरी उपस्थित रहते हैं। वे उच्च-राज-कर्मचारी भी वहाँ रहते हैं जिन्हें कोई काम होता है। ठाकुर साहब सब कामों को नियमपूर्वक करते हैं। हर एक विभाग के काम के लिए अलग अलग दिन नियत हैं। नियत दिन में वे नियत विभागों ही का काम देखते हैं। कोई बड़ा ही आवश्यक काम आ जाने से उसे बीच में भी देख लेते हैं, अन्यथा नहीं। राजधानी और राज्य के देहातों में भी टेलीफ़ोन लगा हुआ है। टेलीफ़ोन ही से वे कह दिया करते हैं कि किससे किस समय मिलेंगे और क्या काम करेंगे। भगवत्सिंहजी पाँच छः बजे सन्ध्या तक काम करते रहते हैं। बीच में विश्राम नहीं लेते। तीसरे पहर, तीन बजे के समय, एक प्याला चाय का पी लेते हैं।

दफ़्तर के वक्त उनके राज्य का ग़रीब से ग़रीब आदमी उन से मुलाक़ात कर के अपना दुख-दर्द कह सकता है। ठाकुर साहब सबकी शिकायतों को ध्यान से सुनते हैं। इसी से बुरे लोग उन से घृणा करते और डरते हैं और सच्चे उन्हें प्यार करते हैं। वे अपने नौकरों पर सख़्त निगाह रखते हैं। कोई नौकर किसी से किसी प्रकार की "बख़शीश" नहीं ले सकता। यदि कोई उनसे मिलना चाहे और नौकर इस बात की ख़बर न दे, या देर से दे, तो वह फ़ौरन ही बर्ख़ास्त कर दिया जाता है। ठाकुर साहब सचमुच ही अपनी प्रजा के पिता हैं। जो उन्हें देखता है उसी के हृदय में यह विचार उत्पन्न होता है कि यदि भारत-वर्ष में कुछ और राजा भी ऐसे ही होते तो बहुत अच्छा होता।

ठाकुर साहब स्वयं राज्य के सब महकमों का काम देखते हैं। वे स्वयं सब काग़ज़ों को बड़े ध्यान से जाँचते हैं। रुपये पैसे से सम्बन्ध रखने वाला कोई काम ऐसा नहीं जो वे स्वयं न करते हों। माल, अस्पताल और तामीर के महकमों के काम मुख्यतः वे स्वयं ही देखते हैं। नक़्शों वग़ैरह में जहाँ ज़रूरत होती है वे घटाते बढ़ाते हैं और यथा-शक्ति सब विषयों में सुधार के उपाय भी बताते हैं। हाँ, अदालत के महकमे का काम वे बिलकुल नहीं देखते। यहाँ पर यह कह देना चाहिए कि किसी महकमे का काम न देखने से यह नतीजा नहीं निकालना चाहिए कि उसके कर्मचारी अपना काम अच्छी तरह न करते होंगे। नहीं, ठाकुर साहब इतनी असावधानता कभी नहीं करते। ऐसे महकमों पर भी उनकी नज़र रहती है।

किसी किसी दिन ठाकुर साहब अपने दफ़्तर में काम नहीं करते। उस दिन वे राज्य के दफ़्तरों को देखते फिरते हैं कि उनका काम ठीक ठीक होता जा रहा है या नहीं—किसी प्रकार की गड़बड़ तो नहीं। यथार्थ बात जान लेने में वे बड़े कुशल हैं। वे अपने अफ़सरों से राजकीय कार्य्यों के विषय में ऐसे ऐसे प्रश्न करते हैं कि उन्हें काम की यथार्थ अवस्था का पता शीघ्र ही लग जाता है। वे अस्पताल के कामों को विशेष अनुराग से देखते हैं। वे रोज़ अस्पताल जाते हैं। प्रायः वे अपने सामने ही चीड़ फाड़ का काम कराते हैं जिससे वे देख सकें कि रोगी की चिकित्सा में कुछ कसर तो नहीं रही। स्वयं तो वे चीड़-फाड़ नहीं करते; परन्तु प्रायः सर्जन लोग ऐसे अवसर पर उनसे सलाह अवश्य ले लिया करते हैं जब उन्हें शल्य-चिकित्सा की किसी कठिन समस्या का सामना करना पड़ता है। ठाकुर साहब ने रोगियों के रहने के स्थानों और कमरों की खिड़कियों और झरोखों में कुछ ऐसे कील काँटे लगा रक्खे हैं जिनका खोलना और बन्द करना डाक्टरों और दाइयों ही के हाथ में है, रोगियों के नहीं। ठाकुर साहब देहात में मोटरकार, घोड़े, गाड़ी और रेल द्वारा दौरा किया करते हैं। इससे उन्हें अपनी प्रजा का सच्चा सच्चा हाल मालूम हो जाता है। दुर्भिक्ष के समय दुर्भिक्ष-पीड़ित स्थानों में जा जाकर वे स्वयं प्रजा की सहायता करते हैं।

ठाकुर साहब तो इस प्रकार अपने समय का सद्-व्यय करते हैं; रानी साहबा भी अपने समय को अच्छे अच्छे कामों में लगाती हैं। श्रीमती रानी श्रीनन्द-कुवेरबा अपनी विद्वत्ता के लिए प्रसिद्ध हैं। भारतीय रानियों में उन्हीं ने सबसे पहले संसार भर की यात्रा की। उन्होंने अपनी इस यात्रा पर एक पुस्तक लिखी है। थोड़े ही दिन हुए, राजकोट में गुजराती साहित्य-परिषद् का अधिवेशन हुआ था। उसमें उन्होंने एक वक्तृता दी थी। उस वक्तृता की धूम देश भर में हुई। उनको अपनी मातृ-भाषा गुजराती, और अँगरेज़ी से बड़ा प्रेम है। वे दिन भर में बहुत कुछ पढ़ डालती हैं। उन्हें सीने-पिरोने और घर के और कामों से भी बड़ा प्रेम है। वे राजकर्मचारियों और प्रजा-वर्ग की स्त्रियों के कष्ट दूर करने और उनको सुख पहुँचाने के लिए सदा यत्नवती रहती हैं। उन्हें वे अपने महल में बुलाती हैं और कभी कभी उनके यहाँ ख़ुद ही जाने में सङ्कोच नहीं करतीं। राज्य की सारी प्रजा उन्हें बहुत चाहती है। वे दयावती और धर्म-निष्ठ हैं। वे समाज-सुधार और स्त्री-शिक्षा के प्रचार के लिए सदा यत्न करती रहती हैं। उन्होंने एक अनाथालय स्थापित किया है। उसका नाम है—"भगवत्-सिंह जी अनाथालय"। वे उसका सारा ख़र्च अपने पास से देती हैं। उसमें राज्य के ८ वर्ष से कम उम्र के सब जातियों के अनाथ लड़के और लड़कियाँ रक्खी जाती हैं। १९०० में घोर दुर्भिक्ष पड़ा था। रानी साहिबा ने उस समय बड़ा काम किया। उन्होंने स्वयं नाना कष्ट सह कर भूखों मरती हुई प्रजा का कष्ट कम किया। उनकी बुद्धिमत्ता और उदारता पर मुग्ध हो कर महारानी विक्टोरिया ने उन्हें, १८९२ में, एक ऊँची पदवी से विभूषित किया।

अब ठाकुर साहब की सन्तति का हाल सुनिए। राजकुमारी ताराबा फ़्रान्स में पढ़ रही हैं। कुमार

भूपतिसिंहजी ट्रिनिटी कालेज, केम्ब्रिज, में हैं। कुमार कीर्तिसिंहजी हरो (इँगलैंड) में हैं। और कुमार नटवरसिंहजी जरसी के विक्टोरिया-कालेज में हैं। ज्येष्ठ राजकुमार, युवराज श्रीभोजराजजी, राजकुमारी बाकुवेरबा और राजकुमारी लीलाबा घर पर हैं। युवराज ने इटन और आक्सफ़ोर्ड में शिक्षा पाई थी। दोनों राजकुमारियाँ शिक्षित और कार्य्यकुशल हैं। वे बड़ी नम्र और सुशील हैं। राजकुमारी बाकुवेरबा ने एडिनबरा में शिक्षा पाई थी। गोण्डाल लौट कर उन्होंने बम्बई के सर जे० जे० स्कूल आव् आर्टस् की सारी परीक्षायें पास कीं। बरौच, इलाहाबाद और नौसारी की नुमायशों में उनके अङ्कित चित्रों और निर्म्मित मूर्तियों की बड़ी प्रशंसा हुई और उन्हें अच्छे अच्छे पदक मिले। बरौच की प्रदर्शिनी में उन्हें अपने ढाँचे के काम के लिए एक अच्छा प्रशंसा-पत्र मिला। उनके इस काम की प्रशंसा बम्बई की आर्ट-सोसायटी की प्रदर्शिनी में भी की गई। वे फ़ोटोग्राफ़ी भी बहुत अच्छी जानती हैं। उन्होंने फोटोग्राफ़ी की भी कितनी ही बाज़ियाँ जीती हैं। वे आजकल अपने पूज्य पिता का एक चित्र (Bust) तैयार कर रहीं हैं। वे एक ऐसा ही चित्र अपनी माता का बना चुकी हैं। ये दोनों चित्र साथ रक्खे जायँगे। वे बड़ी परिश्रमी हैं। उन्हें अपने पिता का दाहना हाथ कहना चाहिए। रात हो या दिन, किसी समय कहीं भी ठाकुर साहब हों, राजकुमारी सदा उनके साथ रहती हैं और उनको हर तरह की सहायता देती हैं। वे प्रायः दो, तीन, या चार छोटे छोटे शेटलेण्ड के टट्टुओं की एक ख़ास टमटम पर बैठ कर कुछ दूर एक छोटे से बाग़ तक जाती हैं; यही उनके मनोरञ्जन का साधन है। राजकुमारी लीलाबा ने गोण्डाल में ही शिक्षा पाई है। वे अपने माता-पिता के साथ इँगलैंड, स्काटलैंड और फ्रान्स घूम आई हैं। इस भ्रमण से उनकी विशेष ज्ञानवृद्धि हुई है। उन्होंने भी वे सब परीक्षायें पास की हैं जो उनकी बड़ी बहन राजकुमारी बाकुवेरबा ने की हैं। उनको भी कितने ही पदक और प्रशंसा-पत्र अपनी चित्रकारी आदि पर मिले हैं। बड़ौच की स्त्रियों की बनाई हुई चीज़ों की प्रदर्शिनी में उन्हें एक पदक और प्रथम श्रेणी का प्रशंसा-पत्र मिला था और बम्बई की आर्टस् सोसायटी की प्रदर्शिनी में भी उन्हें उनके एक तैल-चित्र पर पदक दिया गया था। राजमहल के अहाते में राजकुमारियों के लिए एक छोटा सा पाठालय और चित्रणागार है। विशेषतः वहीं पर वे अपना काम करती हैं। युवराज का विवाह माइसोर की महारानी की छोटी बहन से हुआ है। उनके चार कन्यायें हैं।

जिनको गोण्डाल के राजपरिवार से परिचित होने का अवसर प्राप्त हुआ है उन्हें यह बात स्वीकार करनी पड़ती है कि ठाकुर साहब उसी प्रकार के आदर्श राजा हैं जिनका वर्णन हमारे प्राचीन संस्कृत-साहित्य में है।

सेंट निहालसिंह।

"यदि संसार में हम कोई भी करने योग्य काम करना चाहते हैं तो शीत और भय का विचार कर हमें किनारे पर खड़े काँपते रहना ही न चाहिए; किन्तु कर्तव्य-नदी में कूद कर पूर्ण उद्योग से पार पहुँचना चाहिए।"

—लब्बक।

"हमारी शंकायें ही विश्वास-घातक हैं। वही हमको यत्न करते देख, डरा कर, बहुधा हमारी भलाई का अपहरण करती हैं।"

—शेक्सपियर।

"अत्यधिक की आशा मत करो। थोड़े की आशा करना और उसे ही बहुत मानना सफलता की कुंजी है।"

—गेटे।

अनुवादक, बालकृष्ण शर्मा।

पदार्थ-विज्ञान का अभ्युदय।

प्राचीन काल में, जहाँ तक पता चलता है, पदार्थों के विषय में जिस रीति से ज्ञान प्राप्त किया जाता था वह रीति आज कल ठीक नहीं समझी जाती। आज कल पदार्थों के सूक्ष्म निरीक्षण और उनके कार्यों के अवलोकन से यह ज्ञान प्राप्त किया जाता है। प्राचीन काल में यह बात न थी। उस ज़माने में आन्तरिक दृष्टि और अनुमान द्वारा विज्ञान की उपलब्धि होती थी। आज कल उपपादन और प्रयोग के द्वारा यह बात होती है।

विज्ञान के किसी किसी विभाग में यूनानियों ने अद्भुत चमत्कार दिखाया था। यद्यपि वे भी अधिक-र पुरानी ही रीति के अनुयायी थे तथापि उनका दार्थ-विषयक ज्ञान सर्वथा दूषित न था। पाइथा-रस, अरस्तू, आर्कीमीडीज़, टालेमी इत्यादि यूनानी ज्ञानिक पुरुषों में सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं। इनमें तीसरे महाशय को तो यदि हम भौतिक विज्ञान पिता कहें तो अनुचित न होगा।

प्राचीन और आधुनिक विज्ञान के युग में एक समय ऐसा हो गया है जो विज्ञान की रात्रि कहा जा सकता है। १०० ईसवी से १२४० ईसवी तक कोई प्रसिद्ध विज्ञानवेत्ता नहीं उत्पन्न हुआ। अरब में कुछ कुछ विज्ञान का प्रकाश था, परन्तु वह मिथ्या बातों के तिमिर से ऐसा आच्छादित था कि उसका होना न होने के बराबर था।

तेरहवीं शताब्दी में योरप में एक ऐसे पुरुष की उत्पत्ति हुई जो विज्ञान के अभ्युदय का कर्त्ता माना गया। ये पुरुष-रत्न राजर बेकन नाम के विद्वान् थे। इन्हों ने पदार्थों के विषय में ज्ञान प्राप्त करने की आधुनिक प्रथा निकाली। जिस समय ये उत्पन्न हुए उस समय लोगों ने इनकी कुछ भी क़दर न की; वे इनकी योग्यता को जानते ही न थे। अतः इनसे किसी की सहानुभूति न थी। इनकी विद्या ही इनका काल हो गई। उसी के कारण ये कारागार में डाले गये थे। विज्ञान का अभ्युदय ठीक इनके २०० वर्ष बाद हुआ।

लार्ड बेकन के २०० वष बाद पुस्तकों के छापने की रीति खोज निकाली गई। इसी समय कलम्बस को अमेरिका का पता लगा। बस यही सोलहवीं शताब्दी का मध्य विज्ञान का अभ्युदय-काल था। इसी समय प्रसिद्ध विज्ञानवेत्ता कोपरनिकस का प्रादुर्भाव हुआ।

अभ्युदय चाहे जिसका हो, सहज में नहीं होता। सूर्य को रात्रि का तिमिर दूर करके निकलने में थोड़ा कष्ट और परिश्रम नहीं उठाना पड़ता। विज्ञान के अभ्युदय-काल में भी बड़ी बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था।

साधारण मनुष्य इस समय किसी तरह अपना जीवन व्यतीत करते हैं। वे उन अद्भुत दृश्यों के रहस्य से अनभिज्ञ रहते हैं, यद्यपि जीवन-पर्य्यन्त प्रति दिन वे उन्हें देखा करते हैं। वे उनके जानने की परवा ही नहीं करते। नित्य वे सूर्य को उदित और अस्त होते देखते हैं, पदार्थों को ऊपर से नीचे गिरते देखते हैं, और आग जलते देखते हैं; परन्तु उनके मन में यह प्रश्न कभी उत्पन्न ही नहीं होता कि इन सब घटनाओं का कारण क्या है। उनको अपनी इस अज्ञानावस्था ही में आनन्द आता है। जब इस बीसवीं शताब्दी में साधारण जनों का यह हाल है तब प्राचीन काल के मनुष्यों की अज्ञानता का अन्दाज़ा पाठक स्वयं कर सकते हैं।

किसी भी विद्या या विज्ञान के उद्भव के लिए शान्ति की अत्यन्त आवश्यकता होती है। विज्ञान की उत्पत्ति और वृद्धि शान्त स्थानों और शान्त समयों ही में हुई है। अतः हमें ईश्वर को धन्यवाद देना चाहिए कि हम लोगों को इस समय शान्ति प्राप्त हुई है। इस समय चूकने से हम कहीं के नहीं हो सकते।

यद्यपि साधारण मनुष्य अपने जीवन के अद्भुत दृश्यों को समझने की इच्छा नहीं करते, और जब तक उनके जान-माल पर नहीं आजाती तब तक

किसी विशेष बात की कुछ भी परवा नहीं करते; तथापि समय समय पर ऐसे महापुरुष उत्पन्न भी होते रहते हैं जिनकी प्रकृति असाधारण होती है और जो संसार को और ही दृष्टि से देखते हैं। वे संसार को क्रय-विक्रय का एक बाज़ार नहीं समझते, न उसको ऊपर नीचे जाने की एक सीढ़ी ही समझते हैं। वे संसार को एक अद्भुत भावगर्भित वस्तु समझते हैं। उस पर विचार करना और उसके अभिप्राय को समझना वे अपना परम कर्तव्य समझते हैं। साधारण मनुष्य उन पर हँसते हैं; उनको चिढ़ाते हैं; उनको समझाते हैं। हिन्दी-साहित्य के इस अभ्युदय-काल में भी ऐसा हो तो आश्चर्य्य ही क्या? "जानिबो गरो परो"— यद्यपि कवि ने इस वाक्य का और ही मौक़े पर प्रयोग किया है; परन्तु हम इसको अपने नागरी-नायकों के विषय में पूर्णतया चरितार्थ होता पाते हैं। जानने के लिए सताये जाने की मिसाल आप यहीं पावेंगे।

जिन महानुभावों ने विज्ञान का अभ्युदय किया उनकी नामावली में कोपरनिकस का नाम पहला है। सन् १४७३ ई० में ये प्रशिया में उत्पन्न हुए थे। इन्होंने मनुष्यों के विचारों में जो परिवर्तन कर दिया उसका अन्दाज़ा इस समय लगाना बड़ा कठिन है। इन्होंने यह सिद्ध कर दिया—कि पृथ्वी भी और ग्रहों की तरह ग्रह है, और सूर्य की परिक्रमा किया करती है। इस सिद्धान्त के पूर्व यूरपवालों का यह विश्वास था कि आकाशस्थित पिण्डों का केन्द्र पृथ्वी है और सारे पिण्ड इसकी परिक्रमा करते हैं। मिश्र, यूनान आदि देशों में तरह तरह के मत इस सम्बन्ध में प्रचलित थे। ऐसी दशा में आप समझ सकते हैं कि इस नवीन सिद्धान्त का कैसा स्वागत हुआ होगा। इतनी बड़ी पृथ्वी अपने समुद्र, पहाड़ और पेड़ों सहित लट्टू की तरह घूमती हुई सूर्य की परिक्रमा करे! यह कैसी बात! यह कदापि सम्भव नहीं!

इस सिद्धान्त के मानने में केवल भौतिक आपत्ति ही नहीं थी; किन्तु धार्मिक आपत्ति भी थी। जब धर्म के संरक्षकों को मालूम हुआ कि यह, सिद्धान्त उनके धार्मिक सिद्धान्तों के विरुद्ध है तब उन्होंने उसका विरोध आरम्भ कर दिया। परन्तु यह विरोध कोपरनिकस के जीवन-काल में नहीं हुआ। कारण यह था कि यह सिद्धान्त एक बड़ी मोटी और क्लिष्ट पुस्तक में दबा पड़ा था। दूसरे इसके वेत्ता स्वयं एक धार्मिक पुरुष थे। वे बहुत विचारपूर्वक काम करते थे और अपने विचारों को एकदम नहीं प्रकट कर देते थे। कोपरनिकस अपने इन विचारों को शनैः शनैः वार्तालाप में बराबर बीस वर्ष तक प्रकाशित करते रहे। इस पर भी जब उन्होंने इनको पुस्तकाकार छपवाया तब पुस्तक को पोप महाराज को (जो ईसाई धर्म के मुख्य संरक्षक समझे जाते थे) समर्पण किया। इस प्रकार धर्म के संरक्षकों ही ने एक ऐसे सिद्धान्त की रक्षा का भार अपने ऊपर लिया जिसके विरुद्ध दूसरी शताब्दी में उन्हें ही घोर संग्राम करना पड़ा। जिस समय यह पुस्तक छप रही थी, कोपरनिकस को पक्षाघात हुआ और थोड़े ही काल में वे मृत्यु को प्राप्त हो गये। परन्तु सन्तोष की बात इतनी ही है कि मरते समय उनके हाथ में इस पुस्तक की एक छपी हुई प्रति लाकर रक्खी गई, जिसमें वे उसे टटोल कर देख लें और शान्ति-लाभ करें।

कोपरनिकस के बाद केपलर आये। कोपरनिकस ने तो हम लोगों को यह बताया था कि पृथ्वी और सूर्य में परस्पर क्या सम्बन्ध है, तथा इनका अन्य ग्रहों के साथ भी किस तरह का सम्बन्ध है। केपलर ने यह खोजना शुरू किया कि ग्रह कितने हैं, सूर्य से उन ग्रहों की दूरी कितनी है और ये कितने काल में कितनी दफ़े सूर्य की परिक्रमा करते हैं। इन तीनों बातों में कोई पारस्परिक सम्बन्ध है या नहीं? घोर परिश्रम के पश्चात् उन्होंने यह सिद्ध किया कि (१) ग्रह सूर्य के चारों ओर एक दीर्घवृत्त में घूमते हैं और सूर्य उस दीर्घवृत्त की नाभि होता है। (२) जो रेखा सूर्य और ग्रह को मिलाती है वह तुल्यकाल में तुल्यही आकाशीय अन्तराल

(Square) में घूम जाती है। (३) प्रत्येक ग्रह की परिक्रमा के समय (वर्ष) का मार्ग (Square) सूर्य से उसके मध्यमान्तर (Mean Distance) के घन (Cube) से एक विशेष सम्बन्ध रखता है।

केपलर का जीवन अधिकतर दरिद्रता और दुःख में व्यतीत हुआ। ये शरीर से बहुत कृश थे।

गेलीलिओ तीसरे प्रसिद्ध विज्ञानवेत्ता थे। इनका जन्म १५६४ ई० में हुआ था। १७ वर्ष की उम्र में ये पीज़ा (Pisa) के विश्वविद्यालय में वैद्यक सीखने भेजे गये। परन्तु इनको गणित से अधिक प्रीति थी। एक दिन ये ईश्वराधना के लिए गिरजाघर गये हुए थे। वहाँ एक नौकर आया और लटकते हुए लैम्प को जलाकर उसे वैसाही झूमता हुआ छोड़ गया। गेलीलिओ ने उसके झोंकों के समय का परिमाण जानना चाहा। पर जानते कैसे? घड़ी उस समय थी ही नहीं। अतएव इन्होंने अपनी नाड़ी की चाल से झोंकों के समय का परिमाण अनुमित किया। उन्होंने यह देखा कि यद्यपि झोंके छोटे होते जाते हैं तथापि उनके समय में अन्तर नहीं पड़ता। कई प्रयोगों से इन्होंने अन्त को, लंगर (Pendulum) के समगति-रेखात्व (Isochronism) को खोज निकाला। उसी के आधार पर धर्मघड़ियाँ बननी शुरू हो गईं। इससे संसार को बड़ा लाभ पहुँचा। अब सब काम छोड़ कर ये गणित के पीछे पड़ गये और थोड़े ही दिनों में इन्होंने गणित-सम्बन्धी एक दूसरी बात खोज निकाली। वह यह थी कि सब पदार्थ, चाहे वे गुरु हों या लघु, एक ही वेग से, और एक ही समय में, पृथ्वी पर गिरेंगे—हाँ, यदि हम वायु की रुकावट का विचार न करें। पदार्थों को जो हम एकही साथ पृथ्वी पर गिरते नहीं देखते उसका कारण वायु है। यदि वायुरहित स्थान में हम ऊँचे से दो पदार्थों को, जिनके गुरुत्व में अन्तर हो, नीचे डालें तो दोनों एक ही साथ नीचे आवेंगे। स्कूलों और कालेजों के लड़के, जो विज्ञान पढ़ते हैं, इसको अच्छी तरह जानते हैं। गेलीलिओ ने क्रम क्रम से उष्णतामापक यंत्र, दूरदर्शक यंत्र और सूक्ष्मदर्शक यंत्र भी बनाये। उनके द्वारा आकाशीय पदार्थों को वे भली भाँति देख सकने लगे। संसार का जो उपकार इन यंत्रों से हुआ है वह छिपा नहीं है। कितने ही नये नये तारे इन्होंने खोज निकाले। बृहस्पति के उपग्रहों को भी इन्होंने देखा। चन्द्रमा में पहाड़ देखे और उनकी ऊँचाई का अन्दाज़ा भी लगाया। ज्योतिष-सम्बन्धी ऐसी ही बहुत सी बातें इन्होंने खोज निकालीं।

बस, इस समय से विज्ञानवेत्ताओं पर अत्याचार होना आरम्भ हो गया। हम ऊपर लिख आये हैं कि कोपरनिकस ने सूर्य और पृथ्वी-सम्बन्धी अपने विचारों से संसार में एक विचित्र परिवर्तन कर दिया था। यद्यपि वे, उन कारणों से जिनका उल्लेख भी हम ऊपर कर आये हैं, अपने सिद्धान्तों के लिए सताये जाने से बच गये थे, तथापि दो सौ ही वर्ष बाद लोग इन्हीं सिद्धान्तों के लिए पीड़ित किये जाने लगे। ब्रूनो नाम के एक विद्वान्, इसी कारण से, रोम के कारागार में ६ वर्ष तक रक्खे गये। इस पर भी जब वे सिद्धान्तों का परित्याग करने पर राज़ी न हुए तब आग में जला कर मार डाले गये। गेलीलिओ भी रोम में अपने सिद्धान्तों के कारण बुलाये गये और क़ैद किये गये थे। अन्त में इन्होंने, १६३३ ईसवी में, अपने सिद्धान्तों को छोड़ देने का वचन दिया। तब ये बचे। १६३७ में ये दृष्टिहीन हो गये। यह एक अद्भुत संयोग की बात है कि मिल्टन, जो विलायत के बड़े प्रसिद्ध कवि हो गये हैं और भविष्यत् में स्वयं दृष्टिहीन हो जाने वाले थे, इस समय इनसे मिलने आये थे।

गेलिलिओ १६४२ ई० में मृत्यु को प्राप्त हुए, और न्यूटन का इसी साल विलायत में जन्म हुआ। विज्ञानरूपी आकाश के ये एक प्रसिद्ध तारे होने वाले थे। इनकी प्रसिद्ध पुस्तक प्रिन्सीपिया, जिसमें इनके विज्ञानसम्बन्धी सिद्धान्त भरे पड़े हैं, १६८७ ईसवी में प्रकाशित हुई थी। विज्ञानसम्बन्धी यह एक विचित्र पुस्तक है। इस समय भी इसका बड़ा मान है। इस पुस्तक के प्रकाशित होते ही न्यूटन पर सम्मान-दान की बौछार होने लगी। सन्

१७०३ ई० में ये रायल सोसायटी (Royal Society) के सभापति नियत किये गये और १७०५ में इनको 'सर' की पदवी मिली। १७२७ में इनकी मृत्यु हुई और विज्ञान-सम्बन्धी नाटक के एक दृश्य पर परदा गिर गया।

सरयूनारायण त्रिपाठी ।

"बुद्धिमान् कभी बैठ कर अपना दुखड़ा नहीं रोते; किन्तु अपने कष्टों के निवारणार्थ प्रसन्नता से उद्योग करते हैं।"

—शेक्सपियर ।

"कठिनाइयों को जीतने, वासनाओं को दमन करने और दुःखों को सहन करने से चरित्र उच्च, सुदृढ़ और निर्म्मल होता है।"

—लब्बक ।

"नया प्रभात हो रहा है। नई नई आशाओं का तुम में सञ्चार हो रहा है। नये नये कर्तव्य तुम्हें सम्बोधन कर रहे हैं। सोनेवालो, जागो! जागनेवालो, खड़े हो जाओ। खड़े होनेवालो, अपना कर्तव्य करने लग जाओ! श्रेष्ठ मातृ-भूमि अपने प्रत्येक पुत्र से भेंट चाहती है।"

—एक जापानी देशभक्त ।

"हमें अपने आलस्य को अलग कर, गर्म बिछौने को छोड़, मनुष्य-जीवन को सार्थक करनेवाले कर्तव्यों पर, अन्य जातियों की तरह, जुट जाना चाहिए।"

—एक अज्ञात लेखक ।

"हमीं किस लिए चुप खड़े रहें? समस्त भूमण्डल घूम रहा है; ईश्वर की कुल सृष्टि, नक्षत्रादि सभी, अपने अपने कर्तव्य कर रहे हैं। सब चैतन्य हैं। फिर हमीं क्यों बेकार रहें? संसार में मनुष्यों के सिवा और कोई आलसी नहीं। फिर हमारी मनुष्यों में क्यों गणना हो?"

—डीफ़ो ।

अनुवादक, बालकृष्ण शर्म्मा ।

ज्योतिर्विद्या ।

[गोलाध्याय]

(लेखक—साहित्याचार्य्य पाण्डेय रामावतार शर्म्मा, एम० ए०)
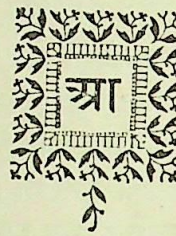
आज से कम से कम पांच चार हज़ार वर्ष पहले भारत के आर्यों में और स्त्रिग्रिया और उत्पथा के दोआब में रहने वाले असुरों में ज्योतिर्विद्या का आविर्भाव हुआ। ज्योतिष-वेदाङ्ग आदि प्राचीन ग्रन्थों से मालूम पड़ता है कि पहले पहल कुछ तो दिक् और काल के निर्णय के लिए लोग तारा-ग्रह आदिकों का निरीक्षण करते थे और कुछ स्वाभाविक कौतुक के कारण भी आकाश में चलने वाली इन दिव्य वस्तुओं की ओर दृष्टि रखते थे। प्राचीनों में बिना घड़ी के समय का निश्चय ताराओं ही के द्वारा होता था। समय का निश्चय न होने से अर्थात् वर्ष, अयन, ऋतु, मास, तिथि आदि न जानने से जोतना, बोना आदि सब कामों में गड़बड़ हो सकती थी। रात को समुद्र में या वन में दिङ्-निर्णय, बिना ताराओं की स्थिति के ज्ञान के, नहीं हो सकता था। इन कारणों से चीन, भारत, अजपुत्र आदि प्रदेशों में ज्योतिर्विद्या का विस्तार होने लगा। चीन में शकाब्द से २३७८ वर्ष पहले यव नाम के सम्राट् के आज्ञा-पत्रों से जाना जाता है कि यव से कई हज़ार वर्ष पहले से लोग विषुव का निर्णय कर सकते थे। शक संवत् से २२१४ वर्ष पूर्व चीन वालों ने सूर्यग्रहण का निरीक्षण किया था। शक वर्ष से प्रायः ११०० वर्ष पहले चीन लोगों ने जल-घड़ी आदि कई यन्त्र बनाये थे। १२०२ में कुबलाई ख़ां के राज्य होने के समय के बने हुए लग्न-निर्णय आदि के कई यन्त्र उन्नीसवीं शताब्दी तक वर्तमान थे। अजपुत्रों में पहले लोग ताराओं को पूजते थे। फिर उनका वैज्ञानिक निरीक्षण करने लगे। असुरों में १८ वर्ष ११ दिन वाली गणना के अनुसार पहले ही से ग्रहण-निर्णय की विद्या थी। षड्गुण सम्राट् के लेखों से जान पड़ता है कि उसके राज्य के बहुत पहले से (३८७८ वर्ष शक संवत् के पहले से) असुर लोग ताराओं की निरीक्षा कर रहे थे। क्रम से इन्हीं लोगों में राशियों की कल्पना हुई। 'बृहस्पतिः प्रथमं जाय-

मानस्त्विष्यन्नक्षत्रमभिसंबभूव' । इत्यादि ब्राह्मण-ग्रन्थों के लेखों से जान पड़ता है कि इन्हीं प्राचीन समयों में नक्षत्र आदि की कल्पना भारत के आर्यों में भी हुई । भारतीयों और असुरों में किन की कल्पना अधिक प्राचीन है, यह निश्चय करना आज अत्यन्त कठिन है । ग्रहों की फिर अपनी पुरानी स्थिति में आ जाने के समय का निश्चय असुरों को हो चुका था—अर्थात् इन्हें यह विदित था कि शुक्र प्रायः ८ वर्ष में, बुध ४६ वर्ष में, शनि ५९ वर्ष में, मङ्गल ७९ वर्ष में और बृहस्पति ८३ वर्ष में फिर अपनी पुरानी स्थिति में आ जाते हैं । असुरों के बाद यवनों में ज्योतिर्विद्या गई । स्थलीश, पृथुगौर आदि यवनों ने बाहर से इस विद्या का अभ्यास कर अपने देश में विस्तार किया । अरिष्टार्काचार्य ने शकाब्द से ३५८ वर्ष पूर्व पहले पहल सूर्य-केन्द्रक ज्योतिष का प्रचार करना चाहा; पर अवस्था की प्रतिकूलता से किसीने इस ओर ध्यान नहीं दिया । वेदों में पृथ्वी के गो, ग्मा, ज्मा, क्ष्मा, आदि नामों से यह स्पष्ट विदित होता है कि वैदिक लोग पृथ्वी में नक्षत्रों की सी ही स्थिरता नहीं समझते थे । परन्तु इसकी गति ग्रहों की सी समझते थे । अरिष्टार्क के पहले ऊर्ध्वाक्ष ने शकाब्द से ४८६ वर्ष पूर्व जो भूकेन्द्रक ज्योतिष चलाया था वही कुपर्णिक के समय तक पाश्चात्यों में और आर्य-भट-कृत सूर्य-केन्द्रक ज्योतिष के उपपादन के बाद आज भी भारतीयों में चल रहा है । शक संवत् से ३९६ वर्ष पहले पाटलिपुत्र में आर्य-भट हुए । इनकी स्वतन्त्र सूर्य-केन्द्रक ज्योतिष की कल्पना भी समय की प्रतिकूलता से किसी को स्वीकृत नहीं हुई । यवनों का ज्योतिष अलिकचन्द्रीया पुरी में ख़ूब बढ़ा । अरिष्टार्काचार्य इसी अलिकचन्द्रीया पुरी में बेध आदि करते थे । अष्टमी के दिन सूर्य और चन्द्र के केन्द्रों के कोण के नापने से उनका अन्तर निकालने की विधि इनके ग्रन्थ में दी है । अन्ततः शिफार्क और तुरमय आचार्यों ने वर्ष, मास, ग्रहगति, चन्द्रगति आदि का निश्चय कर पञ्चाङ्ग ठीक किया । भारत में भी आचार्य आर्य-भट के समय तक सूर्य-सिद्धान्त आदि के प्रणेताओं ने पञ्चाङ्ग ठीक किया । तुरमय की प्रणाली सत्तरहवीं शताब्दी में कुपर्णिक तक प्रायः एक आकार की रही । बीच बीच में पाश्चात्य लोग विजयशाली अरब लोगों से ज्योतिष में सहायता पाते रहे । जब तब एक आध नई बातें भी विद्वान् लोगों के द्वारा निकल आती थीं । सोलहवीं शताब्दी में इटालय देश में ज्योतिष में तुरमय आदि और दर्शन आदि शास्त्रों में अरिष्टोत्तर आदि की प्रतिष्ठा तोड़ने का प्रबन्ध हो चला था । प्राचीनों के ऋषि गौरव से देखने की बात अब उठ चली थी । प्रत्येक नवीन और प्राचीन बात की परीक्षा होने लगी । इसका फल यह हुआ कि सत्रहवीं शताब्दी में आचार्य कुपर्णिक ने अपनी उपपत्तियों से समूचे प्राचीन ज्योतिष को उलट दिया । सूर्य-केन्द्रक गणित का उपपत्ति-पूर्ण आविर्भाव हुआ । केवल कक्षाओं को दीर्घ-वृत्त न समझ कर उन्हें शुद्ध वृत्त मानने के कारण कुछ अशुद्धियाँ कुपर्णिक के गणित में रह गई थीं, जिनकी शुद्धि नवतनु आदि आचार्यों के द्वारा हुई । कुपर्णिक के बाद तर्कवराह आदि बेधदर्शक यन्त्रों के निर्माण आदि में, तथा गणित-विषयों में भी, नई उन्नति करते गये । कपिलार्य ने तर्कवराह के निरीक्षित और परीक्षित विषयों को अपनी बुद्धि के महा-यन्त्र में डाल कर ज्योतिर्विद्या के अनेक नियमों को निकाला । ग्रह-कक्षाओं की दीर्घ-वृत्तता का ज्ञान पहले पहल इन्हें हुआ । इन्होंने इस बात का निश्चय किया कि सूर्य-ग्रह कक्षा-वृत्त का केन्द्र नहीं है; किन्तु ग्रह-कक्षारूपी दीर्घ-वृत्तों के दो केन्द्रों में से एक है ।
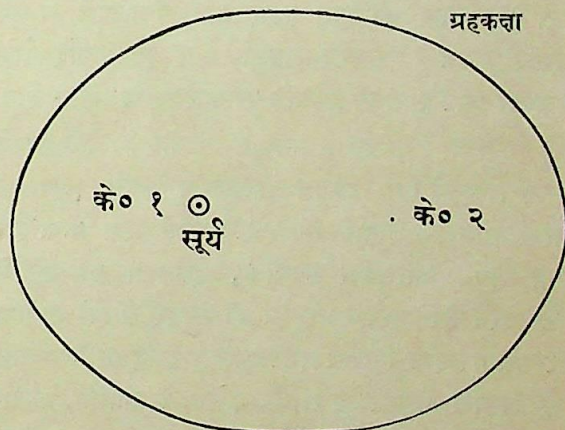
कपिलार्य-निर्णीत ग्रह-गति के तीन नियम आज ज्योतिर्विद्या वालों में सुप्रसिद्ध हैं । इस आचार्य की सारणियाँ आज तक भी काम में लाई जाती हैं । केतुओं को शीघ्र नश्वर समझ कर इसने केतु-कक्षाओं के विषय में अन्वेषण नहीं किया । पाश्चात्यों में इस प्रकार ज्योतिर्विद्या दिन दूनी रात चौगुनी हो रही थी कि इधर भारत में आर्य-भट के बाद से क्रम से इसकी जो अवनति होने लगी सो लल्ल, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, भास्कर आदि के अपूर्व परिश्रम से भी न रुक सकी और

भास्कर के साथ ही ज्योतिः प्रभा भी अस्त हो ही गई। उधर पाश्चात्यों में कुपर्णिक के पहले जो कुछ फलित और तन्त्र आदि में श्रद्धा हो रही थी सो अनर्थ से घृणा रखने वाले आचार्यों के परिश्रम से दबने लगी। इसलिए वहां असली ज्योतिर्विद्या और रस-शास्त्र आदि की उन्नति कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। इधर भारत में अनर्थ को पूजने वाले, कुकल्पना के उपासक महात्माओं की कृपा से फलित, तन्त्र, योग, सामुद्रिक, स्वरोदय आदि की कुछ ऐसी प्रथा धीरे धीरे आकाश को ठेक रही थी कि प्रश्नकर्ता के कहे हुए फूल के नाम से नष्ट-जातक बनाने वालों के, नामाक्षरों से या हस्त-रेखाओं से कन्या-वर का मिलान करने वालों के, और योगबल से या तन्त्र-बल से जब चाहे सूर्य-ग्रहण आदि घर की कोठरियों में दिखाने वालों के हाथ से सरस्वती माता के ज्योतिष आदि अङ्गों का उच्छेद हुआ तो कौन बड़ी बात है। पाश्चात्यों में कुपर्णिक और कपिलार्य ने ज्योतिर्विद्या की बड़ी उन्नति की। पर कपिलार्य तक यह ख़याल न था कि बिना किसी चलाने वाली शक्ति के द्रव्य चल सकता है। इसलिए इनकी ज्योतिर्विद्या कई अंशों में दुर्बल रह गई। कपिलार्य के समय में गुरुलव के द्वारा यन्त्र-शास्त्र की बहुत उन्नति हुई। यन्त्र-शक्ति का ठीक स्वभाव गुरुलव ने समझा। कपिलार्य और गुरुलव यदि दोनों मिल कर कार्य करते तो ग्रहगति का वास्तव तत्त्व निश्चित होना दुस्तर नहीं था। गुरुलव के समय में दूरवीक्षण यन्त्र बिकने लगे थे। इनके द्वारा खगोल की निरीक्षा इसने ख़ूब की और खगोल के ज्ञाताओं में इसका दर्जा बहुत ऊँचा है। पृथ्वी सूर्य के चारों ओर चलती है, इस बात का जनों में प्रचार करने के लिए पोप महाशय की कचहरी से इसे आमरण कारावास का दण्ड मिला। इधर दशक्रतु आदि गम्भीर विचार वाले विद्वानों के परिश्रम से बीजगणित, रेखागणित, कलनगणित आदि में ऐसी उन्नति होती गई कि अब तो ज्योतिर्गणित के महाविकास होने में बड़ी सुविधा हो चली। इसी बीच अपूर्व प्रतिभाशाली नवतनु का आविर्भाव हुआ। इसकी परीक्षाओं से आकर्षण-शक्ति का निश्चय हुआ जिससे तारा, ग्रह, केतु आदि की गति का ठीकठीक तत्त्व विद्वानों को विदित हो गया। अब योगबल से सब तारा, ग्रह आदि को चलाने वाले 'यन्ता' की आवश्यकता न रही। नवतनु के बाद ज्योतिर्गणित में बड़े बड़े पाश्चात्य गणितज्ञ उन्नति करते गये। अन्ततः हरिशील, लवकर आदि विद्वानों के परिश्रम से पाश्चात्यों में ज्योतिर्विद्या उस उन्नति पर पहुँची जिसमें यह आज वर्त्तमान है। आज भारत में प्रायः 'भुवनज्ञानं सूर्ये संयमनात्' पतञ्जलि की इस उक्ति का यह अर्थ समझ कर कि अँधेरी कोठरी में सूर्य-बिम्ब का ध्यान करने से समस्त संसार का ज्ञान हो जाता है—बापूदेव, सुधाकर आदि को छोड़ करोड़ों भारतीय सूर्योदय के बाद भी सोते हुए सूर्य-बिम्ब का स्वप्न देखते जाते हैं; या ग्रह-ग्रहण आदि कृत उपद्रवों की शान्ति के लिए पूजा-पाठ आदि कर रहे हैं; और मान-मन्दिर आदि टूटी फूटी बेधशालायें उजाड़ हो रही हैं। तब तक पाश्चात्य देशों में नवजीव भूमि से हरित भूमि तक सभी स्थानों में सैकड़ों हज़ारों बेधालयों में अनेकानेक बड़े बड़े गणितज्ञ रात्रिंदिव सूर्य, तारा, ग्रह, उपग्रह, केतु आदि का कोणमान, दूरवीक्षण, तैजसरेखादर्शक, चित्रग्राह आदि यन्त्रों के द्वारा निरीक्षण कर असली भुवनज्ञान करके शब्द-ब्रह्म का असली सेवन कर रहे हैं। हाल में भारत के दो बड़े ज्योतिर्विद् (बापूदेव और सुधाकर) सर्वात्मा में लीन हुए। इस समय पाश्चात्यों में लवकर और नवकाम बहुत बड़े ज्योतिर्विद् हैं, जिन के ग्रन्थों से आज समस्त जगत् कृतार्थ हो रहा है।

हम लोगों के चारों ओर, और सिर पर, जो आकाश देख पड़ता है उसका अन्त नहीं है। इस आकाश में अनेक संसार हैं। जैसे समुद्र में अनेक टापू होते हैं वैसे ही इस आकाश में अनेक संसार वर्तमान हैं। उनमें से एक संसार, जिसमें करोड़ों तारायें आदि हैं, हम लोगों को देख पड़ता है। गणित के द्वारा इस संसार का आकार कुछ लोगों ने निश्चित किया है। पर इस संक्षिप्त लेख में इस बात का विचार उपयुक्त नहीं होगा। जैसे आकाश में बिना आधार के तारायें देख पड़ती हैं वैसे ही बिना आधार के पृथ्वी भी आकाश में स्थित है। अनेक प्रमाणों से यह सिद्ध हुआ है कि पृथ्वी का आकार प्रायः गोला सा है। इसका एक सीधा सा प्रमाण यह है कि समुद्र के किनारे पर से देखने वाले को दूर से समुद्र में आते हुए जहाज़ के केवल मस्तूल का सिरा पहले देख पड़ता है। धीरे धीरे समूचा मस्तूल और जहाज़ के तख़ते तक देख पड़ने लगते हैं। यदि पृथ्वी चिपटी होती तो जहाँ से सब जहाज़ दृश्य होता है वहाँ से उसके नीचे से ऊपर तक के सब अंश देख पड़ते। भास्कराचार्य ने लिखा है कि इस गोली पृथ्वी के चारों ओर कदम के केसर के सदृश पहाड़,

वृक्ष, पशु, मनुष्य आदि वर्तमान हैं। खड़े होने पर सभी के पैर सीधे पृथ्वी के केन्द्र की ओर हैं और सभी का सिर आकाश की ओर रहता है। अब प्रायः पृथ्वी के एक आधे में रहनेवाले पूछते हैं या मन में शङ्का करते हैं कि दूसरे आधे वाले पृथ्वी से गिर क्यों नहीं जाते। पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति से पृथ्वी पर की और आस पास की वस्तु पृथ्वी के केन्द्र की ओर खींची जाती है। यदि कोई अवलम्ब न हो और पृथ्वी में गढ़ा करते जायँ तो सभी केन्द्र में जाकर सट जायँगे। इस आकर्षण-शक्ति को भास्कराचार्य जानते थे और इसका वर्णन उनके सिद्धान्तशिरोमणि में है। जैसे हम लोग पृथ्वी से उड़ कर आकाश में नहीं जाते वैसे ही दूसरे गोलार्ध, अर्थात् अमेरिका आदि, के लोग भी, पृथ्वी पर चिपके रहते हैं। उनके गिरने की शङ्का क्या है कि वे उड़ कर आकाश में क्यों नहीं चले जाते, यह प्रश्न करना है। यह तो सब को विदित है कि भारत, अमेरिका आदि के योगी अँधेरी कोठरी में रबर के तुम्बे के आकार में या दीवार की अलक्ष्य खूँटी के अवलम्ब पर थियेटरों में भले ही उड़ें पर असल में मनुष्य आदि बेपक्ष के जन्तुओं में उड़ने की शक्ति नहीं है। ये तो जैसे ही कूदते हैं वैसे ही पृथ्वी के आकर्षण से धम नीचे आ पड़ते हैं। बात ठीक ही है। यदि एक वस्तु समान आयाम में दूसरी वस्तु अर्थात् जल, वायु आदि से हलकी न हो तो उस वस्तु पर नहीं तैर सकती है। मनुष्य अपने आयाम के वायु से कहीं भारी है। फिर यह हज़ार प्राणायाम करने पर भी कैसे उड़ सकता है।

यदि किसी स्वच्छ रात्रि में अर्थात् जब मेघ, कुहरा आदि का आवरण न रहे तब हम लोग आकाश को देखें तो इसमें पहले तो तीन वर्ग की वस्तु देख पड़ती हैं। सबसे अपूर्व और बड़ी तो एक वह वस्तु देख पड़ती है जिसे लोग चन्द्रमा कहते हैं। अपने वर्ग में यह एक अकेली ही चीज़ है। सन्ध्या-समय चन्द्रमा कभी पूरब में देख पड़ता है, कभी आकाश के बीच और कभी पच्छिम में। बिना यन्त्र की सहायता आंख से देखने वालों को इस वर्ग की और कोई दूसरी वस्तु नहीं देख पड़ती। चन्द्रमा के अतिरिक्त छोटे छोटे हज़ारों उज्ज्वल बिन्दु आकाश में देख पड़ते हैं, जिन्हें लोग तारायें कहते हैं। इस गोलप्राय पृथ्वी पर जहां से देखिए एक आधे की ओर का आकाश और उसकी हज़ारों तारायें आदि देख पड़ती हैं। असल में कितनी तारायें इस संसार में हैं, इसका निश्चय करना कठिन है। पर बिना दूरवीक्षण आदि यन्त्रों के आकाश भर में प्रायः छः हज़ार ताराओं का दर्शन हो सकता है। एक समय आधाही आकाश दृश्य होता है, इस लिए एक स्थान का पुरुष एक बार तीन हज़ार तारायें देख सकता है। आकाश के बीच में चन्द्रमा और ताराओं के अतिरिक्त एक तीसरे ढँग की वस्तु देख पड़ती है, जो प्रायः दक्षिण से उत्तर की ओर जाती हुई सड़क सी है। इसे प्राचीन ग्रन्थों में लोगों ने छाया-पथ कहा है। आजकल इसे आकाश-गङ्गा, रामजी की सड़क आदि अनेक नाम मिले हैं। यह उज्ज्वल कुहरा के सदृश देखने में आता है। मेघों से तारायें छिप जाती हैं; पर इसके नीचे अनेक तारायें देख पड़ती हैं। इससे जान पड़ता है कि यह ताराओं के नीचे कोई मेघ सी वस्तु नहीं है; किन्तु ताराओं के ऊपर कोई और ही वस्तु है। इस प्रकार चन्द्रमा, तारायें और छाया-पथ—यह तीन वर्ग की वस्तु तो आकाश में रात को साफ़ साफ़ देख पड़ती हैं। कभी कभी एक और भी अपूर्व वस्तु हम लोगों की आंखों की पाहुन सी आ जाती है। प्रायः झाड़ू के सदृश मूर्खों को भय देनेवाले केतु, बढ़नी आदि अनेक नामों से प्रसिद्ध बड़े बड़े खेचर बहुतेरों को देख पड़े होंगे। ये रोज़ के देखने की चीज़ों में से नहीं हैं। इन्हें केतु नाम से कहने में ही सुभीता होगा। इस प्रकार अभी तक चार वर्ग के खेचर हमें मिले। पर यदि थोड़ा विचार किया जाय तो स्पष्ट मालूम हो जायगा कि जिन्हें साधारण लोग तारायें कहते हैं उनमें कुछ ऐसी चीज़ें हैं जो ताराओं के वर्ग की नहीं हैं। तारायें तो सूर्य के सदृश प्रति दिन प्रायः अपने ही स्थान पर देख पड़ती हैं और पूरब से पश्चिम की ओर बढ़ती हुई देख पड़ती हैं। पर ताराओं के सदृश उज्ज्वल बिन्दुओं में से कितने ऐसे हैं जो प्रायः अपने स्थान को छोड़ कर इधर उधर होते रहते हैं। जैसे शुक्र, जिसे कितने ही लोग सुकवा भी कहते हैं, कभी सन्ध्या-समय पश्चिम में उगता है और कभी प्रातःकाल पूरब में उगता है। इससे यह स्पष्ट विदित होता है कि शुक्र आदि कितने ही उज्ज्वल बिन्दु ऐसे भी हैं जो ताराओं के वर्ग के नहीं हैं। पृथ्वी के हिसाब से ताराओं का स्थान प्रायः नियत है। पर शुक्र आदि का स्थान नियत नहीं है। अनियत स्थानवाले इन बिन्दुओं को प्राचीन आर्यों ने ग्रह के नाम से प्रसिद्ध किया है। तारा-वर्गों को प्राचीन

लोगों ने वैदिक समयों ही से नक्षत्र कह रक्खा है। नक्षत्र उसे कहते हैं जो अपने स्थान को न छोड़े। ग्रह और नक्षत्रों का भेद समझना बड़े विद्वान् का काम है। इस भेद के समझने से प्राचीन आर्यों की बुद्धि और विद्या की बड़ी प्रशंसा है। आज तो दो चार ज्योतिषियों के अतिरिक्त बड़े बड़े अँगरेज़ी और संस्कृत जाननेवाले और महा—महा—विद्वान् होने की शेख़ी मारनेवाले भी भारतीय जन इस भेद को प्रायः नहीं जानते। इस प्रकार वस्तुतः हमें पाँच प्रकार की वस्तु आकाश में मिलती हैं (१) छायापथ, (२) तारा, (३) ग्रह, (४) केतु और (५) उपग्रह अर्थात् चन्द्र। दिन को हमें सूर्य देख पड़ता है और देखने में अपने ढँग की अकेली चीज़ मालूम पड़ती है। पर आगे दिखाया जायगा कि यह भी एक तारा है। इसलिए इसे ताराओं ही के वर्ग में रखना उचित है। (पृथ्वी के ऊपर कुछ दूर तक वायु-मण्डल है, जो पृथ्वी ही की एक पतली सी बाहरी तह है। इसमें मेघ आदि तैरते रहते हैं। ज्योतिर्विद्या से इनका मुख्य सम्बन्ध नहीं है। पृथ्वी और अन्तरिक्ष के सम्बन्ध में इनका वर्णन किसी और अवसर पर किया जायगा।) आगे की बातों को देखने से जान पड़ेगा कि इन पांचों को इसी क्रम से रखने में सुभीता है। इनके अतिरिक्त उल्का आदि और भी कुछ वस्तु हैं; जिनके विषय में यहाँ कुछ सामान्य रीति से कहा जायगा।

दूरवीक्षण यन्त्र से देखने से छायापथ में दो अंश मालूम पड़ते हैं। कितनी जगहों में तो पृथ्वी से अत्यन्त दूर होने के कारण ऐसी छोटी छोटी तारायें घनी मिली हुई देख पड़ती हैं जिन्हें सादी आँखों से हम लोग कुहरा के सदृश समझते हैं। पर छाया-पथ के कितने ही खण्ड असल में ऐसे हैं जो स्वप्रकाश तेजोमय द्रव्य के चट्टे हैं। इनमें तेज के कण बड़े वेग से घूम रहे हैं। इस कारण यह द्रव्य सूर्य के समान गरम हो रहा है। कान्त आदि दार्शनिकों और गणितज्ञों की कल्पना है कि ऐसे ही किसी छायापथ के एक खण्ड से सूर्य अपने ग्रह आदि के साथ निकला है। इन लोगों का कहना है कि किसी छाया-पथ का कोई एक खण्ड अपने अंशों के बड़े वेग से भ्रमण के कारण किसी समय टुकड़े टुकड़े हो गया। इसके परिधि यानी बाहरी छाल के टुकड़े तो ग्रहरूप से अलग अलग पिण्डे बँध कर आज भी घूम रहे हैं। जिस प्रकार छाया-पथ से इस सूर्य की सृष्टि हुई, अर्थात् वह निकला, उसी प्रकार छाया-पथ के और और खण्डों से और और तारायें भी निकलीं। इन ताराओं के भी अपने अपने ग्रह आदि होंगे। छायापथ के उस रूप को ब्रह्माण्ड या सौराण्ड कहते हैं, जो सूर्य और ग्रह आदि के निकलने के पूर्व काल में वर्त्तमान था। उसी तेजोमय सौराण्ड का बच्चा यह सूर्य ब्रह्मा हुआ, जिसे हिरण्यगर्भ अर्थात् सोने के अण्डे का गर्भ और मार्तण्ड अर्थात् मरे अण्डे का बच्चा भी कहते हैं। सूर्य या तारा असल में ऐसी स्वप्रकाश वस्तु को कहते हैं जिसकी गति किसी दूसरे सूर्य या तारा के अधीन न हो। ग्रहों को सूर्य से प्रकाश मिलता है और इनकी गति सूर्य के अधीन है। अर्थात् ये सूर्य के चारों ओर पश्चिम से पूरब को घूमते हैं। पर ताराओं का प्रकाश अपना ही है; किसी दूसरी वस्तु से उन्हें प्रकाश मँगनी नहीं लेना पड़ता। इन तारा नामक सूर्यों में से सबसे समीप वह वस्तु है जो दिन को भी देख पड़ती है और जो लोक में सूर्य के नाम से प्रसिद्ध है। पृथ्वी से सूर्य एकही दूरी पर बराबर नहीं रहता। आगे दिखाया जायगा कि पृथ्वी भी एक ग्रह है। यह भी और ग्रहों के सदृश सूर्य के चारों ओर चलती रहती है। ग्रहों की गति प्रायः कूर्म-पृष्ठ में होती है। दीर्घ वृत्त के दो केन्द्र होते हैं। ग्रहों की कक्षा का, अर्थात् गति-वृत्त का, एक केन्द्र सूर्य है। जब ग्रह इस केन्द्र के समीप आ जाता है तब उससे सूर्य की दूरी कम पड़ती है। जब ग्रह दूसरे केन्द्र के समीप चला जाता है तब उसकी दूरी अधिक पड़ती है। इसलिए प्रायः अन्तर देने के समय ज्योतिषी लोग मध्यम अन्तर को लेते हैं। पृथ्वी से सूर्य का मध्य अन्तर प्रायः एक करोड़ सवा सोलह लाख योजन है। प्रकाश एक विकला अर्थात् एक सेकिण्ड में सवा तेईस हज़ार योजन चलता है। प्रायः पाँच कला अर्थात् पाँच मिनट में प्रकाश सूर्य से पृथ्वी पर आता है। सूर्य के बाद सबसे समीप जो तारा है उसकी दूरी दो शङ्कु योजन (२,००,००,००,००,००,०००) से अधिक है—अर्थात् सूर्य की दूरी से कई लाख गुना अधिक है। पृथ्वी से अत्यन्त दूरस्थ ताराओं का अन्तर तो इतना अधिक है कि उसकी गिनती के लिए अंकों की संज्ञा ही नहीं बनी है। अति दूरस्थ ताराओं का अन्तर इसी से मालूम हो सकता है कि उनसे पृथ्वी तक आने में प्रकाश को पचास हज़ार बरस लग जाते हैं। अब देखिए, सूर्य से तो प्रकाश पाँच ही कला में पृथ्वी पर आता है और अति दूरस्थ ताराओं से पचास
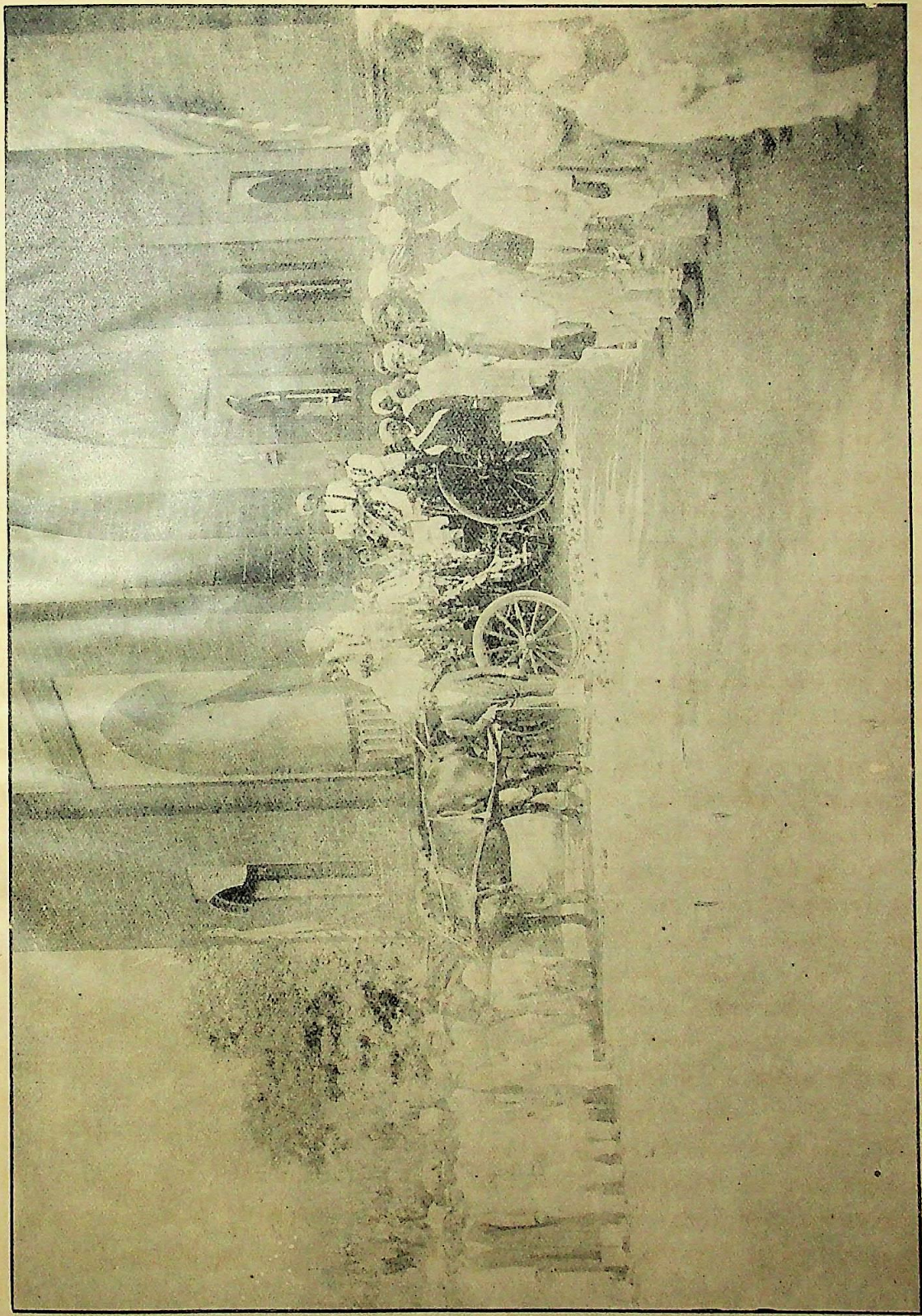
उनकी रौप्य-जुबिल के उत्सव के उपलक्ष्य में
ठाकुर साहिब, गोंडाल के पास उपस्थित हुआ प्रजा के प्रतिनिधियों का समूह।
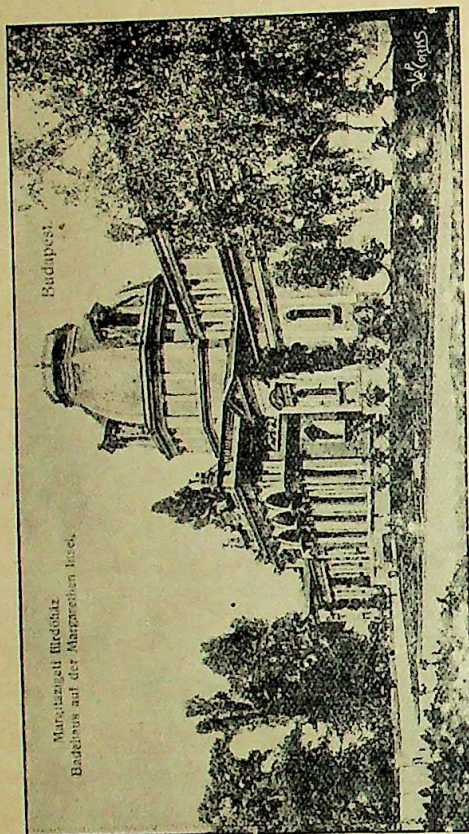
बुडापेस्ट का पुराना महल ।
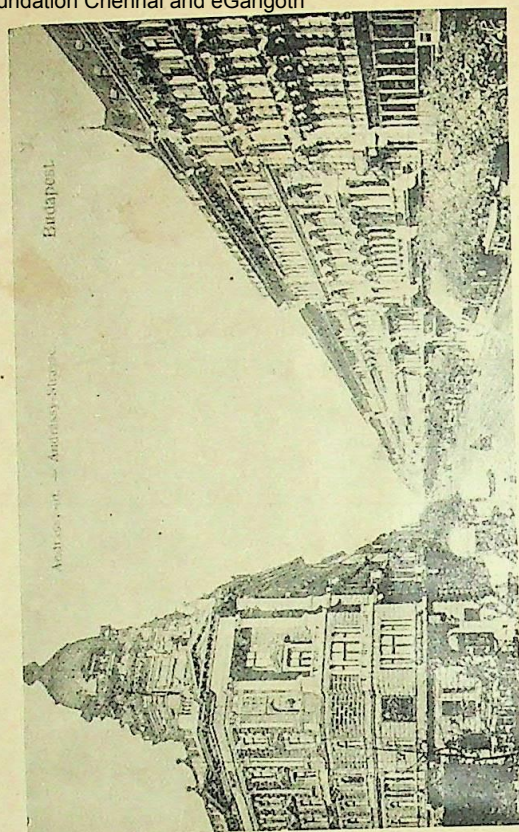
बुडापेस्ट का उष्ण जलाशय ।

बुडापेस्ट का पुराना गढ़ ।
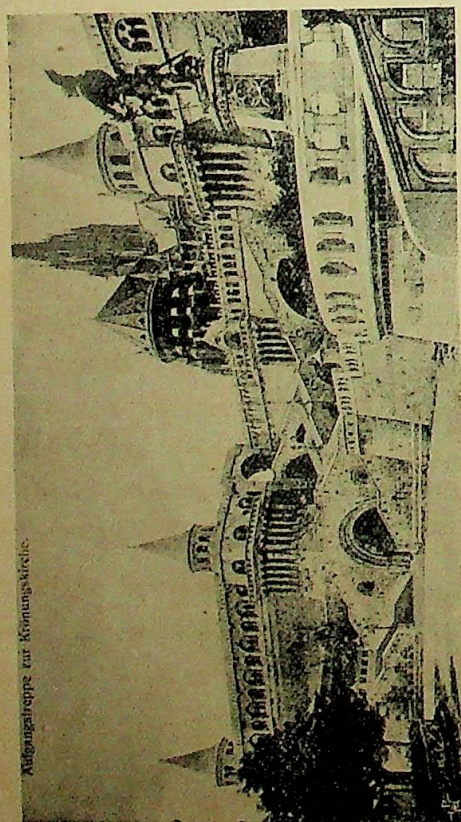
बुडापेस्ट के ऊँचे मकान ।
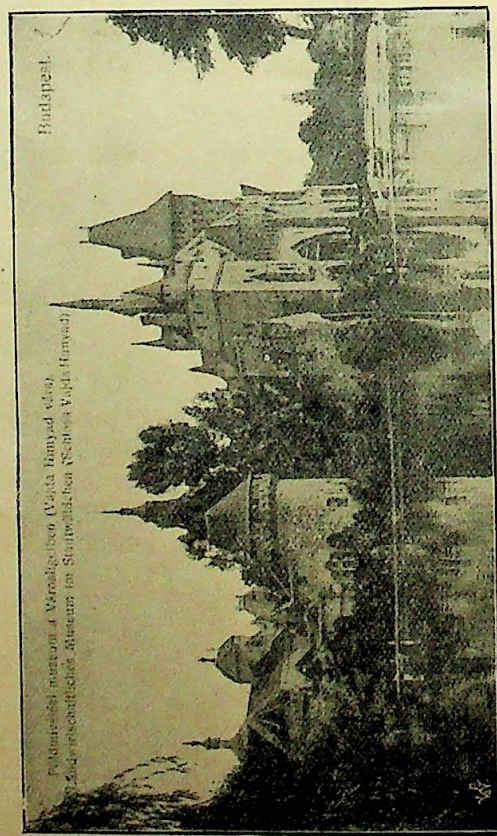
इंडियन प्रेस, प्रयाग।

हज़ार बरस में—तो सूर्य की दूरी से उन ताराओं की दूरी कितनी अधिक हुई। ताराओं की अपेक्षा सूर्य पृथ्वी से बहुत ही समीप है। समीप क्यों न हो, पृथ्वी तो और ग्रहों के सदृश सूर्य ही का एक बाहरी अङ्ग है। इसीलिए सूर्य से प्रकाश और ताप दोनों पृथ्वी पर आते हैं। इसीलिए सूर्य बहुत बड़ा भी मालूम होता है। असल में इसका आयाम पृथ्वी से साढ़े बारह लाख गुना है। कितनी ही तारायें इसके बराबर और इससे भी बड़ी हैं; तथापि अत्यन्त दूर होने के कारण हम लोगों को ये केवल प्रकाश-बिन्दु सी मालूम पड़ती हैं। दूरी के कारण उनसे पृथ्वी तक केवल प्रकाश ही पहुँचता है। सो भी सूर्य के प्रकाश से जब तक हम लोगों की आँखें चकचकाई रहती हैं तब तक नहीं अनुभव में आता। ताराओं की दूरी से यहां ताप का अनुभव होना तो असम्भव ही है।

सुविधा-पूर्वक ताराओं के परिचय के लिए बहुत ही प्राचीन समय से, अर्थात् ऋग्वेद के समय से, या उससे भी पहले से, अनेक वर्गों में ताराओं का विभाग किया गया था। उत्तर ध्रुव के समीप सप्तर्षि नामक एक तारा-वर्ग है, जिसे प्रायः बहुतेरे गँवार भी जानते हैं। इसमें सात बड़ी बड़ी तारायें हैं। आस पास कुछ छोटी छोटी भी हैं, जो प्रायः आसानी से नहीं देख पड़तीं। ऋग्वेद के संग्रह के पहले ही से लोगों ने इसका नाम ऋक्ष रक्खा था। वस्तुतः ऋक्ष भालू को कहते हैं। सप्तर्षि की पश्चिमी चार तारायें भालू के चार पैर कीसी और पूरब की तीन तारायें पूँछ कीसी ऋग्वेद के कवियों के पूर्व-पुरुषों को देख पड़ती थीं। इसी लिए तो अपने समय की जन-प्रसिद्धि के अनुसार ऋग्वेद के कवियों ने इस तारा-वर्ग को ऋक्ष ही कहना पसन्द किया। अजीगर्त के लड़के शुनःशेप ने कहा है—"अमी ये ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तं ददृश्रे कुहचिद्दिवेयुः। अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि विचाकसच्चन्द्रमा नक्तमेति"। जिस समय ऋग्वेद वालों के पूर्व-पुरुष भारत आदि में पहुँचने के बहुत पहले ध्रुव-प्रदेश में रहते थे और जब तक ध्रुव-प्रदेश में प्रालेय-प्रलय की बाधा नहीं पहुँची थी उस समय उन्हें ठीक ऊपर—सिर पर—ध्रुव और सप्तर्षि देख पड़ते थे। उन्हीं समयों की बातें ऋग्वेद के अत्यन्त पुराने अंशों में जहाँ तहाँ पाई जाती हैं। ऐसे ही प्राचीन अंशों में से यह शुनःशेप की उक्ति भी मालूम पड़ती है। आज कल संस्कृत में ऋक्ष भालू को और सामान्यतः सब नक्षत्रों को कहते हैं; परन्तु वैदिक समयों में ऋक्ष भालू को और केवल सप्तर्षि को कहते थे। सप्तर्षि की सातों ताराओं के नाम भी पीछे ब्राह्मण-ग्रन्थों में मिलते हैं। मरीचि, अङ्गिरा, अत्रि आदि इनके नाम दिये हुए हैं। शाखा-भेद से नामों में जहाँ तहाँ भेद भी पड़ता है। आकाश में सूर्य जिस रास्ते से चलता हुआ देख पड़ता है उस मार्ग का नाम राशि-चक्र है। इसके बारह टुकड़े किये गये हैं। इन बारह टुकड़ों में बारह तारा-वर्ग हैं। सप्तर्षियों ही के सदृश इनके कल्पित आकारों के अनुसार असुर, यवन और भारतीय आदि ज्योतिषियों ने इन के नाम मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनुर्धर, मकर, कुम्भ, मीन रक्खे हैं। प्राचीन आर्यों ने वैदिक समय से, या उससे भी पहले से, प्रत्यक्ष सौरकक्षा का सत्ताईस नक्षत्रों में विभाग किया था, जैसा कि 'तिष्यं नक्षत्रमभिसंबभूव' इत्यादि उक्तियों से स्पष्ट विदित होता है। अलिकचन्द्र के आने के बाद यवनों से इस कक्षा का बारह राशियों में विभाग भारतीयों को मिला, ऐसा संभव है। यवनों को यह विभाग असुरों से मिला था, ऐसा असुरों की शल्यलिपि की प्रशस्तियों से अनुमान किया जा सकता है। छठी शताब्दी में गणित-विद्या ख़ूब जानने पर भी भारत के दौर्भाग्य से यवनों की फलित-विद्या भारत में लानेवाले वराह-मिहिर ने सत्ताईस और बारह का समलघुतमापवर्त्य निकाल कर एक एक नक्षत्र के चार चार चरण बना कर नौ नौ चरण की एक एक राशि स्थिर की। सूर्य का हेलि नाम भी यवनाचार्यों से लिया। क्रियताबुरि, जितुम आदि राशियों के नाम भी उन्हीं से लेकर अपने नष्टजातक आदि प्रपञ्चों से मनुष्य की बुद्धि नष्ट करने वाले बृहज्जातक को पवित्र किया। इनके बाद इन्हीं के अनुयायी नीलकण्ठ आदि फलित वालों ने फ़ारसी से भी फलित के शब्द मँगनी लेकर अपने ग्रन्थों की शोभा बढ़ाई। इस राशिचक्र से आकाश के दो टुकड़े हो जाते हैं। एक उत्तर खगोलार्ध और एक दक्षिण खगोलार्ध। उत्तर खगोलार्ध के बीच में सुमेरु अर्थात् उत्तर मेरु पड़ता है; और दक्षिण खगोलार्ध के बीच में कुमेरु अर्थात् दक्षिण मेरु पड़ता है। ऊपर कहा गया है कि वस्तुतः सूर्य पृथ्वी के चारों ओर नहीं चलता; पृथ्वी ही और ग्रहों के सदृश सूर्य के चारों ओर चलती है। जैसे लट्टू नाचता हुआ किसी वस्तु के चारों ओर घूमे

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

वैसे ही सब ग्रह नाचते हुए सूर्य के चारों ओर चलते हैं। किसी वस्तु के चारों ओर नाचते नाचते चलनेवाले लट्टू की दो गतियां होती हैं। एक तो अपनी अक्षयष्टि पर घूम जाना है और दूसरी किसी वस्तु के चारों ओर घूमना है। ऐसे ही पृथ्वी तथा और भी सब ग्रह अपनी अक्षयष्टि पर नाचते हुए सूर्य के चारों ओर घूमते हैं। सूर्य के चारों ओर घूमती हुई पृथ्वी के सिर से केन्द्र को बेध कर नीचे जाती हुई रेखा को अक्षयष्टि या अक्ष कहते हैं। अक्ष के चारों ओर एक बार घूम जाने को परिवृत्ति कहते हैं। और, सूर्य के चारों ओर घूम जाने को परिभ्रमण कहते हैं। इसी अक्षयष्टि के ऊपर के अन्त को सुमेरु कहते हैं, जिसके प्रायः ठीक सामने आकाश में ध्रुव की तारा है। अक्षयष्टि के नीचे का अन्त कुमेरु है। यहां पर तारा-वर्गों के दो चित्र दिये गये हैं। एक में सुमेरु गोलार्ध के तारा-वर्ग हैं और दूसरे में कुमेरु गोलार्ध के। सुविधा के लिए दोनों मेरुओं के चारों ओर तीन मण्डलों में तारावर्ग दिये गये हैं। चौथे मण्डल में राशिचक्र रक्खा गया है।

क्रम से तारा-वर्गों की सूची—

सुमेरु गोलार्द्ध				कुमेरु गोलार्द्ध		
१ला मण्डल	२रा मण्डल	३रा मण्डल	४था मण्डल	३रा मण्डल	२रा मण्डल	१ला मण्डल
तक्षक	वीणा	गरुड	मेष	महिष	वृत्त	सरट
शिशुमार	जानुग	नरेन्द्र	वृष	वृक	त्र्यस्र	हृदाहि
शिफा	मुकुट	भुजङ्ग	मिथुन	वेदि	मयूर	घटिका
	श्वयुग	करिमुण्ड	कर्क	दूरेक्षण	चतुरस्र	सुवर्ण-यष्टि
	सप्तर्षि	सिंहशावक	सिंह	कोटीर	श्येनिका	कपोत
	वनोतु	सूत	कन्या	सिन्धु	सरित्	पोत
	चित्रक्रमेल	पशु	तुला	सूक्ष्मेक्षण	शश	शलाका
	कश्यप	त्रिकोण	वृश्चिक	सारस	शुनक	अष्टास्र
	गोधा	दोला	धनुर्धर	शकुल	त्रिशङ्कु	
	हंस	वाजी	मकर	टङ्क	मुष्क	
	शिवा	अश्वतर	कुम्भ	तिमिङ्गिल	सुपर्ण	
		तिमि	मीन	व्याध		
		बाण		शृङ्गी		
				श्वशिशु		
				शेष		
				चमस		
				काक		

सादी आंखों से देखने में सब तारायें प्रायः एक वर्ण की जान पड़ती हैं। केवल कुछ बहुत बड़ी मालूम पड़ती हैं और कुछ क्रम से छोटी मालूम पड़ती हैं। जो तारायें छोटी मालूम पड़ती हैं उन्हें वस्तुतः छोटी नहीं समझना चाहिए। सम्भव है कि अतिदूरता के कारण वे छोटी जान पड़ती हों। वर्ण भी सब ताराओं का एकसा नहीं है। प्रचण्ड शक्ति के दूरवीक्षण यन्त्रों से देखने पर नीली, पीली, हरी, सफ़ेद आदि अनेक वर्ण की तारायें देख पड़ती हैं। देखने में जैसा परिमाण ताराओं का

मालूम पड़ता है उसके हिसाब से लोगों ने ताराओं की श्रेणियां बनाई हैं। सबसे बड़ी ताराओं को प्रथम श्रेणी की तारायें कहते हैं। इसी क्रम से द्वितीय, तृतीय आदि श्रेणी की तारायें हैं। श्रीश नामक एक प्रथम वर्ग की तारा मृगशिरा नक्षत्र के पास देख पड़ती है। दूरवीक्षण यन्त्र से देखने से यह भी पता लगता है कि कोई कोई तारा दो या दो से अधिक सदा साथ साथ चलती हैं। सहचारिणी ताराओं में एक प्रकाशमय और उसका साथी प्रायः काला सा होता है। सम्भव है कि काला साथी प्रकाशमय तारा सूर्य का ग्रह हो। पर ताराओं की अप्रमेय दूरी के कारण इस बात का ठीक ठीक पता लगाना बहुत कठिन है।

ताराओं में पृथ्वी से अत्यन्त समीप वह वस्तु है जिसे हम लोग सूर्य कहते हैं। ज्योतिर्विद्या में प्रसिद्ध सूर्य को सूर्य कहने में और तारा-सूर्यों को तारायें कहने में सुविधा होगी। तारा-सूर्य और प्रसिद्ध सूर्य भी वस्तुतः बड़े वेग से आकाश में जा रहे हैं। पर पृथ्वी की अपेक्षा इन्हें स्थिर ही समझना चाहिए; क्योंकि दूरी के कारण साधारणतः इनकी गति का ठिकाना नहीं लगता। जिस सूर्य के चारों ओर पृथ्वी चलती है और जिससे हम लोगों को इतना ताप, वृष्टि आदि मिल रही है और जो पृथ्वीवासियों का जीवनरूप है—यहां तक कि जिसकी शक्ति का ध्यान वैदिक ब्राह्मण लोग अपनी गायत्री में किया करते हैं—उस सूर्य के आकार आदि के विषय में आगे कुछ कहना है।

असमाप्त।

साहित्य में संरक्षण-नीति का अवलम्बन।

(गत वर्ष मैमनसिंह के वङ्ग-साहित्य-सम्मेलन में किया गया एक प्रस्ताव)

अँगरेज़ी शिक्षा के प्रसाद से हम लोगों को जो कई एक लाभ पहुँचे हैं उनमें से एक लाभ यह भी है कि हम लोगों की भाषा और हम लोगों के साहित्य की बहुत कुछ उन्नति हुई है। पश्चिम के सभ्य देशों ने अनेक प्रकार की उन्नतियों के जो दृश्य हमारे नेत्रों के सम्मुख उपस्थित किये हैं उनके प्रभाव से हमारा जातीय जीवनही पुष्ट नहीं हुआ, किन्तु जातीय भाषा और जातीय साहित्य को भी एक अद्भुत सौन्दर्य्य प्राप्त हुआ है।

पहले पहल, जब इस देश में अँगरेज़ी शिक्षा का आरम्भ हुआ तब, हमारी मातृ-भाषा ऐसी दशा में न थी कि शिक्षा-पद्धति के सब से ऊँचे आसन पर आसीन होने योग्य समझी जाती। उस समय अँगरेज़ी भाषा और अँगरेज़ी साहित्य की बराबरी करने योग्य केवल थी हमारी संस्कृत-भाषा और उसका साहित्य। परन्तु बँगला भाषा दिन पर दिन उन्नति करते करते अब इस दशा को पहुँच गई है कि बी० ए० की परीक्षा के लिए जो विषय निर्दिष्ट किये गये हैं उनमें इसे भी स्थान देने में विश्वविद्यालय के गौरव की हानि नहीं समझी गई। तथापि अब तक हमारी भाषा की साहित्य-सम्पत्ति इतनी श्रीसम्पन्न और उन्नत नहीं है कि किसी बड़े विश्वविद्यालय की ऊँची क्लासों में परीक्षा-सम्बन्धी सारे विषय केवल बँगला भाषा ही की सहायता से सिखलाये जा सकें। यहाँ पर इस बात के विचार की आवश्यकता नहीं है कि बंग भाषा ही को हमारी प्रधान भाषा समझ कर विश्वविद्यालय हम लोगों को, सभी अवस्थाओं में, उसी भाषा में सारे शिक्षणीय विषय सिखा कर बँगला को हमारी मुख्य भाषा बनने का गौरव देगा या नहीं। किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि वर्तमान अवस्था में, इच्छा करने पर भी, बङ्ग भाषा और बङ्ग-साहित्य को हम लोग अपनी सब श्रेणियों की सारी शिक्षाओं के योग्य नहीं ग्रहण कर सकते। इसका एक मात्र कारण हमारे साहित्य का दारिद्र्य और उसकी अयोग्यता ही है। इसी से हमारी भाषा सब तरह की उच्च शिक्षा देने का साधन नहीं हो सकती। यही इस काम में सबसे बड़ा विघ्न है।

बँगला-साहित्य का कोई भी सेवक इस बात को अस्वीकार नहीं कर सकता। परन्तु प्रकृति की सहायता से हम लोगों ने जितना गौरव पाया है

और प्रकृति ही की बदौलत हम लोगों के लिए इस समय जो साधन प्राप्त हैं उनसे हमें अपने कार्य्य-साधन में सहायता लेनी चाहिए। काम करने की हम में जो शक्तियाँ हैं उन्हें उनकी सहायता से बढ़ाना चाहिए। जितनी सामग्रियाँ हमें इस समय प्राप्त हैं उन्हें भी उन्नत करना चाहिए। इन्हीं शक्तियों और सामग्रियों की बढ़ती और विस्तार से अपने दरिद्र और संकीर्ण साहित्य को हमें प्रशस्त और विकसित करना चाहिए। हमें, धीरे धीरे, ऊँचे ऊँचे विचारों और भावों को प्रकट करना और उन्हें यथाविधि लिख कर पुस्तकों में परिणत करना चाहिए। भिन्न भिन्न साहित्य-सेवी, समयानुसार, अपने अपने उद्योग इस विषय में पृथक् पृथक् कही रहे हैं। परन्तु इस काम को उन्हीं पर छोड़ कर हमें चुप बैठ रहना उचित नहीं। इस समय हमें राज-नीति-कुशल पण्डितों का अनुसरण करना उचित है। आवश्यकता होने पर जिस तरह वे रक्षण-नीति का अवलम्बन करके मूर्खों को पण्डित और निर्धनों को धनी बनाने का यत्न करते हैं, उसी तरह हम लोगों को भी रक्षण-नीति की सहायता से साहित्य-सेवियों के उद्योग को प्रवर्द्धित करके अपने प्राकृतिक कार्य में शीघ्र सफलता प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। हमें यह सोचना चाहिए कि किस उपाय के अवलम्बन से कितने दिनों में हमारा साहित्य विश्वविद्यालय की सब से ऊँची श्रेणियों में स्थान पाने योग्य हो सकेगा। अर्थात् विज्ञान, दर्शन, इतिहास इत्यादि गम्भीर शास्त्रों के गहन ग्रन्थ जैसे फ़्रांस, जर्मनी और इँगलैंड आदि की भाषाओं के साहित्य में हैं वैसे ही हमारे साहित्य में भी किस उपाय से कितने दिनों में उत्पन्न हो सकेंगे। इस बात के विचार की इस समय इसलिए ज़रूरत है, जिसमें हम लोगों की साहित्य-सेवा, उसी उद्देश्य को अपने उद्योगों का केन्द्र समझ कर, उसकी सिद्धि के लिए दत्त-चित्त हो कर चेष्टा करे। जितने साहित्य-सेवी हैं सबको उसी साधना में अपनी कल्पनाओं और चेष्टाओं को जी जान से लगा देना चाहिए।

इस उद्देश की सिद्धि के लिए पहली ज़रूरत इस बात की है कि बङ्गीय-साहित्य-परिषद् को कुछ धन-विशेष दिया जाय जिसका सूद उसे मिला करे। कुछ ज़मीन भी उसके लिए अलग कर दी जाय। इस सम्पत्ति के द्वारा अनन्यकर्म्मा विद्वान् साहित्य-सेवियों को उपयुक्त मासिक धन-सहायता देने की व्यवस्था करनी चाहिए। इन उपायों के प्रयोग से हम विद्वान् लेखकों के साहित्य-साधन-कार्य को सुगम और निष्कण्टक कर सकेंगे। इससे वङ्ग-साहित्य की बहुत ही शीघ्र उन्नति हो सकेगी। सर्व-विद्या-विशारद श्रीयुत व्रजेन्द्रनाथ सील, दार्शनिकशिरोमणि श्रीयुत हीरेन्द्रनाथ दत्त, इतिहास-वेत्ता श्रीयुत यदुनाथ सरकार और वैज्ञानिकवर प्रोफ़ेसर जगदीशचन्द्र वसु, प्रफुल्लचन्द्र राय तथा रामेन्द्रसुन्दर त्रिवेदी आदि वङ्ग-साहित्य के रत्न हैं। सौभाग्यवश यदि वङ्ग-साहित्य इनके तथा इनके समकक्ष अन्य विद्वानों के सारे विचारों और सारे शक्ति-समूह को आकर्षित कर सके तो क्या ही अच्छी बात हो। इन लोगों की निगरानी में यदि कई एक उच्च शिक्षा पाये हुए साहित्यानुरागी युवक निश्चिन्त हो कर सम्मिलित भाव से साहित्य-सेवा करने में संलग्न हो जायँ तो दस ही वर्ष में संसार के कितने ही अमूल्य ग्रन्थ-रत्न हमारे जातीय साहित्य में परिणत हो सकते हैं—अर्थात् प्लेटो, हरबर्ट स्पेन्सर, गीज़ो, हेगल आदि पण्डितों के उच्च भावों को हम लोग अपनी जातीय भाषा के द्वारा जानने में समर्थ हो सकते हैं। ऐसा होने से थोड़े ही समय में बङ्गाल की शिक्षा-प्रणाली सचमुच ही स्वाधीन और एक बिलकुल ही निराले ढँग की हो सकती है।

शिक्षा-सम्बन्धिनी संस्थाओं के प्रभाव और उनके सञ्चालकों के परिचालन-कार्य्य से साहित्य बहुधा अपनी स्वतन्त्रता खो कर बनावटी हो जाता है। किन्तु हम लोग जिस रक्षण-नीति का अवलम्ब करना चाहते हैं उसका अनुसरण करने से इस प्रकार का डर नहीं। किसी गिरे हुए समाज या राजकीय विभाग को उन्नत करने के लिए जिस तरह
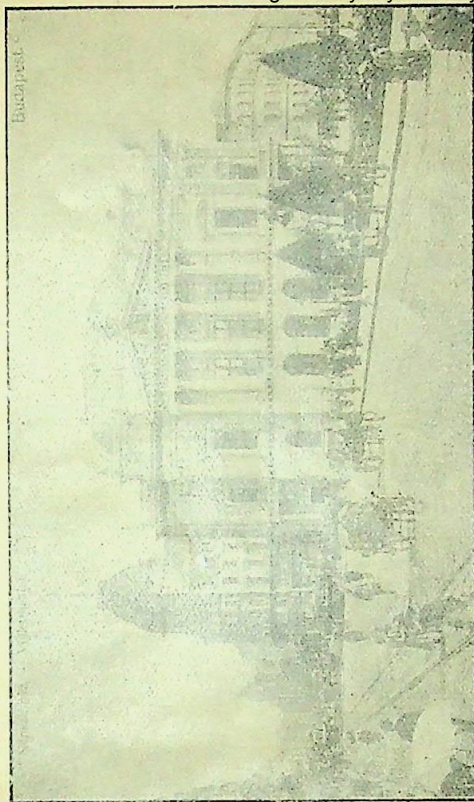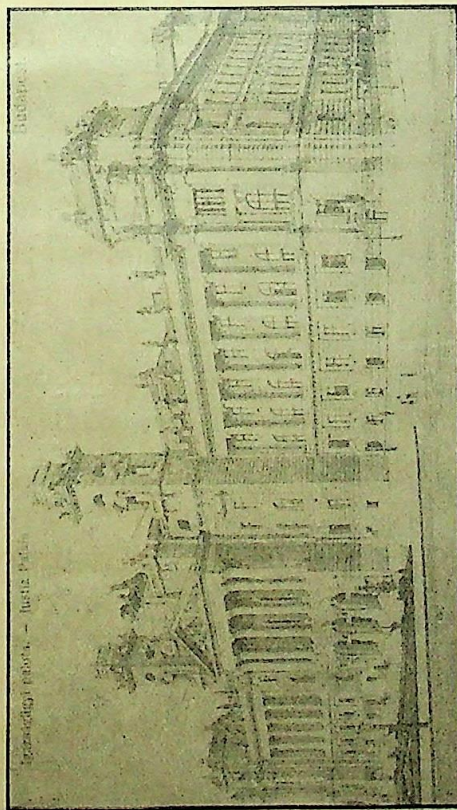
बुडापेस्ट का न्यायालय।

बुडापेस्ट की राष्ट्रीय रङ्गशाला।
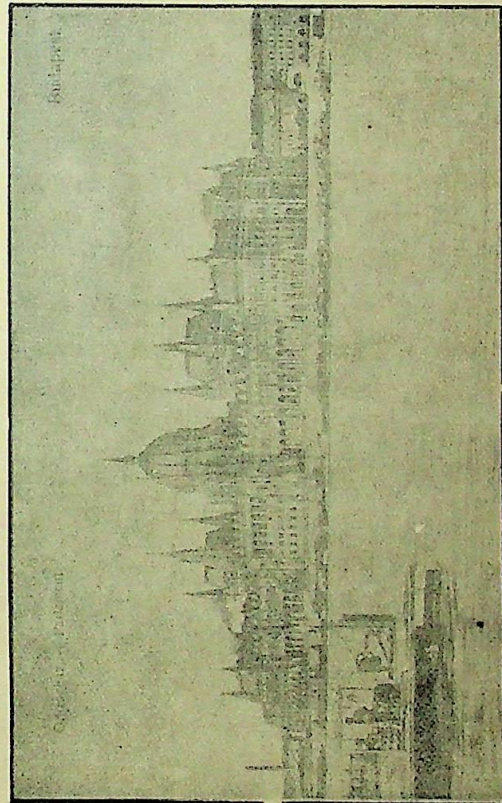
बुडापेस्ट का पारलिमेंट हौस।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।
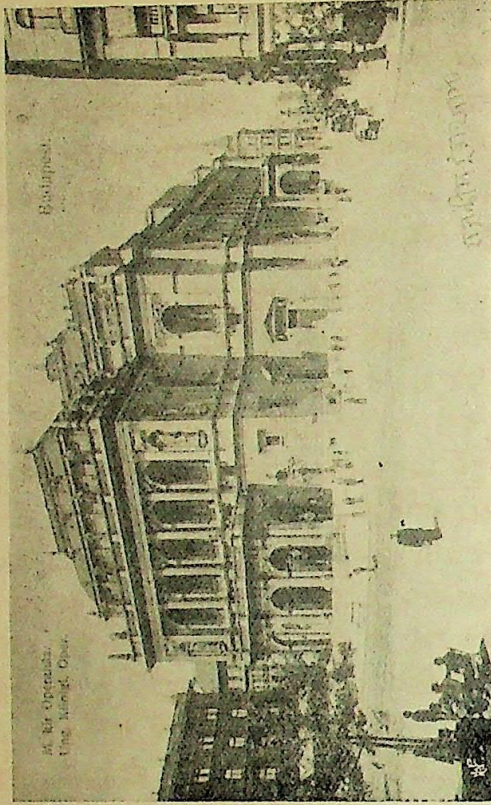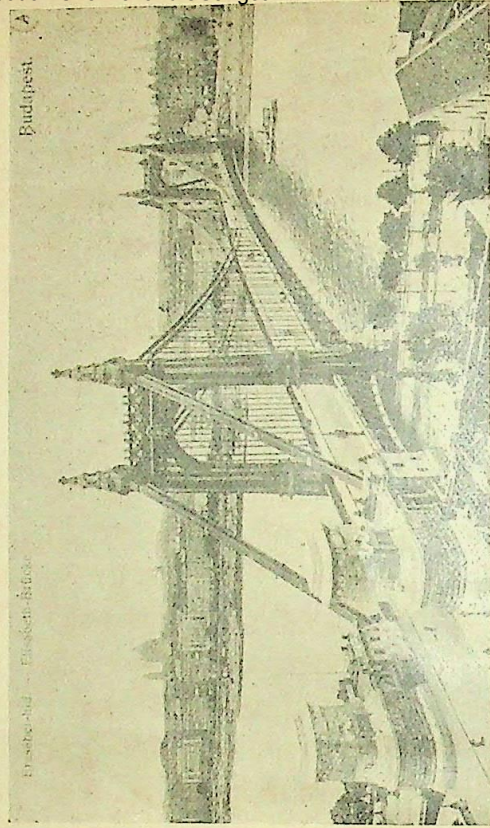
बुडापेस्ट की चौड़ी सड़कों का दृश्य

बुडापेस्ट की राजकीय रङ्ग-शाला।
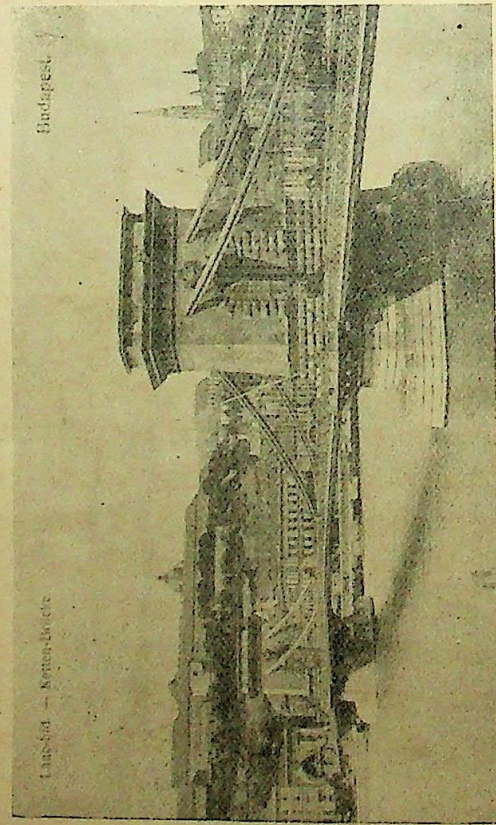
बुडापेस्ट का झूलना पुल—दुनिया के इस तरह के सब पुलों से बड़ा।

बुडापेस्ट के लंबे लंबे घाट।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

कभी कभी बहुत सा धन ख़र्च करके एक कमीशन, अर्थात् एक अनुसन्धान-समिति, संगठित की जाती है उसी तरह हमारे साहित्य को उन्नत करने के लिए भी जो द्रव्य की आवश्यकता है उससे एक कमीशन प्रतिष्ठित किया जा सकता है। ऐसा करने से कितने ही उपयुक्त साहित्य-सेवी, जो इस समय और कामों में लगे हुए हैं, अपनी सम्पूर्ण शक्ति और अपना सम्पूर्ण समय वङ्ग-भाषा के साहित्य की वृद्धि करने में लगा सकेंगे।

पदार्थ-विज्ञान, समालोचना, दर्शन, इतिहास, राष्ट्र-विज्ञान, धन-विज्ञान इत्यादि विषयों पर जो कई एक ऊँची कक्षा के ग्रन्थ इस समय वङ्ग-भाषा के साहित्य में विद्यमान हैं उनकी संख्या अधिक नहीं है। किसी देश का शिक्षा-कार्य्य केवल उसी देश के पण्डितों की कल्पना के बल पर नहीं चल सकता। संसार में जितनी प्रतिष्ठित भाषायें हैं सबके साहित्य में उत्तमोत्तम पुस्तकें पाई जाती हैं। उन सब में से उपादेय विषयों का संग्रह करके विद्यालयों के पाठ्य विषय निश्चित किये गये हैं। अतएव यदि ऐसी पुस्तकों को काट छाँट कर या उनका अनुवाद अथवा सङ्कलन करके हम पुस्तक रचने का काम आरम्भ करदें तो हमारा साहित्य बहुत शीघ्र अन्यान्य देशों के साहित्य की बराबरी करने योग्य हो सकता है। इस अनुवाद और सङ्कलन-कार्य से बँगला-साहित्य की श्रीवृद्धि तो होगी ही, किन्तु उससे यह भी लाभ होगा कि उसकी बदौलत हमारा मासिक साहित्य और समालोचना-विज्ञान भी थोड़ा बहुत अवश्य उन्नत हो जायगा। हमारे देश के नेता महाशय बहुत दूर तक भविष्यत् की ओर दृष्टि रख कर भी, वर्तमानकालिक अति अल्प आरम्भ-कार्य्य ही में, बहुत सा धन ख़र्च कर रहे हैं। वे समझते हैं कि वे अपने ऐश्वर्य्य की इस प्रकार सार्थकता कर रहे हैं। इस दशा में हम आशा करते हैं कि हमारे ऐश्वर्यशालियों की सहायता पाने से जिस अनुसन्धान-समिति का उल्लेख इस लेख में किया गया है उसकी स्थापना और रक्षण-नीति के अवलम्बन से हमारा साहित्य बहुत ही थोड़े समय में विशेष उन्नत और गौरवयोग्य हो सकेगा। उसके लिए हमारे धनी और भूमि-स्वामी, भूमि और स्थायी सम्पत्ति देने में सङ्कोच न करेंगे; प्रत्युत उत्साहपूर्वक इस जातीय कार्य्य को सब प्रकार सहायता पहुँचावेंगे।

हमारे देश में अध्यापक लोग साधारणतः डेढ़ सौ रुपया मासिक वेतन पर काम आरम्भ करते हैं। इस प्रकार के पाँच अध्यापक, दस वर्ष के लिए, अथवा दस अध्यापक पाँच वर्ष के लिए यदि नियत किये जायँ और उनकी सहायता के लिए कुछ कर्मचारी भी रक्खे जायँ तो उनकी समस्त शक्ति और समय के प्रयोग से बहुत कुछ काम हो जाय। प्रत्येक अध्यापक एक वर्ष में दो पुस्तकें लिख सकेगा। इस तरह रची गई पुस्तकों को छपवाने और उनमें उपयुक्त विद्वानों द्वारा संशोधन कराने में भी धन ख़र्च होगा। अतएव अपने साहित्य की रक्षा के लिए यदि दस लाख रुपये मूल्य की ज़मींदारी बँगला-साहित्य-परिषद् को दी जाय और इस सम्पत्ति से दस वर्ष तक जो आमदनी हो वह सारी इस काम में ख़र्च की जाय तो हम लोगों का उद्देश सिद्ध हो सकता है। इस काम के लिए आगामी दस वर्ष में कोई साढ़े तीन लाख रुपया नक़द ख़र्च होगा। इसके बाद रक्षण-नीति का अवलम्बन न करना होगा। इस दस वर्ष के परिश्रम से ही जो शक्ति उत्पन्न होगी उसी की प्रेरणा से हमारा साहित्य अपने आप ही अपनी रक्षा करके स्वाधीनता-पूर्वक अपने आसन पर आसीन रहेगा।

यदि दुर्भाग्य से इस प्रकार की भूमि-सम्पदा पाने की आशा दुराशा मात्र हो, अथवा एकमुश्त साढ़े तीन लाख रुपया मिलना भी असम्भव हो, तो भी सामान्य रीति से साहित्य-रक्षा का काम आरम्भ हो सकता है। यदि प्रत्येक पुस्तक लिखने, छपवाने और उसका संशोधन कराने के लिए डेढ़ दो हज़ार रुपये अलग कर दिये जायँ तो बहुत नहीं, छः ही महीने के भीतर इस काम का फलाफल आँखों के सामने आ सकता है।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

परन्तु, सच तो यह है कि रक्षण-नीति के अवलम्बन से बहुत बड़े लाभ की आशा है। थोड़े ही समय में अधिक रुपया ख़र्च करके यदि वह नीति कार्य्य में परिणत की जाय तो बहुत शीघ्र उद्देश्य-सिद्धि हो सकती है। अतएव इस विषय में सामर्थ्यवान् सज्जनों को अवश्य उत्साह दिखाना चाहिए। जातीय जीवन में साहित्य का स्थान बहुत ऊँचा है। इस बात को हृदयङ्गम करके हमारा धनिक-समाज क्या एक बार इस प्रस्ताव को अपने कृपा-कटाक्ष से देखेगा ?

(अनुवादित)
श्रीविनयकुमार सरकार।

प्रातश्चिन्ता।

सुहावना यह समय सबेरे का शान्त मन को बना रहा है।
प्रसन्न अन्तःकरण भी प्रभु पर प्रतीति पूरी दिला रहा है ॥ १ ॥
अनन्त आकाश में सिँहासन उसी का शोभायमान मानो।
ये सूर्यमण्डल सुवर्ण-सुन्दर उसी का वैभव दिखा रहा है ॥ २ ॥
प्रभातकालीन मन्द मारुत सुगन्ध फूलों की साथ लेकर।
ये देखिए पूर्व से उसीकी उपासना करता आ रहा है ॥ ३ ॥
रसाल की डाल पर ये कोकिल उसी का प्रिय पाठ पढ़ रही है।
हरेक भौंरा जगह जगह पर उसी के गुन गुनगुना रहा है ॥ ४ ॥
ये फूल फूले नहीं समाते उसीके अनुभव में मस्त होकर।
उसी की धुन में हरेक पक्षी उमङ्ग से चहचहा रहा है ॥ ५ ॥
बढ़ी हुई यह उमड़ चली है उसी से मिलने को देवसरिता।
हरेक इसका तरङ्ग उठ कर अदम्य उद्यम दिखा रहा है ॥ ६ ॥
वह सर्वव्यापी परम प्रतापी जगन्नियन्ता छिपा नहीं है।
हरेक पत्ता उसी की गति से सचेत हो सिर हिला रहा है ॥ ७ ॥
उसी का आभास यह प्रकृति भी प्रकाश प्रत्यक्ष पारही है।
हरेक परमाणु योगबल से पता उसी का बता रहा है ॥ ८ ॥

रूपनारायण पाण्डेय—
(कमलाकर)

हिन्दी-नवरत्न।

(समालोचना)

इलाहाबाद में नागरी-प्रवर्द्धिनी नाम की एक सभा है। उसके अन्तर्गत एक और छोटी सी सभा है, जिसका नाम हिन्दी-ग्रन्थ-प्रसारक मण्डली है। यह मण्डली अच्छे अच्छे नवीन ग्रन्थ और अन्य भाषाओं के अच्छे अच्छे ग्रन्थों के अनुवाद प्रकाशित करने के उद्देश से स्थापित हुई है। कोई भी इसका सभासद हो सकता है। सभासदी का सालाना चन्दा चार रुपया है। सभासदों को इस मण्डली की प्रकाशित पुस्तकें मुफ़्त मिलती हैं। उद्देश इसका प्रशंसनीय है। हिन्दी-प्रेमियों को इसका सभासद होना चाहिए। साल में चार रुपये इसे दे डालना बड़ी बात नहीं। सभासद होने की इच्छा रखनेवालों को इस मण्डली के मन्त्री से पत्र-व्यवहार करना चाहिए। हिन्दी-नवरत्न इस मण्डली की प्रकाशित की हुई पहली पुस्तक है। कई और उपयोगी पुस्तकें भी यह मण्डली शीघ्रही प्रकाशित करनेवाली है। हिन्दी-नवरत्न इसके सभासदों को बेदाम मिलता है। औरों को ढाई रुपये देने पड़ते हैं। बाबू माणिक्यचन्द्र जैनी, बी० ए०, एल० एल०, बी० इस मण्डली के मन्त्री हैं। उन्होंने इसकी एक कापी हमारे पास समालोचना के लिए भेजी है।

पुस्तक-सम्बन्धिनी साधारण बातें।

इस पुस्तक को तीन भाइयों ने मिल कर लिखा है। उनके नाम हैं:—(१) पण्डित गणेशविहारी मिश्र, (२) पण्डित श्यामविहारी मिश्र, एम० ए० और (३) पण्डित शुकदेवविहारी मिश्र, बी० ए०। इनमें से अन्त के दो महाशयों से हिन्दी-प्रेमी बहुत समय से परिचित हैं। पहले महाशय का नाम अभी कुछ ही दिनों से सर्व-साधारण के सामने आने लगा है। इस पुस्तक में इन तीनों महाशयों के हाफ़टोन चित्र हैं। पुस्तक महाराजा छत्रपुर को समर्पित हुई है। उनका भी एक चित्र पुस्तक के आरम्भ में है।

यह पुस्तक अच्छे चिकने काग़ज़ पर, अच्छे—न बहुत बड़े, न बहुत छोटे—टाइप में, छपी है। बड़ी ही सुन्दर जिल्द बँधी हुई है। छपाई का काम प्रयाग के इंडियन प्रेस का है। पुस्तक के पुट्ठे पर पुस्तक का, लेखकों का और प्रकाशक मण्डली का नाम सुनहले अक्षरों में हैं। पुस्तक का बाह्य, आभ्यन्तर, दोनों ही रूप बहुत लुभावने हैं।

पुस्तक में सब मिलाकर कुछ कम साढ़े चार सौ पृष्ठ हैं। मूल विषय नौ अंशों में विभक्त है। प्रत्येक अंश में एक एक कवि पर निबन्ध है। इन कवियों के नाम और निबन्धों की पृष्ठ-संख्या इस प्रकार हैः—

तुलसीदास ...	१४०	भूषण ...	१९
सूरदास ...	३२	केशवदास ...	४१
देव ...	४६	मतिराम ...	७
विहारी ...	२८	चन्द ...	३१
		हरिश्चन्द्र ...	४२

इसके सिवा ३१ पृष्ठ की एक भूमिका है। प्रकाशकों का निवेदन, सूचीपत्र, परिशिष्ट और अशुद्धि-संशोधन आदि कोई १८ पृष्ठों में हैं। समय की कमी के कारण सूरदास, भूषण, केशवदास और चन्द वरदायी पर लिखे गये निबन्ध, जिनकी पृष्ठ-संख्या केवल १२३ है, हम नहीं पढ़ सके। अतएव इस लेख में विशेषतः अवशिष्टांशही की समालोचना होगी।

लेखकों का विचार-स्वातन्त्र्य।

अँगरेज़ी भाषा की उच्च शिक्षा पाये हुए पण्डितों में हिन्दी-प्रेम का होना ही बहुत बड़ी बात है। इस बात का इन प्रान्तों में प्रायः अभाव सा है। फिर, ऐसे पण्डितों का हिन्दी के अच्छे अच्छे कवियों के प्रकाशित और अप्रकाशित ग्रंथ ढूँढ़ ढूँढ़ कर उनका अध्ययन करना और उन पर निबन्ध लिखना और भी बहुत बड़ी बात है। ऐसे कवियों की कविता की समालोचना करना और निर्भय होकर उनके गुण-दोषों को दिखलाना और भी प्रशंसा की बात है। अतएव, ऐसी पुस्तक का प्रकाशित होना हिन्दी के सौभाग्योदय का सूचक है। और देशों के नहीं, तो भारत के कवियों में कालिदास का आसन अवश्य ही सबसे ऊँचा है। इस ऐसे महाकवि को भी महाराज की पदवी नहीं प्राप्त हुई। कोई उसे कालिदास महाराज—नहीं कहता। परन्तु श्रीरामचन्द्रजी के परम भक्त और महात्मा होने के कारण तुलसीदास को—'गुसाईं जी महाराज'—कहते हमने सैकड़ों आदमियों को अपने कानों सुना है। जिस महात्मा के सम्बन्ध में लोगों का यह विश्वास है कि वह मुर्दों को ज़िन्दा कर देता था—विधवाओं को सधवा कर देता था—और पापियों को पुण्यात्मा बना देता था उसी की परम पुनीत मानी गई रामायण के गुणों का वर्णन करके उसके दोषों का भी निःसङ्कोच होकर उद्घाटन करना लेखकों की न्यायशीलता, मानसिक दृढ़ता और सत्यपरता का परमोज्ज्वल उदाहरण है। जो मनुष्य समाज के भय की परवा न करके अपने मन की बात कह डालने से नहीं हिचकता उसके मानसिक बल और वीरत्व की जितनी प्रशंसा की जाय कम है। जिस समाज में विचार-स्वातन्त्र्य नहीं वह चिरकाल तक जीवित नहीं रह सकता। और, जिस साहित्य में स्वतन्त्र-विचार-पूर्ण पुस्तकें नहीं वह कभी उन्नत नहीं हो सकता। हिन्दी के सौभाग्य से इस पुस्तक के लेखकों में विचार-स्वातन्त्र्य है। यह लेखकों के लिए कम गौरव की बात नहीं।

लेखकों ने तुलसीदास की कविता में जिन दोषों की उद्भावना की है उनमें से कुछ का उल्लेख नीचे किया जाता है :—

(१) कवितावली के कुछ कवित्तों में छन्दोभङ्ग है—पृष्ठ २२।

(२) सुन्दर-काण्ड में हनूमान् ने कई काम बड़ीही बहादुरी के किये। परन्तु, यह कह कर कि— 'उमा न कछु कपि की अधिकाई—प्रभु प्रताप जो कालहि खाई'— तुलसीदास उनके सारे यश के गाहक बन बैठे। पृष्ठ ५७।

(३) सुन्दर-काण्ड में मन्दोदरी के सामने रावण का सीता से यह कहना अनुचित हुआ कि यदि-'तू एक बार मेरी ओर देख ले तो मन्दोदरी आदि रानी (रानियाँ ?) तेरी अनुचरी करें' (हो जायँ ?) पृष्ठ ५८।

(४) 'अंगद-पैज में राज-सभा की (के ?) गाम्भीर्य्य का ध्यान नहीं रक्खा गया है'। पृष्ठ ५८।

(५) उत्तर-काण्ड में—'ज्ञान दीपक के परम परिश्रम से जलाये जाने और परम सुगमता से बुझ जाने का कथन कुछ उपहासास्पद होगया है। पृष्ठ ६४।

(६) 'कलिमल ग्रसेउ'—इत्यादि दोहा लिखकर गोस्वामी जी ने नानक, कबीर और दादू आदि के ग्रन्थों की निन्दा की है। पृष्ठ ६४।

(७) बाल-काण्ड के अन्तर्गत आकाश-वाणी में 'मनु सत्यरूपा के स्थान पर कश्यप अदिति का नाम भ्रमवश आगया है'। पृष्ठ ७४।

(८) विभीषण राजविद्रोही और विश्वासघाती थे। तुलसीदास ने रामायण में उनके चरित का जो वर्णन किया है-रावण से बिगड़ कर रामचन्द्रजी के पास चला जाना और हनूमान् को सीता का पता बतलाना आदि—उससे विभीषण का चरित बड़ाही निन्द्य होगया है। पृष्ठ ८८।

(९)—'दशरथ वृद्धावस्था तक कामी बने रहे'। पृष्ठ ९२

(१०)—'गोस्वामीजी से राम भक्ति के मारे इसका (कैकेयी का) शील गुण ठीक न उतारते बना और देवी सी कह कर इसे उन्होंने अन्त में पूरी पिशाची कर डाला और महा अनुचित बातें इसके मुँह से कहा डालीं''। पृष्ठ ९४

(११)—'ऐसे महात्मा और महाकवि को बिना सोचे (स्त्रियों की) इतनी प्रचण्ड निन्दा करना अनुचित था'। पृष्ठ ११०

(१२) परशुराम और लक्ष्मण के विवाद का—'वर्णन गोस्वामीजी के सहज गाम्भीर्य के बिलकुल ही अयोग्य है'। पृष्ठ ११६

(१३)—रामचन्द्र के विषय में परशुराम के मुँह से—'संभु सरासन तोरि सठ करसि हमार प्रबोध' कहला कर तुलसीदास ने—'परशुराम की पूरी नीचता देखा दी है'; और फिर—'मैं तुम्हार अनुचर मुनिराया' आदि लक्ष्मण से कहला कर मानों परशुराम को मूर्ख बनाया है। पृष्ठ ११७

(१४)—'रामचन्द्र की महिमा बढ़ाने को गोस्वामीजी ने अन्य देवताओं की प्रायः निन्दा कर दी है। सती-मोह इस कथन का पूर्ण प्रमाण है'। रामचन्द्र का सती को अपना प्रभाव दिखाना 'बहुत ही अनुचित हुआ'। 'सती से झूठ बोलाना भी अनुचित हुआ'। मरते समय सती का—'हरि से बर मँगवाना भी बेजा है'। पृष्ठ ११४

(१५)—रामचन्द्र के विवाह की शोभा बढ़ाने के लिए तुलसीदास ने महादेव के विवाह की शोभा बिगाड़ दी। पृष्ठ ११५

(१६)—महादेव से यह न कहलाना चाहिए था कि—'अनुज जानकी सहित निरन्तर। बसहु राम-प्रभु मम उर अन्तर'—'क्या महादेवजी लक्ष्मण का भी ध्यान धरते थे ? परन्तु गोस्वामी ने उसमें (उससे ?) भालु कीशों को निकाल दिया यही उनकी बड़ी (?) अनुग्रह हुई'। पृष्ठ ११५

(१७)—उत्तरकाण्ड में तुलसीदास ने नारद, शिव, विरिञ्चि, सनकादि को भी लोभ, मोह, काम का शिकार बना डाला। पृष्ठ ११५

(१८)'जो सम्पति सिव रावणहिं दीन्हि दिए दस माथ।
सो सम्पदा बिभीषनहिँ सकुचि दीन्हि रघुनाथ'-

इस दोहे से तुलसीदास की—'निन्दा की वृत्ति पूरी तरह प्रकट होती है'। पृष्ठ ११५

(१९)—गोस्वामीजी ने—'ब्राह्मणों को मांसाहारी लिखा है और यह भी लिखा है कि वे क्षत्रियों का परोसा खाते थे' पृष्ठ ४२

लेखकों के दिखलाये हुए गोस्वामीजी के इन तथा अन्य दोषों से कोई सहमत हो या न हो, यह तो बात ही दूसरी है। कहने का मतलब सिर्फ़

सम्राट् का कैम्प । (देहली-दरबार)

पोलो के मैदान में महाराज पञ्चम जार्ज का आगमन । (देहली-दरबार)
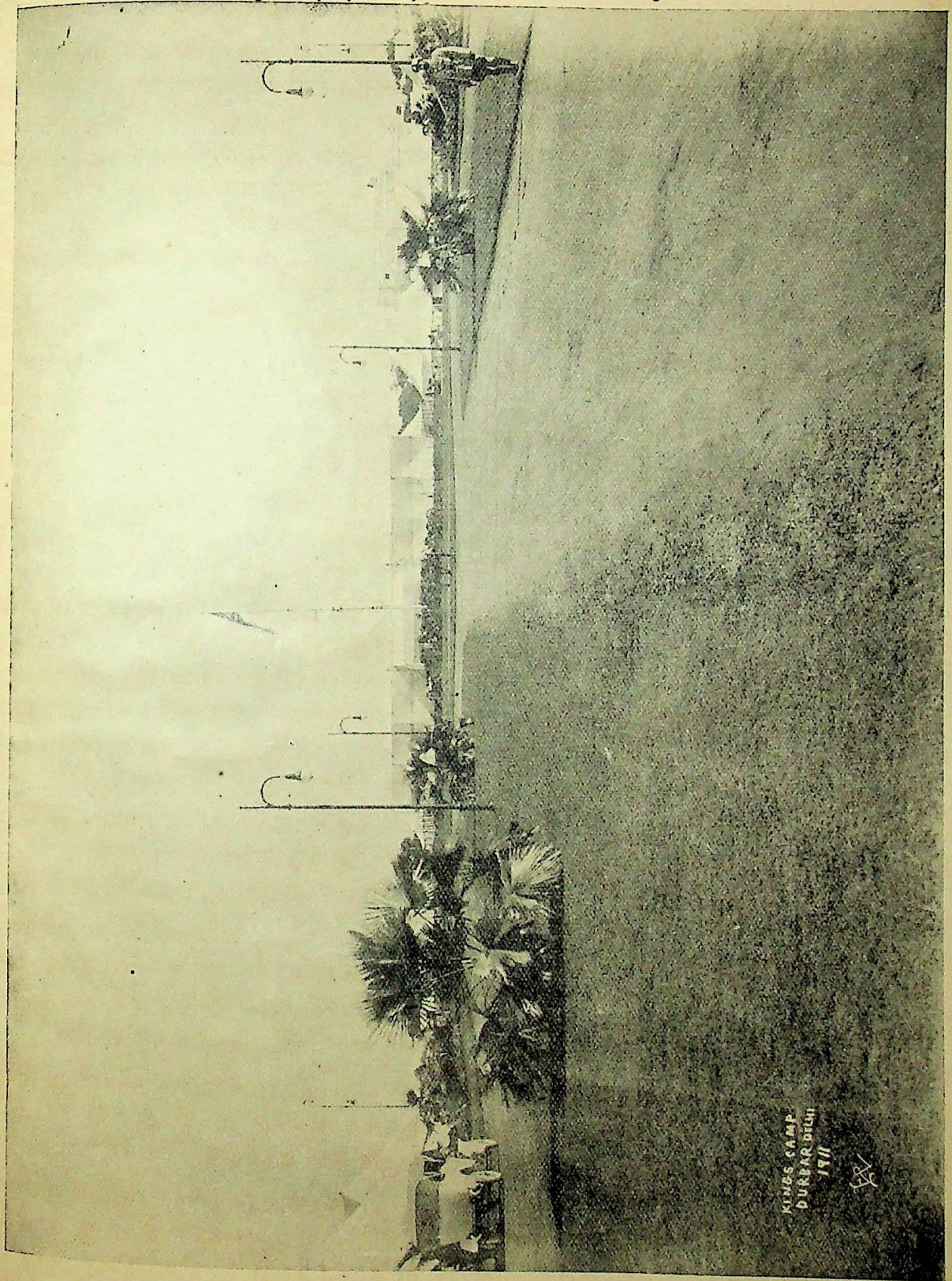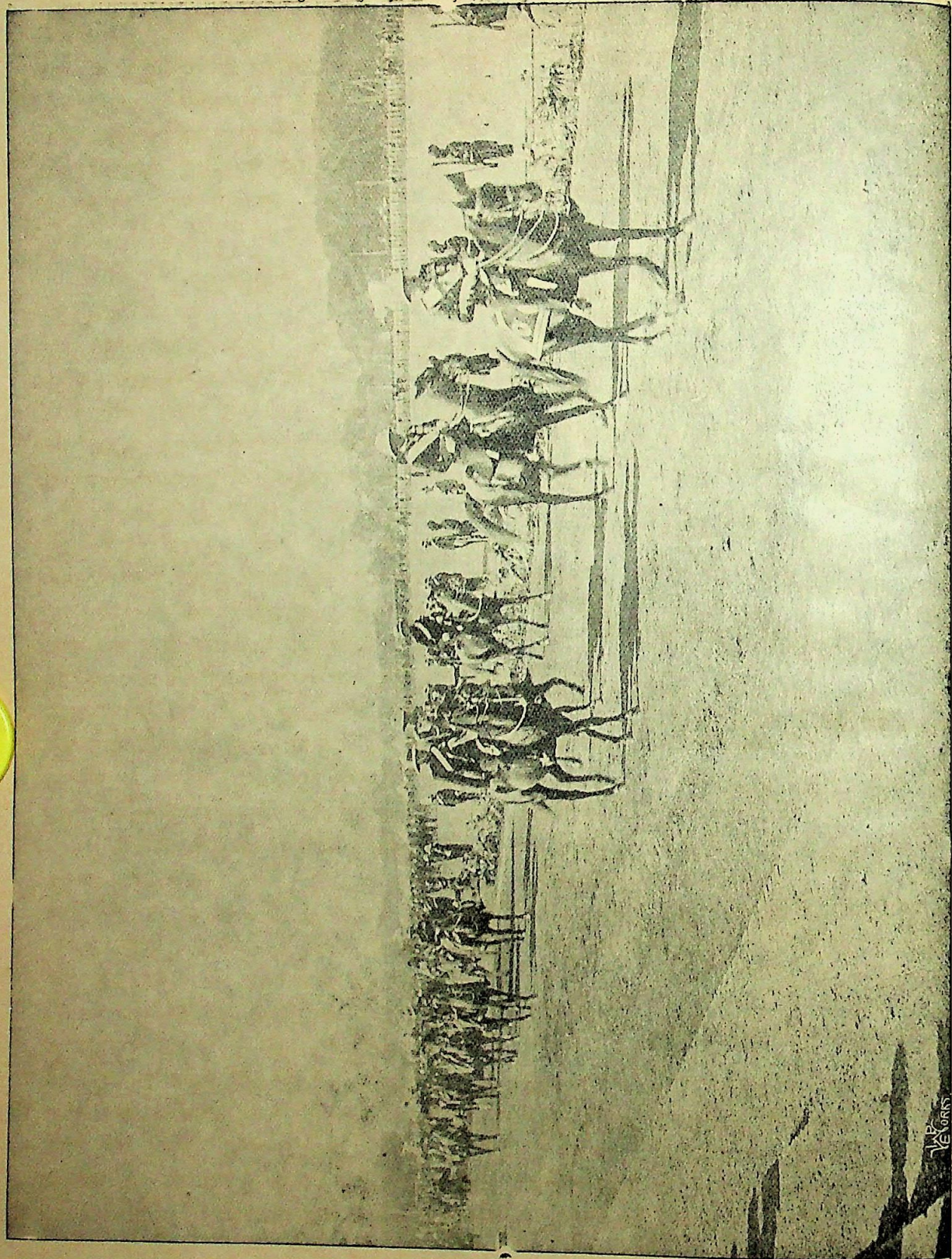
इतना ही है कि जो बात लेखकों की समझ में जैसी जान पड़ी है उसे उन्होंने निर्भयतापूर्वक कह डाला है। समालोचक में इस गुण का होना बहुत ही अभिनन्दनीय है। लेखकों ने तुलसीदास की रामायण तथा इतर ग्रन्थों में ये और अन्य अनेक दोष जो दिखलाये हैं उनमें से कितने ही दोषों को काव्यदृष्टि से हम दोष नहीं समझते। उनके सम्बन्ध में हम लेखकों से सहमत नहीं। परन्तु, खेद है, इस लेख में हम उन पर, विस्तारभय से, कुछ नहीं लिख सकते। शूर्पणखा का नासाकर्ण-हीन किया जाना एक महत्त्वपूर्ण घटना है। परन्तु लेखकों ने इस विषय में अपनी कोई राय नहीं दी। उन्हें इस पर यह ज़रूर लिखना था कि वे इसे उचित समझते हैं या अनुचित। बालि-वध पर भी उन्होंने अपनी स्वतन्त्र सम्मति नहीं प्रकाशित की। उन्होंने जो यह लिखा कि शत्रु को छल से मारने में तुलसीदास ने कोई दोष नहीं समझा, सो तो तुलसीदास की बात हुई। यदि लेखक महोदय भी यह लिख देते कि वे इस घटना को कैसी समझते हैं, तो उनकी भी राय मालूम हो जाती।

इससे यह न समझना चाहिए कि लेखकों ने इस पुस्तक में तुलसीदास के विशेष करके दोष ही अधिक बतलाये हैं। नहीं, उन्होंने गोसाईं जी के अनेक गुणों के भी उल्लेख यथामति किये हैं। परन्तु, यहाँ पर, उनके निर्देश की विशेष आवश्यकता नहीं; क्योंकि पुराने कवियों के गुणों का उल्लेख करना कोई नई बात नहीं और न वैसा करने के लिए मानसिक बल ही की अपेक्षा है।

पुस्तक की उपादेयता।

लेखकों ने तुलसीदास के ग्रन्थों का बड़े परिश्रम से पाठ करके उनकी कविता की, उसमें वर्णन की गई घटनाओं की, और उनमें उल्लिखित पात्रों के स्वभाव आदि की आलोचना की है। अन्य कवियों के ग्रन्थों आदि की समालोचनायें यद्यपि उन्होंने उतनी बारीकी से नहीं कीं, तथापि उनके अवलोकन से भी साधारण पाठकों को उन कवियों के सम्बन्ध की अनेक बातें मालूम हो सकती हैं। उनके जीवन-चरित, उनके ग्रन्थों के नाम और विषय, उनके निर्म्माण का काल, और, लेखकों के विचारानुसार, उनकी कविताओं के गुण-दोष आदि जानने का हिन्दी-नवरत्न अच्छा साधन है।

काल्पनिक चित्र।

एक को छोड़ कर अवशिष्ट जितने चित्र इस पुस्तक में हैं सब काल्पनिक हैं। लेखकों का कथन है कि वे देश, काल, सामाजिक अवस्था और अपनी अपनी कविता की वर्ण्य-वस्तु-स्थिति के आधार पर बनाये गये हैं। परन्तु इस तरह बनाये गये चित्र कहाँ तक ठीक हो सकते हैं, यह बात विचारणीय है। इस पुस्तक के तीनों लेखक सहोदर भाई हैं। पर सब के वस्त्र-परिच्छदों का ढंग जुदा जुदा है; उनके चित्र इस बात के प्रमाण हैं। एक ही समय के, एक ही नगर के, एकही घर के मनुष्यों में जब इतना भेद-भाव है तब जिन्हें हुए सैकड़ों वर्ष बीत गये ऐसे कवियों के कल्पनाप्रसूत चित्र किस तरह उनके यथार्थ रूप-रङ्ग और कपड़े-लत्ते के व्यञ्जक हो सकते हैं? देवी-देवताओं और कथा-कहानियों के कल्पित पात्रों की बात जुदी है। ऐतिहासिक पुस्तकों में ऐतिहासिक पुरुषों के कल्पित चित्र देने से उनका महत्त्व अवश्य कम हो जाता है। इसके सिवा, इस पुस्तक में दिये गये कल्पित चित्रों में यों भी कितने ही दोष हैं। देव, भूषण, विहारी और केशव के सिर पर प्रायः एकही तरह की पगड़ियाँ हैं, जो मध्य-प्रदेश और महाराष्ट्र-देश के निवासियों की पगड़ियों से ही विशेष मेल खाती हैं। जूते सबको उठी हुई नोक के पहनाये गये हैं—वैसे जूते जैसे आज कल पञ्जाब में बनते हैं। मतिराम और उनके शिष्यों के चपकन तो बिलकुल ही मराठी-फ़ैशन के हैं। उनके और उनके एक शिष्य ने जिस ढँग से डुपट्टा डाला है वह ढँग भी आज कल के महाराष्ट्रों ही का है। क्या मतिराम के समय में इसी तरह डुपट्टा लिया जाता था?

विहारी और देव के समय में भी क्या गले में इसी तरह डुपट्टा डाला जाता था ? पुराने ज़माने के जामे और पटके का प्रचार कब और कहाँ था ? देव जी लम्बा चपकन पहने, पगड़ी रक्खे, डुपट्टा डाले—सजे बजे—बैठे हुए कविता लिख रहे हैं। क्या कवि पूरी पोशाक पहन कर ही कविता करने बैठते हैं ? विहारी के चित्र में जो दृश्य दिखाया गया है उसके वर्णन में, नीचे, यह दोहा है :—

मोछ मिरोरत रसिक मनि लखहु बिहारी लाल।
नर नारिन को न्हान हैं तकत खरे ढिग ताल॥

लेखकों ने जिसे महाकवि की उपाधि दी है उसे इस तरह तालाब के किनारे मोछ मरोड़ते हुए खड़ा करना और यह कहना कि नरों और नारियों, दोनों को, स्नान करते समय, देखने हीं के लिए ये यहाँ आये हैं, बहुत ही अनुचित जान पड़ता है।

कवियों का श्रेणी-विभाग।

जिन कवियों के चरित और जिनकी पुस्तकों की आलोचनायें हिन्दी-नवरत्न में हैं उन्हें लेखकों ने रत्न-श्रेणी ('Reserved Class') में रक्खा है। परन्तु इस श्रेणी का लक्षण क्या है, यह उन्होंने नहीं बताया। यह कवि साधारण श्रेणी का है, वह नीच श्रेणी का; इसकी कविता उससे उत्तम है, उसकी उससे; यह अमुक की श्रेणी का है, वह अमुक की। यह तो लेखकों का कथन मात्र हुआ; यह कोई लक्षण नहीं। वे अपनी रुचि के अनुसार जिसको जैसा चाहें समझ सकते हैं। यदि किसी को रामायण से आल्हा अच्छा जँचे तो वह उसे ही रत्न समझ सकता है। पर यदि वह यह चाहता हो कि और लोग भी उससे इस विषय में सहमत हों तो उसे अपने मत की पुष्टि में कुछ कहना भी चाहिए। ऐसा करने हीं से और लोग उसके मत की सारता या असारता की परीक्षा कर सकेंगे। लेखकों ने पहले तो तुलसीदास आदि नौ कवियों को रत्न-श्रेणी में रक्खा है। फिर इस श्रेणी के भी तीन टुकड़े किये हैं—बृहत्त्रयी, मध्यत्रयी और लघुत्रयी। पहली त्रयी में तुलसी, सूर और देव को उन्होंने रक्खा है; दूसरी में विहारी, भूषण और केशव को; और तीसरी में मतिराम, चन्द और हरिश्चन्द्र को। पहली त्रयी के तीनों कवियों की योग्यता उन्होंने एक सी ठहराई है; किसी को किसी से रत्ती भर भी न्यूनाधिक नहीं समझा। दूसरी और तीसरी त्रयी के कवियों की योग्यता या महत्ता उसी क्रम से उन्होंने न्यूनाधिक निश्चित की है जिस क्रम से उनके नाम उन्होंने दिये हैं। इस श्रेणी और त्रयी-विभाग ने इस विषय को और भी अधिक जटिल कर दिया है। अब, यदि, कोई और विद्वान् देव की पुस्तकों को विचारपूर्वक पढ़ कर यह निश्चय करे कि उनका दरजा बाबू हरिश्चन्द्र से भी नीचे है तो उसके और प्रस्तुत लेखकों के निश्चय की जाँच किस तरह की जाय और दोनों पक्षों में से बात किस की मानी जाय ?

हिन्दी-नवरत्न के लेखकों को चाहिए था कि पहले वे रत्नश्रेणी के कवियों का लक्षण लिखते। वे दिखलाते कि कौन कौन बातें होने से किसी कवि की गणना रत्न-कवियों में हो सकती है। फिर, कवि-रत्नों की कविता-दीप्ति की भिन्न भिन्न प्रभाओं की मात्रा निर्दिष्ट करते; जिससे यह जाना जा सकता कि कितनी प्रभा होने से बृहत्, मध्य और लघु-त्रयी में उन कवियों को स्थान दिया जा सकता है। यदि वे ऐसा करते तो उनके बतलाये हुए लक्षणों की जाँच करने में सुभीता होता—तो लोग इस बात की परीक्षा कर सकते कि जिन गुणों के होने से लेखकों ने कवि को कविरत्न की पदवी के योग्य समझा है वे गुण वैसे ही हैं या नहीं; और वे प्रस्तुत कवियों में पाये भी जाते हैं या नहीं। परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। अतएव जो लोग उनके इस श्रेणी और त्रयी-विभाग को बिना परीक्षा के ही, आँख बन्द कर मान लेना चाहेंगे वही मान सकेंगे।

लेखकों ने आचार्य और महाकवि की पदवियों का भी स्पष्टीकरण नहीं किया। उन्होंने अपनी इस पुस्तक में इन पदवियों को बड़ी ही उदारता से बाँटा है। अतएव इस विषय में भी वही एतराज़ किया

जा सकता है जो श्रेणी-विभाग के विषय में ऊपर किया गया है। अलङ्कारशास्त्र में महाकाव्य के जो लक्षण संस्कृत में निर्दिष्ट हुए हैं उन लक्षणों से अन्वित काव्य लिखने वालों को लेखक भी यदि महाकवि समझते हों तो वे लक्षण उनके सभी नवरत्न-कवियों के काव्यों में नहीं घटित होते।

होमर और वर्जिल, शेक्सपियर और मिल्टन, व्यास और वाल्मीकि, कालिदास और भवभूति का अपने अपने साहित्य में जो स्थान है सूर और तुलसी का प्रायः वही स्थान हिन्दी में है। अथवा यह कहना चाहिए कि सूर और तुलसी हिन्दी में प्रायः उसी आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं जिस दृष्टि से कि ये उल्लिखित कवि संस्कृत और अँगरेज़ी आदि भाषाओं में देखे जाते हैं। जिन सूर और तुलसी के ग्रन्थों की पूजा झोपड़ियों से लेकर राज-प्रसादों तक में होती है; जिनके कविता-कुसुमों को, छोटे से लेकर बड़े तक, सादर अपने सिर पर धारण करते हैं; जिनकी उच्च-भाव-पूर्ण उक्तियाँ पापियों को पुण्यात्मा और अधार्मिकों को धार्मिक बनाने का सामर्थ्य रखती हैं; जिनके सदुपदेश और सरस पद्य सुन कर दुराचारी भी सदाचारी हो जाते हैं और पाषाण-हृदयों के भी हृदय पिघल उठते हैं; उन्हों से देव कवि को रत्ती भर भी कम न समझना कदापि युक्तिसङ्गत नहीं माना जा सकता। जिसने उच्च भावों का उद्बोधन नहीं किया; जिसने समाज, देश या धर्म्म को अपनी कविता द्वारा विशेष लाभ नहीं पहुँचाया; जिसने मानव-चरित्र को उन्नत करने योग्य सामग्री से अपने काव्यों को अलङ्कृत नहीं किया—वह भी यदि महाकवि या कविरत्न माना जा सकेगा तो प्रत्येक देश क्या, प्रत्येक प्रान्त में भी, सैकड़ों महाकवि और कविरत्न निकल आवेंगे।

लखनऊ-निवासी पण्डित ब्रजनारायण चकबस्त उर्दू के अच्छे कवि हैं। कुछ समय हुआ उन्होंने "हिन्दुस्तान-रिव्यू" के दो अङ्कों में उर्दू-कवियों पर एक निबन्ध लिख कर प्रकाशित किया था। उसमें उन्होंने कुछ कवियों की अत्यधिक प्रशंसा की थी। एच० एल० सी० नामक एक महाशय ने उन कवियों को उस प्रशंसा का पात्र नहीं समझा। अतएव उन्होंने चकबस्तजी के लेख पर एक आक्षेपपूर्ण छोटा सा लेख, "हिन्दुस्तान-रिव्यू" की आक्टोबर-नवम्बर १९११ की सम्मिलित संख्या में, प्रकाशित किया है। एच० एल० सी० जी के लेख का कुछ अंश हम नीचे उद्धृत करते हैं। चकबस्तजी के प्रशंसित कवियों के विषय में वे लिखते हैं:—

"Do they grapple with any of the problems of life, for the solution of which every individual hungers as soon as the dream and romance of youth are shattered by the cruel realities of the world? Do they deal with the abiding questions, the answer to which is strenuously sought by every thinking being when the remorseless tide of actual facts sweeps away the hallowed citadel of every hope and illusion? * * * The far-fetched ideas of union with the divine through constant doting on the lady's pencilled eye-lids, or on the quaint dimple in the cheek, or on the recalcitrant curl about the brow rather induce the risible tendency than awaken any sacred associations leading the mind Godward. * * * Some of their *Ghazals* are a store-house of jewelled thoughts, but judged in the mass how puerile achievement—how inadequate and profitless their performance? The charge of ignorance is a very commonplace charge, easy to make, but hard to refute. The present writer cannot read Homer, Sophocles, Virgil, Dante, Goethe, and Victor Hugo in the original, yet he has been able to appreciate their great art, their splendid eloquence, their steady outlook upon life, their clear vision of things divine, their noble enfranchising power. The Hindustani

poets referred to by Mr. Chackbust have failed to make a mark because

> They fed not on the advancing hours
> Their hearts held cravings for the buried day."

हमारी समझ में एच० एल० सी० महाशय का कहना बहुत ठीक है। उनका कथन लेखकों के महाकवि मतिराम आदि के विषय में भी पूरे तौर पर घटित हो सकता है। उन्होंने मनुष्य-समाज को उन्नत करने, अलौकिक आनन्द देनेवाले दृश्य दिखाने और प्राकृतिक नियमों का उद्घाटन आदि करने के विषय में भी कुछ किया? नहीं, तो फिर वे महाकवि, कविरत्न और परमोत्तम कवि होने के कैसे अधिकारी माने जा सकते हैं?

हिन्दी में यदि कोई कविरत्न कहे जाने योग्य कवि या महाकवि हुए हैं तो वे सूर और तुलसी ही हैं। रस, भाव, अलङ्कार, छन्दःशास्त्र और नायिका-भेद के परिज्ञान से मनुष्य-जाति का बहुत ही कम उपकार हो सकता है। इन विषयों पर दो एक छोटी मोटी पुस्तकें लिखने वाले मतिराम जैसे कवि भी यदि रत्न-श्रेणी में परिगणित हो सकेंगे तो यही कहना पड़ेगा कि 'रत्न' शब्द अपने ठीक अर्थ में नहीं व्यवहृत हुआ। कहीं उससे हीरे का अर्थ लिया गया, कहीं केवल काँच का। मतिराम, देव और भूषण चाहे जितने अच्छे कवि रहे हों, पर क्या उनके ग्रन्थ उतने ही महत्त्वपूर्ण हैं जितने कि सूर और तुलसी के? फिर, वे सूर और तुलसी की श्रेणी की सीमा के भीतर किस तरह आ सकते हैं? सूर और तुलसी के ग्रन्थों में कुछ विशेषता अवश्य है, जिसके कारण उनका इतना अधिक प्रचार और इतना अधिक आदर है। और, देव तथा मतिराम आदि के ग्रन्थों में तदपेक्षा कुछ हीनता अवश्य है, जिससे उनका इतना प्रचार और आदर नहीं। अतएव ये सब, एक श्रेणी के कवि नहीं। सूर और तुलसी में अवश्य समता है। मतिराम, भूषण, देव, केशव और विहारी में समता है, पर विशेष नहीं। चन्द अपने ढँग के एक ही हैं। और, बाबू हरिश्चन्द्र तो सबसे निराले हैं। लेखकों ने अपने नवरत्न-कवियों के जो तीन त्रयी-भेद किये हैं वे स्वयं ही इस बात के प्रमाण हैं कि ये सब एक कक्षा के कवि नहीं। आरम्भ में लेखकों ने हिन्दी-नवरत्न का जो अर्थ लिखा है—"साहित्य के नव सर्वोत्तम कवि" उसके भी 'नव' और 'सर्व' शब्द परस्पर विरोधी हैं।

तुलसीदास।

जितने शब्द हैं, चाहे वे जिस भाषा के हों, सबके अर्थों की सीमा निर्दिष्ट है। प्रत्येक शब्द ने अर्थ-विशेष पर अपना अधिकार सा कर लिया है। उससे उतना हीं अर्थ निकलता है; न कम न अधिक। अर्थ पर ध्यान न देकर शब्दों का अनिर्बन्धता-पूर्व्वक प्रयोग करने से प्रबन्ध में विशृङ्खलता आ जाती है। यदि कोई कहे कि अमुक कवि का अमुक काव्य सर्वोत्तम है। और, फिर, कुछ दूर आगे चल कर, वही उस कवि के किसी और काव्य के विषय में भी कहने लगे कि वह भी सर्वोत्तम है, या उसकी बराबरी का काव्य किसी भाषा में है ही नहीं, तो उसकी कौन सी बात मानी जाय—पहली या दूसरी? अथवा, केवल दो चार भाषाओं का जाननेवाला कोई विद्वान यदि यह कहे कि अमुक ग्रन्थकार के अमुक ग्रन्थ की समता इस दुनिया की किसी भाषा का कोई ग्रन्थ नहीं कर सकता तो उसकी इस उक्ति या सम्मति को कोई किस तरह विश्वसनीय या मान्य समझेगा। इस तरह की बातें किसी इतिहासकार के ग्रन्थ में यदि पाई जायँ तो उसके इतिहास का महत्त्व कम हुए बिना नहीं रह सकता। इतिहास-लेखक की भाषा तुली हुई होनी चाहिए। उसे बे-तुकी बातें न हाँकनी चाहिएँ। अतिशयोक्तियाँ लिखना इतिहासकार का काम नहीं। उसे चाहिए कि वह प्रत्येक शब्द, वाक्य और वाक्यांश के अर्थ को अच्छी तरह समझ कर उसका प्रयोग करे। यह भी परमोत्तम, वह भी परमोत्तम, वह भी सर्वोत्तम—इस तरह की भाषा उसे न लिखनी चाहिए।

खेद की बात है, इस पुस्तक के लेखकों ने अनेक स्थलों में शब्दार्थ का ठीक विचार नहीं किया। वे हिन्दी का इतिहास लिख रहे हैं और हिन्दी-नवरत्न का इतिहास से घनिष्ठ सम्बन्ध बतलाते हैं। अतएव उनकी भाषा में ऐसे दोषों का होना दुःख की बात है।

जब किसी वस्तु के सर्व्वांश का ज्ञान हो जाता है—जब उसके प्रत्येक अवयव तक के पूर्ण ज्ञान से हृदय लबालब भर जाता है और वह ज्ञान स्पष्टता-पूर्वक एक निश्चित रूप में अनुभूत होने लगता है—तभी वह शब्दों द्वारा स्पष्टतापूर्वक औरों पर प्रकट भी किया जा सकता है। ज्ञान का आभास जितनाही धुँधला होगा शब्दचित्र भी उसका उतनाहीं धुँधला और अस्पष्ट होगा। ठप्पा जितनाही अच्छा होता है, नक़शा भी उसका उतनाहीं अच्छा होता है। जब दस पाँच वस्तुओं की पारस्परिक तुलना करने—प्रत्येक के गुण-दोष की जाँच करके, गुणानुसार, उनकी पारस्परिक उच्चता या अनुच्चता निश्चित करने—की आवश्यकता होती है तब तो उन वस्तुओं के सर्व्वांश का और भी अधिक स्पष्ट ज्ञान प्राप्त करना पड़ता है। ऐसा ज्ञान न प्राप्त करने से उसका प्रकटीकरण कभी स्पष्ट नहीं होता। यह भी उत्तम, वह भी उत्तम और सभी उत्तम—ऐसीही दशा में क़लम से निकलता है।

लेखकों ने इस पुस्तक में 'उत्तम' शब्द का बेहद व्यय किया है—व्यय क्या अप-व्यय कहना चाहिए। किसी किसी पृष्ठ पर तो वह तीन तीन चार चार दफ़े आगया है। उदाहरण के लिए भूमिकाही के उनतीसवें पृष्ठ पर उसका प्रयोग पाँच दफ़े हुआ है। उत्तम, उत्तमतर, परमोत्तम, सर्वोत्तम, उत्तमोत्तम, अति-उत्तम इत्यादि अनेक रूपों में वह इस पुस्तक में प्रयुक्त हुआ है। इस कारण इस शब्द की अर्थ-मर्य्यादा अनेक स्थलों में नष्ट होगई है। लेखकों की राय में—'नेवाज, हरिकेश और लाल परमोत्तम कवि थे'। आलम, शेख़, गञ्जन आदि भी 'परमोत्तम कवि' थे। दत्त, सदल, बेनी आदि भी 'बहुत उत्तम कवि' थे। तिस पर भी—'भाषा बहुत ही उत्तम' लिखने और 'उत्तम कवित्त और सवैया बनाने' के कारण मतिराम को लेखकों ने महाकवि बनाकर उन्हें नवरत्न की पदवी देदी और नेवाज आदि के 'परमोत्तम कवि' होने पर भी उन्हें नवरत्न में रखने लायक़ न समझा। अतएव लेखकों के 'परम' 'उत्तम' और 'उत्तमोत्तम' आदि शब्द अनेक स्थलों में अपने प्राकृतिक अर्थ के बोधक नहीं। उनका प्रयोग-बाहुल्य निरर्थक है। कृपाराम 'कवि-शिरोमणि' होकर भी और 'परम मनोहर दोहे' लिख कर भी विहारी की बराबरी के न समझे गये। मलिक महम्मद जायसी ने 'परमोत्तम प्रेम-ग्रंथ' लिखा, और नरसैया तथा हरिदास ने 'महात्मा' होने के सिवा 'परमोत्तम कविता' भी की। तिस पर भी वे केशव-दास के पास आसन पाने के अधिकारी न समझे गये। इस दशा में लेखकों के 'शिरोमणि' 'महात्मा' और 'परमोत्तम' शब्द उस अर्थ के बोधक नहीं माने जा सकते जो अर्थ उनसे निकलना चाहिए। भूमिका के छब्बीसवें पृष्ठ पर लेखक-महाशयों ने लिखा है—'उत्तम कवि भी बहुत हुए पर बहुत ही अच्छे कवियों का एक प्रकार से अभाव सा रहा"। इससे ठीक ठीक कोई यह नहीं कह सकता कि उनके 'उत्तम' और 'बहुत ही अच्छे' में परस्पर कितना भेद है और कौन विशेषण कितनी अच्छाई और उत्तमता का सूचक है। उनके लिखने के ढँग से तो यही जान पड़ता है कि बिना विशेष सोच-विचार के उन्होंने उस पुस्तक में छोटे-बड़े, कवि, महाकवि, महात्मा और तदितर—सभी के लिए मनमाने 'उत्तम', 'परमोत्तम' और 'उत्तमोत्तम' विशेषणों का प्रयोग किया है। अतएव कवियों की उत्तमता या अनुत्तमता से सम्बन्ध रखनेवाली उनकी सम्मतियाँ मानने योग्य नहीं। उनके जो जी में आया है लिख दिया है। आपटे ने 'उत्तम' शब्द का अर्थ—Best, Excellent, Foremost, Highest, Greatest—किया है; और 'परम' का अर्थ भी प्रायः वही, अर्थात्—Highest, Best, Most excellent, Greatest किया है। परन्तु लेखकों के उल्लिखित कितने ही काव्यकर्त्ता

Double excellent कवि होकर भी रत्न-पदवी पाने के योग्य नहीं समझे गये। इस कारण इस बात की ग्रोर भी अधिक आवश्यकता थी कि रत्न-श्रेणी के कवियों का लक्षण साफ़ शब्दों में अच्छी तरह लिख दिया जाता। उसके न लिखे जाने ग्रोर लेखकों के द्वारा 'उत्तम' ग्रोर 'परमोत्तम' आदि विशेषणों के बेहद ग्रोर बे-हिसाब प्रयुक्त होने से लेखकों की अनेक बातों में बेतरह शैथिल्य ग्रोर असंयत भाव में आगया है।

लेखकों ने जब होमर ग्रोर शेक्सपियर आदि के ग्रंथ अँगरेज़ी में पढ़े हैं तब, बहुत सम्भव है, उन्होंने जाँनसन के कविचरित ग्रोर गिबन तथा ल्यकी के इतिहास भी पढ़े होंगे। अतएव यदि वे इन ग्रन्थकारों की रचना ग्रोर शब्दप्रयोग की तुलना अपनी इस पुस्तक की रचना ग्रोर शब्दप्रयोग से करेंगे ते उन्हें तत्कालही मालूम हो जायगा कि दोनों में कितना अन्तर है। इतिहास-लेखक ने जिसके लिए जो बात कहदी वह यदि, बिना उसकी इच्छाही के, ग्रोरों के विषय में भी घटित होगई ते वह इतिहास-लेखक अच्छे लेखकों में नहीं गिना जा सकता।

लेखकों ने रामचरितमानस को 'संसार-साहित्य का मुकुट' (पृष्ठ ३८ में) माना है ग्रोर अयोध्या-काण्ड के एक एक अक्षर को असाधारण (पृष्ठ ५१ में) समझा है। आप लोगों की राय में इस काण्ड की 'रचना संसार के समस्त-साहित्यों की रत्न है'। 'ऐसी मन-मोहनी (?) कविता' आप साहबों ने 'किसी भाषा में नहीं देखी'। तुलसीदास की कविता के विषय में आपकी राय है कि उसके—'शब्द शब्द में अद्वितीय चमत्कार देख पड़ता है'। अयोध्या-काण्ड में रामचन्द्र ग्रोर भरत की बात चीत के समान—'सर्वाङ्ग सुन्दर वार्त्तालाप कराने में किसी भाषा का कोई भी कवि समर्थ नहीं हुआ है'। लेखकों की—'जानिब-कारी (?) में तुलसीदास से बढ़ कर कभी किसी भी भाषा में कोई कवि संसार भर में कहीं नहीं हुआ' रामचरितमानस की नीचे दी हुई चैापाइयाँ देखिए:—

जो पुर गाँउँ बसहिँ मग माहीं। तिनहिँ नागसुर नगर सिहाहीं।
केहि सुकृती केहि घरी बसाये। धन्य पुन्य मय परम सुहाये।
जहँ जहँ राम चरन चलि जाहीं। तेहि समान अमरावति नाहीं।
परसि राम पद पदुम परागा। मानति भूरि भूमि निज भागा।

इनके विषय में अब लेखकों की राय सुनिए—"नम्बर तीन पर जो चार चैापाई (चैापाइयाँ ?) उद्धृत की हुई हैं उनमें जितना साहित्य का सार कूट कूट कर भरा है उतना शायद संसार-सागर (?) के (की ?) किसी भाषा के किसी पद्य में कहीं भी न पाया जायगा। जहाँ तक हम लोगों ने कविता देखी या सुनी है हमने इन पंक्तियों का सा स्वाद क्या अँग्रेज़ी क्या फ़ारसी क्या हिन्दी क्या उर्दू क्या संस्कृत, किसी भी भाषा में कहीं नहीं पाया"।

इन सम्मतियों के सम्बन्ध में हमें इतना हीं कहना है कि किसी इतिहासकार या प्रतिष्ठित लेखक को ऐसी अर्गलारहित बातें लिखना ग्रोर ऐसी अत्युक्तियाँ अपनी लेखनी से निकालना शोभा नहीं देता। संसार अनन्त, काल अनन्त, भाषायें अनन्त। मनुष्य की उम्र थोड़ी। इस दशा में सारे संसार की सारी भाषाग्रों के सारे साहित्य का कितना ज्ञान मनुष्य को हो सकता है, यह पाठक ही समझ देखें। किसी एक भाषा के साहित्य का ही सर्वाङ्गीण परिचय होना दुःसाध्य है; फिर सारी भाषाग्रों का! लेखक क्या इस बात का दावा कर सकते हैं कि अँगरेज़ी, फ़ारसी ग्रोर संस्कृत-भाषाग्रों के ही सारे काव्य उन्होंने देख डाले हैं? यदि नहीं, ते उनको ऐसी भुवनव्यापिनी अत्युक्ति न कहनी चाहिए। उन्होंने अपनी दो एक पूर्वोक्त उक्तियों की सीमा को—'शायद', 'जानकारी' ग्रोर 'जहाँ तक हम लोगों ने कविता देखी या सुनी है'—से परिमित कर दिया है। यह सच है, परन्तु मनुष्य की अल्पज्ञता के ख़याल से उन्हें दुनिया भर की भाषाग्रों की बात कदापि न कहनी चाहिए थी। रामायण को संसार-साहित्य का मुकुट बताने ग्रोर रामचन्द्र-भरत की बात-चीत के सदृश संवाद लिखने में किसी भी भाषा के किसी भी कवि को असमर्थ ठहराने में ते

आप लोगों ने 'शायद' और 'जानकारी' के प्रयोग की भी आवश्यकता नहीं समझी। अतएव, दुःख से कहना पड़ता है कि आपकी इस तरह की उक्तियों का समझदार आदमी कभी आदर नहीं कर सकते। आपके कथन से यह भाव ध्वनित होता है कि आप की राय में व्यास, वाल्मीकि, कालिदास, होमर, शेक्सपियर आदि किसी के भी ग्रन्थ साहित्य का मुकुट होने की योग्यता नहीं रखते। रखता है केवल रामचरित मानस, जिसके प्रत्येक शब्द में आप लोगों को 'अद्वितीय चमत्कार' देख पड़ा है।

लेखकों की राय में—समस्त 'बालकाण्ड उत्तमोत्तम बन पड़ा है' और अयोध्याकाण्ड की—'रचना अन्य काण्डों से इतनी उत्तमतर है कि इसकी प्रशंसा करने के लिए कोष में शब्द नहीं'। अन्त में, ६४ पृष्ठ पर, आप लोगों ने अयोध्या-काण्ड को पहला और बाल-काण्ड को दूसरा नम्बर दिया है। सो यहाँ पर आपका 'उत्तमतर' शब्द 'उत्तमोत्तम' से भी बढ़ गया! 'उत्तमोत्तम' शब्द सर्वोत्तम का बोधक हो कर भी उसे 'उत्तमतर' से हार माननी पड़ी!

विनयपत्रिका के विषय में लेखक महोदयों की राय है—"विनय-सम्बन्धी ऐसा अद्भुत और भाव-पूर्ण ग्रन्थ हमने अब तक किसी भी भाषा में नहीं देखा"। मालूम नहीं, आपने किन किन भाषाओं के कौन कौन विनय-सम्बन्धी ग्रन्थ देखे हैं। संस्कृत में स्तुतिकुसुमाञ्जलि नाम का एक ग्रन्थ है। उसके विषय में भी यदि कोई संस्कृतज्ञ विद्वान् अपनी सम्मति प्रकट करता तो बहुत अच्छा होता।

कृष्णगीतावली को आप लोगों ने 'बड़ा ही विशद' ग्रन्थ बतलाया है। पर किस आधार या प्रमाण पर आपने इसे तुलसीदास-कृत निश्चित किया, यह नहीं लिखा। तुलसीदास ने तो प्रायः रामचरित ही का गान किया है। अतएव कुछ प्रमाण देना था कि यह तुलसीदास ही की रचना है और किसी दूसरे की नहीं; और इसकी कविता तुलसीदास की अन्यान्य कविता से कहाँ तक मिलती है।

आप कहते हैं—"रामचन्द्रजी ने अयोध्या लौटते समय पहले प्रयाग और अयोध्या का दर्शन करके तब त्रिवेणीजी में स्नान किया। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि विमान ऊँचा उठने के कारण प्रयाग से अयोध्या देख पड़ना असम्भव नहीं"। इस पर हमारा निवेदन है कि उस ज़माने में गीधों तक की दृष्टि 'अपार' थी। सैकड़ों योजन दूर की चीज़ें वे देख सकते थे। रामचन्द्रजी ने प्रयाग से ९८ मील दूर फ़ैज़ाबाद देख लिया तो सचमुच ही क्या आश्चर्य्य? विज्ञानवेत्ताओं को कुछ आश्चर्य्य हो तो हो सकता है, औरों को नहीं। कवि और कविकर्म्म के ज्ञाता ऐसी बातों पर आश्चर्य्य नहीं करते। मालूम नहीं, लेखकों ने इस बात पर क्यों ज़ोर दिया। हनूमान्जी एक पर्व्वत-शिखर उखाड़ कर लङ्का को उड़ गये; भरतजी उस शिखर समेत उन्हें अपने बाण पर बिठला कर लङ्का भेज देने को तैयार हुए; दशरथ के द्वार पर ऐसी ऐसी भीड़ें हुई कि पहाड़ भी यदि वहाँ पड़ता तो पिस कर 'रज' हो जाता। यह भी तो सब तुलसीदासजी ने लिखा है। कवियों की सृष्टि में भी क्या सर्वत्र सम्भवनीयता ढूँढ़ी जाती है?

लेखकों ने तुलसीदास के जन्म-समय के विषय में लिखा है कि उनका—'जन्म............संवत् १५८९ में हुआ था'। बस, जैसे उन्हें गोस्वामीजी का जन्मपत्र मिल गया हो। प्रमाण-स्वरूप इस विषय में कुछ तो लिखना था। डाक्तर ग्रियर्सन आदि ने भी यदि तुलसीदास का जन्म-संवत् यही माना तो मानने दीजिए। वे इतिहासकार होने का दावा नहीं करते। परन्तु नवरत्न के कर्त्ताओं ने इस पुस्तक का इतिहास से घनिष्ठ सम्बन्ध बतलाया है। अतएव उन्हें तो अपने इस मत के पुष्टीकरण में कुछ ज़रूर ही कहना था।

इसी तरह आप लोगों ने भूपति कवि के विषय में लिखा है कि उन्होंने संवत् १३४४ में भागवत के दशम स्कन्ध का अनुवाद हिन्दी में किया। परन्तु मुंशी देवीप्रसादजी ने, गत अगस्त की सरस्वती में,

इस बात को निर्मूल सिद्ध कर दिखाया है। उन्होंने भूपति के ग्रन्थ से ही यह प्रमाणित कर दिया है कि उसकी रचना संवत् १७४४ में हुई थी, १३४४ में नहीं।

चालुक्य-वंशीय कुमारपाल, सन् ११४३ ईसवी के लगभग, अणहिलवाड़ का राजा था। उसका एक चरित जिनमण्डन गणि ने लिखा है; दूसरा जयसिंह सूरि ने; तीसरा चारित्रसुन्दर गणि ने; और चौथा, प्राकृत में, हेमचन्द्र ने। इनमें से कोई अप्राप्य नहीं सुना गया। परन्तु नवरत्न के लेखक कहते हैं—"संवत् १३०० के लगभग कुमारपाल चरित्र नामक एक ग्रन्थ किसी कवि ने बनाया पर यह ग्रन्थ अब अप्राप्य है"। किस कुमारपालचरित से आपका मतलब है, नहीं मालूम। क्या किसी हिन्दी के भी कुमारपालचरित का आपको पता मिला है? यदि हाँ, तो उसके विषय में आपको अपने मन की बात साफ़ साफ़ लिखनी थी। इतिहास के लिखनेवालों को समझ बूझ कर और ख़ूब छान बीन करके अपने विचार प्रकट करने चाहिए।

लेखकों का कथन है कि विद्वानों की सम्मति में तुलसीदास 'संस्कृत के अच्छे ज्ञाता न थे और यह बात विशेषणों के अधिक प्रयोग एवं एक स्थान पर व्याकरण की एक अशुद्धि आ जाने से ठीक प्रतीत होती है'। परन्तु आपने उस एक अशुद्धि को नहीं बतलाया। आपकी ऐसी ऐसी त्रुटियों को देख कर दुःख होता है। उस एक अशुद्धि को बतला देने में कौन बड़ा परिश्रम था। लोगों को मालूम तो हो जाता कि वह कौन सी अशुद्धि है जिसे विद्वान् अशुद्धि मानते हैं और जो उनकी राय में तुलसीदास के अच्छे संस्कृतज्ञ न होने का प्रमाण है। विशेषणों का अधिक प्रयोग भी यदि अच्छी संस्कृत न जानने का प्रमाण हो सकेगा तो बाण कवि को संस्कृत से बिलकुल ही अनभिज्ञ मानना पड़ेगा, क्योंकि इस कवि की कादम्बरी में विशेषणों का अत्यधिक बाहुल्य है। लेखकों की सम्मति के अनुसार तुलसीदास ने संस्कृत-व्याकरण-सम्बन्धिनी एक भूल की है। परन्तु नागरी-प्रचारिणी सभा के सम्पादित रामचरितमानस में सात आठ अशुद्धियों का उल्लेख है। यथाः—(१) 'विज्ञानधामावुभौ', (२) 'सद्धर्मवर्म्मौ', (३) 'केकीकण्ठाभनीलं', (४) 'पाणौ नाराचचापं', (५) 'मनभृङ्गसङ्गिनौ', (६) 'कुन्दइन्दुदरगौरसुन्दरं', (७) 'कारुणीककलकञ्जलोचनं', । इन सबको रामायण के सम्पादकों ने—"संस्कृत-व्याकरण से अशुद्ध" बतलाया है। 'नमामीशमीशाननिर्वाणरूपं' आदि स्तुति को तो उन्होंने—"संस्कृतव्याकरणानुसार बहुत ही अशुद्ध" कहा है। वे सब स्थल अशुद्ध हैं या नहीं, इसका विचार संस्कृत के अच्छे वैयाकरण ही कर सकते हैं। परन्तु, कुछ भी हो, नागरी-प्रचारिणी सभा के सदस्यों ने स्पष्टतापूर्वक कह तो दिया कि उनकी समझ में ये ये स्थल अशुद्ध हैं। नवरत्न के लेखकों को विद्वानों की सम्मत्यनुसार एक ही अशुद्धि मिली; और उसका भी उन्होंने उल्लेख न किया। प्रश्न यहाँ पर यह है कि क्या संस्कृत के अच्छे ज्ञाताओं से भी यदा कदा व्याकरणसम्बन्धिनी भूलें नहीं हो जातीं?

तुलसीदास ने रामचरितमानस में, जैसा कि उन्होंने बाल-काण्ड के आरम्भ में कह भी दिया है, संस्कृत के अनेक ग्रन्थों के भावों का सन्निवेश किया है: यह बात उनके अच्छे संस्कृतज्ञ होने का प्रमाण है। कहीं कहीं पर इन भावों को उन्होंने ऐसी ख़ूबी से घटा बढ़ा कर रक्खा है कि उनकी सुन्दरता मूल से भी विशेष बढ़ गई है। खेद है, इस पुस्तक के लेखकों ने भावों के ऐसे बिम्ब-प्रतिबिम्बवाले दो चार स्थलों के भी उदाहरण नहीं दिये। संस्कृत, अँगरेज़ी, उर्दू और फ़ारसी के साहित्य का मन्थन करके भी क्यों उन्होंने ऐसा नहीं किया, कुछ समझ में नहीं आता। जिन भाषाओं के जानने की सूचना उन्होंने इस पुस्तक में दी है उनमें संस्कृत भी है। तो क्या संस्कृत के किसी ग्रन्थ में उन्हें कोई भाव ऐसा नहीं मिला जिसका गुम्फन गुसाईं जी ने रामचरितमानस में किया हो। यदि ऐसा हुआ हो तो
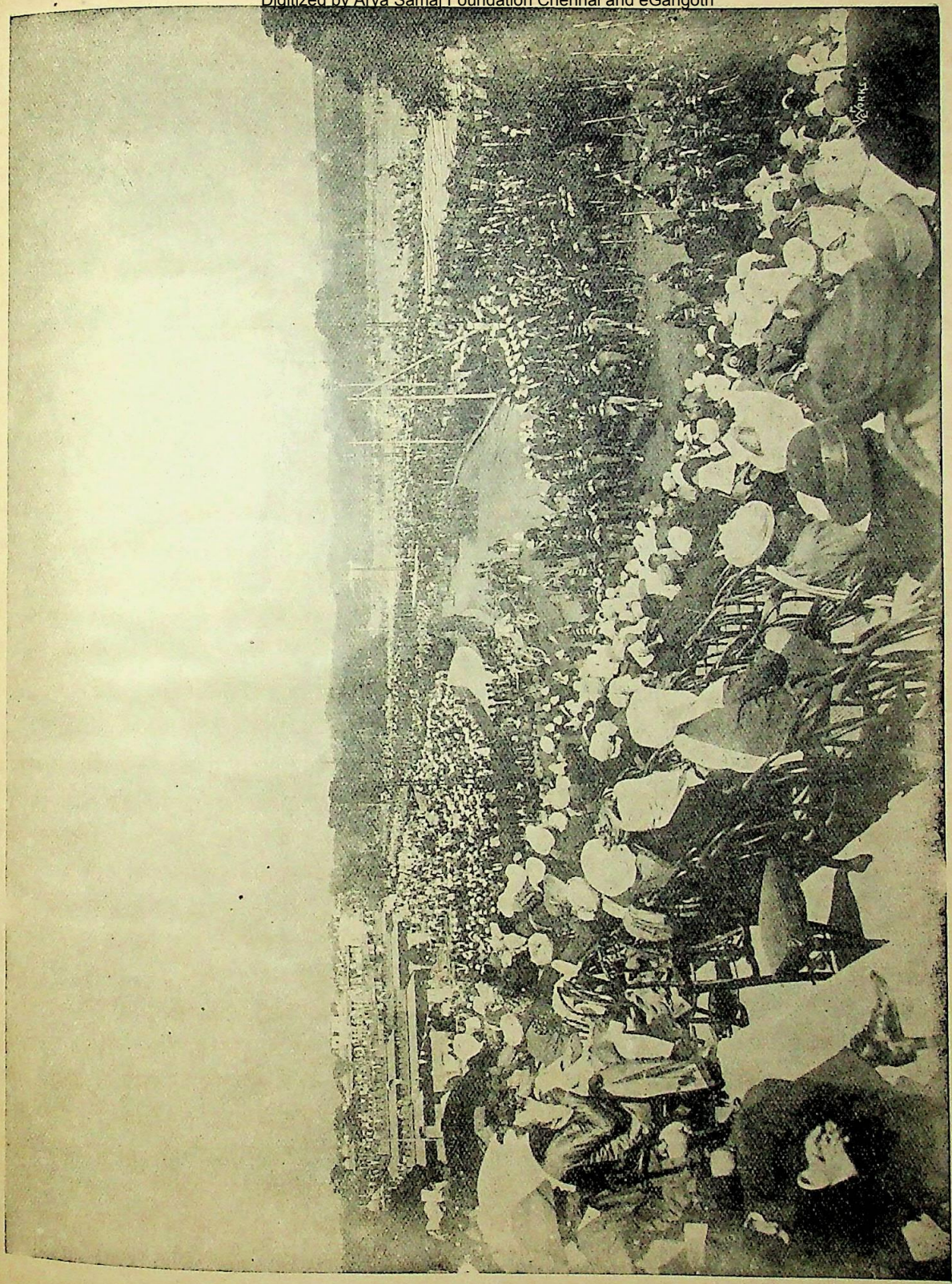
सम्राट् का नगरप्रवेश—जामे मसजिद के आगे का दृश्य। (देहली-दरबार)

इंडियन प्रेस, प्रयाग।
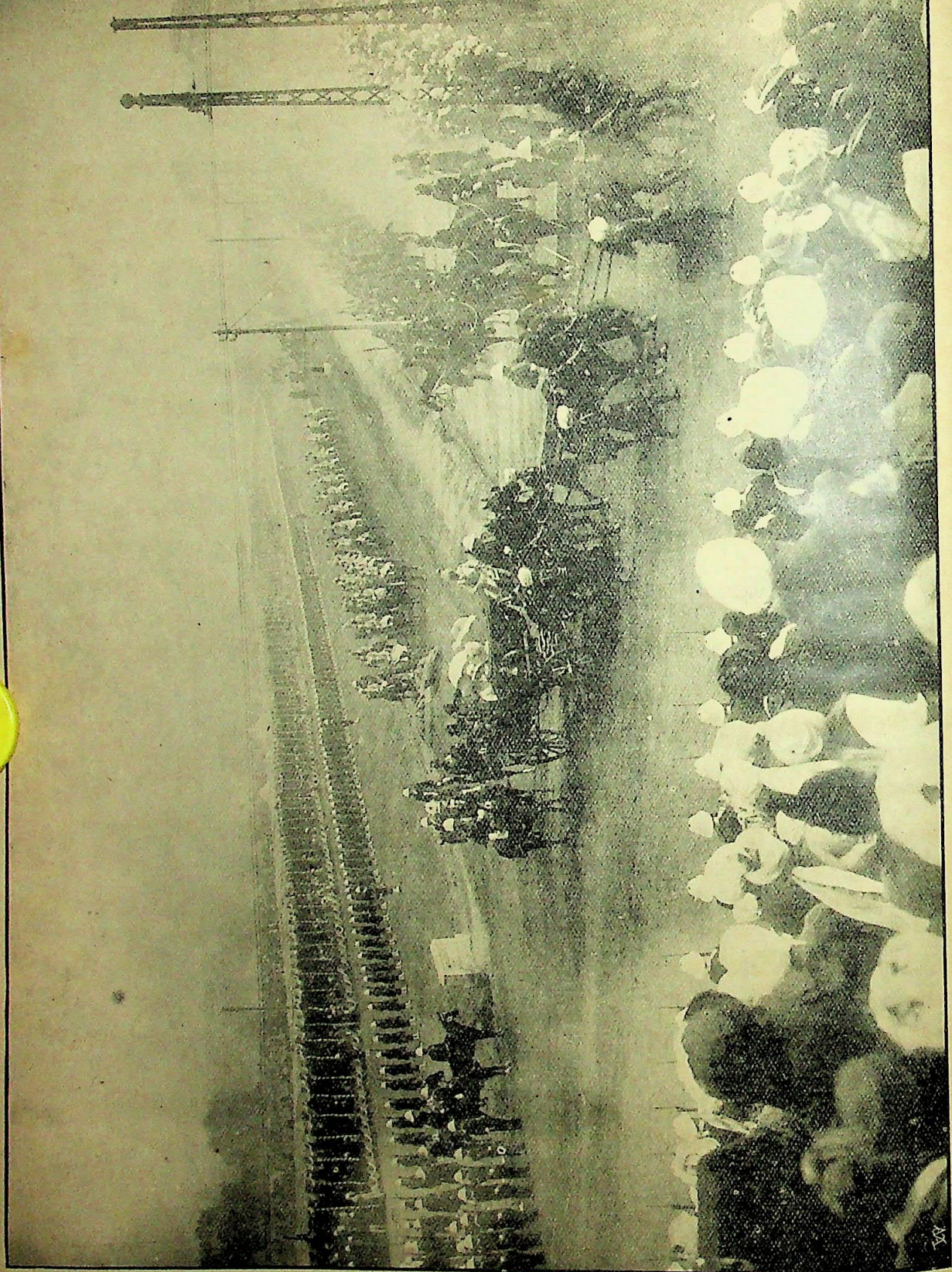
सम्राट् का नगर-प्रवेश—महारानी की गाड़ी का दृश्य। (देहली-दरबार)

हम यही कहेंगे कि उन्होंने उन ग्रन्थों को अच्छी तरह देखा ही नहीं। विना देखे ही उन्होंने लिख दिया कि रामायण संसार के साहित्य का मुकुट है। उनकी इस पुस्तक का तुलसीदास विषयक-निबन्ध पढ़ते समय हम जैसे अल्पज्ञ को भी संस्कृत की ऐसी अनेक सूक्तियाँ स्मरण हो आईं जिनका भावार्थ गोसाईं जी की उस कविता में, किसी न किसी रूप में, वर्त्तमान है जिसे लेखकों ने उद्धृत किया है, या जिसका उन्होंने हवाला दिया है। उदाहरण के लिए पुस्तक का १३६ वाँ पृष्ठ देखिए। वहाँ लिखा है :—

"अंगद का राज्य छिन गया था इस कारण उनको यह जान पड़ा कि ब्रह्मा ने चन्द्रमा का सार भाग हर लिया अतः उसकी छाती में छेद हो गया",—

इसे पढ़ते ही हमें नैषधचरित का यह श्लोक याद आ गया :—

हृतसारमिवेन्दुमण्डलं दमयन्तीवदनाय वेधसा ।
कृतमध्यविलं विलोक्यते धृतगम्भीरखनीखनीलिम ॥

ऊपर उद्धृत किये गये हिन्दी-नवरत्न के वाक्य में वाक्य-विच्छेदक एक भी चिह्न का न होना भी बहुत खटकने वाली बात है।

रामचरितमानस पर एक बहुत ही उपादेय और मनोरञ्जक पुस्तक लिखी जा सकती है। तुलसीदास की कविता की विशेषतायें; तुलसीदास की उपमायें; तुलसीदास का चरित्र-चित्रण; तुलसीदास के प्राकृतिक दृश्य; तुलसीदास की राजनीति; तुलसीदास की साधारण नीति; तुलसीदास की वर्णित देशभक्ति, पितृभक्ति, भ्रातृभक्ति, मातृभक्ति और पतिभक्ति—आदि पर लिखने के लिए बहुत सामग्री है। खेद की बात है, हिन्दी-नवरत्न के विद्वान् लेखकों ने इस सामग्री का यथेष्ट उपयोग नहीं किया। जहाँ कहीं इन विषयों पर उन्होंने कुछ लिखा भी है वहाँ मार्मिकता से नहीं लिखा।

अवशिष्ट आगे।

दरबार-दर्शन ।

(प्रथम भाग)

१—देख कर दिल्ली का दरबार हृदय में उदय हुआ उत्साह
करें कुछ वर्णन उस के अङ्ग, करे जो सरस्वती निर्वाह ।
असम्भव मुझसे निस्सन्देह कुम्भ में भरना सिन्धु अपार
रसिक जन करें बानगी-रूप ग्रहण यह एक-बिन्दु उपहार ॥

२—ईसवी ग्यारह की थी सात दिसम्बर और बृहस्पतिवार
रही थी चार घड़ी जब रात खलभली मची भली दिश चार ।
नगर दिल्ली के वासी और प्रवासी आगत वृन्द विराट
परस्पर कहते थे "झट चलो, आज आते हैं श्रीसम्राट—

३—"सात अरु आठ बजे के बीच मार्ग सब हो जावेंगे बन्द
पहन लो जल्दी जल्दी वस्त्र ठिकाने जा बैठो स्वच्छन्द ।
बजा वह सुनो बैन्ड, अब फ़ौज सघन दल पैदल और सवार
सवारी-पथ के दोनों ओर खड़ी होवेगी बांध क़तार ॥

४—सभी विध हो जाओ निश्चिन्त छोड़ दो घर बाहर के काज
राज-दर्शन का लाभ विचार करो दिन सारा अर्पण आज ।
जहां था जिसका नियत प्रबन्ध वहां वह जा बैठा कर मोद
राह, मैदान, छतों में भीड़ हो गई भारी भरी विनोद ॥

५—कहीं थोड़ा भी गड़ बड़ देख सिपाही करते थे उद्योगः—
"करो मत भड़ भड़, सब दब जाव, ठिकाने खड़े रहो सब लोग ।
बड़ों के घोड़े कड़ बड़ चाल फ़िटन अरु मोटर ताबड़ तोड़
चले आते हैं धावे साथ, बचो, है यह अति अड़ बड़ मोड़"॥

६—क़िले की सड़क, चांदनी चौक, आदि का था अनूप श्रृङ्गार
चारु थे चित्र वसन रङ्गीन, पताके खम्भे बन्दनवार ।
एक थी सब में बात विशेष भूपवर श्रीरानी के चित्र
वस्त्र पर छपे हुए अभिराम धाम प्रति देखे विपुल पवित्र ॥

७—भक्तिवश मानो दिल्ली-भूमि राज-दर्शन में जान विलम्ब
हृदय के आश्वासन के हेतु लिया इन चित्रों का अवलम्ब ।
तेल से सींची तैसे धूलि करै थी मानो यही बखान—
"लोग सब देखें यह प्रत्यक्ष "भूप" से "भू" का स्नेह महान" ॥

८—गैलरी-गण की श्रेणी तुङ्ग छटा की थी इक अद्भुत अङ्ग,
प्रचुर नागर-सागर में चारु उठी रह गई विशाल तरङ्ग ।
ताकते थे सब नृप की राह क्षण प्रति था उन्नत उत्साह
दर्शकों के दृग हुए चकोर, भूप तारों के शाहनूशाह ॥

९—समय जब नौ का हुआ समीप हुए अभिलाषी अधिक अधीरः—
"अजी क्या अब भी शाही ट्रेन*न पहुँची होगी यमुना तीर"।
इसी विध की चर्चा के बीच धमाका हुआ तोप का एक
"सलामी दग़ी, सलामी! वाह"! बोल यों उठे मनुष्य अनेक॥
१०—सलामी दग़ी एक सौ एक तीन भागों में† सहित हिसाब
बार दो, अन्तर में, मार्गस्थ तुपक वालों का हुआ जवाब‡।
बैण्ड बाजे का गूँजा शब्द भूप-आगम की छाई धूम
उठ गईं बाँहें आपी आप निगाहें गईं कोट-दिश घूम॥
११—सवारी वाला पहला भाग दृष्टि में आया शोभागारः—
फ़ौज के बड़े बड़े सरदार, सिपाही, लिये हुए हथयार।
बैन्ड की "सम" पर रखते पैर देख, समता भाई सुखसार
मिला दिल्ली के संग तरंग-सहित जंगम-बल पारावार॥
१२—सवारी का फिर भाग द्वितीयः—सर्वतः अद्वितीय कमनीय,
स्वयं थे जिस में भारत-राज स्वस्थ-अश्वस्थ, प्रजानमनीय।
लार्ड क्रू और लार्ड हार्डिंग आदि थे संग तुरंग-सवार
सुशोभित राज-यान में पूज्य राज-रानी थीं सुख की सार॥
१३—पर्व्व पर चन्द्र-सूर्य को देख उमँडता है ज्यों सिन्धु अथाह
राज-दम्पति-दर्शन से भक्त प्रजा का था अपार उत्साह।
शोर § "हुरें" का हुआ अनन्त मची करताल-ध्वनि की धूम
सलामी मानौ जन-समुदाय दे रहा निज कर से बिन धूम॥
१४—राज-दम्पति के वदन-सरोज प्रफुल्लित थे विनोद के धाम
गये सुख देते हुए सप्रेम प्रजा का लेते हुए सलाम।
अनेकों को न हुई पहचान, न पूरा हुआ उग्र उत्साह
पूछते रहे परस्पर दीन "आप ने देखे शाहन्शाह ?"॥
१५—सवारी का फिर भाग तृतीय बड़ा था दर्शनीय सुविचित्र
पधारे विपुल सुदेश-नरेश ब्रिटिश-शासन के सच्चे मित्र।
संग थे बड़े बड़े सामान, राजयानों में घोड़े चार,
सुभूषण, गाजे-बाजे, छत्र, ध्वजा, चामर, सैनिक, सरदार॥
१६—उन्हें भी सभ्य प्रजा-समुदाय कर-ध्वनि से देकर सन्मान
एक बजते बजते कृतकृत्य हुआ, अवलोकन कर वह शान।

* Train † ३४, ३३, ३४ ‡ प्रत्येक अन्तर में, उस सैनिक-श्रेणी ने, जो सवारी के मार्ग पर दिल्ली से कैम्प तक खड़ी थी, बन्दूकों की पड़ा पड़ी, इस छोर से उस छोर तक, उस छोर से इस छोर तक, की। इसको Feu de joie कहते हैं।

§ Hurrah.

किन्तु जो जो सड़कें थीं दूर वहाँ के दर्शक आशालीन
गमन कर सके न घर की ओर बजे जब तलक न दो वा तीन॥

(दूसरा भाग)

१—नगर से कई मील था दूर बसा भारी दरबारी कैम्प
निशा में देते थे वाँ चारु छटा बिजली के अगणित लैम्प।
महाराजाओं के छविवन्त रावटी, तम्बू और वितान
सजे थे थोड़ी थोड़ी दूर, धन्य वह दिल्ली का मैदान!
२—जहाँ था किसी समय सुनसान, वहाँ है बस्ती शोभा-धाम
दिया जलता था जहाँ न एक वहाँ से तम हट गया तमाम।
जहाँ पर रहते थे न किसान वहाँ हैं भूपों के रनवास
बिहंगम बोले जहाँ कुशब्द, रसायन गायन हैं सुखरास॥
३—गवरनर जनरल आदिक उच्चकर्मचारी कमान्डरिन् चीफ़,
बड़े आदर के रूलिंग चीफ़ महाराजा, नौवाब, शरीफ़।
धनी हिन्दुस्तानी अँगरेज़, बिलूचिस्तानी, वर्मी लोग,
सिकिम-भूटान-चीन-जापान-निवासी-गण का था संयोग॥
४—वस्त्र ही की बसती में भूप जार्ज पञ्चम* का था सुखवास,
सहित श्री मेरी* हृदय उदार राज-रानी श्री-शील-निवास।
न होगी कुछ भी अनुचित उक्ति कहूँ जो मैं कर के कुछ गर्व
जगत के धन-बल-यश-सौन्दर्य्य पधारे हुए वहाँ थे सर्व॥
५—प्रात से अर्धरात पर्य्यन्त लगा रहता था तांतातोर
फ़िटन, टांगे अरु मोटर कार—"टनन्" "घों" "चलो बचो" का शोर
तीर्थ में पर्व्व-समय जन-वृन्द यथा जुड़ते हैं संख्यातीत
हुई त्यों भारत-प्रजा-प्रजेन्द्र-सन्धि-संक्रान्ति अनूप प्रतीत॥
६—डाकघर, रेल, तार, नलनीर, सभी का था पूरा आराम,
सकल दिन घूम घाम कर लोग रात को जाते थे निज धाम।
सभी भूले थे सारे काज यही कहते थे "भाई! आज
गये थक करते करते सैर पुनः अब देखेंगे कल साज"॥
७—भूप-एडवर्ड-मिमोरियल-कृत्य, खेल 'पोलो' 'हाकी' 'फुटबाल'
"फ़ौज को रंगों का उपहार," चर्च में "सर्विस" आदि विशाल।
हुए जो अवसर उनमें भूप हमारे आये गये सहर्ष
प्रजा ने पाये बार अनेक राज-दम्पति-दर्शन-उत्कर्ष॥
८—"बादशाही मेले" का दृश्य प्रजा-दल-रञ्जन था भर पूर,
सभी ने देखे हो कर पास राज-दम्पति हुज़ूर पुरनूर।
सात से ले सोलह-पर्य्यन्त रहे दिल्ली में भारत-भूप
जयन्ती रही महा-मुद-पात्र यथा अवसर नवरात्र अनूप॥

* George and Mary.

(तीसरा भाग)

१—कहां तक हो वर्णन-विस्तार, करें अब थोड़े में निस्तार
उपक्रम हुआ सवारी-दृश्य, बने दरबारी-उपसंहार ।
आज है मङ्गल मङ्गलवार दिसम्बर की बारह सुखसार
मुकुट-धारण-विज्ञापन हेतु सजेगा बहुत बड़ा दरबार ॥
२—अभी तक बजे नहीं हैं आठ किन्तु मार्गों पर जन-समुदाय
चले आते हैं मण्डप ओर ठान कर उत्सव का व्यवसाय ।
दूर का टीला चन्द्राकार मनुष्यों से भर गया विशाल
भरा दस बजते बजते "ऐम्फ़ि*थियेटर" वाला भी सब हाल ॥
३—खड़ी थीं सेनायें उद्दण्ड जमाये परा निकट अरु दूर
पधारे ग्यारा के उपरान्त गवरनर-जनरल हिन्द हुज़ूर ।
सलामी हुई, हुए सब लोग खड़े अरु दिये † "चियर्स" प्रचण्ड
साथ में थे लेडी हार्डिंग मुसाहब, था आतङ्क अखण्ड ॥
४—गगन के शिरोबिन्दु पर चारु सजावट सूर्य्य-मुकुट की देख
मुकुट-धारण का सूचक चिह्न शकुन शुभ माना मान विशेष ।
मुकुटधारी श्री पञ्चम जार्ज राज-रानी मेरी के साथ
पधारे बारा पर दरबार हुआ सब भारतवर्ष सनाथ ॥
५—सलामी हुई विधान समेत खड़े हो दरबारी समुदाय
देर तक देते रहे चियर्स, सहित हुरें, सङ्कोच विहाय ।
विराजे राजासन-आसीन राज-मण्डप में दोनों व्यक्ति
इन्द्र-इन्द्राणी से, विख्यात पराक्रमधारी अतुला शक्ति ॥
६—हुआ दरबार-कृत्य-आरम्भ, महानृप की सुन सुन के स्पीच‡
हुआ श्रोताओं को सन्तोष, कर-ध्वनि हुई बीच ही बीच ।
उच्चतर अफ़सर और नरेश बहुत से प्रतिनिधि-गण प्रान्तीय
नृपाधिप-सम्मुख पहुँच प्रणाम किया दिखलाई भक्ति-स्वकीय ॥
७—दूसरे मण्डप में फिर भूप गये जो था थोड़ी ही दूर
वहां "प्रोक्लेमेशन §" का पाठ हुआ ऊँचे स्वर से भरपूर ।
पुनः पहले मण्डप में भूप आगये निज महिषी के सङ्ग
सुनाये प्रजा-सुखद वरदान बढ़ी जन-दल में अमित उमङ्ग ॥
८—राजधानी हो दिल्ली और एक शासन में हों बङ्गाल,
और कर दिये जायँ आज़ाद क़ैद दीवानी से कङ्गाल ।
प्रथम शिक्षा का है अधिकार देश आगम के ऊपर ख़ास,
दिये जाते हैं उसके हेतु इसी दम मुद्रा लाख पचास ॥

* Amphitheatre. † Cheers.
‡ Speech. § Proclamation.

९—और भी आगे शिक्षा हेतु मिलेंगे यों ही दान महान,
मुक्त हों नृप-क्षमा के पात्र बहुत अपराधी अवगुणवान—
आदि ये सुन सुन कर वरदान हुआ अतिशय आनन्द प्रकाश
हर्ष के शब्दों से परिपूर्ण घड़ी भर गूँज गया आकाश ॥
१०—हुआ दो पर समाप्त दरबार पधारे डेरे भारत-राज,
यही करते थे चर्चा लोग "देश के सिद्ध हुए गुरु काज ।
आज का मङ्गल दिन शुभवन्त प्रजा के हेतु महा सुखरास
हिन्द को देने वाला मान सदा ही मानेगा इतिहास" ॥
११—आज दिन सारा भारतवर्ष सुखी है राजभक्ति में लीन
छके हैं पाकर भोजन-वस्त्र जन्म के कँगले दुखिये दीन ।
सुशिक्षित जन को है यह तोष, "नराधिप का है हम पर ध्यान
हृदय से है निश्चय यह पूर्ण मिलेंगे आगे भी वरदान" ॥
१२—जान भूपा-धिप को अनुकूल उक्ति कवियों की हुई अनूप
शिखर जो हैं सीधे अरु तुङ्ग देवलों पर तर्जनी-स्वरूप ।
हिन्द कहता है, "वह कर्त्तार, एक, सब ऊपर विश्व दयाल
करेगा तुम्हें सुखी, हे जार्ज, किया जो तुम ने हमें निहाल ॥
१३—एक हैं हम अरु इँगलिस्तान, यहां अरु वहां एक है राज,
तुम्हारे दुनिया भर के देश बनें मिल एक-कुटुम्ब-समाज ।
नहीं वास्तव में कुछ भी भेद, रङ्ग अनुरागी एक रसाल
गवाही देता है भरपूर, मैप* में हिस्से देखो लाल ॥
१४—बड़ाई पावे इँगलिस्तान हिन्द से, उससे हिन्दुस्तान,
हुआ जब दोनों का सम्बन्ध, बढ़े जग में दोनों का मान ।
हमारा आर्य्य देश है, आर्य्य ! पराये नहीं आप हे जार्ज !
पूर्व सम्बन्ध बिना, सम्राट ! न मिलता तुम्हें यहां का चार्ज † ।
१५—‡ "क्रास" गिरजा-शिखरों पर आज सुनाता है ईसा-संवाद
"जार्ज ! ईसाई-मत-सिरताज ! तुम्हारे हित है आशिर्वाद ।
जहां फहराय "यूनियन जैक §" वहां हो "लव" ‖ का झण्डा साथ
हुए हम तुमसे परम प्रसन्न किया जो आर्य्यावर्त सनाथ" ॥
१६—मसजिदें भी दो-दो-मीनार-स्वरूपी ऊँचे कर के हाथ
दुआ करने में मन्दिर-चर्च-भाइयों का देती हैं साथ ।
पाक परवरदिगार ग़फ़ार ख़ुदाया, ख़ालिक़ या अल्लाह !
अबद तक रहें सलामत शाह मेहरबां आदिल जहांपनाह" ।
१७—देश भर में है सुख की धूम, हुए हैं जगह जगह दरबार
छुटी है आतशबाज़ी ख़ूब जयध्वनि गूँजी बारंबार ।

* Map = नक़शा । † Charge. ‡ Cross.
§ Union Jack. ‖ Love = प्रेम ।

प्रजा ने पाकर भूप-सहाय दिया मानो दुख को ललकार
जला कर उसको दिया निकाल चला कर अग्निगर्भ हथयार ॥
१८—जले हैं आज करोड़ों दीप, हुआ है दिन के सदृश प्रकाश
उधर है तारों का सामान, भूमि सम है जगमग आकाश।
सुपावन भरतखण्ड का आज हुआ दुनिया में रोशन नाम,
करे सब पूर्ण सच्चिदानन्द प्रजावत्सल भूपति के काम ॥

राय देवीप्रसाद (पूर्ण)

डारविन का सिद्धान्त।

डारविन, जिनका पूरा नाम चार्ल्स राबर्ट डारविन था, बड़े विख्यात प्राणिविद्या-विशारद हो गये हैं। उनका जन्म १८०९ ईसवी में और उनकी मृत्यु १८८२ ईसवी में हुई। उनके पिता ने उनके लिए पादड़ियों का पेशा चुना था, परन्तु लड़कपन ही से उनकी रुचि जीवधारियों की व्युत्पत्ति के विषय के अध्ययन की ओर इतनी थी कि उन्होंने अपना सारा जीवन इसी विषय की खोज में लगाने का इरादा कर लिया। वे बीगल नामक जहाज़ पर लगभग ७ वर्ष तक दुनिया के अनेक भागों में घूमते और जानवरों की ख़ूब देख भाल करते रहे। उनका सिद्धान्त इसी जाँच का परिणाम है।

डारविन ने पहले अपनी सैर का हाल पुस्तकाकार प्रकाशित किया। फिर, १८५९ ईसवी में, "आरिजिन आव् स्पिशीज़" (Origin of Species) नामक ग्रन्थ में जीवधारियों के विषय का अपना प्रसिद्ध सिद्धान्त संसार के सामने रक्खा। इस पुस्तक में इस बात का निरूपण है कि सारे जीवधारी, कुछ प्राकृतिक-नियमानुसार, एक ही प्रकार के जीवतत्त्व से उत्पन्न हुए हैं। उनमें विभिन्नता क्रम क्रम से हुई है। भिन्न भिन्न जाति के प्राणियों को ईश्वर ने, ख़ास तौर पर अलग अलग नहीं बनाया। इसके कुछ दिनों बाद, १८८१ में, उन्होंने अपना तीसरा ग्रन्थ "डिसेंट आव् मैन" (Descent of Man) प्रकाशित किया। इसमें उन्होंने उसी पूर्वोक्त सिद्धान्त की पुष्टि की और लिखा कि मनुष्य भी इन्हीं नियमों के अनुसार पैदा हुआ है और बदलते बदलते अपनी वर्तमान अवस्था को पहुँचा है। १८३७ से १८८२ ईसवी तक उन्होंने अपनी सारी ज़िन्दगी इन्हीं सिद्धान्तों की खोज, पुष्टि और प्रचार में व्यतीत की।

वे एक गाँव में सादी चाल से रहते और केवल विद्या का व्यसन रखते थे। पहले पहल, १८५९ ईसवी में, जब उनका इस विषय का पहला ग्रन्थ निकला तब सारे योरप में हाहाकार मच गया। उनको हज़ारों गालियाँ मिलीं और लोगों ने उनको पागल समझा। परन्तु, उनके जीवन-काल ही में योरप के प्रायः सारे विज्ञानवेत्ता और बहुत से ईसाई धर्म के नेता भी उनके इस सिद्धान्त को मानने लगे।

डारविन का मूल सिद्धान्त यह है कि संसार में जितने जीवधारी हैं सभी—तुच्छ से तुच्छ वनस्पति से लेकर मनुष्य तक—कुछ प्राकृतिक नियमों के अनुसार एक दूसरे से स्वयं उत्पन्न हुए हैं और उनका उन सूरतों में कोई ख़ास बनानेवाला नहीं। डारविन नास्तिक न थे, परन्तु उनका मत था कि ईश्वर ने सजीव और निर्जीव सबके लिए नियम—विशेष बना दिये हैं। उन्हीं के अनुसार सारा सांसारिक काम चल रहा है। ईश्वर कुम्हारों की तरह गढ़ने नहीं बैठता। जीव-विद्या में पूर्वोक्त सिद्धान्त वही स्थान रखता है जो योरप के विद्वानों की राय में ज्योतिष में न्यूटन का आकर्षण-शक्तिवाला सिद्धान्त। न्यूटन से पहले योरप के विद्वानों का बहुधा यह मत था कि ईश्वर स्वयं ही सारे आकाशीय पिण्डों को अपने अपने स्थान पर रखता और घुमाता है। न्यूटन ने, यद्यपि वह ईसाई धर्म में पूर्ण विश्वास रखता था, यह निश्चय किया कि संसार के सारे पदार्थ अपने अपने स्थान पर आकर्षण-शक्ति के प्रभाव से स्थिर हैं और साधारणतः इसमें ईश्वर का कोई दख़ल नहीं। इसी प्रकार डारविन के मतानुसार प्राणिमात्र किसी प्राकृतिक

नियम से पैदा होते और मरते हैं ; ईश्वर उसमें हस्त-क्षेप नहीं करता । यह विषय इतना बड़ा है कि कई किताबों में भी पूरे तौर पर इसका लिखा जाना असम्भव है । इससे यहाँ पर हम और जीवों का वर्णन या उनकी उत्पत्ति की भिन्न भिन्न श्रेणियों और तद्विषयक नियमों का वृत्तान्त नहीं लिखते । हम केवल उन प्रमाणों को संक्षेप में लिखते हैं जिनसे यह अनुमान किया जाता है कि मनुष्य भी और जीवों की तरह ही उत्पन्न हुआ है ।

बन्दर सबसे उच्च श्रेणी का जानवर है । उसी के रूप का, क्रम क्रम से रूपान्तर होकर, मनुष्य का विकास हुआ है । इस बात के प्रमाण :—

(१) अब तक कई प्रकार के ऐसे बन्दर मौजूद हैं जिनके पूछ नहीं है और जो बहुधा दो ही पैरों के बल चलते हैं ।

(२) इनमें से एक प्रकार के बन्दर सूर्य डूबने से पहले पेड़ों के नीचे टहनियाँ जमा करते हैं और उन पर घास बिछा कर सोते हैं । जाड़ों में वे अपने बदन को पत्तियों से ढक लेते हैं ।

(३) किसी किसी जाति के बन्दर पेड़ों पर छोटे छोटे झोपड़े से बनाते हैं और उन्हीं में अपने बच्चे रखते हैं ।

(४) ऐसी उन्नत बुद्धिवाले बन्दरों के शिकार को जब कोई जाता है तब वे पेड़ों की डालियाँ तोड़ तोड़ कर उस पर फेंकते हैं । शिकारी से लड़ते समय वे ग़ोल की बँदरियों और बच्चों को अपने साथ नहीं रखते ।

(५) आठ या दस वर्ष की उम्र तक बच्चे माँ के साथ ही रहते हैं, और बारह तेरह वर्ष की उम्र तक जवान नहीं होते ।

(६) एक मनुष्य ने तो यह भी देखा है कि माँ अपने छोटे बच्चे को गोद में लेकर एक नदी के किनारे गई । वहाँ उसने उसका मुँह धोया । यद्यपि बच्चा चिल्लाता रहा, तथापि उसने उसके रोने की परवा न की ।

(७) कई बन्दरों को विशेष शिक्षा भी दी गई है । एक तो पाँच तक गिनती गिन सकता था, छुरी काँटे से खाता था और बिना बाँधे हुए सावधानी से कुरसी पर बैठा रहता था ।

एक साहब वर्णन करते हैं कि उनके पास एक ऐसाही पालतू बन्दर था । वह बड़ा चञ्चल था । चीज़ें इधर की उधर किया करता था । परन्तु डाँटने पर चुप बैठ जाता था । एक बार वे सिर झुकाये लिख रहे थे कि उन्होंने उस को साबुन उठाकर लेजाते देखा । थोड़ी देर तक तो साहब कनखियों से उसे देखते रहे; फिर उन्होंने ज़रा खाँस दिया । इस पर बन्दर ठिठक कर लौट पड़ा और बट्टी को जहाँ की तहाँ फिर उसने रख दिया ।

यह न समझना चाहिए कि जिन जानवरों की ये बातें हैं वे शायद बन्दर न हों, कदाचित् वे बन-मानुस हों । नहीं, वे बन्दर ही हैं । उनके बदन पर बड़े बड़े रोयें होते हैं । वे दरख़्तों पर उछलते कूदते हैं और बहुधा हाथ पैर दोनों ही के बल चलते भी हैं ।

ये तो मोटी मोटी बातें हैं जो डारविन के मत को पुष्ट कहती हैं । इनके अतिरिक्त और अनेक सूक्ष्म बातें भी हैं । उनमें से भी दो एक सुनिए:—

(१) मनुष्य की ठठरी में अब तक दुम की जड़ पाई जाती है और अच्छी तरह जाँच करने से प्रकट होता है कि अभी तक हम लोगों के पैरों की हालत ऐसी नहीं है कि सीधे खड़े रहना बिलकुल प्राकृतिक कहा जा सके ।

(२) भलीभाँति परीक्षा करने से मालूम होता है कि सब से उच्च प्रकार के बन्दरों में और सब से अधिक जङ्गली आदमियों में उतना भी अन्तर नहीं जितना कि इन जङ्गली आदमियों और सभ्य मनुष्यों में है ।

(३) बीस पचीस हज़ार वर्ष पहले के मनुष्यों की ठठरियाँ बन्दरों की ठठरियों से अधिक मिलती जुलती हैं । उस समय मनुष्य के सिर और हाथ अधिक लम्बे, और ठुड्ढी और कपाल बहुत छोटे होते थे ।

अफ़रीक़ा के हबशी और योरप के सभ्य मनुष्यों में अबतक यह भेद कुछ कुछ बाक़ी है।

यह विषय बड़ा गूढ़ और गम्भीर है। इसकी सब बातें जानने के लिए डारविन के ग्रन्थ पढ़ने चाहिए। हक्सले नाम के विद्वान् ने भी इस विषय पर एक ग्रन्थ लिखा है। उसका नाम है—"Man's Place in Nature"। ये ग्रन्थ बड़े बड़े हैं; तथापि सब लोगों के सुभीते के लिए विलायत के ग्रंथ-प्रकाशकों ने इनके पाँच पाँच आने तक के संस्करण निकाले हैं। डारविन के सिद्धान्तों पर हमारे अनेक देशवासी हँसते हैं। परन्तु हँसने या दिल्लगी करने से किसी सिद्धान्त का खण्डन थोड़े ही हो सकता है। युक्तिपूर्ण प्रमाण देने चाहिए।

गिरजादत्त वाजपेयी।

क्रन्दन।

(१)

ऐसा नहीं कि एक हमीं को आज अनोखा ध्यान हुआ,
बिना दुःख के पड़े दयामय ! किसे तुम्हारा ज्ञान हुआ ?
त्यागा गया पिता से ध्रुव जब शरण तभी वह आन हुआ
पर क्या उसे तुम्हारे द्वारे प्राप्त न पुण्य-स्थान हुआ ?
सोचो तो किस समय तुम्हारा गणिकाकृत गुण-गान हुआ,
पर क्या उसको भी न तुम्हारा दिव्य-दया का दान हुआ ?
जब गज पड़ा ग्राह के मुख में शिथिलित मृतक समान हुआ,
तब क्या नहीं नाम लेते ही तत्क्षण उसका त्राण हुआ ?
चिन्ता नहीं नाथ ! जो सुख का नष्ट सभी सामान हुआ,
मन को तुम तक पहुँचाने को दुख ही हमें विमान हुआ॥

(२)

आपदा जब जब हम पर आती,
तब तब करुणानिधे ! तुम्हारी करुणा हमें बचाती।
होता विदित मान-मर्यादा अब जाती अब जाती;
पर जाती आती न कहीं वह चिन्ता ही अधिकाती।
जब कि अन्त में तुम्हें हमारी रक्षा करनी भाती;
नहीं जानते फिर क्यों पहले बाधा हमें सताती।
जो हो, सब सङ्कट सहने को प्रस्तुत है यह छाती;
किन्तु अन्त में दृष्टि तुम्हारी रहे दया दिखलाती॥

(३)

धरें हम और किसका ध्यान ?
अशरण-शरण ! है पतित-पावन कौन आप-समान ?
फल प्राप्त हो अथवा न हो पर सोचिए भगवान !
सेवे, अमर-तरु त्याग, सेंमल कौन यों अज्ञान ?

(४)

हुई हां, बस अब बहुत हरे !
'देह धरे के दण्ड' न जानें हैं कै कोटि भरे।
भ्रान्ति-पूर्ण इस भव-सागर में सौ सौ बार तरे;
पार न पाया एक बार भी हम झखमार मरे।
अब कब कृपा करोगे बोलो सोचो विरुद अरे !
बिना तुम्हारे और कौन जो बेड़ा पार करे ?

(५)

सर्वज्ञ हो, कैसे कहें तुमने न पहचाना हमें;
हैं हम तुम्हारे, पर न तुमने आज तक जाना हमें।
यह भेद कैसा है दयामय देव ! समझा दो तुम्हीं;
तुमने सदा जन जानकर भी क्यों नहीं माना हमें।
जो कुछ करो स्वीकार है, वश ही हमारा क्या रहा !
भाता तुम्हें तो है हरे ! दिनरात तड़पाना हमें।
देकर सु-दुर्लभ देह क्या था कुछ नहीं देना अहो ?
पाकर कहो नर-जन्म क्या था कुछ नहीं पाना हमें ?
है ध्यान कर्मों का हमें, तुम निज विरुद भूलो नहीं;
देखें तुम्हें फिर तुम हमारे दोष दिखलाना हमें।
है कामना केवल यही कुछ तो कृपा की कोर हो;
अब तुम जहां प्रत्यक्ष हो है बस वहीं आना हमें।
सब जानते हो आप तुम अपनी दशा हम क्या कहें ?
रोते रहें जब तक कहो, आता नहीं गाना हमें॥

मैथिलीशरण गुप्त।

क्या पुनर्जन्म सम्भव है ?

सरस्वती की सितम्बर मास की संख्या में आगरे के पण्डित लीलाधर चौबे की चिट्ठी पढ़ कर मैं यह लेख लिखने पर उद्यत हुआ हूँ। मैं यह नहीं कह सकता कि चौबेजी को जो कथा सुनाई गई है वह सत्य नहीं

है। क्योंकि चौबेजी जैसे सत्पुरुषों को असत्य भाषण का अपराधी बनाना महा पाप है।

आज कल के वैज्ञानिक ज्ञान के अनुसार पुनर्जन्म सिद्ध नहीं किया जा सकता। इसी बात को दिखाने के लिए यह लेख मैं आपकी सेवा में भेजता हूँ। यदि आप उचित समझें तो इसको अपनी पत्रिका में स्थान दे दें।

डारविन, स्पेन्सर, हक्सले, हैकल इत्यादि वैज्ञानिक तत्त्ववेत्ताओं का मत है कि "जीव" (Life) भी मिष्टता, कटुता, कठिनता, प्रकाश, रङ्ग इत्यादि गुणों की तरह जीवित पदार्थ-प्रोटोप्लाज्म-(Protoplasm) का एक गुण है। जिस तरह बिना शक्कर के मिठास नहीं आविर्भूत हो सकता और बिना किसी आधार के कठिनता नहीं भासित होती, वैसे ही बिना प्रोटोप्लाज्म के जीवन का प्रादुर्भाव नहीं हो सकता। हवा, पानी, ईंधन इत्यादि वस्तुओं में जीव की स्थिति बिना प्रोटोप्लाज्म के असम्भव है। प्रत्येक गुण तभी अनुभूत होता है जब उसे धारण करने वाले परमाणु एक विशेष संयोग में उपस्थित हों। शक्कर में मिठास उसकी सुफ़ेदी से उत्पन्न नहीं; किन्तु कारबन, आक्सीजन और हाईड्रोजन—इन तीन तत्त्वों का विशेष अंशो में विशेष प्रकार से रासायनिक मिश्रण होने से हुआ है। इन तीन तत्त्वों के योग से बने हुए संसार में और भी कई मिश्रित पदार्थ हैं; किन्तु उनका संगठन उस रूप से नहीं हुआ जिस रूप से कि शक्कर का हुआ है। इसी से यद्यपि मदिरा (Alcohol) और शक्कर में भी यही तीनों पदार्थ हैं; किन्तु मिश्रण की भिन्नता से गुण की भिन्नता हो गई है। मदिरा और शक्कर में कितना भेद है, यह सब पर प्रकट ही है। रसायनशास्त्रवेत्ता इस बात से पूर्णतया परिचित हैं कि बिना परमाणुओं के विशेष संगठन के विशेष-गुण की उत्पत्ति या स्थिति नहीं हो सकती।

प्रोटोप्लाज्म (Protoplasm) जिसका नाम हम, आसानी के लिए, जीवाधार पदार्थ रखते हैं, कार्बन, नाइट्रोजन, आक्सीजन, सल्फर और आइरन इत्यादि तत्त्वों का एक मिश्रण है। इस संगठन में पूर्वोक्त तत्त्व विशेष अंशों में विशेष प्रकार से विद्यमान हैं। इसी संगठन का गुण जीवन है। यदि इन तत्त्वों में एक भी अनुपस्थित हो तो जीवन का विकाश असम्भव हो जाय। न केवल इन सब तत्त्वों की उपस्थिति ही जीवन के लिए आवश्यक है, किन्तु इनका विशेष प्रकार से विशेष भागों में होना भी अत्यावश्यक है। केवल जीवन ही नहीं, किन्तु स्पर्श-ज्ञान, दृष्टिज्ञान, विचार-शक्ति इत्यादि उच्च गुण, जो मनुष्य तथा अन्य उच्च श्रेणी के जीवों में पाये जाते हैं, वे सब के सब कुछ पदार्थों के गुण हैं। बिना ज्ञानतन्तुओं के स्पर्शज्ञान, तथा दृष्टिज्ञान का अनुभव होना असम्भव है। बिना मस्तिष्क के विचार-शक्ति का होना असम्भव है। प्रकाश, ध्वनि, उष्णता इत्यादि गुण भी, जिनको साधारण लोग बिना आधार का समझते हैं, बिना आधार के आविर्भूत और परिणत नहीं हो सकते हैं। तो फिर जीवन, जो पदार्थ विशेष का गुण मात्र है, किस तरह बिना आधार-भूत पदार्थ के अनुभूत हो सकता है।

यहाँ पर हम दो चार शब्द जीव की उत्पत्ति के विषय में कह कर पुनर्जन्म पर आधुनिक वैज्ञानिकों का मत प्रकाशित करेंगे।

जीव की उत्पत्ति के विषय में उन्नीसवीं शताब्दी के विद्वानों में बहुत कुछ मत-भेद रहा। कुछ विद्वान् कहते थे कि पृथ्वी पर जीव का आवाहन चन्द्र-मण्डल से हुआ है। किन्तु जब उनसे पूछा गया कि चन्द्रमा में जीवोत्पत्ति कैसे हुई, तब वे निरुत्तर हो गये। अन्य वैज्ञानिकों का मत था कि जीव की उत्पत्ति निर्जीव पदार्थों की तरह नहीं; किन्तु किसी अज्ञात तथा अज्ञेय प्रकार से हुई है। आधुनिक वैज्ञानिक अब इस विषय में एक-मत हैं। हैकल इत्यादि विद्वान् अब एक-ध्वनि से कहते हैं कि जिस प्रकार देशकाल के प्रभाव से संसार के अनेक खनिज पदार्थ शनैः शनैः परिणत हुए, तथा उनमें उनके गुणों का विकाश होता गया, उसी तरह जीवाधार वस्तु भी समयानुसार उत्पन्न हुई है।

उसकी सब सामग्री कार्बन, नाइट्रोजन, हाइड्रोजन, आक्सीजन और सल्फर— संसार में विद्यमान थी। केवल उनका संगठन हो कर यह पदार्थ उत्पन्न हुआ; तथा उसका गुण, जिसको जीव कहते हैं, उसके साथ ही परिणत हुआ।

उक्त सिद्धान्त की पुष्टि में हज़ारों प्रमाण दिये जा सकते हैं। कई सूक्ष्म जन्तु (Bacteria) जिनमें से नाइट्रोजीनस बैकटिरिया एक दृष्टान्त हैं—जीवधारी हो कर भी निर्जीव पदार्थों पर अपना बसर करते हैं। इसी तरह वृक्ष भी जीवधारी हैं; किन्तु निर्जीव खनिज पदार्थों से पेट पालते हैं; तथा कार्बन, नाइ-ट्रोजन इत्यादि तत्त्वों से मनुष्य के खाद्य पदार्थ— शक्कर, खटाई, फल इत्यादि—उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार वैज्ञानिकों ने सर्व-सम्मति से पता लगाया है कि जीव पदार्थ का गुण मात्र है। अन्य गुणों की तरह इसका भी आविर्भाव आधारभूत पदार्थ के साथ हुआ है।

अब हम पुनर्जीवन पर विचार करें तो पूर्वोक्त वैज्ञानिक तत्त्व के अनुसार उस पर विश्वास करना भूल है। मृत्यु के पश्चात् जीव, जो पदार्थ का एक गुण मात्र है, लोप हो जाता है। पदार्थ की स्थिति बिना गुण की स्थिति के असम्भव है। तो फिर किस प्रकार हम विश्वास कर सकते हैं कि जीव वायु में उड़ता फिरता है या आसमान में चक्कर लगाता रहता है। ये सब बातें [illegible] शास्त्र के विचार-पूर्वक अध्ययन करने से ठीक समझ में आ जाती हैं। भूत-प्रेतादि का विचार और पुनर्जन्म पर विश्वास सब एक ही कक्षा में गिने जाने चाहिए।

हम नहीं कह सकते, पण्डित लीलाधर चौबेजी की बात को हम क्या समझें। एक तरफ़ संसार के वैज्ञानिकों का मत है। दूसरी तरफ़ एक कहानी मात्र है, जिसकी सत्यता के केवल दो तीन प्राणी साक्षी हैं। हम सरस्वती की किसी अगली संख्या में—जीव क्या है, इसकी मीमांसा करेंगे।

जार्ज टाउन,
ब्रिटिश गायना,
साउथ अमेरिका। } रामनारायण शर्म्मा, एल० एम० एस०

एक भावना।

१—"प्यारे पण्डित राज ! क्यों बदन में फूले समाते नहीं ?
क्यों सौन्दर्य अपूर्व दिव्य मुख पै छाया हुआ है महा ?
आँखें क्यों विकसी हुई रसभरी देतीं दिखाई कहो ?
क्यों मन्द-स्मित-व्याज से अधर से माधुर्य जाता बहा ?

२—वाणी क्यों बरसा रही अमृत की धारा मनोहारिणी ?
क्यों शोभा तन की बनी रुचिर है—उत्साह क्यों छा रहा ?
क्यों सारे हिय में प्रमोद लहरें लेने लगा देव ! त्यों ?
क्यों आनन्द अपार आज उमड़ा आता बड़े प्रेम से ?

३—क्या श्रीभारत में स्वराज्य-सुख से संतोष है छा गया ?
या गोवंश अकाल-मृत्यु-भय से संत्राण ही पागया ?
या पाके वर बुद्धि मन्दमति हैं सन्मार्ग पै आगये ?
या वंशी बजने लगी सब कहीं संसार में चैन की ?

४—या अन्तर्पट हट गया, मिट दुई, चैतन्य-झाँकी हुई ?
या सारे जग बीच प्रेम-मत का साम्राज्य ही होगया ?"
नाना मित्र अनेक प्रश्न मुझसे यों पूछने जो लगे
तो मैं भी कुछ ज़ोर से हँस पड़ा, पीछे कहा यों, सुनोः—

५—"प्यारे ! हो सब जानते फिर भला क्या पूछते हो कहो
बातें ये न असाध्य हैं समय की सत्ता बली के लिए।
होता है हरि के प्रसाद-लव से क्या से न क्या विश्व में
श्रीलीलामय की विचित्र विभुता क्या देखते हो नहीं ?

६—कैसा आज हुआ प्रभात यह है कैसी घड़ी जो हुए—
मेरी, पञ्चम जार्ज, आकर यहाँ सिंहासनारूढ़ हैं।
जोड़ा है निज धर्म जान नृप ने टूटे हुए वङ्ग को;
"होगा आदर श्रेष्ठ लोकमत का"—यों घोषणा दी मनो ॥

७—दे शिक्षार्थ पचास लाख रुपया की सूचना है यही—
"शिक्षा है अनमोल रत्न इसकी सीमा बढ़ाओ सदा"।
विज्ञों की कर वृत्ति सीख यह दी—"विद्वान् सभी मान्य हैं"
वीरों को वह 'क्रास' दे कह दिया "सारी प्रजा तुल्य है" ॥

८—मैं श्रीभारतवर्ष में प्रियवरो ! जो चाहता देखना,
है आनन्द अपार आज उसका आरम्भ है हो गया।
होंगे सिद्ध प्रजामनोरथ सभी, उद्योग छोड़ो नहीं;
विश्वाधीश-कृपा-कटाक्ष-कण से राजा चिरञ्जीव हो।

श्रीगिरिधर शर्म्मा
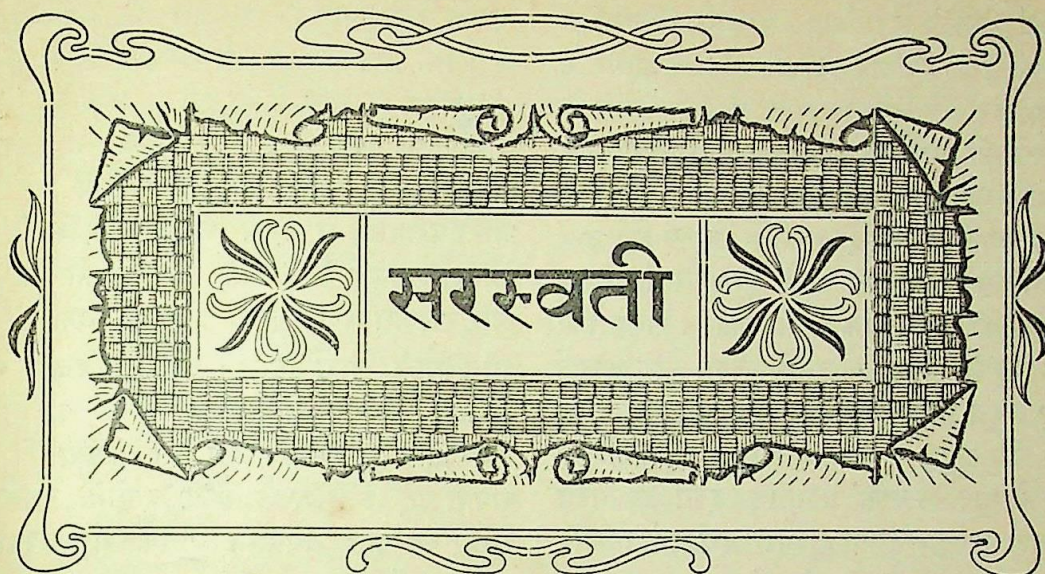
सचित्र मासिक पत्रिका ।

भाग १३] १ अगस्त, १९१२—श्रावण कृष्ण ३, १९६९। [संख्या ८

योरप के विद्वानों के संस्कृत-लेख और देवनागरी लिपि ।

हिन्दुस्तान में हज़ारों लोग ऐसे हैं जिन्होंने अँगरेज़ी ऐसी क्लिष्ट और विदेशी भाषा में बड़े बड़े गहन ग्रन्थ लिखे हैं, जो अँगरेज़ी के प्रतिष्ठित पत्रों और सामयिक पुस्तकों का बड़ी ही योग्यता से सम्पादन करते हैं, जो अँगरेज़ी में धारा-प्रवाह वक्तृता देते हैं और जिन्हें अँगरेज़ी भाषा मातृ-भाषा सी हो रही है। कितने ही भारत-वासियों की लिखी हुई अँगरेज़ी-पुस्तकें विलायत तक के पुस्तक-प्रकाशक बड़े ही आग्रह और उत्साह से प्रकाशित करते हैं और लेखकों को हज़ारों रुपया पुरस्कार भी देते हैं। इस देश के कितने ही वक्ताओं की मनोमोहनी और अविश्रान्त वाग्धारा के प्रवाह ठेठ विलायत की भूमि पर भी सैकड़ों-हज़ारों दफ़े बहे हैं और अब भी समय समय पर बहा करते हैं। हम लोगों की अँगरेज़ी को 'बाबू इँगलिश' कह कर घृणा प्रकाश करने वालों की आँखों के सामने ही ये सब दृश्य हुआ करते हैं। परन्तु आज तक इँगलिस्तान वालों में से ऐसे कितने विद्वान् हुए हैं जिन्होंने हमारी हिन्दी या संस्कृत-भाषा में पुस्तकें लिखी हों, अथवा इन भाषाओं में कभी वैसी वक्तृता दी हो जैसी कि बाबू सुरेन्द्र-नाथ बैनर्जी या पण्डित मदनमोहन मालवीय देते हैं। ढूँढने से शायद दो ही चार विद्वान् ऐसे निकलेंगे। विलायत वाले चाहे संस्कृत में कितने ही व्युत्पन्न क्यों न हो जायँ, पर, यदि उसके विषय में कभी कुछ कहेंगे तो अपनी ही भाषा में, लिखेंगे तो अपनी ही भाषा में, व्याख्यान देंगे तो भी अपनी ही भाषा में। संस्कृत पढ़ कर ये लोग अधिकतर भाषा-

विज्ञान और संस्कृत-शास्त्रों के सम्बन्ध में ही लेख और पुस्तकें लिखते हैं। कोई प्राचीन पुस्तकों के अनुवाद करते हैं; कोई वैदिक-साहित्य-सागर में ग़ोता लगा कर नये नये तत्त्वरत्न ढूँढ़ निकालते हैं; कोई साहित्य की अन्य शाखाओं का अध्ययन करके उसकी तुलनामूलक समालोचना करते हैं। परन्तु यह सब वे अपनी ही मातृभाषा में करते हैं। उन्हें संस्कृत-साहित्य से सम्बन्ध रखने वाली बातें संस्कृत ही में लिखने की आवश्यकता भी नहीं। संस्कृत में लिखने से कितने आदमी उनके लेख और पुस्तकें पढ़ सकें? बहुत ही कम। और जो पढ़ भी सकें उनमें से भी बहुत ही कम भारतवासी पण्डित ऐसी पुस्तकें मोल ले सकें। शायद इसी से योरप के संस्कृतज्ञ संस्कृत-भाषा और देवनागरी-लिपि में अपने विचार प्रकट करने का अभ्यास नहीं करते। अतएव यदि कोई यह कहे कि उनमें संस्कृत लिखने का माद्दा ही नहीं तो उसकी यह बात न मानी जायगी। अभ्यास से क्या नहीं हो सकता? योरप वाले सैकड़ों काम ऐसे करते हैं जिन्हें देख अथवा जिनका वर्णन पढ़ कर हम लोगों को अपार आश्चर्य होता है। अतएव अभ्यास करने से अच्छी संस्कृत लिख लेना उनके लिए कोई बड़ी बात नहीं। वह उनके लिए सर्वथा साध्य है। जो लोग भारत आते हैं और यहाँ कुछ समय तक रहते हैं उनके लिए तो यह बात और भी सहल है।

इस पर भी कई विद्वान् योरप में ऐसे होगये हैं, और अब भी कई मौजूद हैं, जिनकी लिखी संस्कृत-भाषा देख कर मालूम होता है कि वह उन्हें करतलगत आमलकवत् हो रही है। डाक्टर बूलर और पिटर्सन बिना रुके संस्कृत में बातचीत कर सकते थे। कुछ समय हुआ, रूस के एक विद्वान्, भारत आये थे। वे भी अच्छी संस्कृत बोल लेते थे। विदेशियों की संस्कृत बोली में यदि कोई विलक्षणता होती है तो वह उच्चारणसम्बन्धिनी है। परन्तु इस प्रकार की विलक्षणता स्वाभाविक है। हम लोगों की अँगरेज़ी भी तो विलक्षणता से ख़ाली नहीं।

कोई ६० वर्ष हुए, जेम्स राबर्ट बालेंटाइन नामक एक विद्वान्, बनारस के गवर्नमेंट-कालेज में प्रधान अध्यापक थे। ये संस्कृत के अच्छे ज्ञाता थे। अरबी-फ़ारसी में भी इनकी गति थी। संस्कृत ये बोल भी सकते थे और लिख भी सकते थे। संस्कृत-भाषा और देवनागरी-लिपि के ये बड़े भारी पक्षपाती थे। ये चाहते थे कि अँगरेज़ी में जो ज्ञान-समूह है उससे भारतवासी लाभ उठावें और संस्कृत में जो कुछ ज्ञेय है उससे अँगरेज़ी जाननेवाले लाभ उठावें। इसी से इन्होंने बनारस-कालेज के संस्कृत-विभाग में पढ़ने वालों को अँगरेज़ी भाषा सीखने का भी प्रबन्ध किया था। अपनी उद्देश-सिद्धि के लिए इन्होंने, गवर्नमेंट की आज्ञा से, कुछ उपयोगी पुस्तकें भी प्रकाशित कीं। इनमें से एक पुस्तक का नाम है—Synopsis of Science. इसमें योरप और भारत के शास्त्रों का सारांश, अँगरेज़ी और संस्कृत-भाषाओं में, है। बालेंटाइन साहब की यह पुस्तक देखने लायक़ है। इस पुस्तक को छपे और प्रकाशित हुए ५० वर्ष से अधिक समय हुआ। इसका दूसरा संस्करण, जो हमारे सामने है, मिर्ज़ापुर के आर्फन-स्कूल-प्रेस का छपा हुआ है। न्याय, सांख्य, वेदान्त, ज्यामिति, रेखागणित, बीजगणित, प्राणिशास्त्र, रसायनशास्त्र, समाजशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र, कीटपतङ्गशास्त्र, भूगोल-विद्या, भूस्तरविद्या, राजनीति-विज्ञान, यहाँ तक कि सम्पत्तिशास्त्र तक के सिद्धान्तों का इसमें वर्णन है। पुस्तक दो भागों में विभक्त है। प्रथमार्द्ध में पूर्वोक्त शास्त्रों का सारांश अँगरेज़ी में दिया गया है, और उत्तरार्द्ध में संस्कृत में। गौतमीय न्यायशास्त्र के आधार पर साध्य की सिद्धि की गई है। योरप और भारत के शास्त्रीय सिद्धान्तों में जहाँ जहाँ विरोध है वहाँ वहाँ योग्यता-पूर्वक वह विरोध स्पष्ट करके दिखलाया गया है। परन्तु किसी के मत, सिद्धान्त या विवेचन पर कटाक्ष नहीं किया गया। एक उदाहरण लीजिए। गौतम-सूत्रों के आधार पर बालेंटा-

इन साहब ने एक जगह अपवर्ग, अर्थात् मोक्ष, की व्याख्या कर के यह लिखा :—

"पुनर्दुःखोत्पत्तिर्यथा न स्यात् विमोक्षो विध्वंसः तथा च पुनर्दुःखोत्पत्तिप्रतिबन्धको दुःखध्वंसः परमपुरुषार्थस्तत्त्वज्ञानेन प्राप्तव्य इति गौतममतम्।"

इसके आगे ही आपने अपने, अर्थात् योरप के तत्त्वज्ञानियों के, मत का इस प्रकार निदर्शन किया :—

"अस्मन्मतं तु नैवंविधदुःखध्वंसमात्रं परमपुरुषार्थः। तस्याभावरूपतया तुच्छत्वेन स्वतो मनोहरत्वाभावात्। किन्तु परमपुरुषार्थे दुःखध्वंसादन्यत् किमपि स्पृहणीयमस्ति। यद्वा तद्वा तदस्तु, तत् सर्वथा सर्वज्ञस्य परमदयालोः परमेश्वरस्यैव प्रसादेन तद्भक्तैः प्राप्यमस्तीति"।

इसी तरह बराबर आप, जहाँ जहाँ आवश्यकता थी, अपना मत देते गये हैं। पर कहीं भी अनुचित आक्षेप किसी धर्म्म, मत या सिद्धान्त पर नहीं किया।

बालेंटाइन साहब की पूर्वोक्त पुस्तक के आरम्भ में जो उपोद्घात अँगरेज़ी में है उसमें आपने कितनी हीं ज्ञातव्य बातों का समावेश किया है। उसमें आपके उदारतापूर्ण विचारों की बड़ी ही भरमार है। आपने तत्त्वज्ञान को सब ज्ञानों से श्रेष्ठ समझ कर पहले उसी का विचार किया है। पुस्तक के उत्तरार्द्ध के आरम्भ में आपकी लिखी हुई एक छोटी सी भूमिका संस्कृत में भी है। उस से भी आप के हृदय के औदार्य्य का सोता सा बह रहा है। उस का कुछ अंश हम नीचे उद्धृत करते हैं।

"सुनिपुणानां बुद्धिमतां विचारे परस्परविरोधः केवलं दुःखहेतुः। वादिप्रतिवाद्यभिमतार्थस्याभेदेऽपि यदि तयोर्भाषाभेदमात्रेण भेदावभासः तर्हि सोऽपि तथैव। अन्योन्यमतपरीक्षणात्पूर्वं परस्परनिन्दादिकं निष्फलत्वादनुचितम्। अपि च यत्न केवलं विवदमानयोर्द्वयोरपि भ्रान्तिमूलकविवाददूरीकरणार्थः प्रयत्नो महाफलत्वात्प्रशस्यस्तत्र भूखण्डद्वयनिवासियावद्व्यक्तीनां परस्परं विवाददूरीकरणार्थक प्रयत्नः प्रशंसायोग्य इति किं वक्तव्यम्। एतादृशप्रयत्नकारी पुरुषः सम्पूर्णफलाप्राप्तावपि न निन्द्यः। भारतवर्षीयार्यजनानां प्राचीनस्वमतग्रन्थपरिपालनं तत्प्रेम च तेषां महास्तुतिकारणम्। एवं प्रतिदिनं वर्द्धमानस्वमतग्रन्थाभ्यासजनितसततज्ञानवृद्ध्या सन्तुष्यन्तो यूरोपीयलोका अपि न निन्द्याः। यदि कश्चिद् यूरोपीयजनो भारतवर्षीयार्योक्तं वास्तवमपि तदीयव्यवहारं तन्मततत्त्वञ्च यथार्थतोऽविज्ञाय निन्देत्तदनुचितमेव। एवं यदि भारतीयजनो यूरोपीयमतमविज्ञाय निन्देत्तदपि तथैव। एवञ्चान्यतरभ्रान्तिजनितमतविरोधप्रयुक्तदुःखस्य हेयतया तद्दूरीकरणायावश्यं कश्चिदुपायोचितमतस्वीकारे सति सत्फलासम्भवोऽनीप्सितदुष्टफलसम्भवश्च। अतो विचारिणोर्द्वयोरेकविषये मतभेदे सदसन्निर्णयाय वादः समुचितः। परन्तु यावत्सम्यक् प्रकारेण मतभेदो नावधृतस्तावद्वादोऽपि न समीचीनः। प्रथमतो मतयोर्यथासम्भवं साम्यं निर्णीय तदुत्तरं भेदनिर्णयः कर्त्तव्यो येन मतैक्ये विवादो न भवेत्"।

इसी लिए आपने यह उभयभाषात्मक न्यायकौमुदी नामक शास्त्रसंग्रह ग्रन्थ लिख कर प्रकाशित किया। आपकी पुस्तक के इस अवतरण में कितनी ही बातें ऐसी हैं जिनसे हम लोगों को बहुत कुछ शिक्षा और उपदेश की प्राप्ति हो सकती है। इस इतने बड़े अवतरण देने का मतलब यह है कि पाठक बालेंटाइन साहब के उस उद्देश को भी समझ जायँ जिससे प्रेरित हो कर उन्हों ने यह ग्रन्थ लिखा और साथ ही उनकी संस्कृतज्ञता का अन्दाज़ा भी उन्हें हो जाय। आपकी संस्कृत बड़ी ही सरल और सुबोध है। पुस्तक भर में आपने इसी तरह की प्राञ्जल भाषा लिखी है। आपको संस्कृत में पद्यरचना का भी अभ्यास था। पाठक कह सकते हैं कि, सम्भव है, उन्होंने इस पुस्तक को किसी बनारसी पण्डित की सहायता से लिखा हो। ऐसी शङ्का के लिए जगह अवश्य है। काशी में, विशेष करके कालेज में, पण्डितों के बीच रह कर उन्होंने पण्डितों से सहायता ली हो तो कोई आश्चर्य्य की बात नहीं। परन्तु बालेंटाइन साहब की संस्कृत पण्डितों की जैसी लच्छेदार संस्कृत नहीं। वह इतनी सरल और स्वाभाविक है कि प्रकाण्ड पाण्डित्य की गन्ध उससे ज़रा भी नहीं आती। वह पुकार

पुकार कर कह रही है कि मैं काशी के पण्डितों की करामात नहीं। इस भीतरी साक्ष्य के सिवा हमारे पास पण्डित मथुराप्रसाद मिश्र का भी साक्ष्य है। वे बालेंटाइन के समय में ही बनारस कालेज में थे ग्रोर बालेंटाइन साहब ही की सूचना के अनुसार लघुकौमुदी का अनुवाद उन्हों ने हिन्दी में किया था। इस प्रबन्ध के लेखक ने उनके मुख से सुना था कि बालेंटाइन साहब अच्छे संस्कृतज्ञ ही न थे, किन्तु अच्छे संस्कृत-वक्ता ग्रोर अच्छे संस्कृत-लेखक भी थे।

१८४४ ईसवी में जे० म्यूर साहब बनारस कालेज के प्रधानाध्यापक थे। ये भी संस्कृत में अच्छी योग्यता रखते थे। यह बात इनके एक ग्रन्थ से प्रमाणित है। यह ग्रन्थ बड़ी बड़ी पाँच जिल्दों में है। इसका नाम है:—"Original Sanskrit Texts on the Origin and History of the People of India, their Religion and Institutions." इसके सिवा बालेंटाइन साहब ने भी म्यूर साहब की संस्कृतज्ञता ग्रोर योग्यता की गवाही दी है। अपनी न्यायकौमुदी की अँगरेज़ी-भूमिका में उन्होंने लिखा है:—

"Mr. Muir delivered lectures, in Sanskrit, on Moral and Intellectual Philosophy; and the sentiments which he then inculcated have often, since that time, furnished topics for discussion in the college."

म्यूर साहब जब संस्कृत में लेकचर दे सकते थे तब वे अवश्य ही अच्छी तरह संस्कृत बोल लेते रहे होंगे। यह उनकी संस्कृतज्ञता ग्रोर सम्भाषण शक्ति का प्रमाण हुआ। यह बात तो डाक्टर टीबो ग्रोर वीनिस साहब आदि संस्कृत-विद्वानों में भी पाई जाती है। म्यूर साहब में एक ग्रोर विशेषता थी। वे संस्कृत लिखते भी थे। गद्य ही नहीं, पद्य भी। उनकी लिखी हुई मत-परीक्षा नामक एक बहुत बड़ी पुस्तक संस्कृत-पद्य में है। उस से दे चार श्लोक हम नीचे उद्धृत करते हैं:—

यः पूर्वभूतवृत्तान्तः पारम्पर्य्येण लभ्यते।
स जातु प्रत्ययार्होऽस्ति जातु नास्तीति बुध्यते॥
वृत्तान्तः कश्चिदेको हि सप्रमाणः प्रतीयते।
प्रमाणवर्जितोऽन्यस्तु प्रतिभाति परीक्षणात्॥
अतोऽमुका पुरावृत्तकथा विश्वासमर्हति।
न वेत्येतद्विवेकाय तद्विशेषो विचार्य्यताम्॥
असैा कथा कदा कुत्र कस्य वक्त्रादजायत।
श्रोतारश्चादिमास्तस्याः कीदृशाः कति चाभवन्॥

इन पद्यों की रचना कह रही है कि ये म्यूर साहब ही के लिखे हुए हैं। अतएव इसमें सन्देह नहीं कि वे संस्कृत बोल भी सकते थे ग्रोर लिख भी सकते थे।

The Light of Asia, Indian Poetry, Secret of Death आदि पुस्तकों के लेखक सर एडविन आर्नल्ड का नाम पाठकों में से बहुतों ने सुना होगा। आपकी भी गिन्ती संस्कृतज्ञों में है। १८९६ में आपने चौरपञ्चाशिका का पद्यात्मक अनुवाद अँगरेज़ी में करके मूल-सहित उसे प्रकाशित किया। परन्तु टाइप में नहीं, लीथो में। प्रत्येक पृष्ठ को आपने अपने ही हाथ से खींचे गये चित्रों से भी अलङ्कृत किया। ऐसा करने में किसी किसी पद्य के भाव को आपने चित्र में भी अलङ्कृत कर दिया। आपकी लिखी हुई चौरपञ्चाशिका के सातवें श्लोक का फोटो अलग छापा जाता है। उससे पाठकों को आर्नल्ड साहब की देवनागरी लिपि का नमूना देखने को मिल जायगा।

आपके नक़ल किये हुए पद्यों में से कई पद्यों में त्रुटियाँ हैं। परन्तु वे क्षम्य हैं।

फ़्रेडरिक पिनकाट, भट्ट मोक्षमूलर ग्रोर अध्यापक मुग्धानलाचार्य की नागरी-लिपि के नमूने सरस्वती में निकल चुके हैं। यहाँ पर हम डाक्टर ग्रियर्सन की लिपि का एक नमूना देते हैं। उनसे ग्रोर इन पङ्क्तियों के लेखक से, एक दफ़े, कविता की भाषा के सम्बन्ध में पत्र-व्यवहार हुआ। इस विषय में आपने अपने हाथ से बाबू हरिश्चन्द्र की सर्वश्रुत

सर एडविन आर्नल्ड की हस्तलिपि

अद्यापि तां सुरतताण्डवसूत्रधारीं
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखीं मदविह्वलाङ्गीं ।
तन्वीं विशालजघनस्तनभारखिन्नां
व्यालोलकुन्तलकलापवतीं स्मरामि ॥८॥

डाक्टर ग्रियर्सन की हस्तलिपि

"अब देखिये कैसी भौंड़ी कविता है। मैंने इस का कारण सोचा कि खड़ी बोली में कविता मीठी क्यों नहीं बनती तो मुझ को सबसे बड़ा एक कारण जान पड़ा कि इसमें क्रिया इत्यादि में प्रायः दीर्घ मात्रा होती हैं। इस से कविता अच्छी नहीं लगती॥"

आर॰ पी॰ ड्यूहर्स्ट साहब की हस्तलिपि

बखिदमत पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी सम्पादक सरस्वती मासिक पत्रिका बमक़ाम दौलतपुर डाकखा॰ भोजपुर ज़िला राय बरेली पहुँचे ।

सम्मति लिख भेजी, जिसकी प्रतिलिपि अलग छापी गई है।

आप की भी वही राय है जो बाबू हरिश्चन्द्र की थी। डाक्टर साहब अनेक पूर्वी भाषाओं और बोलियों के ज्ञाता हैं। हिन्दी भी आप बहुत अच्छी जानते हैं; परन्तु लिखते नहीं। हमारे प्रार्थना करने पर भी आपने हिन्दी में लेख लिखने की कृपा न की। कुछ भी हो, देवनागरी आप सफ़ाई और शुद्धता के साथ लिख सकते हैं। इस में सन्देह नहीं।

आर० पी० डयूहर्स्ट साहब इन प्रान्तों में सिविलियन हैं। कुछ समय पहले आप रायबरेली में डेपुटी कमिश्नर थे। आप हिन्दी, उर्दू और फ़ारसी के अच्छे पण्डित हैं। शायद आप अरबी भी जानते हैं। बड़े विद्वान्, बड़े विद्याव्यसनी और बड़े पुरातत्त्वप्रेमी हैं। आपके लेख एशियाटिक सोसाइटी आदि के जर्नलों में निकला करते हैं। आपकी देवनागरी लिपि बड़ी ही सुन्दर और स्पष्ट होती है। शुद्ध भी होती है। मार्च १९०७ में इस लेखक के पत्र के उत्तर में आपने कृपा करके एक पत्र लिखा था। उसके लिफ़ाफ़े पर अँगरेज़ी के सिवा देवनागरी में भी पता लिखने की आपने कृपा की थी। उसका चित्र अलग दिया गया है।

देखिए, आपकी हस्तलिपि कैसी मनोहारिणी है।

जो कुछ यहाँ तक लिखा गया, उससे सिद्ध हुआ कि योरप के विद्वान् यदि अभ्यास करें तो पूर्वी देशों की भाषायें और लिपियाँ उसी तरह लिख सकें जिस तरह कि भारतवासी अँगरेज़ी भाषा और रोमन लिपि लिख सकते हैं।

मलय-मारुत।*

(१)

मलयाचल गृह सुना तुम्हारा जहाँ विहगिनी गाती हैं,
यथा अप्सरा नन्दन-वन में श्रवण-सुधा बरसाती हैं।
हे मलयानिल! कुसुम-कामिनी अति कोमल कमला कैसी
सेवा करती सदा तुम्हारी रतिनायक की रति जैसी॥

(२)

हाय! आज वृज में क्यों फिरते, जाओ तुम सरसी के तीर,
मृदु हिल्लोल-युक्त नलिनी को मुदित करो हे मन्द समीर!
वृज-दिनकर जो हैं वह वृज तज अन्धकार फैला कर आज,
अन्य दिशा में हैं विराजते विदित नन्दनन्दन वृजराज॥

(३)

देगी तुम्हें सुरभि-मणि नलिनी राधा क्या देसकती हाय!
भींग रही है नयन-नीर से वह दुःखिनी आज निरुपाय।
जाओ, जहाँ कोकिला गाती, मधु-वर्षासी होती है;
इस निकुञ्ज में आज विरहिणी राधा बैठी रोती है॥

(४)

समदुःखी हो यदि तुम मेरे तो हरि-निकट शीघ्र जाओ,
जाओ, जाओ, सुभग आशुगति! जहाँ श्याम धन को पाओ।
राधा का रोदन-रव उनके कानों तक तुम पहुँचाओ;
"मरती है राधा वियोगिनी"—राधावर से कह आओ॥

(५)

जाओ, अहो महाबलि! सत्वर लाओ वृजभूषण का शोध,
दुर्मति तुङ्ग शृङ्ग को तोड़ो करे तुम्हारा जो गति-रोध।
विघ्न करे तरुराज कहीं तो वज्रपात करके सक्रोध,
भञ्जन करना उसे प्रभञ्जन! करती हूँ तुम से अनुरोध॥

(६)

तुम्हें देख यदि नदी-सुन्दरी डाले प्रेम-पाश अनुभूत
मत भूलो उसके विभ्रम में तुम हे राधा के प्रिय दूत!
मन का क्रय करने को देगी कुसुम-कामिनी सौरभ धन;
मत देखो, मत देखो उसको, छलना है वह अहो पवन!

(७)

शिशिर-नीर से भींग न भूलो धारावाहिक लोचननीर;
शाखा पर यदि कोकिल बोले छोड़ो वह वन शीघ्र, समीर!
होना सुख से विमुख सोच कर राधा का यह दुख भारी;
पर-दुख से जो दुखी वही है सुकृती, सुजन, सदाचारी॥

(८)

पहुँचो जब हरि-निकट, सुनाना उन्हें राधिका का रोना,
श्याम बिना गोकुल रोता है—कह देना, साक्षी होना।
और कुछ नहीं कह सकती हूँ लज्जावश, मैं हूँ नारी;
'मधु' कहता है वृजबाले! मैं कह दूँगा बातें सारी॥

"मधुप"।

---

*"व्रजाङ्गना" के एक अंश का भाव।

शान्ति का सार्वभौमिक राज्य।
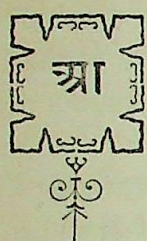
आज सारे संसार की बड़ी बड़ी शक्तियाँ शान्ति का मधुर राग अलाप रहीं हैं। जिधर देखो उधर शान्ति का साम्राज्य स्थापित करने की बड़ी बड़ी कोशिशें हो रही हैं। सभी सभ्य देश पारस्परिक राष्ट्रीय नियमें के बन्धन में बँधे हुए यह कह रहे हैं—"मनुष्यमात्र बराबर हैं; सबके स्वाधीनता का रस चखने का एकसा अधिकार है"। बड़े राष्ट्र छोटे राष्ट्रों के सांत्वना देते हुए कह रहे हैं—"डरो मत, अब कोई किसी के ऊपर अत्याचार नहीं कर सकता। वह समय गया। अब जिसकी लाठी उसकी भैंस का ज़माना नहीं"। इन वचनें की पुष्टि का प्रमाण भी मिलता है—कानें के नहीं, आँखें को। देखो, यह देश का अन्तर्राष्ट्रीय महा-न्यायालय है। बड़े बड़े राष्ट्र जिनके हाथें में सारे संसार का वाणिज्य है। जिनके बल श्रोर पराक्रम पर विचार करने से सिकन्दर श्रोर सीज़र, अशोक श्रोर अकबर आदि महावीरें का बल श्रोर पराक्रम तुच्छ मालूम पड़ता है; श्रोर, जिनके इच्छानुसार वर्तमान संसार का राजनैतिक चक्र घूमा करता है—वे सभी इस पुनीत मन्दिर में बड़ी श्रद्धा से शान्ति-देवी की आराधना कर रहे हैं। राष्ट्रीय-नियम-रूपी विशाल छत्र के नीचे प्रत्येक राष्ट्र निर्भय होकर विचार रहा है। जान पड़ता है, अब कोई बलवान् देश किसी निर्बल देश को न सता सकेगा। लड़ाई श्रोर झगड़ा, अत्याचार श्रोर अशान्ति आदि, मनुष्य जाति की सुख श्रोर समृद्धि में बाधा डालने वाली बातें का अब ख़ातमा ही हुआ चाहता है।

परन्तु, क्या सचमुच शान्ति का सार्वभैामिक राज्य संसार पर हो गया अथवा हो जायगा? क्या अब हमें जंगी अस्त्र-शस्त्रों की झङ्कार न सुनाई पड़ेगी? क्या अब भीमकाय तोपें मनुष्यों का संहार करती हुई कानें के पर्दे न फाड़ेंगी? क्या अभी तक आपस में लड़नेवाले राष्ट्र—वे राष्ट्र जो अपने से कमज़ोर को हड़प कर जाने की चिन्ता में सदा मग्न रहते थे—जो अपनी राजनैतिक दुरङ्गी चाल से संसार भर को नचाया करते थे श्रोर जो अपने भयङ्कर युद्ध-पोतें श्रोर तोपें से अर्ध-सभ्य, असभ्य श्रोर कमज़ोर देशें को भयभीत रखते थे—समानता के उज्ज्वल श्रोर पवित्र सिद्धान्त के मीठे रस का इतना मज़ा पा गये कि वे अब "टट्टी की श्रोट शिकार खेलने" अथवा कमज़ोरें को संसार से नेस्त-व-नाबूद कर देने की प्रथा का त्याग कर देंगे श्रोर सैाम्य रूप धारण कर के संसार में शान्ति का परमावश्यक श्रोर सुखदायी साम्राज्य स्थापित होने देंगे?

इस समय संसार में जो घटनायें हो रही हैं उन पर विचार करने से तो यही कहना पड़ता है कि शान्ति का कहीं नाम भी नहीं। महा-शक्तियें के शान्ति के राग के भीतर अशान्ति का चीत्कार ही अधिक सुनाई पड़ता है। वे शान्ति के परम उपासक तो अवश्य हैं, परन्तु यह उपासना मैाखिक ही है। वे शान्ति का पाठ रटा तो करते हैं; परन्तु उनके हृदय में अशान्ति ही की ज्वाला भभकती रहती है। वे सदा सिर से ले कर पैर तक अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित हैं। एक यदि ड्रेटनाट तैयार करता है तो दूसरे को सुपर-ड्रेटनाट (Super-Dreadnaught) बनाने की चिन्ता उत्पन्न हो जाती है। इस चिन्ता से उसका छुटकारा उस समय तक होता ही नहीं जब तक वह सुपर-ड्रेडनाट या उसके सदृश श्रोर कोई भयानक श्रोर शान्ति-नाशक वस्तु तैयार नहीं कर लेता। हर महा-शक्ति दूसरी से बढ़ी चढ़ी ही रहना चाहती है। नाविक शक्ति का समुच्चय क्या संसार में शान्ति के स्थापनार्थ ही हो रहा है श्रोर क्या उसके रहते संसार में शान्ति का राज्य स्थापित हो सकता है?

इसमें सन्देह नहीं कि भूमण्डल की महा-शक्तियें के बड़े भारी केन्द्र, योरप, में कोई चालीस वर्ष से कोई युद्ध नहीं हुआ। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं

कि योरप की महा-शक्तियों ने शान्ति की उपयोगिता को अच्छी तरह समझ लिया है। यद्यपि योरप में तोपों का घोरनाद और अस्त्र-शस्त्र की झङ्कार नहीं सुनाई पड़ती, तथापि योरप में—भयङ्कर से भयङ्कर तोप या ड्रेटनाट से भी भयानक काम करनेवाले व्योमयान जो संसार में अशान्ति ही की वृद्धि का मूल कारण कहे जा सकते हैं—उनके बनाने में एक बलवान् राष्ट्र दूसरे से ज़रा भी पीछे नहीं रहना चाहता। मनुष्यों के प्राण लेने वाले इन आविष्कारों को देख कर हम इस बात को मान सकते हैं कि ये सब बातें महाशक्तियाँ अपना बल योरप से बाहर एशिया और अफरीक़ा में आज़माने से नहीं चूकीं। हाँ, अमेरिका उनकी नादिरशाही से अवश्य बचा हुआ है।

जिस योरप में एक छोड़—संसार की छः छः महा-शक्तियां हों—और जहाँ महा-भयङ्कर मनुष्य-नाशक नये नये यन्त्रों का आविष्कार और उनकी उन्नति होती हो—वहाँ रक्त-पात न होने के कुछ बड़े भारी कारण अवश्य हैं। योरप की सामाजिक अवस्था बड़ी ही शोचनीय है। समृद्धि-शाली योरप के निवासियों के सामने रोटी का सवाल बड़ा भयङ्कर रूप धारण किये सदा उपस्थित रहता है। उनके पास आज के लिए खाने को है तो कल के लिए नहीं। दो दिन के लिए उनके कारख़ाने बन्द हो जायँ तो वे भूखों मरने लगें। चालीस वर्ष तक योरप में शान्ति रहने का एक कारण यह भी है कि यदि वहाँ अशान्ति हो तो सारे कारख़ाने बन्द हो जायँ और बे-पेशा हो जाने वाले मज़दूर भूख से बचने के लिए देश में अराजकता फैला कर बाहरी शत्रु से भी अधिक हानि पहुँचावें।

योरप की शान्ति का एक कारण और भी है। योरप की महा-शक्तियाँ दो दलों में बँटी हुई हैं। इँगलैण्ड, फ्रांस और रूस एक तरफ़ हैं; और जर्मनी, इटली और आस्ट्रिया दूसरी तरफ़। दोनों पलड़े बराबर हैं। योरप के बड़े बड़े राज-नीतिज्ञ बहुत वर्षों से इन पलड़ों को बराबर रखने की चेष्टा करते आये हैं। जहाँ एक पलड़ा नीचे हुआ कि बस, योरप की आफ़त आगई समझो। इनके सिवा और भी कितने ही छोटे मोटे कारण हैं, जिनसे योरप के चालीस वर्ष विना रक्त-पात के बीत गये।

अमेरिका में भी बहुत दिनों से शान्ति विराज-मान है। यदि हम उस युद्ध को हिसाब में न लें जो उन्नीसवीं शताब्दी के तीसरे चरण में ग़ुलामी की प्रथा उठाने के लिए अमेरिका की उत्तरी और दक्षिणी रियासतों के बीच में हुआ था और जिसमें किसी छीना-झपटी की गरज़ से नहीं, किन्तु मनुष्य-जाति की एक बड़ी भारी कमज़ोरी दूर करने के लिए भाई ने भाई का गला काटा था—तो यही सिद्ध होता है कि कोई सौ वर्ष से अमेरिका में छीना-झपटी की प्रथा बन्द है। इसका कारण योरप की ऐसी सामाजिक दुर्दशा अथवा एक राज्य का पलड़ा दूसरे राज्य के पलड़े के बराबर रखने का यत्न नहीं। इसके कारण और ही हैं। सुनिए:—

उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक दक्षिणी अमेरिका पूरा, और उत्तरी अमेरिका का मेक्सीको तक दक्षिणी भाग, योरप की तत्कालीन दो महा-शक्तियों के, अर्थात् पोर्चुगाल और स्पेन के, लिए उपनिवेश का काम देते थे। उस शताब्दी के आरम्भ में महावीर नेपोलियन के आतङ्क से योरप की सारी शक्तियाँ थर थर काँप रही थीं। इँगलैंड को छोड़ कर शेष सभी शक्तियों को एक एक करके नेपोलियन से नीचा देखना पड़ा। स्पेन और पोर्चुगाल भी परास्त हुए। नेपोलियन ने इन दोनों देशों पर वहाँ के राज-वंशों को निकाल कर अपना अधिकार जमाया। इस राज्यक्रान्ति से इनके उपनिवेशों में बड़ी हलचल मची। पोर्चुगाल का राज-वंश तो भागा हुआ अपने उपनिवेश ब्रेज़िल पहुँचा। इसलिए ब्रेज़िल में तो एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित हो गया। शेष बचे हुए देशों में, जो स्पेन के अधीन थे, बहुत कुछ गड़बड़ के बाद उत्तरी अमेरिका के संयुक्त राज्य के ढंग के प्रजा-सत्ताक राज्य स्थापित हो गये।

जब नेपोलियन का पतन हुआ तब स्पेन का पुराना राज-वंश फिर चेता। उसे अपने उपनिवेशों को परास्त करने की सूझी। योरप की कुछ शक्तियाँ स्पेन को इस काम में सहायता देने के लिए भी तैयार हुईं। उन दिनों उत्तरी अमेरिका के संयुक्त-राज्य के सभापति थे मिस्टर जेम्स मानरो। मानरो जितने शान्ति-प्रिय थे उतने ही न्याय-प्रिय भी थे। जब उन्हें स्पेन की नीयत का पता चला तब उन्होंने संयुक्त राज्य की ओर से एक घोषणा प्रकाशित की जिसका सारांश यह था:—

दोनों अमेरिका, अमेरिका वालों के हैं। स्पेन योरप की कुछ शक्तियों की सहायता से दक्षिणी और मध्य अमेरिका के कुछ प्रजा-सत्ताक राज्यों को दबाना चाहता है। परन्तु यह बात अच्छी नहीं। संयुक्त-राज्य अमेरिका, योरप की राजनीति में बिलकुल हस्तक्षेप नहीं करता। इससे योरप की सब शक्तियों को भी अमेरिका के राज्यों के काम में दस्तन्दाज़ी न करनी चाहिए। यदि योरप की कोई शक्ति दोनों अमेरिका के किसी राज्य की स्वतन्त्रता में बाधा डालने का प्रयत्न करे तो अमेरिका का संयुक्त-राज्य योरप की उस शक्ति के साथ मित्रता का व्यवहार रखने में असमर्थ होगा।

मानरो की इस घोषणा से स्पेन स्तम्भित हो गया। फिर उसने अमेरिका में पैर रखने का कभी विचार तक न किया। योरप की अन्य शक्तियाँ भी सन्नाटा खींच गईं। मानरो की इस घोषणा ने वह काम किया जो बड़े बड़े ड्रेडनाट और भयङ्कर तोपों से सुसज्जित सेनायें भी न कर सकतीं। प्रत्येक अमेरिका-निवासी को इस घोषणा का बड़ा गर्व है। केवल इसी घोषणा के कारण आज तक संसार की कोई भी महा-शक्ति अमेरिका में पैर न रख सकी; और, आज वहाँ शान्ति का अटल राज्य है।

भूमण्डल पर छः महाद्वीप हैं;—एशिया, योरप, अफ़रीका, दो अमेरिका और आस्ट्रेलिया। आस्ट्रेलिया ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत होने के कारण शान्ति का पूरा पूरा सुख अनुभव कर रहा है, और जब तक ब्रिटिश साम्राज्य है तब तक वह इस सुख को भोगता जायगा। दोनों अमेरिका में भी इस समय तक शान्ति है; परन्तु भविष्यत् में वहाँ शान्ति रहेगी या नहीं, इस में लोगों को शङ्का है। मानरो की घोषणा ने अमेरिका वालों को बाहरी आक्रमण से तो बहुत कुछ निर्भय कर दिया, परन्तु वहाँ अभी तक आपस में हाथापाई रोकने का कोई बन्दोबस्त नहीं। इस समय अमेरिका में कोई २१ स्वतन्त्र राज्य हैं। कोई भी आपस में मज़े से लड़ सकते हैं और विजित के राज्य का जितना भाग चाहें हज़म कर सकते हैं। मानरो की घोषणा इसे नहीं रोक सकती।

अमेरिका वाले इस त्रुटि को अच्छी तरह समझते हैं। इससे शीघ्र ही वहाँ कोई ऐसा अन्तरराष्ट्रीय नियम बनने वाला है जिससे अमेरिका के प्रजा-सत्ताक राज्य कभी एक दूसरे का राज्य या उसका कुछ अंश छीनने की चेष्टा न करें। इस नियम के बन जाने पर अमेरिका में भी भविष्यत् में शान्ति रहेगी।

अफ़रीका की क़िस्मत का फ़ैसला योरप के हाथ में है। एशिया का भी योरप से बहुत बड़ा सम्बन्ध है। योरप में ही शान्ति रहने से एशिया और अफ़रीका भी शान्त रह सकते हैं। योरप के बड़े बड़े विद्वान् जी-जान से चेष्टा कर रहे हैं कि योरप में शान्ति का अटल राज्य हो जाय। हेग का महा-न्यायालय अशान्ति की अग्नि बुझाने के लिए ही स्थापित हुआ है। योरप में इस समय ऐसा साहित्य भी तैयार हो रहा है जिस में बड़ी बड़ी युक्तियों द्वारा शान्ति से लाभ और युद्ध से हानियाँ दिखाई जा रही हैं। अनेक विद्वान् यह सिद्ध कर रहे हैं कि युद्ध से विजित और विजेता—दोनों—को सिवा हानि के कोई लाभ नहीं। जो हो, यदि संसार में शान्ति का साम्राज्य स्थापित करना है तो योरप वालों में शान्ति-प्रियता का बढ़ना परमावश्यक है। योरप में शान्ति का राज्य स्थापित हो जाने से एशिया और अफ़रीका में भी शान्ति रहेगी। जिस दिन से योरप की शक्तियाँ एक दूसरे की प्रतिद्वन्द्विता एक

नियमित सीमा तक ही करने लगेंगी और जैसे वे योरप में अपनी तलवार म्यान में रखना ही अच्छा समझती हैं वैसे ही जिस दिन से वे योरप के बाहर भी करने लगेंगी—उसी दिन शान्ति के सार्वभैामिक राज्य की नींव पड़ेगी ।

गणेशशङ्कर विद्यार्थी ।

जनसंख्या की बाढ़ से भारत की अवनति ।

देश में चारों तरफ़ लोग एका एका चिल्ला रहे हैं । पर एका हो तो कैसे हो । जिस देश के लोग छोटे छोटे दुधमुँहे बच्चों का व्याह करके अपाहिजों और जाहिलों की उत्पत्ति से देश की आबादी बढ़ा रहे हों ; जिस देश की आधी जनसंख्या यह नहीं जानती कि भरपेट भोजन किसे कहते हैं ; जहाँ एक रोटी में चार आदमी साझा लगाने वाले हों ; जहाँ "बुभुक्षितः किन्न करोति पापम्" के अनुसार ज़रा ज़रा सी बातों के लिए न जाने कितने पाप, मुक़द्दमेबाज़ी और लड़ाई-झगड़े होते हों वहाँ एका का नाम लेना सभ्य संसार के सामने अपनी हँसी कराना है। जिस देश की ऐसी दशा हो वहाँ एकाकार, सुधार, अधिकार और व्यापार आदि की वृद्धि होना बहुत ही कष्टसाध्य बात है ।

अगर माली हर रोज़ बाग़ की सफ़ाई और पेड़-पत्तों की व्यर्थ बाढ़ की काट-छाँट न करे तो बहुत जल्द वही सुरम्य बाग़ जङ्गल की शकल में बदल जाय और वहाँ शोभा और शान्ति के राम-राज्य के स्थान पर कुरूपता और अशान्ति की नादिरशाही का दौरदौरा दिखाई देने लगे। इसी तरह यदि किसी जाति की जनसंख्या एक नियत सीमा का उल्लंघन कर जाती है, और यदि कोई उपाय इस बढ़ी हुई आबादी को नियत सीमा तक लाने का नहीं किया जाता तो दरिद्रता, प्लेग, नास्तिकता, दुराचार आदि अनेक बुराइयों की वृद्धि होने लगती है । ऐसी ही अवस्था में जातियों का अधःपतन शुरू होता है । रोम, ग्रीस तथा और भी कितनेही गिरे हुए देशों के अधःपतन का मूल कारण यही जनसंख्या की निःसीम वृद्धि थी । न जाने कितने वर्ष पहले ही से भारतवर्ष इस शोचनीय अवस्था को पहुँच चुका है—परन्तु हम लोगों ने अब तक इस बुराई को दूर करने का कुछ भी प्रयत्न नहीं किया । कोई और देश इतने अधिक मनुष्यों से बसा हुआ और साथ ही इतना दरिद्र नहीं है । भारतवर्ष के प्रत्येक छोटे छोटे गृहस्थ के घर में भारतवासियों की दुर्दशा का सच्चा चित्र खिँचा हुआ मिलता है। जिस घर में पेट भर खाने को भी न मिलता हो उसमें हर साल दो एक लड़के लड़कियों की बाढ़ साक्षात् नरक का सामना कराती है और उस पर हिन्दू धर्म की विवाह-सम्बन्धिनी तथा अन्य कुरीतियाँ तो 'गण्डस्योपरि पिण्डम्' के समान हैं । अगर काफ़ी चारा न हो तो पास पास रहने वाले निकृष्ट जानवर भी चारे के लिए लड़ कर एक दूसरे की जान के गाहक बन जाते हैं, तो फिर मनुष्यों का क्या कहना ।

जितनी भूख है उससे यदि हम अधिक खायँगे तो हमें बदहज़मी हो जायगी और हम बीमार पड़ जायँगे । यदि हम क्रोध के वशीभूत होकर आपे के बाहर हो जायँगे तो, सम्भव है, हम कभी ऐसा काम कर बैठें जिसके लिए हमें पश्चात्ताप करना पड़े । इसी तरह यदि हम बिना विचार किये औलाद पैदा करते हुए देश की आबादी को एक नियत सीमा से बहुत अधिक बढ़ाते चले जायँ तो निःसन्देह ही हम दरिद्रता और प्लेग के शिकार बनेंगे । इन तीनों अवस्थाओं में प्रकृति का एक ही नियम काम कर रहा है । प्रकृति के नियम तोड़ने ही से ये सब उपद्रव खड़े होते हैं । लोग समझते हैं, प्लेग आदि बीमारियाँ ईश्वर के कोप का फल हैं । नहीं,

नहीं, ये हमारे ही दुष्कर्मों के फल हैं। प्रकृति के नियमों को तोड़ने से ही प्रकृति, हम लोगों को सचेत करने के लिए, प्लेग आदि विपत्तियाँ हम पर डालती है। बड़े बड़े विद्वानों का मत है कि प्लेग दरिद्रता की बीमारी है। और, दरिद्रता जनसंख्या की निःसीम वृद्धि का परिणाम है।

यहाँ तक तो इस बात का वर्णन किया गया कि हतभाग्य भारतवर्ष में जनसंख्या की निःसीम वृद्धि से क्या क्या बुराइयाँ पैदा हो रही हैं। अब उन बुराइयों को दूर करने के कुछ उपाय बतलाये जाते हैं।

(१) दूसरे देशों को जाना मना है, यह विचार इस देश से हमेशा के लिए दूर हो जाना चाहिए और उन आदमियों को एक दम देश छोड़ देना चाहिए, जो देश में भले प्रकार जीवन नहीं व्यतीत कर सकते। कूपमण्डूक के समान अपने अपने घरों की चहार-दीवारी के अन्दर ही बन्द न रह कर ज़रा बाहर की भी हवा खाना चाहिए।

(२) एक समय था जब भारतवर्ष के प्राचीन आर्य अधिक सन्तान के लिए ईश्वर से प्रार्थना किया करते थे। उस समय देश का देश ख़ाली पड़ा था और आर्यों की संख्या बहुत थोड़ी थी। देश को आबाद करने के लिए उन्हें अधिक सन्तान की आवश्यकता थी। इस विचार से उन्होंने सन्तान उत्पन्न करना हर आर्य का कर्त्तव्य कर्म कर दिया और "अपुत्रस्य गतिर्नास्ति" आदि वाक्यों को लिख कर सन्तान उत्पन्न करना धर्म में दाख़िल कर दिया। लेकिन अब वह समय नहीं। इस समय तो आबादी हद से ज़ियादह बढ़ी हुई है और देश में दरिद्रता देवी का अखण्ड वास है। अतएव इस समय सन्तान की वृद्धि अपेक्षित नहीं।

हम लोगों ने अपने जीवन का उद्देश विवाह करके अपाहिज सन्तान उत्पन्न करना, आलस्य से जीवन व्यतीत करना और अन्त में अनेक प्रकार के दुःख भोगते हुए प्राण-विसर्जन करना समझ रक्खा है। अपने अधःपतन के लिए कभी हम किसी को दोष देते हैं, कभी किसी को। वास्तव में देखा जाय तो सारा दोष हमारा ही है। जो विवाह-बन्धन संसार में अति पवित्र बन्धन समझा जाता है, जिस पर हमारी ज़िन्दगी का दारोमदार है, और जिस पर भावी हिन्दू जाति का बनना बिगड़ना अवलम्बित है वही विवाह-बन्धन यहाँ एक खेल समझ रक्खा गया है।

देश के अभ्युदय और कल्याण के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि आबादी बहुत अधिक न बढ़ने पावे। पर इससे यह मतलब नहीं कि लोग विवाह ही न करें। विवाह अवश्य करें; पर तब, जब कि वे अपनी भावी सन्तान का भरण-पोषण करने योग्य हो जायँ। विवाह-प्रथा का संशोधन होने से आबादी का मसला बहुत कुछ हल हो जायगा और आबादी की बाढ़ से पैदा होने वाली प्लेग आदि बुराइयों से भी छुटकारा मिल जायगा।

जनार्दन भट्ट।

बाल-काल

(१)

बाल-काल क्या ही मधुमय है; जीवन का उत्कृष्ट समय है।
शान्ति-सुधा का वह आकर है; शुचि स्वर्गीय सौख्य का घर है।

(२)

चिन्ता, शोक, वियोग नहीं है; भय, अशान्ति, दुख, रोग नहीं है।
वाद-विवाद, न भ्रम, संशय है; क्या ही अच्छा सुखद समय है॥

(३)

तेजस्वी जिनके आनन हैं; पवित्रतामय जिनके मन हैं।
कुछ ऐसे शिशु आन मिले हैं; मानों पद्म-प्रसून खिले हैं॥

(४)

कौतुकमय क्रीड़ायें करना; यहाँ वहाँ स्वच्छन्द विचरना।
कभी साथियों से लड़ जाना; उन्हें मना फिर हृदय लगाना॥

(५)

इस प्रकार के अभिनय नाना—करते सुख से दिवस बिताना!
लभ्य न क्या हम को अब होगा! नव जीवन आगम कब होगा!

(६)

वह पवित्र संसार कहाँ है ! बाल-सखा-परिवार कहाँ है !
वह नाटक, हे भ्रात कहाँ है ! शेष एक स्मृति मात्र यहाँ है ॥

(७)

पवित्रता थी भरी नयन में ; था माधुर्य्य-निवास श्रवण में ।
हृदय भक्ति से भरा हुआ था ; हास्य वदन पर धरा हुआ था ॥

(८)

वही नयन, मन, वही श्रवण है; वही हृदय है, वही वदन है ।
पर न रहीं अब वे सब बातें ; दिन पलटे ; पलटीं वे रातें ॥

(९)

बाल्य-खेल सुख सदन कहाँ हैं ! मृदुल धूल के भवन कहाँ हैं !
आंखमिचौनी , गिल्लीदण्डा, थे बचपन में सुख का झण्डा ॥

(१०)

मात-पिता के सुखद गोद में—साथ सखाओं के विनोद में ।
खेल बिताना नित दिन सारा—था शैशव-सुषमा का द्वारा ॥

(११)

जाति-भेद, मतभेद बिसारे, प्रकृत सरलता उर में धारे ,
हिलमिल क्रीड़ा कौतुक करते—थे हम अपने सब दुख हरते ॥

(१२)

भाई भाई लड़ जाते थे; सौंह न मिलने की खाते थे ।
पल में पर सबको बिसरा कर; एक साथ खाते घर जाकर ।

(१३)

ईर्ष्या, द्वेष, विरोध नहीं था; लोभ, मोह, मद, क्रोध नहीं था ।
शत्रु-मित्र सब में समता थी, प्रतिपक्षी से भी ममता थी ॥

(१४)

पर का उदय देख कर जलना; प्रतिहिंसा के पथ पर चलना ।
भाई पर भी खड्ग चलाना; शैशव में था किसने जाना ?

(१५)

सरल न तब किसका स्वभाव था ? लगा स्वार्थ का किसे घाव था ?
कहां एकता का अभाव था ? पूर्ण प्रीतिमय भ्रातृ-भाव था ॥

(१६)

निरुत्साह का नाम नहीं था; अविश्वास मन में न कहीं था ।
थी न घटा चिन्ता की छाई; दुख था तब न रोग था भाई !

(१७)

तब क्या जीवन-भार हुआ था ? विषमय क्या संसार हुआ था ?
प्राणों में थी भरी सरसता; सुख था आठों याम बरसता ॥

(१८)

विद्या से यदि हम वञ्चित थे; गुण तो भी हममें सञ्चित थे ।
अब सब विद्या से मण्डित हैं; पाखण्डों के हम पण्डित हैं ॥

(१९)

ईश्वर में अनुरक्ति अचल थी; मात-पिता में भक्ति अचल थी ।
श्रद्धा-संयुत थी आस्तिकता, ज्ञात न थी हमको नास्तिकता ॥

(२०)

बाल-काल ! आते सुधि तेरी आंखें भर आती हैं मेरी ।
साथ न अब तेरा होना है; इसीलिए ही यह रोना है ॥

पाण्डेय लोचनप्रसाद ।

शुद्ध हिन्दी ।

हिन्दी गद्य का आरम्भ हुए आज एक शतक से ऊपर समय बीत गया ; तो भी हिन्दी की लेख-शैली में अभी तक अपनी अपनी डफली और अपना अपना राग है । अँगरेज़ी में एक कहावत है कि जब वैद्य ही सहमत नहीं है तब निर्णय कौन करेगा ? इसी प्रकार जब हिन्दी के लेखक ही हिन्दी की लेख-शैली के विषय में कुछ निर्णय नहीं करते तब यह भाषा अपनी उन्नति के लिए किसका मुँह ताकेगी ? हिन्दी में लेख-शैली की भिन्नता बहुधा शब्दों के कारण होती है । जो लोग ठेठ हिन्दी के शब्द लिखते हैं उनके विषय में तो यह कहा जाता है कि वे लोग ये शब्द खोज खोज कर लाते हैं । पर जो लोग निरर्थक संस्कृत या फ़ारसी के शब्द लिखते हैं उनके विरुद्ध एक शब्द भी नहीं लिखा जाता । यद्यपि लेखकों के स्वभाव और लेख के गौरव के अनुसार भाषा में अन्तर पड़ना ही चाहिए, तो भी शब्दों के उपयोग में यह विचार आवश्यक है कि जो शब्द हम काम में लाते हैं वह उपयुक्त है या नहीं । यदि किसी एक विचार के लिए हिन्दी शब्द है और वह हिन्दी-प्रदेशों में एक रूप से प्रच-

लित है तो उसके बदले संस्कृत, फ़ारसी या अँगरेज़ी शब्द लिखने का क्या काम है? और, यदि हिन्दी का कोई ऐसा शब्द हो जो सब स्थानों में एक ही रूप में न बोला जाता हो तो लेख में उसका वह रूप दिया जाना चाहिए जो हिन्दी के मुख्य क्षेत्र में पाया जाता है। दूसरी भाषा के शब्दों का उपयोग तभी आवश्यक है जब कि मातृ-भाषा में न तो वैसा विचार हो और न वैसा शब्द। दूसरी भाषाओं को भी सम्बन्ध की निकटता के अनुसार प्रधानता दी जानी चाहिए। एक-देशी शब्द भी उसी प्रकार त्याज्य है जिस प्रकार अनावश्यक विदेशी शब्द। यहाँ पर कह देना असङ्गत न होगा कि पढ़नेवालों की योग्यता के विचार से भाषा सहज या कठिन होनी चाहिए। कठिन भाषा केवल कठिन शब्दों से ही नहीं बनती, वरन सहज शब्दों से वाक्य की रचना के कारण भी भाषा कठिन हो जाती है।

हिन्दी में देशी कहावत और मुहाविरों का उपयोग लेखक बहुधा नहीं करते। इसके बदले फ़ारसी के पद्यों की भरमार बहुत दिखती है। अगर इन कहावतों के बिना काम चलता न दीखे तो बात दूसरी है; पर देशी कहावतों से ही हिन्दी की शोभा है।

शास्त्रीय या धर्म-सम्बन्धी विषयों में कभी कभी एक दो साधारण शब्दों के स्थान में संस्कृत के उपयुक्त शब्द लाये जा सकते हैं; पर सहज विषय के लिए अपरिचित शब्द लाना या साधारण योग्यता के लोगों के लिए कठिन भाषा लिखना उचित नहीं है।

ऊपर कुछ विषयान्तर हुआ है। प्रस्तुत विषय की ओर लौट कर अब इस बात का निर्णय करना चाहिए कि हिन्दी में शुद्ध भाषा का सबसे अच्छा उदाहरण कौन है? हमें कविता के उदाहरण की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि अक्षरों की गिनती और तुकान्त के कारण उसमें कई अनावश्यक शब्द आ जाते हैं। शुद्ध हिन्दी का सबसे पहला और अच्छा उदाहरण प्रेम-सागर है। पण्डित लोग इसकी भाषा का तिरस्कार कर सकते हैं; क्योंकि इसमें बड़े बड़े समास नहीं हैं और हिन्दी-शब्दों के बदले संस्कृत-शब्द नहीं भरे गये हैं। तो भी इसमें घरू शब्दों के साथ साथ आवश्यक संस्कृत-शब्द भी आये हैं। थोड़ा पढ़ा भी इसकी भाषा सहज ही समझ सकता है। कुछ शब्द इसमें ऐसे भी हैं जो एकदेशी तथा ग्रामीण हैं; पर उनसे 'प्रेमसागर' की भाषा की मनोहरता में बाधा नहीं आई। इन शब्दों को छोड़ कर कोई भी हिन्दी-लेखक इसकी भाषा को आदर्श मान सकता है। पर यह भाषा शास्त्रीय विषय के अनुकूल नहीं है, क्योंकि उसके लिए इतने शब्द बस नहीं हैं। इस पुस्तक में एक विशेषता यह भी है कि भाषा में एक भी यवन-शब्द नहीं आया है। हम लोग यवन-शब्दों का इतना बहिष्कार नहीं कर सकते।

शुद्ध हिन्दी का दूसरा उदाहरण 'सत्य-हरिश्चन्द्र' है। इसमें आवश्यक संस्कृत और फ़ारसी शब्दों के साथ साथ ठेठ हिन्दी के भी कई शब्द हैं और इसकी भाषा सहज तथा स्वाभाविक है। इसमें और प्रेमसागर में बड़ा अन्तर भी है। 'प्रेम-सागर' की वाक्य-रचना में अँगरेज़ी शिक्षा का वह प्रभाव नहीं है जो 'सत्य-हरिश्चन्द्र' में पाया जाता है। इसके सिवा नये विचारों की उन्नति का प्रकाश करने के लिए 'सत्य-हरिश्चन्द्र' में कई नये शब्द भी आये हैं।

शुद्ध हिन्दी का तीसरा उदाहरण 'इतिहास-तिमिर-नाशक' का तीसरा भाग है। इसमें हमको ऐसे शब्द बहुत कम मिले हैं जिनकी आवश्यकता पुस्तक में न हो—अर्थात् जिनके बदले कोई और कठिन या सहज शब्द रक्खे जावें। उर्दू-शब्दों से भरे हुए दो भाग लिखने के पश्चात् राजा साहिब ने अपनी भाषा में हेर फेर करना उचित समझा है।

इन तीन पुस्तकों का नाम देने से हमारा यह आशय नहीं है कि आज तक शुद्ध हिन्दी में और

कोई ग्रन्थ नहीं लिखे गये हैं। ये तीन ग्रन्थ तीन शैलियों के नमूने हैं, और बहुत से ग्रन्थ इनमें से किसी न किसी भेद के अन्तर्गत हैं।

'शुद्ध हिन्दी' शब्द का उपयोग कोई कोई उसी अर्थ में करते हैं जिसमें बंगाली लोग 'साधु भाषा' का उपयोग करते हैं। साधु भाषा में केवल विदेशी शब्दों ही का बहिष्कार नहीं होता है, वरन प्रचलित बङ्गाली शब्दों के स्थान में भी संस्कृत शब्द आते हैं। 'शुद्ध हिन्दी' का ऐसा अर्थ नहीं है। शुद्ध हिन्दी वह हिन्दी है जिसमें अनावश्यक संस्कृत या फ़ारसी शब्द न हों और जिसे समझने के लिए साधारण हिन्दी जाननेवाले को बार बार कोश खोलने का काम न पड़े। यह सहज शुद्ध हिन्दी की परिभाषा है। असाधारण शिक्षित लोगों के लिए शुद्ध हिन्दी का कठिन रूप भी लिखा जा सकता है; पर वह विषय की गम्भीरता और भाषा की रचना पर अवलम्बित है।

हिन्दी की लेख-शैली में भिन्नता होने का दूसरा कारण व्याकरण का तिरस्कार है। हिन्दी का व्याकरण खड़ी बोली पर बना है और खड़ी बोली बहुत कम लेखकों की मातृ-भाषा है। यही कारण है कि शब्दों के रूपान्तर में भिन्नता पाई जाती है। लेखकों की मातृ-भाषा का प्रभाव उनके लेखों पर यहाँ तक पड़ता है कि कभी कभी उनकी घरू बोली ही अनुवाद-रूप से खड़ी बोली हो जाती है। हिन्दी की भिन्न भिन्न उपभाषाओं में केवल शब्दों ही का अन्तर नहीं है वरन रचना का भी अन्तर है। इस अन्तर के कारण कभी कभी अच्छे शिक्षित लेखक भी ऐसी भाषा लिखते हैं जो ठेठ हिन्दी होने पर भी "शुद्ध हिन्दी" नहीं कही जा सकती। अन्त में अपने मत को स्पष्ट और पुष्ट करने के लिए अब हम 'इतिहास' नामक एक लेख का कुछ भाग उद्धृत कर, संक्षेप में, उस पर टीका करेंगे :—

"इस विषय के प्राक् कथन के स्वरूप में जिन जिन बातों का वर्णन होना उचित था उनका यहाँ लौं वर्णन किया गया। अब स्वयं इस विषय के सम्बन्ध से विचार करते हैं। प्रथमतः इतिहास से क्या लाभ होता है? आपाततः यह प्रश्न बहुत ही अनुचित जान पड़ता है और साथ ही यह भी जान पड़ता है कि ऐसा प्रश्न कोई करता ही नहीं होगा। क्योंकि इससे और कुछ लाभ न हुआ तो मनुष्य की निसर्गजात जिज्ञासा की तृप्ति तो होती है। यह क्या कुछ कम लाभ है?"

उदाहरण के लिए इतना अंश बस होगा। इस अंश में छोटे टाइप के शब्द विचारणीय हैं। जिस वाक्य में 'प्राक्कथन' आया है उसी में 'लौं' रक्खा गया है। मानो मनः के रथ में एक ओर हाथी और दूसरी ओर गर्दभ जोता गया हो। यह लेख साधारण पढ़े लोगों के लिए नहीं है; पर उसका विषय इतना गम्भीर नहीं है कि उसका काम 'प्रथमतः' के बिना न चलता हो। विषय की गम्भीरता में भी 'आपाततः' से कोई विशेष काम नहीं निकलता। इतने लम्बे लम्बे शब्दों का उपयोग करके लेखक को अन्त में फ़ारसी के दो अक्षरों के 'कम' शब्द की शरण लेनी पड़ी! क्या 'कम' के लिए 'निसर्गजात' सदृश कोई शब्द नहीं मिलता था? इन शब्दों के उपयोग में लेखक की प्यारी इच्छा और मन की तरङ्ग ही मानो सिद्धान्त हैं। संस्कृत के कठिन शब्दों में एक 'जिज्ञासा' ही ऐसा शब्द है जिसके उपयोग की आवश्यकता इस लेख में है। अनावश्यक शब्दों के भरने से हिन्दी को क्या लाभ पहुँचता है?

इस लेखांश में व्याकरण के तिरस्कार के भी दो एक उदाहरण मिलते हैं। दूसरे वाक्य में कर्त्ता का लोप है। इसके ऊपर दो पृष्ठों में भी कहीं 'हम' शब्द नहीं आया है; तो भी उसका लोप हो गया। वाक्य पढ़ने से एकाएकी कर्त्ता का पता नहीं लगता। दूसरा उदाहरण 'करता होगा' के साथ 'नहीं' का उपयोग है। "न" और "नहीं" का अन्तर हिन्दी में नियम-पूर्वक मिलता है।

संक्षेप में मेरा मत यह है कि यह लेखांश "शुद्ध हिन्दी" में नहीं लिखा गया है, यद्यपि इसमें

बड़े बड़े संस्कृत-शब्द व्याकरण के शुद्ध रूप में आये हैं।

कामताप्रसाद गुरु।

रामचन्द्र के चरित्र-चित्र का धुँधला अंश।

रामायण हिन्दू मात्र का परम पूजनीय ग्रन्थ है। विदेशी विद्वान् भी इसको मान की दृष्टि से देखते हैं। परन्तु इसके नायक के चित्र के उज्ज्वल भाग को ही प्रकाशित करने के लिए बहुधा विद्वन्मण्डली की लेखनी चलती है। इसका धुँधला भाग प्रकट करने के लिए बहुत ही कम लोग लेखनी हाथ में उठाते हैं। अनेक विद्वानों के द्वारा चारों ओर से किये गये तिरस्कारों और फटकारों को सहन करने के लिए तैयार होजाना कम साहस का काम नहीं।

मर्य्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र के सद्गुणों और सत्कर्मों की ओर न जाकर मैं उनके चित्र का धुँधला भाग ही दिखलाने के लिए आज आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ। इससे यह न समझना चाहिए कि राम के प्रति मेरे हृदय में आदर नहीं है। नहीं, दीनवत्सल राम के प्रति उतनी ही भक्ति और उतना ही प्रेम है जितना कि एक सच्चे वैष्णव के हृदय में होना चाहिए।

शूर्पणखा के प्रार्थना करने पर राम ने उपहास से कहा "मैं तो विवाहित हूँ। तुम पराक्रमी लक्ष्मण के पास जाव"। राम का यह वाक्य लक्ष्मण को अविवाहित प्रमाणित करता है। परन्तु लक्ष्मण का विवाह सीताजी की चचेरी बहिन ऊर्मिला के साथ होचुका था। ऐसी अवस्था में रामचन्द्र पर मिथ्या भाषण करने का दोष लगता है। यद्यपि सांसारिक जनों में, परिहास में, मिथ्या भाषण करना दोष नहीं। तथापि नरश्रेष्ठ और मर्य्यादा-पुरुषोत्तम रामचन्द्र के मुख से अन्य की स्त्री के साथ उपहास और उससे मिथ्या भाषण दोनों ही बातें अच्छी नहीं लगतीं।

मायावी-मृग-रूप धारण करके जब मारीच बड़ी मनोहर गति के साथ इधर उधर हरी हरी घास खाता और उछलता कूदता फिरता था तब लक्ष्मण ने उसके कपट-वेश को अच्छी तरह जान लिया था। लक्ष्मण ने यह बात राम पर भी प्रकट करदी थी। तो भी राम ने लक्ष्मण के वाक्य पर विश्वास न कर मारीच के कपट-कर्म को सीता पर प्रकाशित न किया। सम्भव था कि इस मर्म के ज्ञात हो जाने पर जानकीजी मारीच-मृग के मारने का आग्रह न करतीं। उनका यही आग्रह महा-भीषण युद्ध और उत्कट कायापलट का विषम कारण हुआ। जब सीता के आग्रह करने पर भी लक्ष्मण ने उन को अकेली छोड़ कर जाना न चाहा तब सीता ने उन को शाप का भय दिखाया। भयभीत हो कर लक्ष्मण ने राम के पास जाने के लिए प्रस्थान किया। रामचन्द्र लौटे आरहे थे। मार्ग ही में वे लक्ष्मण को मिले। लक्ष्मण से सब बातें ज्ञात होजाने पर भी राम ने उन पर आज्ञा-भङ्ग करने का दोषारोपण किया और उन्हें कटुवाक्य कहे। यह बात मार्जनायोग्य नहीं।

पत्नी-वियोग में राम के दारुण दुःख और कातर विलाप को सुन कर उनमें रावण का वध करने की पर्याप्त शक्ति न होने की भी शङ्का बहुतों को होने लगती है।

राम का छिप कर वालि को मारना भी अमार्जनीय है। वानर जाति भारतवर्ष की प्राचीन नीच जातियों में से थी और यद्यपि उनमें परदारा-हरण आदि निन्दनीय बातों का होना कोई असाधारण बात न थी। फिर भी यह सर्वथा सम्भव था कि राम के समझाने पर तारा को वालि लौटा देता, क्योंकि उसके हृदय में राम-भक्ति का अङ्कुर विद्यमान था। परन्तु उन्होंने वैसा न किया। अपनी सहधर्मिणी सीता के हरे जाने पर तो साम, दान, दण्ड, भेद आदि विविध प्रकार की नीतियों का रामचन्द्र ने प्रयोग किया; यहाँ तक कि जानकी को लौटा देने पर अङ्गद के द्वारा रावण को अभय दान देने का सन्देश तक उन्होंने भेजा। अपने ऊपर आपड़ने पर तो

उन्होंने नीति का अवलम्बन किया; परन्तु वालि के लिए बिना उचितानुचित का विचार किये ही प्राण-दण्ड का निश्चय कर लिया। वालि-सुग्रीव के युद्ध के समय राम ने वृक्ष की ओट से वालि पर बाणों का प्रहार किया। यह बात युद्ध-शास्त्र और धर्म के सर्वथा प्रतिकूल है। राम सुग्रीव के सहायक हैं, इस बात से वालि अनभिज्ञ था। उस को आशा थी कि राम की दृष्टि में हम दोनों भाई एक सा दर्जा रखते हैं। आशाविरुद्ध राम-द्वारा अपने अकस्मात् वध पर वालि को नितान्त शोक तथा आश्चर्य्य हुआ।

स्वार्थसिद्धि ही के लिए राम ने वालि को मारा। राम ने सुग्रीव से कहा हैः—"मैथिली और उस दुष्ट रावण का खोज लगावो। तुम्हारा जो काम मेरे लायक़ हो निधड़क कहो और उसे सिद्ध हुआ समझो"। किष्किन्धा का राज्य सुग्रीव को देने पर राम ने फिर भी कहाः—"यह श्रावण वर्षा-ऋतु का प्रथम मास है। कार्त्तिक के आरम्भ में ही रावण-वध का उद्योग करना। यही हमारा तुम्हारा इक़रार है"।

राम ने कितने ही स्थानों पर सुग्रीव के प्रति "मित्र" शब्द का प्रयोग किया। उनकी इस मित्रता में भी स्वार्थ का समावेश था। वर्षा व्यतीत होने पर भोग-विलास में अधिक रत रहने के कारण सुग्रीव जब अपने वचन को भूल सा गया तब राम ने लक्ष्मण द्वारा सुग्रीव को यह सँदेसा भेजाः—"हे सुग्रीव, वह मार्ग सङ्कुचित नहीं होगया है जिससे वालि मर कर गया है। अतएव अपनी प्रतिज्ञा पर स्थिर रहो। वालि के मार्ग पर चलने की इच्छा मत करो"। लक्ष्मणजी ने भी तारा से कहा थाः—"सुग्रीव उपकार को प्राप्त होकर भी प्रत्युपकार करने में शिथिल दीख पड़ता है"। लक्ष्मण के कहे हुए ये शब्द भी रामचन्द्र की स्वार्थपरता प्रकट करते हैं।

राम पर सीता-निर्वासन का कलङ्क भी है। राम के आचरण पर यह कालिमा चन्द्रमा में ग्रहण के समान है। बेचारी सीता का क्या अपराध था जो उसे इतने समय तक अरण्य में अनेक यातनायें और पति-वियोग सहन करना पड़ा। माना कि राम ने प्रजा-मत-प्राबल्य तथा अपकीर्त्ति के कारण यह दुष्कर कार्य किया, परन्तु जिस अग्नि-परीक्षा के द्वारा लङ्का में सीता की शुद्धता सिद्ध की गई थी उसका अयोध्या में भी होना हर प्रकार सम्भव था। ऐसी कौन बात थी जो सीता को निर्दोष प्रमाणित करने में रोकती थी? राम ने अश्वमेध यज्ञ के समय सीता की विशुद्धचरित्रता प्रमाणित करने के लिए अग्नि-परीक्षा की बात कही है। क्या यह बात वे पहले ही कह कर प्रजा को विश्वास न दिला सकते थे?

यह हमारी समझ में नहीं आता कि रामचन्द्र ने किस नीति की किस धारा के अनुसार सीता के निर्वासन की व्यवस्था की। क्या वह स्वयं रावण के घर चली गई थी? क्या सीता किसी के प्राणों की प्यासी थी? फिर उसे ऐसा भीषण दण्ड क्यों? हा, सती साध्वी सीता, विधाता ने तेरे भाग्य में दुख ही दुख लिखा था। जो सीता निशि दिन पति के चरणारविन्दों का ध्यान करती थी उसी के प्रति राम का ऐसा कठोर और अन्याययुक्त बरताव! अफ़सोस! करुणायुक्त विलाप करते हुए राम ने स्वयं कहा है—"यदि मैंने अग्नि-परीक्षा अयोध्या-वासियों के सम्मुख की होती तो मुझे आज ऐसा दारुण दुःख न सहना पड़ता"। प्रत्येक सच्चा नृपति समस्त सांसारिक कार्यों को न्यायपूर्वक करता है और प्रत्येक बात के सच्चे तथा झूठे होने का ज्ञान प्राप्त करने के लिए खोज करता है। परन्तु राम, जो आदर्श नृप माने जाते हैं, सीता का परित्याग, बिना न्याय की कसौटी पर कसे ही, किये देते हैं। अपयश के डर से सीता का त्याग राम जैसे न्यायी नृप को कदापि शोभा नहीं देता। लोग कहते हैं कि राम ने धर्म-सङ्कट में पड़ कर ऐसा किया। यह उनकी भूल है। धर्म्म यदि न्यायानुकूल है तभी वह धर्म की परिभाषा के भीतर आ सकता है। पर राम का यह काम न्यायसङ्गत नहीं।

राम का किया हुआ तपस्वी शूद्र का वध भी समर्थन-योग्य नहीं। नीच जाति के कितने ही

पुरुष तपस्वी के बल से ब्राह्मणत्व को प्राप्त हुए हैं। तपस्या के ही द्वारा बहुत से लोगों ने वर्णाश्रम के नियमों का उल्लंघन तक किया है। मातङ्ग ऋषि, वाल्मीकि, विश्वामित्र आदि इस बात के जीते जागते उदाहरण हैं। प्राचीन काल में कर्म्म पर ही ज्ञाति निर्भर थी। फिर समझ में नहीं आता कि तपस्वी शूद्र के कैान से घोर अपराध के कारण राम ने उसे प्राण-दण्ड दिया ?

और भी कई बातें हैं जो यथावकाश सरस्वती के पाठकों की सेवा में उनके विचारार्थ निवेदन करूँगा।

प्यारेलाल वृष्णी।

केशिनी।

ब्रह्मचर्य प्रतिपाल, सीख विद्या व्यवहारी
चन्द्रकला सी बढ़ी केशिनी राजकुमारी।
उपवर उसे विलोक पिता-माता अकुलाये ;
शीघ्र स्वयंवर ठान, पत्र सर्वत्र पठाये ॥ १ ॥
आये राजकुमार अनेकों छवि में नीके ;
मुख पर थे प्रत्यक्ष भाव सब उनके जी के।
ऋषिकुमार भी कई वहाँ आये गुणशाली
जिनकी शोभा सरल सहज थी छटा निराली ॥ २॥
शुभ दिन और मुहूर्त्त स्वयंवर का जब आया
राजा का प्रण कठिन सभा में गया सुनाया।
जो बल, विद्या, नीति, रूप में बढ़ कर होगा
सो इस गुण की मूर्त्ति केशिनी का वर होगा ॥३॥
तब सखियों के सङ्ग किन्तु छवि में हो न्यारी
आई मण्डप-मध्य प्रभा सी राजकुमारी।
रूप-भार से झुकी भूमि पर दृष्टि लगाये
खड़ी हुई निज भाव हिये में सहज छिपाये ॥ ४ ॥
भक्त-श्रेष्ठ प्रह्लाद-पुत्र विद्वान विरोचन
राज-सुता के सङ्ग हुआ था जिनका पाठन।
यद्यपि सब के तुल्य निमन्त्रण पाकर आये,
कुल-विचार से अलग अकेले गये बिठाये ॥ ५ ॥
दोनों ने अनलखे हुए दोनों को देखा ;
सुमिर पुरानी प्रीति धन्य अपने को लेखा।
ज्यें ज्यें परिचय तुल्य गुणों में अधिकाता है,
त्यें त्यें उनमें प्रेम प्रबल बढ़ता जाता है ॥ ६ ॥
दोनों ने गुण-रूप परस्पर जाँच लिये थे ;
अब मिलने के लिए उमँगते उभय हिये थे।
तो भी देशाचार उन्होंने सभी निभाये ;
सहा बहुत अपमान, प्रेम के कष्ट उठाये ॥ ७ ॥
राजकुमारी इधर रीतिवत भवन सिधाई ;
उधर पिता ने लक्ष्य-भेद की जाँच कराई ;
केवल पाँच कुमार जाँच में पूरे ठहरे ;
फिर विद्या में मिले पाँच में दो ही गहरे ॥ ८ ॥
दोनों सुन्दर, नीति-निपुण, दोनों बलधारी ;
दोनों थे विद्वान, संयमी, शिष्टाचारी।
एक विरोचन तत्त्वज्ञान में कुशल बहुत थे ;
अपर सुधन्वा विज्ञ अङ्गिरा ऋषि के सुत थे ॥९॥
दोनों ने अब गूढ़ ज्ञान में वाद बढ़ाया ;
अपना अपना पक्ष योग्यता-सहित निभाया।
उनके सब गुण राज-पण्डितों ने जब देखे,
दोनों माने गये एक से उनके लेखे ॥ १० ॥
हो निराश भय-भीत उचित लज्जा के मारे ;
अभिलाषी सब शेष विवश निज देश सिधारे।
भीड़ घटी पर बढ़ी भूप को चिन्ता भारी ;
रानी भी अति दुखी हुई त्यें राजकुमारी ॥ ११ ॥
इधर विरोचन और सुधन्वा ने अनुमाना ;
राज-सभा को बहुत कठिन है वाद मिटाना।
तब दोनों ने कड़ी होड़ में प्राण लगाये ;
राजा, पण्डित, सचिव सभी इससे घबराये ॥१२॥
फिर दोनों प्रह्लाद भक्त को पञ्च बना कर
पहुँचे उनके पास सङ्ग में सब के जाकर।
सुन विवाद प्रह्लाद भक्त ने मत निर्धारा—
सब प्रकार निज पक्ष विरोचन ही है हारा ॥१३॥
तब राजा ने शीघ्र जोड़ कर कहा विनय से
महाराज ! हो गया बड़ा अनरथ इस जय से।
इस मत के अनुसार एक कन्या पावेगा ;
पर दूजा निर्दोष वृथा जी से जावेगा ॥ १४ ॥

महाराज रत्नसिंह का पत्र।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद।
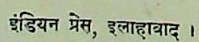
सुन यह घटना नई नेक प्रह्लाद न बोले ;
शान्त सिन्धु के तुल्य नहीं सङ्कट से डोले ।
धीर पिता के धीर पुत्र भी रहे अचञ्चल,
किन्तु गर्व में हुए सुधन्वा जय से चञ्चल ॥१५॥
तब राजा हो दीन सुधन्वा से यह बोले—
नाथ ! नहीं कुछ लाभ वृथा रस में विष घोले ।
अभी महल से आय केशिनी को ले जावें ;
पर निष्कारण प्राण न निर्दोषी के जावें ॥ १६ ॥
सोच सत्यता निठुर पुत्र के विषय पिता की
मुनिकुमार को सहज प्रेरणा हुई दया की ।
दान उन्होंने दिया विरोचन को जीवन का ;
फिर लेकर वैराग्य किया कन्या के मन का ॥१७॥

कामताप्रसाद गुरु ।

बड़े लाट लार्ड आकलेंड को हिन्दी में पत्र ।

कलकत्ते के वृहत् सरकारी पुस्तकालय (इम्पिरियल लाइब्रेरी) की नुमायशी आलमारियों में एक हिन्दी-पत्र सजा हुआ रक्खा है । पत्र बहुत चटकीला और मनोहर है । सुन्दर नेपाली काग़ज़ के चारों ओर सुनहली पट्टी पर पँचरंगे बेल-बूटों की चित्रकारी की हुई है । अक्षर नागरी और भाषा मारवाड़ी चाल की है । मैं उसे सहज ही पढ़ सका। उसमें पत्र-प्रेषक का नाम महाराजाधिराज राजराजेश्वर-शिरोमणि श्रीरत्नसिंहजी लिखा है । पर स्थान का नाम नहीं । इसलिए मुझे यह जानने की बड़ी उत्कण्ठा हुई कि यह किस राजा का भेजा हुआ पत्र है । मैंने तत्कालीन पुस्तकाध्यक्ष अनेक-भाषाविद् स्वर्गीय बाबू हरिनाथ दे महोदय से उक्त पत्र-सम्बन्धी विशेष बातें जानने की इच्छा प्रकट की । पत्र आलमारी खोल कर निकाला गया । उसके साथ एक लिफ़ाफ़ा और मिला । उस पर उन्हीं नागरी अक्षरों में बड़े लाट का नाम था । इसके सिवा अँगरेज़ी में इतना और भी लिखा था:—"एन० डबल्यू० पी० के छोटे लाट के सेक्रेटरी के दफ़र से २ जुलाई १८३६ ई० को रवाना होकर यहाँ १५ जुलाई को मिला" * । लिफ़ाफ़े के पीछे एक मोहर फ़ारसी में है; पर उसमें भी देश का नाम नहीं केवल—"रतनसिंह बहादुर महाराजाधिराज राजराजेश्वर"—लिखा है; और साथ ही २४०३ अङ्क लिखे हैं, जिसका मतलब कुछ समझ में न आया । इसके सिवा उर्दू में चार पाँच जगह तारीख़ आदि है, जो एन० डबल्यू० पी० के सेक्रेटरी के दफ़र के सङ्केत जान पड़ते हैं । उनमें एक जगह 'राजपूताना नागरी' भी लिखा है ।

मैंने पुस्तकाध्यक्ष महोदय से पुस्तकालय के दफ़र में और खोज की जाने का अनुरोध किया ; पर बहुत खोज करने पर भी पत्र के सम्बन्ध में और कोई बात न मालूम हुई । लाचार, मैंने उनसे पत्र का एक फ़ोटो लेने की प्रार्थना की । इस बात को उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया ।

इस पत्र से यह प्रमाणित है कि सत्तर अस्सी वर्ष पूर्व बड़े लाट तक को हिन्दी में पत्र लिखे जाते थे । इस पत्र को देखने से एक बात यह भी जानी जाती है कि हमारे देश के बने रङ्ग और स्याही कितनी अच्छी होती है और कितने दिन तक रहती है । सत्तर वर्ष का पत्र मानों कल का लिखा जान पड़ता है । कहीं फीकापन नहीं । पर इसी पत्र पर अँगरेज़ी की जो दो लाइन हैं उनकी स्याही उड़ कर लाल पड़ गई है ! अस्तु ।

इतिहास से जाना जाता है कि उस समय बीकानेर के सिंहासन पर श्रीमान् महाराज रत्नसिंहजी सुशोभित थे । इससे सिद्ध है कि यह पत्र उन्हीं का है । पत्र की भाषा भी इस बात की पुष्टि करती है ।

फोटो में इस पत्र को पढ़ने में शायद कष्ट हो । इस कारण इसकी याथातथ्य नक़ल नीचे दी जाती

---

* Transferred from the Secretary to Lt. Governor, N. W. P., 2nd July 1836. Received 15th July.

है। साथ ही फोटो भी इसका अलग प्रकाशित किया जाता है।

नक़ल।

॥ श्रीरामजी ॥

स्वति श्री सरबओपमां विराजमांन असरफुल ऊमराव नवाब लारद गवरनर जनरल श्री आकलंट साहब बहादर जोग्य महाराजाधिराज राजराजेश्वर सिरोमणि श्रीरतनसिंघजी लिखावतं जुहार बाचसौ अठैरा समंचार श्री जीरी सुनजर सूं भला छै राजरा सदा भला चाहीजै आप बड़ा छौ सदा सनेह व् ईष-लास राखौ छौ जिण सैं जियादा राखसौ अप्रंच अबार राजका षरीता अंगरेजी लिखा हुवा मुन-जमन तसरीफलाना आपका बीच कलकत्ते के करनैल नथांनीअल वीस साहब बहादर की मारफत आया सो जिसके देषनैं सैं अर मजमून के पढ़नैं सै चस्मां कूं अर दिल कूं निहायत रोसनी अर षुसी पैदा हुई श्री महाराज आप कूं इस जिलै में आणै का बहोत मुबारक अर षुसवकत रषै हम कूं ऊमेद है के आपकी मुलाकात सैं षुसी हासल होय् लेकन ये बात मूकूफ ऊपर बषत के है हमेसैं आपका मिजाज मुबारक की षुसषबरी अर हियां लायक काम काज होय सो लिषा करौगे समत १८९३ रा मीती असाढ प्रथम बदी ४

रामकुमार गोयनका।

---

*हिन्दी-हितैषी स्वर्गीय श्रीभूदेव मुखोपाध्यायजी, सी० आई० ई०।

राजानो यं प्रशंसन्ति यं प्रशंसन्ति पण्डिताः।
साधवो यं प्रशंसन्ति स पार्थ पुरुषोत्तमः॥

राजा लोग जिसकी प्रशंसा करें, पण्डित और साधुजन भी जिसकी बड़ाई करें, हे अर्जुन, वही पुरुष उत्तम है।

हमारे चरित्र-नायक में ये सब बातें पूर्णरूप से थीं। गवर्नमेंट से इनको अच्छा सम्मान प्राप्त था। पण्डित लोग इनकी प्रतिभा, विद्या, बुद्धि, गम्भीर गवेषणा आदि को बड़े आदर की दृष्टि से देखते थे। साधु सज्जन भी इनके सदाचार को आदर्श मानते थे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये आदर्श पुरुष थे। इसी लिए हम आज इनका चित्र और पवित्र संक्षिप्त जीवन-चरित सरस्वती के पाठकों की सेवा में उपस्थित करते हैं। इनके आदर्श जीवन में पाश्चात्य स्वदेशभक्ति और उद्यम, तथा प्राच्य धर्मनिष्ठा का शुभ सम्मिलन देखा जाता है। उससे हमको बहुत कुछ शिक्षा मिलती है। हमको विश्वास है कि इनके चरित्र का आंशिक अनुकरण करने से भी भारत की बहुत कुछ भलाई हो सकती है।

भूदेव बाबू के पूर्वपुरुष हुगली ज़िले के अन्तर्गत नतीबपुर नामक गाँव में रहते थे। इनके दादा श्री हरिनारायण सार्वभौम महाशय तीन भाइयों में सब से छोटे थे। भाइयों में पैतृक सम्पत्ति के बँटवारे में कुछ झगड़ा खड़ा हुआ। यह अपना हिस्सा न लेकर, घर छोड़, कलकत्ते चले आये और वहीं रहने लगे। इनके इसी आत्मत्याग से अगले वंश की उन्नति का सूत्रपात हुआ। इनके पुत्र-पौत्र बड़ेही प्रसिद्ध पुरुष हुए। भूदेव बाबू के पिता पण्डित विश्वनाथ तर्क-भूषण महाशय एक असाधारण पण्डित थे। उनके आचरण भी प्राचीन ऋषियों के ऐसे थे। इन्होंने तीर्थयात्रा में अनेक देशों को देखा भाला। घूमने से इनको सांसारिक बातों का भी अच्छा ज्ञान होगया। इनके एक शिष्य ने इनकी सहायता से मनु-संहिता का एक अँगरेज़ी अनुवाद प्रकाशित किया। उसकी प्रशंसा गोलडस्टूकर साहब ने की और उसे सर विलियम जोन्स के किये अनुवाद से भी कई

*इस जीवनी के नोट्स आदि देकर भूदेव बाबू के पौत्र, श्रीमान् बटुकदेव मुखोपाध्याय, एम० ए० ने हमारी विशेष सहायता की है। इसके लिए हम उनके चिरकृतज्ञ रहेंगे।
लेखक।

बातों में बढ़ चढ़ कर बतलाया। तर्कभूषण महाशय गवर्नमेंट से भी सम्मानित थे। ये बाँकुड़ा में जज-पण्डित थे।

कलकत्ता, हरीतकी बागान लेन में, सन् १८२५ की १२ वीं फ़रवरी (फाल्गुन कृष्ण ३) को भूदेव बाबू का जन्म हुआ। भूदेव बाबू लड़कपन में भी और लड़कों की तरह उद्धत या हठी नहीं थे। लड़कपन से ही इनको पढ़ने लिखने का बड़ा शौक़ था। इनके लड़कपन से ही यों शान्त होने का एक कारण यह भी था कि इनकी माता ब्रह्ममयी साक्षात् देवी थीं। पूजा-पाठ के सिवा उनकी पति-भक्ति अतुलनीय थी। वे नित्य स्वामी का चरणोदक लिये बिना जलपान भी नहीं करती थीं। उनकी पतिभक्ति और धर्मनिष्ठा प्राचीन आर्यनारियों से कम न थी। भूदेव बाबू जब तीन चार वर्ष के थे तब उन्होंने खेलते खेलते अपने पिता के जूते पहन लिये। उसी समय उनकी माता ने पति के लिए वारंवार प्रणाम कर बालक का अपराध क्षमा करने की प्रार्थना की, और वह जूता पुत्र के सिर पर रख कर उसके अज्ञात-पाप का प्रायश्चित्त करा डाला। ऐसी ही माता होने से लड़कों के मन में गुरुजनों की भक्ति बद्धमूल होती है और धर्मविश्वास की नींव पड़ती है।

आठ वर्ष तक अपने घर में ही शिक्षा पाकर भूदेव बाबू कलकत्ते के संस्कृतकालेज में भर्ती हुए। तीन वर्ष तक वहाँ संस्कृत की शिक्षा पाकर वे इंडियन-एकाडेमी नामक अँगरेज़ी स्कूल में चले गये। संस्कृतकालेज के प्रोफ़ेसर ऊलस्टन (Wollaston) साहब आप ही से इनको अँगरेज़ी पढ़ाने लगे। इंडियन-एकाडेमी में पढ़ कर फिर ये नवीन माधव के स्कूल में भर्ती हुए। इस स्कूल में इनको परीक्षा पास करने पर पहले नम्बर का इनाम मिला। उस समय इनके चचा का साला, जो इन्हीं के घर में पलता और साथ ही पढ़ता था, इनसे कहने लगा कि तुम यह इनाम मुझे देदो। तुम दुलारे लड़के हो, अगर इनाम न पाओगे तो भी तुमको कोई कुछ न कहेगा। मगर मुझे डाँट पड़ेगी। सरल और उदार-हृदय बालक भूदेव ने स्वीकार कर लिया और प्रौढ़ पुरुषों की तरह अपना यश दूसरे को अर्पण कर दिया। भूदेव बाबू ने यह बात किसी से नहीं कही। घर में दूसरे लड़के की ख़ूब प्रशंसा हुई। बहुत दिनों के बाद इनके चचा से और मास्टर साहब से भेंट हुई। मास्टर साहब ने भूदेव बाबू की बड़ी प्रशंसा की। तब सब रहस्य खुल गया। यह बात जब भूदेव बाबू के पिता ने सुनी तब उन्होंने कहा—बहुत अच्छा किया।

नवीन माधव के स्कूल में पढ़ कर फिर भूदेव बाबू मधु-चक्रवर्ती के स्कूल में और फिर हेयर-स्कूल में भरती हुए। वहाँ से फिर हिन्दू-कालेज में गये। इस समय अँगरेज़ी पढ़े लिखे लोगों में संस्कृत भाषा पर अश्रद्धा और अपने सनातनधर्म पर अनास्था ख़ूब बढ़ रही थी। अपने को सुशिक्षित समझने वाले नये लोग पुराने ब्राह्मणों की ख़ूब हँसी उड़ाते थे। पहलेही दिन भूगोल पढ़ाते पढ़ाते कालेज के मास्टर रामचन्द्र मित्र ने भूदेव बाबू से कहा—पृथ्वी नारङ्गी की तरह गोल है; लेकिन भूदेव, तुम्हारे पिता इस बात को न मानेंगे। पितृभक्त बालक ने घर में आते ही पिता से पूछा—पृथ्वी का आकार कैसा है। पिता ने कहा—पृथ्वी का आकार गोल है। उन्होंने उसी समय गोलाध्याय खोल कर दिखा दिया कि "करतलकलितामलकव-दमलं वदन्ति ये गोलम्"। दूसरे दिन भूदेव बाबू ने मास्टर साहब को यह वचन दिखलाया। मास्टर साहब ने झेंप कर कहा—बेशक मैंने ग़लती की थी। लेकिन बहुत से पण्डित इस तत्त्व से अनभिज्ञ हैं। वे पृथ्वी को समतल और त्रिकोण बतलाते हैं।

इसी समय भूदेव बाबू के पिता को घोर अर्थकष्ट का सामना करना पड़ा। किसी राजा के यहाँ से उनको पचास रुपया मासिक घर बैठे मिलता था। राजा के यहाँ से यह आज्ञा प्रचारित हुई कि वे विद्वान् पण्डित, जिनको वृत्ति मिलती है, महीने महीने आकर वृत्ति ले जाया करें। तेजस्वी ब्राह्मण

ने इसको अपना अपमान समझा और वृत्ति लेने नहीं गये।

हिन्दू-कालेज में, अपने क्लास में, भूदेव बाबू प्रधान छात्र थे। इन्हें अपना पाठ याद करने के सिवा और भी कई बालकों को पढ़ाना पड़ता था। लेकिन यह काम इन्होंने अपनी ख़ुशी से लिया था। आज कल देखा जाता है कि स्कूल में जो एक दो लड़के इस लायक़ होते भी हैं तो वे जी चुराते हैं। स्वयं पढ़ कर औरों को पढ़ाने में केवल औरों का ही भला नहीं होता, अपना भी विशेष उपकार होता है। पाठ पक्का होता है और पढ़ा हुआ नहीं भूलता। भूदेव बाबू लड़कपन में ही सवेरे साढ़े तीन या चार बजे उठते थे। वे उसी समय अपने लिखने पढ़ने का सब काम कर लेते थे। यही कारण था कि उन्हें औरों को पढ़ाने लिखाने का सुभीता रहता था। इस ब्राह्म मुहूर्त में ऐहिक या पारलौकिक, सब काम, करने का सुभीता होता है। इस समय हृदय शान्त और चित्त प्रसन्न रहता है। क्या विद्यार्थी बालक, क्या उद्योगी युवक, और क्या धर्मार्थी वृद्ध नरनारी, सबको इस समय उठने की आदत डालनी चाहिए।

हिन्दू-कालेज में भूदेव बाबू बहुत ऊँचे दर्जे के समझदार और सच्चरित्र छात्र समझे जाते थे। भूदेव बाबू ने अपने पिता से धर्म-कर्म का मर्म ख़ूब समझ लिया था। इसी से अँगरेज़ी की उच्च शिक्षा पाकर भी उनका दिमाग़ नहीं बिगड़ा। उनका विश्वास धर्म से नहीं डिगा। वे अपने धर्म के बड़े पक्षपाती थे और उनकी लिखी पुस्तकों में, ख़ास कर आचार-प्रबन्ध में, इसका पूर्ण परिचय मिलता है।

कालेज में मौलवी अब्दुललतीफ़ और माइकेल मधुसूदन दत्त इनके सहपाठी थे। एक दिन तीनों सहपाठी बैठे बातचीत कर रहे थे। आपस में प्रश्न हुआ कि कौन क्या चाहता है? तब, जो पीछे नवाबबहादुर की पदवी पाकर भोपाल रियासत के दीवान हुए उन मौलवी साहब ने कहा—मैं उच्च राजसम्मान चाहता हूँ। अपूर्व काव्य मेघनाद-वध के रचयिता माइकेल ने कहा—मैं बड़ा भारी कवि होना चाहता हूँ। किन्तु बालक भूदेव ने कहा—मैं तो यही चाहता हूँ कि कुछ भी जन्मभूमि की सेवा कर सकूँ। ईश्वर ने तीनों की अभिलाषा पूर्ण की।

सन् १८४६ में लिखना पढ़ना समाप्त कर भूदेव बाबू ने कालेज छोड़ा। फिर इन्होंने, धनोपार्जन के विचार से नहीं, बल्कि अपने अज्ञानान्ध भाइयों में शिक्षा प्रचार करने के लिए, इधर उधर घूम कर कई स्कूल खुलवाये। इस काम में बाबू चण्डीचरण मजूमदार और बाबू हरकाली मुकर्जी आदि कई अन्तरङ्ग बन्धु इनके सहायक थे। इस प्रकार भूदेव बाबू ने तीन साल तक अध्यापक रह कर अँगरेज़ी, बँगला और संस्कृत का प्रचार किया। इतने में इनकी छोटी बहन का व्याह आ पड़ा। हम पहले ही कह चुके हैं कि इनके यहाँ उस समय आर्थिक कष्ट था। भूदेव बाबू ने व्याह के लिए कुछ रुपया ऋण लिया। काम निकल गया। उसके बाद इन्होंने डाक्टर मोवट (Mowatt) के पास जाकर नौकरी की इच्छा प्रकट की। ये महाशय कौंसिल आफ़ एजूकेशन के सेक्रेटरी थे। उस समय दो स्थान ख़ाली थे। हिन्दू-स्कूल में सातवें क्लास के मास्टर की जगह और मदर्सा-कालेज में सेकंड मास्टर की जगह। पहली में ७५) रु० और दूसरी में ५०) रु० वेतन था। इसके सिवा पहली नौकरी रहने की जगह से पास ही थी और दूसरी नौकरी दूर थी। लेकिन भूदेव बाबू ने उच्चश्रेणी के छात्रों को शिक्षा देने की इच्छा से दूसरी ही नौकरी स्वीकार की। जो मासिक मिलता था उसमें से आधा तो वे घर में देते थे और आधे से ऋण चुकाते थे। ऋण चुक जाने पर वही आधा रुपया बंक में जमा करने लगे।

सन् १८४९ में भूदेव बाबू कलकत्ता-मदर्सा के सेकंड मास्टर हुए। यही उनकी पहली सर्कारी नौकरी हुई। भूदेव बाबू जिस दृष्टि से हिन्दू छात्रों

को देखते थे उसी दृष्टि से मुसलमान छात्रों को भी देखते थे। मुसलमान छात्र और इष्ट मित्र बराबर उनके घर पर आते और आदर पाते थे।

भूदेव बाबू अपने क्लास में पढ़ा कर हेड-मास्टर क्लिंगर साहब की भी प्रायः सहायता करते थे। उनके क्लास के लड़कों को भी वे पढ़ाते थे। हेड-मास्टर साहब प्रायः भूदेव बाबू के भरोसे क्लास छोड़ कर चले जाते थे। इन्स्पेक्टर कर्नल राइली को कालेज के मौलवी से यह हाल मालूम हो गया। उन्होंने एक दिन स्कूल में आकर ख़ूब आँखें लाल पीली कीं और भूदेव बाबू से पूछा कि हेडमास्टर कहाँ हैं? भूदेव बाबू ने उत्तर में नम्रता के साथ कहा कि आप अनुग्रह करके हेड-मास्टर साहब से ही पूछिएगा। इस उत्तर से कर्नल राइली मनही मन बहुत सन्तुष्ट हुए। उन्होंने कहा—"Young man, always behave thus and you will succeed in life." अर्थात् हे युवक, तुम बराबर ऐसा ही व्यवहार करना; तुम्हारे जीवन-कार्य्यों में उन्नति होगी। कर्नल साहब बड़े ही क्रोधी थे। उनको शीघ्र ही भूदेव बाबू की पदोन्नति (हवड़ा ज़िला स्कूल की हेडमास्टरी) के लिए सिफ़ारिश करते देख कर डाक्टर मोवर ने भूदेव बाबू से कहा—"How could you tame that tiger"? अर्थात् तुमने उस बाघ को कैसे क़ाबू में कर लिया?

इसी साल भूदेव बाबू हवड़ा ज़िला स्कूल के हेडमास्टर हो गये। भूदेव बाबू सब दर्जों में जाकर वहाँ की पढ़ाई देखते थे। अगर कोई लड़का पढ़ने में मन नहीं लगाता था तो ये उसे दण्ड न देकर दो तीन दिन अपने घर ले जाते थे और समझा बुझा कर पढ़ने में प्रवृत्त करते थे। बालक के हृदय में उच्च आशा भर कर उद्यम की आवश्यकता समझा देते थे। इनके समय में हवड़ा स्कूल की ख़ूब प्रसिद्धि और प्रशंसा हुई। इन्होंने सैकड़ों लड़कों को सुशिक्षित और सच्चरित्र बना दिया।

उस समय मिस्टर हजसन प्राट साहब हवड़े के मजिस्ट्रेट थे। इनसे भूदेव बाबू की बड़ी घनिष्ठता थी। एक दिन प्राट साहब ने स्कूल में भूदेव बाबू से मिल कर कहा—"आप कभी बँगले पर क्यों नहीं मिलते"? भूदेव बाबू ने सरलता के साथ उत्तर दिया—"साहब लोग प्रायः जी खोल कर बात चीत नहीं करते और उनके चपरासी उन तक जल्दी ख़बर नहीं पहुँचाते। यही कारण है कि भिन्न समाज के सुशिक्षित और कामकाजी लोगों से मिल कर, उनसे शिक्षा लेना और बुद्धि को बढ़ाना आवश्यक समझ कर भी हम लोग अलग ही रहते हैं।" उसी दिन से साहब ने ऐसी व्यवस्था कर दी कि भूदेव बाबू के लिए कोई रोंकटोंक नहीं रही। वे जब जाते तभी सीधे साहब के रीडिंगरूम में जाकर बैठते थे। प्राट साहब भूदेव बाबू को बहुत मानते थे। एक बार भूदेव बाबू को बुख़ार आया। ख़बर पाकर मिस्टर प्राट और उनकी मेम ने आकर इलाज का प्रबन्ध किया और सेवा-शुश्रूषा भी की। भूदेव बाबू के मरने पर मि० प्राट ने विलायत के एक पत्र में लिखा था:—

"I see clearly, as if it were yesterday, that tall dignified figure in his pure white robe and those handsome features of fair complexion. He spoke with that thoughtfulness and gravity which mark the Hindu of high caste."

अर्थात् उस साफ़ सुथरी पोशाक से शोभित सुन्दर गौरवर्ण शरीर और उच्चभाव-सूचक आकृति को जैसे स्पष्ट रूप से अपनी आँखों के आगे देखता हूँ। वह कितने दिनों की मुलाक़ात, बात-चीत और परिचय जैसे कल की बात जान पड़ती है। वे ऊँचे दर्जे के हिन्दू की स्वाभाविक चिन्ताशीलता और गम्भीरता के साथ बातचीत करते थे।

प्राट साहब विलायत में कभी कभी अपने लड़कों से पूछते थे—"Who is my best friend in India"? अर्थात् भारत में मेरा सबसे अच्छा

दोस्त कौन है ? लड़के अपने बाप की शिक्षा के अनुसार कहते थे—"भूदेव मुखर्जी।"

भूदेव बाबू भी कहा करते थे—"मुझ से अनेक अँगरेज़ों से परिचय हुआ और वे सब मेरे हितैषी हुए। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अच्छे अँगरेज़ों से मिल कर कुछ न कुछ अवश्य सीखा जा सकता है। इसके सिवा उनके सङ्ग से यह इच्छा प्रबल होती है कि हम फिर अपने पूर्वजों का ऐसा गौरव प्राप्त करें। स्वावलम्ब, जातीयता और देशानुराग की शिक्षा तो अँगरेज़ों से बढ़ कर और किसी जाति से नहीं मिल सकती।" भूदेव बाबू अच्छे अँगरेज़ों को बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। वे उनको वर्तमान भारत में 'एका बढ़ानेवाले' और 'भगवान् के भेजे हुए शिक्षक' समझते थे। वे अँगरेज़ों के सुश्रृंखलाबद्ध कार्य-क्रम और तत्परता की प्रशंसा किया करते थे।

सन् १८५६ में भूदेव बाबू हुगली-नार्मल-स्कूल के हेडमास्टर हुए। इस जगह उन्होंने बड़े परिश्रम और यत्न से मन लगा कर अपना काम किया। उस समय इस स्कूल के छात्रों को सभी स्कूलों के सेक्रेटरी अपने यहाँ मास्टर बनाने के लिए उत्सुक रहते थे।

इसी समय भूदेव बाबू के पहले पुत्र महेन्द्रदेव का स्वर्गवास हो गया। लड़का बहुत सुशील और तेज़ था। उसकी बुद्धि और स्मरणशक्ति बहुत अच्छी थी। वह बारह वर्ष की अवस्था में ही एन्ट्रेंस का कोर्स पढ़ता था। साधारण ज्वर आया और कुछ घंटों में ही मृत्यु हो गई। इस दुर्घटना से भूदेव बाबू को बड़ा भारी दुःख हुआ।

इसी बीच में इन्स्पेक्टर उडरो साहब ने छः महीने की छुट्टी ली। उनकी जगह पर मेड्लिकट साहब आये। मगर वे शिक्षाविभाग का काम बिल्कुल न जानते थे। इस लिए भूदेव बाबू को उनके सहकारी का स्थान मिला। मेड्लिकट साहब भूदेव बाबू को बहुत चाहते थे। भूदेव बाबू भी उनसे बड़ा स्नेह रखते थे। कुछ दिन बाद साहब पागल होगये। भूदेव बाबू ने साहब के बँगले के पास तम्बू में ४० दिन रह कर साहब की देखरेख और सेवा की। पागलपन की हालत में भी जब (साहब का दिमाग़ बहुत ख़राब हो जाता था) भूदेव बाबू "मेड्लिकट" कह कर पुकारते थे तब साहब शान्त होकर खाते और सो जाते थे। मेम साहब या और कोई साहब को नहीं शान्त कर सकता था।

सन् १८६२ के जुलाई मास में भूदेव बाबू स्थायी रूप से स्कूलों के असिस्टेंट इन्स्पेक्टर नियत होगये। उस समय सेक्रेटरी आफ़ स्टेट की यह इच्छा हुई कि कई एक प्रधान ज़िलों में प्राथमिक शिक्षा और बढ़ाई जाय। इस कार्य में भूदेव बाबू ने बड़ी सहायता की।

सन् १८६३ के जनवरी मास में भूदेव बाबू एडीशनल इन्स्पेक्टर बनाये गये और उनको स्वतन्त्र होकर काम करने का अवसर दिया गया। उन्होंने गवर्नमेंट की इच्छा को अच्छी तरह पूर्ण किया। इसके पुरस्कार में उनको अस्थायी रूप से शिक्षा-विभाग का सर्वोच्च पद मिला। वे डाइरेक्टर किये गये।

सन् १८६९ में गवर्नमेंट ने उन्हें युक्तप्रदेश और पञ्जाब की प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध में हल्क़ाबंदी की प्रथा के बारे में रिपोर्ट करने का काम सौंपा। भूदेव बाबू ने जाँच करके रिपोर्ट की और उसे बङ्गाल-गवर्नमेंट, भारत-गवर्नमेंट और स्टेट-सेक्रेटरी ने बहुत पसन्द किया। सर ऐशली ईडन ने उस रिपोर्ट को देख कर कहा—"It is gem of a report." अर्थात् यह रिपोर्ट एक रत्न है। इस रिपोर्ट में खूबी यह थी कि भूदेव बाबू ने अपने विरुद्ध सम्मति देनेवालों के वाक्य उद्धृत कर उन्हीं से अपने मत का समर्थन किया था। फल यह हुआ कि पहले बङ्गाल में और फिर युक्तप्रदेश और पञ्जाब में भी प्राथमिक शिक्षा के लिए प्रजा पर नया कर लगाने का प्रस्ताव नामंज़ूर कर दिया गया। इसके बाद भूदेव बाबू १५००) रु० महीने पर सर्किल इन्स्पेक्टर हो गये।

सन् १८७२ में भूदेव बाबू की स्त्री का देहान्त होगया। इससे भूदेव बाबू को बड़ा कष्ट हुआ। उनका स्वास्थ्य भी कुछ ख़राब हो गया। भूदेव बाबू बड़े स्पष्टवक्ता थे। इसलिए बङ्गाल के छोटे लाट सर जार्ज कैम्बेल से कुछ मनोमालिन्य हो गया। भूदेव बाबू ने छुट्टी लेली। कुछ दिन तक आसाम और बर्मा में घूमे। उस समय बर्मा के कमिश्नर ईडन साहब ने (जो पीछे से बङ्गाल के छोटे लाट होगये थे) भूदेव बाबू के सम्बन्ध में सर जार्ज कैम्बेल को एक पत्र लिखा था। उसका कुछ अंश हम नीचे उद्धृत किये देते हैं—"Let me say a word to you about my old friend, Babu Bhoodeb Mokerjea. Bhoodeb has many of the higher qualifications of the Europeans and very few failings of his countrymen. * * I should like to think that five out of ten of our civilians are as conscientious workers. as he is." अर्थात् मैं अपने पुराने मित्र बाबू भूदेव मुकर्जी के सम्बन्ध में एक बात कहता हूँ। वह यह है कि उनमें यूरोपियन लोगों के अनेक उच्च गुण हैं। उनके देश के लोगों में जो त्रुटियाँ देखी जाती हैं वे उनमें बिलकुल ही नहीं हैं, यह तो नहीं कहा जा सकता, पर ऐसी त्रुटियाँ हैं भी उनमें तो बहुत कम हैं। हमारे सिविलियन भाइयों में दस में पाँच ही उनके समान विवेकपूर्वक काम करने वाले होंगे।

सन् १८७७ में पटने के सात ज़िलों (उस समय तिर्हुत कमिश्नरी अलग नहीं हुई थी), भागलपुर के पाँच ज़िलों, बर्दवान के छः ज़िलों और उड़ीसा के तीन ज़िलों, सब मिला कर इक्कीस ज़िलों की शिक्षा का प्रबन्ध भूदेव बाबू को सौंपा गया। उनके नीचे कई एक असिस्टेंट इन्स्पेक्टर भी नियत थे। इसके बाद गवर्नमेंट ने सी० आई० ई० की उपाधि देकर उन्हें सम्मानित किया। इसी अवसर में शिक्षाविभाग के डाइरेक्टर क्राफ्ट साहब की तबीयत कुछ ख़राब हो गई। उन्होंने तीन महीने की छुट्टी लेने का विचार किया। उस स्थान पर भूदेव बाबू को नियत करने का प्रस्ताव हुआ। यह देख कर कई यूरोपियन इन्स्पेक्टरों और कालेज के प्रिंसिपलों ने इसका विरोध और क्राफ़्ट साहब से छुट्टी न लेने का अनुरोध किया। उन्होंने यहाँ तक कह दिया कि अपने देश के लोगों को एतद्देशीय लोगों के अधीन काम करने के लिए विवश करके स्वास्थ्य ठीक करने की अपेक्षा मर जाना ही भला है। क्राफ़्ट साहब ने छुट्टी न ली। अपने भाइयों के जाति-गर्व-गौरव की रक्षा करने से उनकी तबीयत भी अच्छी होगई। धन्य अँगरेज़ जाति, तुम्हारा स्वाभिमान धन्य है।

इसके बाद भूदेव बाबू ने एक बहुत अच्छा काम किया, जिसके लिए हिन्दीभाषाभाषी लोग उनके चिरकृतज्ञ रहेंगे। बिहार की अदालतों में उस समय फ़ारसी अक्षर प्रचलित थे। भूदेव बाबू के उद्योग से गवर्नमेंट ने उनकी जगह पर नागरी लिपि प्रचलित की। उस समय यह बात चली थी कि बहुत से हिन्दू (कायस्थ आदि) भी उर्दू के पक्षपाती हैं। इसके उत्तर में भूदेव बाबू ने कहा—"बिहारी हिन्दू बालक अपनी मातृभाषा हिन्दी, धर्म की भाषा संस्कृत और राजा की भाषा अँगरेज़ी सीखें। और मुसलमानों के लड़के प्रचलित भाषा हिन्दी, धर्म की भाषा अरबी और राजा की भाषा अँगरेज़ी सीखें—यही उचित है। बिहारी बालक उर्दू या फ़ारसी सीखने के लिए क्यों विवश किये जाते हैं? क्या इस लिए कि पहले के राजा मुसलमानों ने हिन्दी को विकृत कर दिया और विदेश से एक नई लिपि तथा भाषा ले आये? यदि यही है तो इँगलैण्ड में विजेता सेक्सन लोगों की जर्मन भाषा और विजेता नार्मन लोगों की फ़रासीसी भाषा आज भी उसी तरह प्रचलित रखनी चाहिए। इत्यादि"। ईडन साहब इस उत्तर से बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने भूदेव बाबू की बात मान ली।

इस काम से विहार के लोग भूदेव बाबू से इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने उनकी प्रशंसा में कई एक गीत बना डाले और वे गीत गली गली सुनाई देने लगे। पण्डित अम्बिकादत्त व्यास के बनाये दो गीत हम यहाँ डाक्टर ग्रियर्सन साहब की बनाई

बिहारी व्याकरण-माला के भोजपुरीखण्ड से उद्धृत किये देते हैं:—

"कचहरियों में नागरी अक्षर चलित होने के विषय में सरकार की प्रशंसाः—

(१)

पूर्वी गीत।

धन्य धन्य गवर्नमेंट परजासुखदाई।
यावनी के दूर करी नागरी चलाई॥
'भुवनदेव' करि पुकार लाट निकट जाई।
परजा दुख दूर करहु यावनी दुराई॥
नानाविधि जाल होत यावनी में राई।
परजा में हरष होत विद्या निज पाई॥
धन्य बुद्धि धनि विचार धन्य अन्तर माई।
करि नियाव हिन्द बीच हिन्दुई चलाई॥
परजा नित सुयश गाव अम्बिका मनाई।
जब ले चंद सुरज रहैं राज रहै भाई॥

(२)

हुकुम भईल सरकारी,
रे नर सीखो नागरिया।
यावनि जी से देहु दुराई,
पढ़ि गुनि काज करो नरहरिया॥
लै पोथी नित पाठ करहु अब,
यावनि ग्रंथ देहु पैसरिया॥
जब ले नागरी आवत नाहीं,
कैथी अक्षर लिखो कचहरिया।
धन्य मन्त्री प्रजाहितकारी,
अम्बिका मनावत राज विक्टोरिया॥

भूदेव बाबू ने अपनी लिखी पुस्तकों में भी हिन्दी की प्रशंसा, उसके प्रचार की आवश्यकता और उसके राष्ट्रभाषा बनने की योग्यता दिखलाई है। हम दो तीन स्थलों को यहाँ उद्धृत करते हैं:—

(१) विद्याचर्चा की बढ़ती के साथ संस्कृत-रत्नाकर से भी बहुत से शब्द निकाले जाकर चलित भाषा में मिलाये जायँगे। यों होते होते हमारी भिन्न भिन्न भाषायें परस्पर निकट होती जायँगी; इतना अन्तर नहीं रहेगा। अर्थात् सब भाषायें एकता की ओर अग्रसर होंगी। भारत में जितनी भाषायें प्रचलित हैं उनमें हिन्दी या हिन्दुस्तानी ही सब से प्रधान है। वह पहले के मुसलमान बादशाहों और कवियों की कृपा से एक प्रकार देश भर में व्याप्त हो रही है। इस लिए अनुमान किया जा सकता है कि उसी के सहारे किसी समय सारे भारत की भाषा एक हो जायगी"।

(सामाजिक प्रबन्ध, पृ० २२५)

भूदेव बाबू की यह भविष्यद्वाणी अब सफल होती देख पड़ती है।

भूदेव बाबू ने भारत के इस विराट् समाज के सब अंशों में परस्पर सहानुभूति बढ़ाने के उपाय जहाँ लिखे हैं वहाँ हिन्दी भाषा के व्यवहार को ही प्रधानता दी है। आप लिखते हैं:—

(२) "स्वदेशी लोगों के प्रति सर्वदा आदर दिखलाना चाहिए। हमें ध्यान रखना चाहिए कि हम सब एक ही पुण्यभूमि में पैदा हुए और पले हैं। हमारे अन्तःकरण की गठन परस्पर अभिन्न है। भारत के अधिकांश लोग हिन्दी में बातचीत कर सकते हैं। इस लिए भारतवासियों की बैठक में अँगरेज़ी, फ़ारसी का व्यवहार न होकर हिन्दी में बातचीत होनी चाहिए। साधारण पत्र-व्यवहार भी हिन्दी ही में होना चाहिए। हमारे पड़ोसी या इष्ट-मित्र, चाहे वे मुसलमान, कृस्तान, बौद्ध आदि कोई भी हों, सब सहज में हिन्दी समझ सकते हैं"। इत्यादि।

(सामाजिक प्रबन्ध, पृ० २८५)

और एक जगह लिखा है:—

(३) "एक ही वर्ण के लोग भिन्न भिन्न देश में रह कर एक दूसरे से विवाह-सम्बन्ध नहीं करते। जैसे बङ्गाल के कायस्थ और पछाँह के कायस्थों में, दोनों के कायस्थ होने पर भी, विवाह-सम्बन्ध नहीं होता। किन्तु यह सङ्कीर्णता अब उचित नहीं है। पहले एक देश से दूसरे देश में जाने आने का

श्रीभूदेव मुखोपाध्याय, सी० आई० ई० ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

सुभीता न था। इसी से इस सङ्कीर्णता का जन्म हुआ। अब इस तरह पर विवाह-सम्बन्ध प्रचलित होने से भारत का समाज दृढ़ होगा, और एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश की सहानुभूति बढ़ेगी। इसके साथ ही हिन्दी भाषा का भी सर्वत्र अधिक प्रचार होगा, जो कि बहुत ज़रूरी है"।

(सामाजिक प्रबन्ध, पृ० २३६)

बाँकीपुर का खड्गविलास प्रेस भूदेव बाबू ने ही स्थापित किया था। पहले इसका नाम बुधोदय प्रेस था। बाबू रामदीनसिंह को भूदेव बाबू ने यह प्रेस दे डाला। तबसे यह सिंह जी की सम्पत्ति हो गया।

भूदेव बाबू ने बँगला की बहुत सी पुस्तकों का हिन्दी अनुवाद करा कर उन्हें प्रकाशित कराया है। स्कूलों के प्राइज़-फंड से धन-दान कर हिन्दी में नई पुस्तकों की रचना भी कराई है। इस काम में पण्डित शिवनारायण शास्त्री, पण्डित दुर्गाप्रसाद मिश्र, पण्डित छोटूराम त्रिवेदी और बाबू रामदीनसिंह उनके सहायक थे।

भूदेव बाबू ने अपने परम प्रीतिभाजन पण्डित रामगति न्यायरत्न महाशय को बाँकीपुर से एक चिट्ठी लिखी थी। उसका कुछ अंश हम यहाँ उद्धृत करते हैं। पाठक उसे पढ़ कर समझ सकेंगे कि भूदेव बाबू हिन्दी के क्यों पक्षपाती थे। वह इस प्रकार है:—

"इस प्रदेश से फ़ारसी दफ़्र उठ जाने की आज्ञा हुई है। इससे मुसलमान और उन्हीं के सदृश कुछ हिन्दू भी बहुत गोलमाल कर रहे हैं। वे मुझको दोष देते हैं। जो लोग फ़ारसी के पक्ष में नहीं हैं वे मुझ से परम प्रसन्न हैं। ... ... जब से मैं विहार में आया हूँ तभी से फ़ारसी को उठा देने की चेष्टा कर रहा हूँ। मेरे आने के पहले यहाँ जातीय भाषा (हिन्दी) के स्कूलों की बहुत बुरी हालत थी; कोई उनका आदर नहीं करता था। मैंने आकर उन उपेक्षित स्कूलों पर ध्यान दिया और उनकी उन्नति की। अब यहाँ हिन्दी के स्कूलों की संख्या पहले से दस गुनी हो गई है। सन् १८३९ में बङ्गाल से फ़ारसी के दफ़्र उठ गये और सच पूछो तो तभी से बङ्गाल की उन्नति हुई। क्योंकि, तभी से वङ्ग-भाषा की श्रीवृद्धि का सूत्रपात हुआ। हिन्दी के प्रचार से क्या विहार की वही दशा न होगी? क्यों न होगी? मुझे आशा है कि बङ्गाल में जितनी उन्नति ४० वर्ष में हुई है उतनी विहार में १५-१६ वर्ष के भीतर ही हो जायगी। मैं अपने इस तुच्छ जीवन के छोटे छोटे कामों में इस काम को बड़े महत्त्व की दृष्टि से देखता हूँ। ... ..."

भूदेव बाबू को दृढ़ विश्वास था कि विदेशी जीवन-चरित पढ़ने से बालकों की शिक्षा के एक अंश की विशेष क्षति होती है। वे समझते हैं कि इस देश में आदर्श-चरित लोग उत्पन्न ही नहीं हुए। इसी लिए भूदेव बाबू ने चरिताष्टक, नीतिपथ और रामचरित आदि कई किताबें लिखाई थीं। हिन्दी में गया का भूगोल भी उन्हीं की सम्पूर्ण सहायता और उत्साह से लिखा गया है।

सन् १८८२ में भूदेव बाबू बङ्गाल की व्यवस्थापक सभा के मेम्बर बनाये गये। इस समय वे शिक्षाकमीशन के भी मेम्बर थे। सन् १८८३ के जूलाई मास में भूदेव बाबू ने पेंशन ले ली। इसके बाद काशी में जाकर वेदान्तशास्त्र पढ़ा। परमहंस श्री १०८ भास्करानन्द सरस्वती उनको बहुत मानते थे। यहाँ तक कि उन्हें 'पिता' कह कर पुकारते थे। स्वामीजी की समाधि में मूर्ति के नीचे जो संस्कृत के श्लोक खुदे हैं वे भूदेव बाबू के ही बनाये हुए हैं। भूदेव बाबू काशी से लौट कर चूँचुड़ा में रहने लगे। वहाँ उन्होंने संस्कृत-प्रचार के लिए, सन् १८८९ में, १७ अप्रैल को पिता के नाम से एक पाठशाला स्थापित की। फिर सन् १८९४ की ६ जनवरी को अपने पिता के नाम से विश्वनाथ-फंड स्थापित किया। उसमें भूदेव बाबू ने अपनी कमाई का १ लाख ६० हज़ार रुपया जमा कर दिया। साथ ही यह भी व्यवस्था कर दी कि इस रुपये के सूद की आमदनी का एक पञ्चमांश मूल धन में जमा होता रहेगा और बाक़ी से संस्कृत के शिक्षकों और छात्रों को वृत्तियाँ दी जायँगी। इस फंड के सूदी काग़ज़-पत्र

बङ्गाल बैंक में जमा हैं। एजूकेशन गज़ट में हर साल इस फंड का हिसाब प्रकाशित हुआ करता है। बङ्गाल, बिहार, उड़ीसा में श्रुति-स्मृति और दर्शन-शास्त्रों के अध्यापकों को ५०) रु० साल और काशी के छात्रों को ३६) रु० साल वृत्ति दी जाती है। इस साल ८४ शिक्षकों और २० छात्रों को वृत्ति दी गई है। इस फंड से दो ख़ैराती औषधालय (एक कविराजी और एक होमिओपैथी) भी चलते हैं। भूदेव बाबू ने ये औषधालय अपनी माता 'ब्रह्ममयी' के नाम से स्थापित किये हैं।

भूदेव बाबू धर्मशिक्षा के बड़े पक्षपाती थे। उनका ख़याल था कि धर्मोन्नति के बिना भारत की सच्ची उन्नति नहीं हो सकती और उस धर्मोन्नति के लिए गाँव गाँव में संस्कृत-पाठशालायें स्थापित होकर उन में सदाचारी, निर्लोभ, तेजस्वी और सुपण्डित अध्यापक तथा पुरोहित तैयार होने चाहिए। भूदेव बाबू कहा करते थे कि हमारे देश में समाज की रक्षा ब्राह्मणों के ही द्वारा हो सकती है। सच्चे और कर्मठ ब्राह्मण तैयार करना ही समाज और देश की उन्नति चाहने वालों का पहला कर्त्तव्य है।

सन् १८९४ की १६ मई को वैशाखशुक्ल ११ के दिन सत्तर वर्ष की अवस्था में, चूँचुड़ा में, गंगा तट पर ईश्वर का ध्यान करते करते महात्मा भूदेव बाबू का आत्मा इस लोक को छोड़ कर परम पिता की शरण में चला गया।

भूदेव बाबू ने कई मौलिक और अति उत्तम पुस्तकें बँगला में लिखी हैं। भूदेव बाबू की ग्रन्थावली देखने से उनकी प्रखर प्रतिभा, मनन और विचार की अपूर्व शक्ति, विद्वत्ता, मातृभाषा-प्रेम, स्वदेशानुराग आदि का पता लगता है। भूदेव बाबू और उनकी ग्रन्थावली के विषय में हमको अभी और भी लिखना है। फिर लिखेंगे।

रूपनारायण पाण्डेय।

सान्त्वना।

(रघुवंश से)

उस प्रिय जन का शोक न धीरज बिना झिलेगा,
रोने से वह कहाँ ? मरण से भी न मिलेगा।
तन तज कर परलोक जीव ज्यों ही जाते हैं,
कर्म्मों के अनुसार भिन्न गतियाँ पाते हैं॥ १॥
सोच व्यर्थ है, धैर्य्य धरो, मन को समझाओ,
तत्सम्बन्धी शेष कर्म्म कर शान्ति बढ़ाओ।
स्वजनों का अति रुदन प्रेत-पीड़क होता है,
कहते हैं—वह शान्त भाव उस का खोता है॥ २॥
जीवन तो है विकृति मरण है प्रकृति हमारी,
कहते हैं बुध-वृन्द सृष्टि नश्वर है सारी।
लेते हैं क्षण मात्र श्वास जो जीवनधारी,
निश्चय उन के लिए लाभ है यह भी भारी॥ ३॥
प्रिय-विनाश से भ्रान्त बुद्धि वाले रोते हैं,
मान हृदय में विद्ध शेल व्याकुल होते हैं।
किन्तु मुक्ति का द्वार उसे जो विज्ञ जानते—
उलटा निकला हुआ शेल हैं उसे मानते॥ ४॥
जब अपने ही देह और देही भूतल में—
हैं संयोग-वियोगशील विश्रुत पल पल में।
अन्य विषय का विरह, घटे फिर चाहे जैसे—
दे सकता है ताप कहो, विज्ञों को कैसे ?॥ ५॥
उचित नहीं हे वीर ! तुम्हें निज धीरज खोना—
इतर जनों के सदृश शोक के वश में होना।
वृक्ष और गिरि-मध्य रहा क्या भेद परस्पर—
यदि दोनो ही हिलें वायु से व्याकुल हो कर ?॥ ६॥

मैथिलीशरण गुप्त।

महाराज हर्षवर्द्धन।

महाराज हर्षवर्द्धन बड़े वीर, बड़े विद्वान् और महादानी नरेश हो गये हैं। उन्होंने अपनी सुकीर्ति से संसार को व्याप्त कर दिया था। सातवीं शताब्दी में उनका जन्म हुआ था। उनका दूसरा नाम शीलादित्य था।

उनके पिता का नाम प्रभाकरवर्धन था। प्रभाकर-वर्द्धन दिल्ली के निकटवर्त्ती थानेश्वर के अधिपति थे। हर्षवर्द्धन बाल्यकाल से ही—अपने पूज्य पिता के समय में ही—संग्राम-भूमि में जाने और अपनी युद्धकुशलता का परिचय देने लगे थे। आप के बड़े भ्राता का नाम राज्यवर्द्धन था। आपके एक भगिनी भी थी। वह राजेश्वरी देवी के नाम से विख्यात थी।

महाराज प्रभाकरवर्द्धन के स्वर्गवासी होने पर आपके बड़े भ्राता थानेश्वर के सिंहासन पर आरूढ़ हुए। आपकी भगिनी राजेश्वरी देवी का विवाह मालव-नरेश से हुआ। राजेश्वरी बड़ी विदुषी थीं। उनके विवाह के कुछ ही समय बाद मालव-नरेश अपने एक शत्रु के हाथ से मारे गये। उस दुष्ट ने राजेश्वरी देवी का शील भी भङ्ग करना चाहा। यह सोच कर उसने राजेश्वरी को क़ैद कर लिया। परन्तु राजेश्वरी देवी ने वीर बाला की तरह क़ैद-ख़ाने के दुःखों को कुछ भी न समझा। उसे उन्होंने सन्तोषपूर्वक सहन किया और अपने निष्कलङ्क चरित को किञ्चिन्मात्र भी कलङ्कित न होने दिया।

यह समाचार राज्यवर्द्धन को मिला तो वे बड़ी भारी सेना लेकर मालवा पर चढ़ दौड़े। मालव-नरेश के शत्रु से आपका घोर संग्राम हुआ। फल यह हुआ कि वह परास्त होकर भाग गया। तब राज्यवर्द्धन अपनी भगिनी राजेश्वरी को क़ैद से छुड़ाने चले। परन्तु मार्ग ही में किसी ने धोखे से उन्हें मार डाला। यह समाचार जब थानेश्वर पँहुचा तब राज्यवर्धन के छोटे भाई हर्षवर्द्धन बड़े शोकाकुल हुए। आपने एक बड़ी भारी सेना एकत्र करके अपने शत्रु से बदला लेने और अपनी बहिन को छुड़ाने के लिए थानेश्वर से मालवा की ओर कूच किया। जिस प्रकार सूर्य्य के प्रकाश होते ही तिमिरान्धकार का कहीं पता नहीं चलता उसी प्रकार महाराज हर्षवर्द्धन के मालवा पहुँचते ही उनका शत्रु बङ्गाल की ओर भाग गया और खोज करने पर भी न मिला। इधर आपकी भगिनी राजेश्वरी देवी भी किसी युक्ति से क़ैदख़ाने से निकल कर मालवा के निकटवर्त्ती पर्वतों में चली गईं।

जब आपने बहन को मालवा में न पाया तब आप को बड़ा दुःख हुआ। बड़ी कठिनता से उनका पता चला। जिस समय राजेश्वरी देवी से आप मिले उस समय वे अपने शरीर को भस्मीभूत करने के लिए चिता बना रही थीं। उनसे आप ने सब हाल कहा। राजेश्वरी देवी को भाई की मृत्यु का वृत्तान्त सुन कर उत्कट वेदना हुई। आपने उन्हें धीरज दिलाया और सती होने से रोका। राजेश्वरी देवी ने भी भाई के आग्रह को मान लिया और थानेश्वर लौट आईं।

आप के थानेश्वर पहुँचने पर प्रजा ने आपसे राज्याधिपति होने के लिए प्रार्थना की। आप पिता और भ्राता की मृत्यु, तथा राजेश्वरी देवी के वैधव्य के कारण संसार से विरक्त होगये थे। अतएव आपने राज्य का भार लेने से इनकार कर दिया। जब लोगों ने बहुत आग्रह किया तब आपने कहा कि मैं एक बौद्ध महात्मा की सम्मति लेकर तब इस विषय में आपसे अपना निश्चय निवेदन करूँगा। यदि वे आज्ञा देंगे तो मैं राज्य-शासन को हाथ में लूँगा, अन्यथा नहीं। पूछने पर उस महात्मा ने भी यही उत्तर दिया कि तुम्हीं राज्य करने योग्य हो। अतः तुम्हें ही सिंहासनासीन होना चाहिए। तब आपने विवश हो कर राज्य का भार अपने ऊपर लिया। परन्तु अपने को महाराजा के पद योग्य न समझ कर अपना नाम कुमार शीलादित्य ही रहने दिया। इन्होंने अपने नाम का संवत् चलाया। यह संवत् अक्टूबर सन् ६०६ ईसवी से प्रारम्भ हुआ। पर यह संवत् बहुत दिन तक नहीं चला।

राज्याभिषेक के कुछ काल बाद हर्षवर्धन ने दिग्विजय की तैयारी की। पहले तो आपने पास के अन्य राजाओं पर विजय प्राप्त किया। फिर दूर के देशों पर चढ़ाई की। सब कहीं आपकी जीत हुई। अन्त को दक्षिण में आपने हार खाई। वहाँ से इन्हें थानेश्वर लौट आना पड़ा। तथापि

प्रायः सारा उत्तरी भारत-वर्ष, पञ्जाब और बङ्गाल इनके शासनाधीन रहा।

हर्षवर्धन ने अपने राज्य-शासन का बड़ा अच्छा प्रबन्ध किया। मार-काट का नाम न रहा। सबलों का निर्बलों पर अन्याय होना बन्द होगया। सर्वत्र मूर्तिमती शान्ति विराजने लगी।

महाराज हर्षवर्धन को आलस्य छू तक न गया था। चातुर्मास के सिवा आप सदा दौरे ही पर रहते और सब बातों का पूर्णतया निरीक्षण करते थे। आपको अपने आराम का ख़याल न था। ख़याल था सिर्फ़ प्रजा के आराम का।

आपके राज्य में बड़े बड़े अपराध बहुत ही कम होते थे। यदि होते भी थे तो अपराधियों को कठोर दण्ड दिया जाता था। उस समय फाँसी का दण्ड प्रचार में न था। हाँ, चोरों के हाथ ज़रूर काट दिये जाते थे। इससे फिर किसी को वैसा दुष्कर्म करने का साहस न होता था।

महाराज हर्षवर्धन बड़े विद्याप्रेमी थे। आप ख़ुद बड़े भारी विद्वान् थे। संस्कृत का प्रसिद्ध कवि बाण भट्ट आपही के दरबार में था। आप संस्कृत में ग्रन्थरचना करते थे। नागानन्द और रत्नावली इन्हीं की रचना है।

हर्षवर्धन बड़े दानी थे। भोजन करने के पूर्व आप हज़ारों रुपया दान करते थे। आप हर पाँचवें साल प्रयाग जाते थे और वहाँ बड़े समारोह के साथ सर्वस्व दान कर देते थे। एक बार आपके साथ चीन का प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता हुएनसांग भी था। आपने इस दफ़े इतना दान दिया कि अपने पहनने के वस्त्र भी पास न रक्खे। अपनी बहन राजेश्वरी देवी से अन्य वस्त्र मँगवा कर पहनने पड़े।

आपने प्रजा के हितार्थ सड़कें, नहर और बाग़ आदि बनवाये। आबपाशी का एक अलग महकमा क़ायम किया। प्रजा का सच्चा हाल जानने के लिए संख्यातीत जासूस रक्खे। चुंगी का महकमा भी आपने खोला। जब कोई वस्तु बाहर से आती या बाहर को जाती तो उस पर टैक्स लगता था। यह टैक्स बहुत थोड़ा था। इससे देने वालों को कष्ट न होता था। किन्तु आपने नशीली चीज़ों पर बहुत अधिक टैक्स लगाया था, जिसमें उनका प्रचार न बढ़े।

आप बौद्धमतावलम्बी थे। अतएव आपने बौद्ध धर्म्म के प्रचारार्थ ऊँचे ऊँचे स्तूप बनवाये। वे स्तूप आज कल भी गङ्गा-यमुना के दुआबे में कहीं कहीं पाये जाते हैं। आपने बौद्ध-धर्म्म की उन्नति के लिए स्थान स्थान पर धर्म्मोपदेशक नियत किये थे। आपने बौद्ध-धर्म्म का इतना उपकार किया कि वह धर्म्म कुछ समय के लिए भारत का प्रधान धर्म्म होगया। परन्तु कोई बलात् किसी को बौद्धधर्म्मावलम्बी नहीं बना सकता था और न किसी धर्म्म पर हस्ताक्षेप कर सकता था। धर्म्म के विषय में सब को स्वतन्त्रता थी।

हर्षवर्धन ने अपने जीवन के अन्तिम भाग को—सन् ६४२ से ६४८ तक—बौद्ध-धर्म्म की सेवा में ही व्यतीत किया। आपकी भगिनी राजेश्वरी देवी आपको राज-कार्य्य में बहुत कुछ सहायता देती थीं। राजेश्वरी देवी महाराज के साथ साथ हुएन-संग के व्याख्यानों को बड़े प्रेम से सुनती थीं और शङ्का-समाधान भी करती थीं। इससे सूचित होता है कि पुराने ज़माने में यहाँ स्त्रीशिक्षा का प्रचार था।

हर्षवर्धन ने ४२ वर्ष तक राज्य किया। ६४८ ईसवी में उनका शरीरान्त हुआ।

आपके हस्ताक्षरों का एक चित्र विन्सेंट साहब ने अपने भारत-वर्ष के इतिहास में छापा है। उसी की प्रति लिपि यहाँ दी जाती है।

हरिश्चन्द्र।

स्वहस्तो मम महाराजाधिराजश्रीहर्षस्य।

समुद्र-मन्थन।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद।

पुराणों की प्राचीनता।

जनवरी १९१२ के "माडर्न रिव्यू" में बी० सी० मजूमदार महाशय का लिखा हुआ एक लेख पुराणों के विषय में प्रकाशित हुआ है। उसका भावार्थ, संक्षेप में, नीचे दिया जाता है।

संस्कृत में, और उससे सम्बन्ध रखने वाली अन्य भारतीय भाषाओं में, "पुराण" शब्द का अर्थ पुरातन है। जब इस शब्द का व्यवहार संज्ञा की भाँति किया जाता है तब इससे उन धार्मिक ग्रन्थों का मतलब लिया जाता है जिनमें प्राचीन समय के देवताओं, राजाओं और महा-पुरुषों की कीर्ति का वर्णन है। "पुराण" शब्द नया नहीं है; वह वेदों में भी पाया जाता है। वहाँ भी उसका वही अर्थ है जो उसके संज्ञा-रूप का होता है। अथर्व-वेद के ग्यारहवें काण्ड के सातवें सूक्त में यह शब्द इसी अर्थ में व्यवहृत हुआ है। इस से पुराणों की प्राचीनता प्रकट होती है। पौराणिक साहित्य उतना ही प्राचीन और पुनीत है जितने कि वैदिक मन्त्र, जैसा कि आगे चल कर प्रमाणित किया जायगा।

यज्ञ में वेद-मन्त्रों का काम पड़ता है; परन्तु कौन मन्त्र किस समय और किस प्रकार पढ़ा जाना चाहिए, इन बातों का वेदों में कहीं ज़िक्र नहीं। साम, ऋक् और अथर्व-वेद में केवल मन्त्र ही मन्त्र हैं। हाँ, यजुर्वेद में अवश्य यज्ञ करने और मन्त्र पढ़ने की प्रणाली का कुछ वर्णन है। पर मन्त्रों के महत्त्व और यज्ञों के विधानों का पूरा पूरा वर्णन ब्राह्मण ग्रन्थों ही में है। इन ग्रन्थों से मालूम होता है कि अमुक देवता की किस समय और, किस मन्त्र से प्रार्थना करनी चाहिए; अमुक मन्त्र का कर्त्ता कौन ऋषि है; पूर्व समय में कब और कौन मन्त्र से कौन यज्ञ किया गया और क्या फल हुआ; और, किस मन्त्र का उच्चारण किस प्रकार किया जाना चाहिए—इत्यादि। केवल मूल मन्त्र जान लेने से विशेष लाभ नहीं; मन्त्रों के देवता और उनकी उच्चारण-प्रक्रिया का भी जानना आवश्यक है। इस बात का जानना तो सबसे अधिक आवश्यक है कि अमुक मन्त्र की उत्पत्ति का इतिहास क्या है और पूर्व-काल में उसके पाठ से क्या क्या लाभ हुए थे। अध्यापक लेनमन ने अथर्व-वेद का एक बड़ा अच्छा संस्करण प्रकाशित किया है। उसमें इस बात का भी उल्लेख है कि कौन सूक्त किस कामना को पूर्ण करने के लिए पढ़ना चाहिए। ब्राह्मण-ग्रन्थ तो इन्हीं बातों से भरे पड़े हैं। ऋग्-वेद के सब मन्त्रों के इतिहास का वर्णन बृहद्-देवता नामक ग्रन्थ में है। इस ग्रन्थ के चौथे अध्याय में लिखा है कि दीर्घतमा नामक एक व्यक्ति जन्म ही से अन्धा था। ऋग्वेद के प्रथम काण्ड के कुछ सूक्तों के पारायण से उसे फिर दृष्टि प्राप्त हो गई। वेद-मन्त्रों का इस प्रकार का इतिहास, उनके उच्चारण की विधि, और उनके फल का निर्देश, यह सारा विषय-समुदाय, पूर्वकाल में, पुराण या पुराणेतिहास के नाम से उल्लिखित होता था।

वर्तमान काल में, यज्ञ करते समय, मन्त्रों के इतिहास (पुराण) सुनाने की रीति नहीं; परन्तु महा-महाभारत के समय तक वेद-मन्त्रों के कीर्ति-गान की प्रथा प्रचलित थी। इस काम का भार पौराणिकों पर था। उदाहरण के लिए महाभारत की भूमिका देखिए, जहाँ पर पौराणिक उग्रश्रवा, यज्ञ करते समय, ऋषियों से यह पूछते हैं कि क्या आप लोग इतिहास सुनने के लिए तैयार हैं?:—

> कृताभिषेकाः शुचयः कृतजप्याहुताग्नयः।
> भवन्त आसने स्वस्थाः ब्रवीमि किमहं द्विजाः? (१५)

महाभारत की इसी भूमिका में नीचे दिया गया श्लोकार्द्ध भी है, जिससे प्रकट होता है कि वेद-मन्त्रोच्चारण के समय पुराणेतिहास का वर्णन आवश्यक था:—

> इतिहास-पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्—(२६७)

प्रसिद्ध है कि कलियुग के आरम्भ में भगवान् व्यास ने वेद-मन्त्रों को यथाक्रम सजा कर उन्हें वर्तमान रूप में परिणत किया। यहाँ पर इस बात

के विचार की आवश्यकता नहीं कि किस समय और किस हिसाब से किसने वेदों को विभक्त किया। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उस समय वह भाग, जो इतिहास-पुराण के नाम से प्रसिद्ध था, वेदों से पृथक् कर दिया गया। तभी आधुनिक पुराणों का जन्म हुआ समझना चाहिए।

शतपथ-ब्राह्मण, तैत्तिरीय आरण्यक और उपनिषदों से विदित होता है कि प्राचीन समय में ब्राह्मण लोग भी इतिहास-पुराण का अध्ययन बड़ी श्रद्धा और रुचि से करते थे। छान्दोग्य उपनिषद् में लिखा है :—

ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेद अथर्वणश्चतुर्थ-
इतिहास-पुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः ॥

इसके अनुसार अथर्व-वेद चौथा वेद और इतिहास-पुराण पाँचवाँ वेद है। भारतीय युद्ध के बाद इतिहास-पुराण को कुरु-पाण्डवों की कथा से मिला कर महाभारत की रचना हुई जान पड़ती है। इसी से महाभारत पञ्चम वेद के नाम से विख्यात हुआ है।

आधुनिक पुराणों में बहुत से राजवंशों, राजाओं और देवताओं आदि का वर्णन है। वैदिक पुराणों में भी केवल वेद-मन्त्रों ही का इतिहास न था। महाभारत ही में, जहाँ पुराणों का वैदिक श्रुतियों से घनिष्ठ सम्बन्ध बतलाया गया है, इस प्रकार के कितने ही श्लोक पाये जाते हैं :—

(१) "मया श्रुतमिदं पूर्वं पुराणे पुरुषर्षभ"।
अथवा
(२) "अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्"।
अथवा
(३) "श्रूयते हि पुराणेऽपि जटिला नाम गौतमी"

अथर्ववेद के अन्तिम सूक्तों से भी प्रकट होता है कि पुराणेतिहास में केवल देवताओं ही का इतिहास नहीं, किन्तु मनुष्यों का भी इतिहास रहता था। उसमें जगत् की उत्पति, मनुष्य की उत्पत्ति और मन्वन्तर आदि के वर्णन के साथ ही साथ आदर्श राजाओं और बड़े बड़े राजवंशों का भी वर्णन रहता था। पुराणों में जहाँ जहाँ "पुराण" शब्द का प्रयोग हुआ है वहाँ वहाँ इस शब्द से तात्पर्य्य ऐसी सभी बातों से है। वायु-पुराण में पुराण की यह परिभाषा दी गई है :—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितञ्चेति पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥

महाभारत से भी इसी मत की पुष्टि होती है। मेगास्थनीज़ के लेखों से भी विदित होता है कि उस समय हमारी जिन पुस्तकों में सृष्टि की उत्पत्ति आदि का हाल था उन्हीं में बड़े बड़े राज-वंशों, राजाओं और देश का इतिहास भी था। पाटलीपुत्र में उसने सर्ग-प्रतिसर्ग तथा भारत की अन्य ऐतिहासिक घटनाओं का हाल हिन्दुओं से साथ ही सुना था।

कुछ लोग जब तक किसी बात का वर्णन प्राचीन पुस्तकों में नहीं देखते तब तक उसकी प्राचीनता स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होते। "पुराण" शब्द अथर्व-वेद और शतपथ-ब्राह्मण आदि ग्रन्थों में तो पाया जाता है, परन्तु पाणिनि के किसी सूत्र में उसका पता नहीं लगता। परन्तु इससे पुराणों की अर्वाचीनता सिद्ध नहीं होती। पाणिनि ने सारी पुरानी बातों का उल्लेख करने की प्रतिज्ञा थोड़े ही की थी। पुराणों की प्राचीनता ढूँढ़ने के लिए अष्टाध्यायी के सूत्रों की पड़ताल करने की आवश्यकता नहीं। उसमें न सही; उससे भी पुरानी पुस्तकों में तो "पुराण" शब्द है।

इस बात का ठीक ठीक पता नहीं लगता कि महाभारत के रूप में परिवर्तित होने के पहले पुराणेतिहास का क्या रूप था और उसकी क्या दशा थी। सम्भव है, जिस प्रकार प्रत्येक वेद के ब्राह्मण, अनुक्रमणिकायें, उपनिषद् आदि अलग अलग हैं उसी प्रकार प्रत्येक वेद के मन्त्रों की ऐतिहासिक बातों के सूचक पुराणेतिहास भी अलग अलग रहे हों। बृहद्देवता में जिन पुराणों का वर्णन है उनका अन्य वेदों के मन्त्रों से तो सम्बन्ध है; परन्तु अथर्व-वेद के मन्त्रों से कोई सम्बन्ध नहीं।

अथर्व-वेद के मन्त्रों का पुराण भी रहा होगा। प्रत्येक वेद के मन्त्रों का पुराण अलग अलग रहा होगा—इस सम्भावना का एक कारण है। शतपथ ब्राह्मण के ग्यारहवें, आत्रेय ब्राह्मण के पाँचवें, और छान्दोग्य-उपनिषद् के चौथे अध्याय में लिखा है कि जब प्रजापति ने वेदों की प्राप्ति के लिए तप किया तब ऋग्वेद की उत्पत्ति अग्नि से, सामवेद की सूर्य्य से और यजुर्वेद की वायु से हुई। वायु, अग्नि और सूर्य के नाम पर तीन आधुनिक पुराण भी हैं। इन तीनों पुराणों का पूर्वोक्त तीनों वेदों से सम्बन्ध होने ही के कारण उनके ये नाम पड़े। यही तीन पुराण महाभारत के पहले रहे होंगे। अन्य आधुनिक पुराणों की उत्पत्ति महाभारत के पीछे हुई जान पड़ती है।

महाभारत के वनपर्व के १९१ वें अध्याय में और उसके अन्तिम पर्व के छठे अध्याय में आधुनिक पुराणों का ज़िक्र ज़रूर है, परन्तु उन स्थलों को विचारपूर्वक पढ़ने से स्पष्ट मालूम होता है कि वे प्रक्षिप्त हैं। वनपर्व के १८८ वें अध्याय में ऐसी घटनाओं का वर्णन है जो महाभारत के समय के बहुत पीछे हुई हैं। आगे चल कर, १९० वें अध्याय में, युधिष्ठिर मार्कण्डेय से पूछते हैं कि कलियुग में क्या होगा? वे इस प्रश्न को पहले भी पूछ चुके हैं और मार्कण्डेय पूरा पूरा उत्तर भी दे चुके हैं। परन्तु वे उसे फिर पूछते हैं और मार्कण्डेय फिर अपने पूर्व उत्तर को दुहराते हैं। १९१ वें अध्याय में भी वही बातें कही गई हैं जो १९० वें में हैं। इसी अध्याय में यह श्लोक है:—

एतत्ते सर्वमाख्यातमतीतानागतं मया।
वायुप्रोक्तमनुस्मृत्य पुराणं ऋषिसंस्तुतम्॥

कदाचित् यह सङ्केत यजुर्वेद के किसी पुराण की ओर हो। परन्तु महाभारत में अन्य सब पुराण सम्मिलित हैं और वह पञ्चम वेद कहलाता है। उसमें किसी पुराण का प्रमाण न होना चाहिए। इसी अध्याय में वायुपुराण की भी कुछ बातें उद्धृत हैं, जिनसे मालूम होता है कि किसी ने बहुत पीछे अपने समय का दिग्दर्शन कराने के लिए इस ग्रन्थ में कुछ अध्याय बढ़ा दिये हैं। ४९ वें श्लोक में वायु-पुराण का प्रमाण देते हुए कहा गया है कि भविष्यत् में लड़कियाँ पाँच छः वर्ष की उम्र में ही गर्भवती हुआ करेंगी। परन्तु वायुपुराण के ५८ वें अध्याय के ५८ वें श्लोक में लिखा है कि कलियुग में लड़कियाँ सोलह वर्ष की उम्र के पूर्व ही गर्भवती हुआ करेंगी। उक्त श्लोक दो प्रकार से लिखा जाता है। उसके दोनों रूप ये हैं:—

अप्रहृष्टचेतनाः पुंसो मुक्तकेशास्तु चूलिकाः।
ऊनषोडशवर्षाश्च प्रजायन्ते युगक्षये॥

दूसरे रूप में "प्रजायन्ते युगक्षये" के स्थान पर "धर्षयिष्यन्ति मानवान्" है।

श्लोक का दूसरा पाठान्तर विशेष शुद्ध मालूम होता है। परन्तु श्लोक के दोनों पाठों से यह स्पष्ट प्रकट होता है कि किसी समय भारत में सोलह वर्ष के पूर्व लड़कियों का विवाह न होता था।

महाभारत के अन्तिम पर्व के अन्तिम दो अध्यायों में भी अठारह पुराणों का ज़िक्र है। महाभारत में कई जगह इस बात का उल्लेख है कि संसार में इतने शास्त्र और इतनी विद्यायें हैं। परन्तु कहीं भी अठारह पुराणों का वर्णन नहीं। अतएव अन्तिम पर्व का छठा अध्याय निःसन्देह प्रक्षिप्त है। उसके पहले का अर्थात् पाँचवाँ अध्याय भी पीछे से मिला दिया गया है; क्योंकि स्वर्गारोहण तो चौथे अध्यायही में हो गया। पाँचवें अध्याय में सिवा पहले अध्यायों की बातों के और कुछ नहीं। उदाहरण के लिए पाँचवें अध्याय के ६८ वें और ६९ वें श्लोक आदि पर्व के दूसरे अध्याय के ३९५ वें और ३९६ वें श्लोक की केवल नक़ल हैं।

जब हम आधुनिक पुराणों को जाँच की कसौटी पर कसते हैं तब मालूम पड़ता है कि सारे पुराण महाभारत के पीछे बने हैं। रहे वैदिक समय के पुराणेतिहास, सो वे कुरु-पाण्डवों की कथा से संयुक्त होकर महाभारत के रूप में परिवर्तित हुए

विद्यमान हैं। एक भी आधुनिक पुराण महाभारत के पहले का नहीं।

पुराण वैदिक समय में भी थे। उस समय भी वे इतिहास-संयुक्त थे। पीछे से उन्हें पञ्चम वेद, महाभारत, का रूप प्राप्त हुआ। इन बातों का वर्णन हो चुका। अब हम आधुनिक पुराणों की ओर झुकते हैं। आधुनिक पुराण सन् ईसवी से १४० वर्ष पूर्व के पहले के नहीं हैं। व्याकरण-महाभाष्य की रचना भी उसी समय की है। मनु-संहिता उससे भी पीछे की है। इन दोनों पुस्तकों में दुर्गा, गणेश, महादेव आदि देवताओं का कहीं भी ज़िक्र नहीं। आधुनिक पुराणों में बहुत सी वैदिक कथायें हैं; परन्तु उनका रूप तोड़ मरोड़ कर कुछ का कुछ कर दिया गया है। बहुत सी कथायें नई भी हैं; उनमें नये नये राजवंशों और राजाओं का वर्णन है। पूर्व-काल के राजाओं के बल-विक्रम और गौरव की कथायें लोग पुराणों में सुनते थे। इस कारण समय समय पर पुराणों की भाषा में भी परिवर्तन होता रहा है। जैसे जैसे आर्य्य-सभ्यता भारत में फैलती गई वैसेही वैसे नये नये प्रदेश, नदी, पहाड़ और अन्य स्थानों के नाम पुराणों में आते गये। आधुनिक और वैदिक पुराणों में और भी कई प्रकार का भेद है। उनके इतिहास वर्णन की प्रणालियाँ भी भिन्न भिन्न हैं। इन बातों पर विचार करने से प्रकट होता है कि आधुनिक पुराण बहुत प्राचीन नहीं हैं। परन्तु एक बात अवश्य है। आधुनिक पुराणों के एक बार बन जाने पर उनमें उसके बाद विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। आधुनिक पुराणों में वैदिक समय के राजाओं और राजवंशों के नाम वैसे ही पाये जाते हैं जैसे कि वैदिक पुराणों में हैं। मत्स्य-पुराण में जहाँ इक्ष्वाकु-वंश का वर्णन है वहाँ लिखा है :—

> अत्राणु-वंशश्लोकोऽयं विप्रैर्गीतः पुरातनैः।
> इक्ष्वाकूनामयं वंशः सुमित्रान्तो भविष्यति।

इसी तरह अन्य पुराणों में राजाओं और राजवंशों का जो वर्णन है वह काल्पनिक नहीं है। उनमें उल्लिखित राज-वंशों द्वारा प्राचीन राजाओं का काल-निरूपण करने में बड़ी सहायता मिल सकती है। पुराणों के राजवंश और तत्सम्बन्धी घटनायें इतिहासप्रेमियों के बड़े काम की हैं।

पुराणों में गुप्तवंश के महाराजाओं तक ही का हाल मिलता है। इस लिए कुछ लोगों का ख़याल है कि पुराण गुप्त राजाओं के समय में बनाये गये। परन्तु बात ऐसी नहीं है। पाँचवीं शताब्दी के अन्त में गुप्त-वंश हूण लोगों के आक्रमण से नष्ट हो गया। गुप्त वंश के बाद भारत में कोई साम्राज्य न रह गया। केवल छोटे छोटे बहुत से राज्य हो गये। देश में कोई साम्राज्य न रहने के कारण पुराणों में अन्य राजवंशों का नाम नहीं आया। गुप्त वंश के बहुत पूर्व भी भारत में कोई साम्राज्य न था। देश में अनेक छोटे मोटे राज्य थे। पर उन राजवंशों की कीर्ति का वर्णन पुराणों में है। गुप्तवंश के बाद के राजाओं की कीर्ति-वर्णन करनेवालों की कमी भी न थी। पाँचवीं शताब्दी के बाद यद्यपि पुराणों में किसी बड़े वंश या साम्राज्य का उल्लेख नहीं तथापि बहुत से ऐसे प्रमाण मिलते भी हैं, जिनसे प्रकट होता है कि उस समय छोटे छोटे राजाओं और राज्यों के वर्णन से पुराणों के आकार की अच्छी वृद्धि हुई है। इसी समय महाभारत की भी बहुत कुछ वृद्धि हुई है। भिन्न भिन्न स्थानों में पुराणों के बढ़ाये जाने का काम हुआ है। उड़ीसा में ब्रह्म पुराण बढ़ाया गया; गया में अग्निपुराण में कितने ही अध्याय मिलाये गये; पुष्कर में पद्मपुराण में पुष्कर की कथा और कालिदास-कृत शकुन्तला और रघुवंश के उल्लेख को भी स्थान दिया गया। यह सब मिश्रण तो अवश्य होता रहा; परन्तु पुराणों की उस रचना-शैली में कोई परिवर्तन नहीं किया गया जिसका समय सम्भवतः सन् ईसवी के सौ दो सौ वर्ष पहले का जान पड़ता है।

कर्म-काण्ड के सुभीते के लिए ही वेदों का क्रम-विभाग हुआ और पुराण उनसे पृथक् किये गये। परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि पुराणों के बनानेवाले व्यासजी ही थे। महाभारत में भी ऐसा

श्रीराघवविलाप।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद।

नहीं लिखा। महाभारत में केवल इतना ही लिखा है कि व्यासजी ने अपने कुछ शिष्यों को पुराण पढ़ाया और इन शिष्यों ने पुराणों की उन्नति की। अब यदि कुरु-पाण्डवों की कथा पृथक् कर दी जाय तो महाभारत ही से पता लगता है कि पुराणों की उत्पत्ति "लोमहर्षण" द्वारा हुई। रही भारती कथा, सो उसे व्यासजी के शिष्यों ने रचा।

"लोमहर्षण" शब्द की व्याख्या वायुपुराण में इस तरह की गई है :—

> लोमानि हर्षयांश्चक्रे श्रोतृणां यत्सुभाषिते।
> कर्म्मणा प्रथितस्तेन लोकेऽस्मिन् लोमहर्षणः॥

इससे मालूम होता है कि पुराण किसी एक व्यक्ति के बनाये हुए नहीं हैं। "लोमहर्षण" एक जाति थी जो लोगों को कौतूहल-वर्द्धक घटनायें सुनाया करती थी, जिनके श्रवण से शरीर के रोम खड़े हो जाते थे।

पुराण समय समय पर बनाये गये, यह बात पुराणों ही से सिद्ध होती है। जिस क्रम से पुराण बनाये गये हैं उस क्रम का प्रायः सभी पुराणों में वर्णन है। सबसे पहले ब्रह्म-पुराण बना। उसके पीछे (२) पद्म (३) विष्णु (४) वायु (५) भागवत (६) नारद (७) मार्कण्डेय (८) अग्नि (९) भविष्य (१०) ब्रह्म-वैवर्त (११) लिङ्ग (१२) बराह (१३) स्कन्द (१४) वामन (१५) कूर्म (१६) मत्स्य (१७) गरुड और सब के पीछे (१८) ब्रह्माण्ड पुराण। यह सूची सब पुराणों में पीछे से जोड़ दी गई जान पड़ती है।

जो लोग पुराण पढ़ते थे वे सूत कहलाते थे। आधुनिक स्मृतियों में सूतों और मागधों को बहुत नीचा स्थान दिया गया है। वायुपुराण में भी लिखा है कि सूत को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है। परन्तु महाभारत की भूमिका में जिन सूतजी का नाम है वे इतने मान्य थे कि ब्राह्मणों तक ने उनकी प्रतिष्ठा की। कितने ही पुराणों में वर्णन है कि नारद और मार्कण्डेय के सदृश मुनियों तक ने पुराणेतिहास सुना कर सूत का काम किया था। वैदिक समय में भी बड़े बड़े प्रतिष्ठित ब्राह्मण पुराण कहते और सुनते थे। पीछे से सूत लोग पुराण सुना कर रुपया कमाने लगे। मालूम होता है कि इसी कारण समाज ने उनको नीचे गिरा दिया। एक कारण और भी हो सकता है। जब मगध के राजाओं के हाथ में भारत का साम्राज्य आया तब ब्राह्मण के अतिरिक्त अन्य जातियों ने भी पुराणेतिहास सुनाने का काम अपने हाथ में ले लिया। इसी कारण सूतों की प्रतिष्ठा उतनी न रही जितनी पूर्ववर्ती सूतों की थी। इस समय तो ब्राह्मण ही पुराणपाठी हो रहे हैं।

श्रीराघव-विलाप।

("मेघनाद-वध" के आधार पर)

निशि-समय नित्य कुटीर-द्वारे धनुष को धारण किये—
जग कर तुम्हीं ने तो हमें वन में सभी सुख थे दिये॥
फिर आज हे लक्ष्मण धनुर्धर! भूल क्यों हम को रहे—
इस दुःखरूपी सिन्धु में हम जा रहे हैं जब बहे॥१॥

इस रिपु-नगर में पा रहे हैं आज हम दुस्सह व्यथा,
पर हाय! तुम यों सो रहे हो भूल हम को सर्वथा!
अब तुम बिना इस घोर दुख में कौन रक्षक है अहो,
है क्या यही तुम को उचित? हे वीर वर! कुछ तो कहो॥२॥

माना नहीं तुम ने कहा इस बन्धु के आदेश को?
फिर आज उठ कर क्यों नहीं हरते हमारे क्लेश को॥
दुर्भाग्य से यदि आज तुमने है हमें तज ही दिया,
पर कौन सा अपराध हा! सीता अभागी ने किया?॥३॥

सौमित्र देवर को सदा वह शत्रु-कारागार में—
है स्मरण करती मग्न हो कर दुःख—पारावार में।
बहु राक्षसी हैं त्रास देतीं हा! उसे वेष्टित किये,
ऐसे समय तुम को उसे क्या भूल जाना चाहिए? ४

माता-सदृश सम्मान जिस को है सदा तुम ने दिया,
तव कुल-वधू उस जानकी को बद्ध है जिस ने किया।
उस दस्यु पामर को समर में योग्य दण्ड बिना दिये,
क्यों सो रहे हो हाय! तुम निश्चिन्त यों होकर हिये?॥५॥

हे वीरबाहो ! तुम समर में अग्नि-सम दुर्वार हो,
यह नींद त्यागो, तुम हमारे प्राण के आधार हो।
बलहीन चक्र-विहीन रथ में है रथी होता यथा,
त्यों ही अबल हम हो रहे हैं तुम बिना अब सर्वथा ॥६॥
हा ! इस तुम्हारी नींद से गुण-हीन धनु के तुल्य ही
मारुत-तनय हनुमान की निर्बल अवस्था हो रही।
अङ्गद तथा सुग्रीव सन्मति क्लेश से हैं रो रहे ;
देखो, शुभैषी ये विभीषण धैर्य्य को हैं खो रहे ॥ ७ ॥

ऋतुराज के प्रस्थान से होता विपिन ज्यों व्यस्त है,
त्यों ही सबल यह दल सभी हा ! तुम बिना अति त्रस्त है।
ऐसे समय की नींद है यह वांछनीय नहीं कभी ;
उठ कर नयन शीतल करो भाई ! त्वरा करके अभी ॥८॥
दुर्दान्त रण से क्लान्त अब तुम हो गये हो जो कहीं,
तो लौट फिर वन को चलो कुछ काम है रण का नहीं।
तव प्राप्ति का सीता अभागी ! अब नहीं कुछ काज है,
अति तुच्छ, लक्ष्मण के बिना, हम को जगत का राज है ॥९॥
"राघव ! तवानुज मम नयनमणि है कहां लक्ष्मण कहो ?"
सुन जननि से यह बात हम उन से कहेंगे क्या अहो !
हे वत्स ! उठ कर शीघ्र ही अन्तःकरण शीतल करो
हैं शत्रु गर्जन कर रहे जो गर्व सब उन का हरो ॥१०॥

तुम को न लेकर साथ हम साकेत में जब जायँगे
तब ऊर्म्मिलायुत पुरजनों को किस तरह समझायँगे ?
माँ तुम बिना अवलोक हम को हाय ! रोवेंगी यदा,
लक्ष्मण ! उन्हें हम किस तरह यह मुख दिखावेंगे तदा ॥११॥
तज राज्य-सुख जिस के लिए वनवास है तुम ने लिया
उस बन्धु के अनुरोध से अब क्यों विमुख मन कर लिया ?
हे वीरबाहो, भ्रातृवत्सल ! विदित हो तुम लोक में
क्या त्यक्त होना चाहिए तुम से हमें इस शोक में ! ॥१२॥
तुम देख कर हमको दुःखी आंसू बहाते थे सदा,
आपत्ति में तुम ही हमें धीरज बँधाते थे सदा।
हैं हो रहे हम आँसुओं से आज आर्द्र शरीर यों
तुम देखते तक हो नहीं हम को तदपि हे धीर ! क्यों ? १३
आजन्म हम ने धर्म्मयुत सप्रेम सुर-पूजन किया,
है क्या उन्हों ने अब यही उस का हमें प्रतिफल दिया !
तुम ओस से हे निशि ! सरस करतीं तपाकुल फूल को,
यह कुसुम भी विकसित करो मेटो हमारे शूल को ॥१४॥

तुमको 'सुधानिधि' हे निशाकर ! मनुज कहते हैं सभी,
अतएव जीवनदायिनी तुम सुधा बरसा कर अभी।
सच्चरित लक्ष्मण को बचाओ सदय हो कर शीघ्र ही
जिससे बचे यह दीन राघव है विनय तुम से यही ॥१५॥

सियारामशरण गुप्त।

पिट्सबर्ग और उसके कल-कारख़ाने, विद्यालय आदि।

सरस्वती के पाठकों को आज मैं इस नगर का संक्षिप्त वृत्तान्त सुनाता हूँ। इसी को मैंने कुछ काल के लिए अपना निवास-स्थान बना लिया है। यह विषय बहुत बड़ा है ; परन्तु है बड़ा मनोरञ्जक और शिक्षा-प्रद। इस लिए विचार है कि इस लेख को कई भागों में बाँट कर मैं पाठकों को भेंट करूँ। परन्तु प्रयत्न ऐसा होगा कि प्रत्येक भाग दूसरे से बिलकुल ही स्वतन्त्र रहे।

पिट्सबर्ग अमेरिका के पश्चिम-दक्षिण में पेन्सिलवेनिया नामक रियासत का प्रधान नगर है और दो नदियों के सङ्गम पर बसा हुआ है। यह नगर पहाड़ी है ; परन्तु तिजारत में अमेरिका की नाक है। धन भी व्यापार ही से प्राप्त होता है। इसी से इसके निवासी बड़े धनाढ्य हैं। आधुनिक व्यापार की उन्नति दो मुख्य वस्तुओं पर अधिक अवलम्बित है। एक तो कोयला, दूसरे लोहा। इँगलैण्ड की सारी राजनैतिक और व्यापारिक उन्नति इन्हीं दो चीज़ों की बदौलत है। इँगलैण्ड में कोयला और लोहा न होता तो इस समय वह शायद योरप के उत्तर-पश्चिम कोने में एक छोटा सा बल-हीन और व्यापार-हीन द्वीप होता—जो कहीं वह फ़्रान्स या जर्मनी का ग्रास न बन गया होता। इन दो धातुओं के बिना कैसे वह बड़े बड़े जहाज़ बनाता, कैसे वह उन्हें चला कर भारत तक पहुँचाता और कैसे वहां साम्राज्य
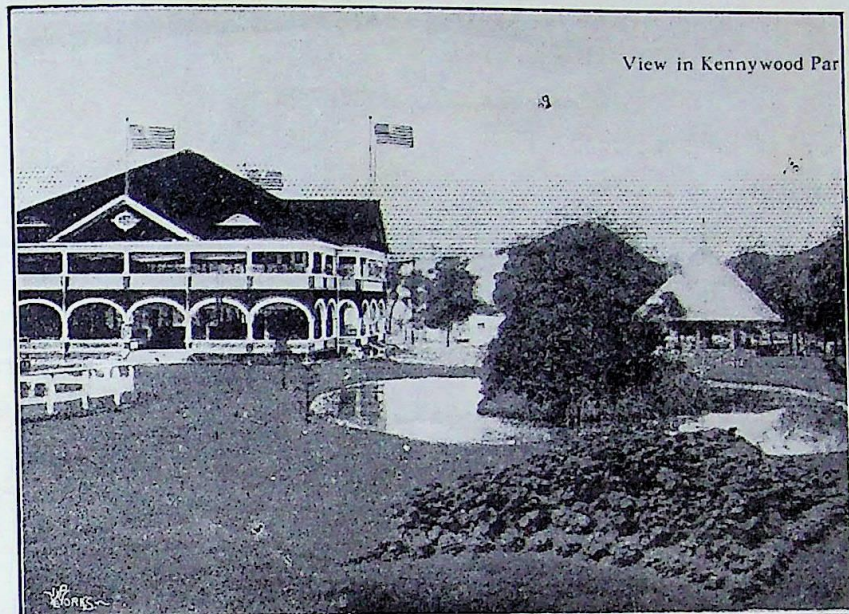
पिट्सबर्ग का केनीउड नामक उद्यान।

पिट्सबर्ग का पेन्सिलवानिया अस्पताल।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद।
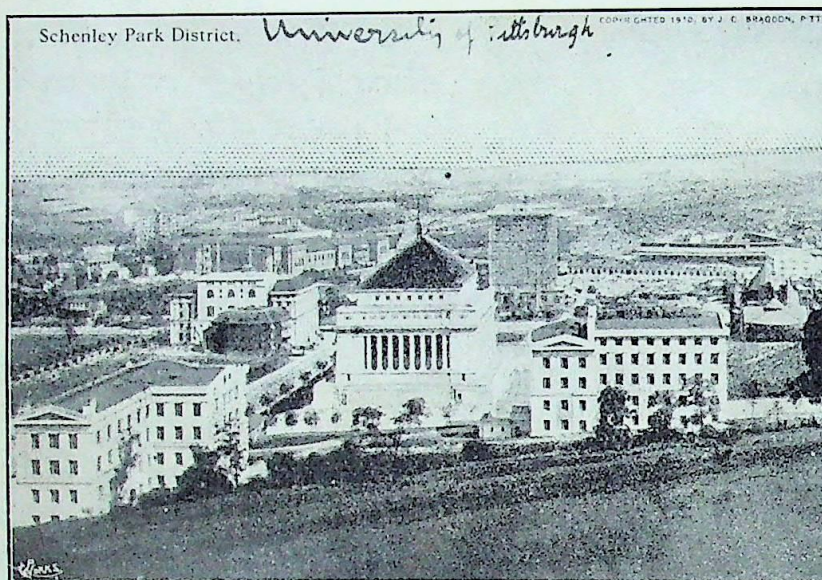
पिट्सबर्ग का विश्वविद्यालय।
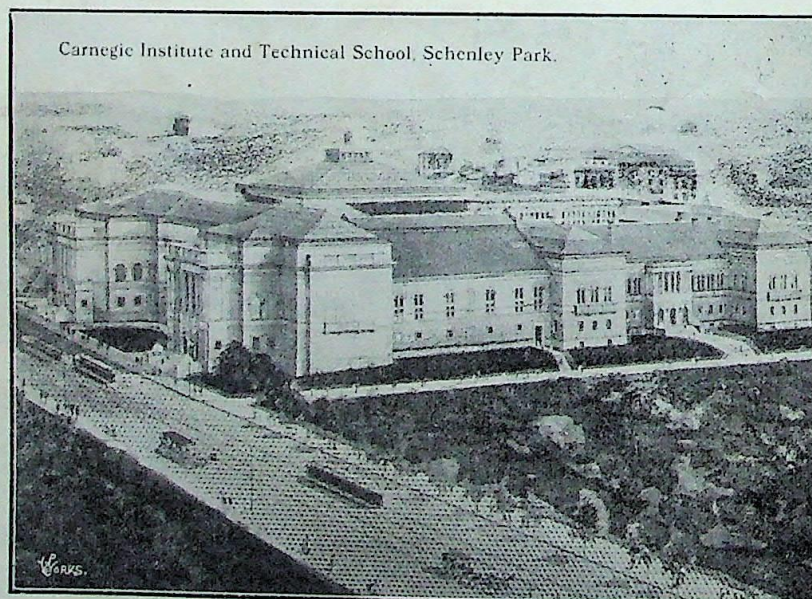
कारनेगी का कला-भवन ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद।

क़ायम करता? लोहे और कोयले के महत्त्व का प्रमाण कोयले की खान वालों की अभी कल की जंगी हड़ताल से अच्छा मिलता है। उसने इँगलैण्ड के तमाम व्यापार के बन्द कर दिया था। ऐसा मालूम होता था कि देश में प्रलय होना चाहता है।

पिट्सबर्ग की तमाम दौलत इसकी कोयले की खानों ही की बदौलत है। १९१० में इसकी खानों से क़रीब ४,२०,००,००० टन कोयला निकाल कर दूसरे नगरों और देशों के ख़र्च के लिए बाहर भेजा गया और १,५६,००,००० टन इसी पिट्सबर्ग के कारख़ानों में खपा। इसके अतिरिक्त लोहे की कई खानें भी इस नगर में हैं। इसी से अमेरिका में पिट्सबर्ग व्यापार में सबसे बढ़ा चढ़ा है। इसी नगर में लोहे का सबसे बड़ा वह कारख़ाना है जिसने कारनेगी के धन-कुबेर बना रक्खा है। इसके आस पास कोई तीन हज़ार कारख़ाने हैं। उनमें लोहे, टीन, काँच, मोटरकार, बिजली के औज़ार, रेल के पुर्ज़े, इञ्जिन और बायलर के कारख़ाने मुख्य हैं। इस नगर से, १९१० में, १६ करोड़ ८० लाख टन व्यापार की सामग्री तैयार होकर संसार के दूसरे भागों में बिकने के लिए गई थी।

इस नगर की आबादी तो कोई आठ ही लाख है; परन्तु इसके इर्द गिर्द चालीस मील तक मनुष्य बसते हैं। इतनी आबादी के आराम और शिक्षण का उत्तम प्रबन्ध है। शहर के भीतर २२ उद्यान, १३८८ एकड़ भूमि में, बने हुए हैं। १० नाटक-घर हैं। २३ खेल-कूद के स्थान हैं। दो विश्व-विद्यालय हैं। पिट्सबर्ग के विश्वविद्यालय में १९४८ विद्यार्थी और डुकेब-विश्वविद्यालय में ४५० विद्यार्थी हैं। कारनेगी का स्थापित किया हुआ विशाल कलाभवन यहीं है। उसमें २४५० विद्यार्थी शिक्षा पा रहे हैं। सब मिला कर ५२ हाई स्कूल हैं। १२५ स्कूल प्रारम्भिक शिक्षा के लिए हैं, जिनमें २०६१ अध्यापक हैं और ७१,२२१ विद्यार्थी शिक्षा पाते हैं।

कारनेगी का बनाया हुआ, दो करोड़ रुपये की लागत का, नुमायशगाह भी इसी नगर में है। उसमें अद्भुत अद्भुत पदार्थ एकत्र किये गये हैं। उसी में एक विशाल व्याख्यान-गृह भी है। एक विचित्र सङ्गीतालय भी उसी में है, जहाँ प्रत्येक शनिवार को सन्ध्या-समय और रविवार को मध्याह्न में नगर-निवासियों को, बिना किसी फ़ीस के, सङ्गीत सुनाया जाता है। इसी के साथ एक विशाल पुस्तकालय भी है, जिसकी तीस शाखायें नगर के भिन्न भिन्न स्थानों में फैली हुई हैं। इसमें ३,५८,७३२ जिल्द किताबें हैं। हर साल इसके विशाल पाठालय में बैठ कर १३,९३,४४६ मनुष्य पढ़ते हैं। इसके अतिरिक्त नगर में कई व्याख्यान घर भी हैं। एक स्वतन्त्र नुमायशगाह भी है, जहाँ हर साल सितम्बर और अक्तूबर में प्रदर्शिनी हुआ करती है।

और भी सुनिए। इस नगर में ३९७ गिर्जाघर हैं, जो ५,१०,००,००० रुपये की लागत से बने हैं। २२ अस्पताल हैं, जिनमें मरीज़ों के लिए ३००० बिस्तर लगे हुए हैं। ६२ पागलख़ाने हैं और २६ अनाथालय।

सब कारख़ानों में काम करने वालों की संख्या ८५,००० है। प्रत्येक मज़दूर हर साल दो हज़ार रुपये के लगभग मज़दूरी पाता है। मज़दूरों की इस आमदनी में से ५,१०,०,००,००० रुपया नगर के बैंकों में जमा है। पिट्सबर्ग के मज़दूर संसार के और सभी मज़दूरों से अधिक धनी हैं।

दूसरे लेख में पाठकों को मैं बिजली के उस बड़े कारख़ाने में ले जाऊँगा जहाँ इस समय लेखक स्वयं काम सीख रहा है।

जगन्नाथ खन्ना
(पिट्सबर्ग-विश्वविद्यालय)

प्रकाश ।

प्रकाश हमारे नेत्रों को पदार्थ का ज्ञान प्राप्त कराने का मुख्य कारण है। जब हम एक अँधेरे कमरे में प्रवेश करते हैं तब हमें वहाँ की कोई भी वस्तु दृष्टिगोचर नहीं होती। परन्तु जब उसमें सूर्य्य की किरणों का आगमन होता है अथवा एक दीपक प्रज्वलित कर दिया जाता है तब एक ऐसी शक्ति उत्पन्न हो जाती है जिसके कारण सब चीज़ें दिखाई देने लगती है। इसी शक्ति को हम प्रकाश कहते हैं।

प्रकाश का प्रभाव सर्वदा सीधी किरणों द्वारा होता है। ये दो प्रकार से कार्य्य करती हैं। या तो ये किसी पदार्थ पर पड़ कर फिर पीछे लौट जाती हैं या कुछ झुक कर पदार्थ को पार कर जाती हैं। किरणों की इन अवस्थाओं को क्रमशः किरण-प्रतिक्षेप (Reflection) और किरण-वक्रता (Refraction) कहते हैं।

किरणों का प्रतिक्षेप यों तो थोड़ा बहुत सभी पदार्थों में होता रहता है; क्योंकि प्रत्येक पदार्थ हमको उसी समय दिखाई देता है जब उससे प्रतिक्षिप्त किरणें हमारे नेत्रों पर पड़ती हैं। परन्तु उसके विशेष रूप से जानने की यह रीति है कि हम एक दर्पण पर सूर्य्य की किरणों को डालें। ऐसा करने से किरणों के प्रतिक्षेप के कारण किसी निकटवर्ती वस्तु के ऊपर हमें प्रकाश का एक गोलाकार चिह्न दिखाई देने लगेगा। प्रतिक्षिप्त किरणों के प्रतिबिम्बित होने के कारण यह गोला दर्पण के हिलाने झुलाने पर चलता फिरता हुआ प्रतीत होगा।

किरण-वक्रता का ज्ञान इस प्रकार हो सकता है:—किसी ख़ाली बर्तन की तलहटी में एक पैसा रख दो, जैसा कि चित्र नं० १ में है, और अपनी दृष्टि पर इस प्रकार लगाओ कि पैसा न दिखाई पड़े। अब धीरे धीरे उस बर्तन में जल डालना आरम्भ करो। बर्तन में ज्यों ज्यों जल बढ़ेगा त्यों त्यों पैसा अपने स्थान (प) से उठता हुआ दिखाई देगा। दृष्टि में ऐसे परिवर्तन होने का कारण यह है कि पहले पैसे से प्रतिक्षिप्त हुई किरणें बर्तन के किनारे रुक जाने के कारण नेत्रों तक नहीं पहुँच सकती थीं। परन्तु उसमें जल भर जाने से किरणों को जल पार करने के लिए (स) स्थान पर झुकना पड़ा। इस कारण वे नेत्रों तक सुगमता से पहुँचने लगीं। पैसा उठा हुआ दिखाई पड़ने का यह कारण है कि हमारी दृष्टि सर्वदा सीधी गमन करती है; किसी भी अवस्था में वक्र नहीं होती। इस लिए पैसा हमको (पं) स्थान पर दिखाई देगा जोकि ठीक नेत्रों के सामने है। परन्तु ज्यों ज्यों हम अपने नेत्रों को बर्तन के ऊपर लाते जायँगे त्यों त्यों किरणों की वक्रता कम होती जायगी और पैसा (प) स्थान से नीचे बैठता हुआ मालूम होगा। जब हमारे नेत्र ठीक पैसे के ऊपर आ जायँगे तब पैसे से प्रतिक्षिप्त किरणें बिलकुल सीधी नेत्रों पर पड़ने लगेंगी और पैसा ठीक उसी स्थान पर दिखाई देने लगेगा जहाँ वह वास्तव में है।

इसी तरह यदि हम जल के भीतर से किसी बाहर की वस्तु को देखें, जैसा कि चित्र नं० २ में है, तो उस वस्तु (म) से भी जो किरणें प्रतिक्षिप्त होंगी उनको नेत्रों तक पहुँचने में झुकना पड़ेगा। इस कारण वह वस्तु (न) स्थान पर दिखाई देगी। परन्तु ज्यों ज्यों वह वस्तु हमारे नेत्रों के ऊपर आती जायगी त्यों त्यों वह, उससे प्रतिक्षिप्त किरणों की वक्रता कम हो जाने से, कम उठी हुई दिखाई देगी अर्थात् (प) और (पं) के बीच का फ़ासला कम होता जायगा। जब वह वस्तु ठीक नेत्रों के ऊपर आजायगी तब उसका वास्तविक स्वरूप दिखाई देने लगेगा।

जब किरणें किसी पदार्थ को पार करती हैं तब पूर्वोक्त प्रकार से कुछ किरणें तो उसको पार कर जाती हैं और कुछ पार न हो सकने के कारण पीछे लौट जाती हैं। इस तरह किरणों के पीछे लौट जाने को "पूर्ण किरणप्रतिक्षेप" (Total Reflection) कहते हैं। जब हम जल में रक्खी हुई किसी वस्तु को इस तरह देखते हैं जैसा कि चित्र नं० ३ में
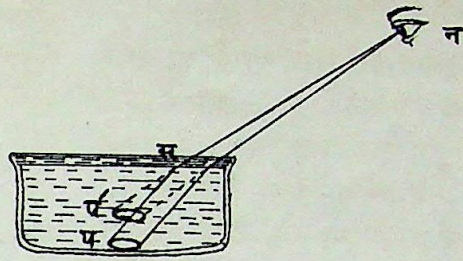
नं० १
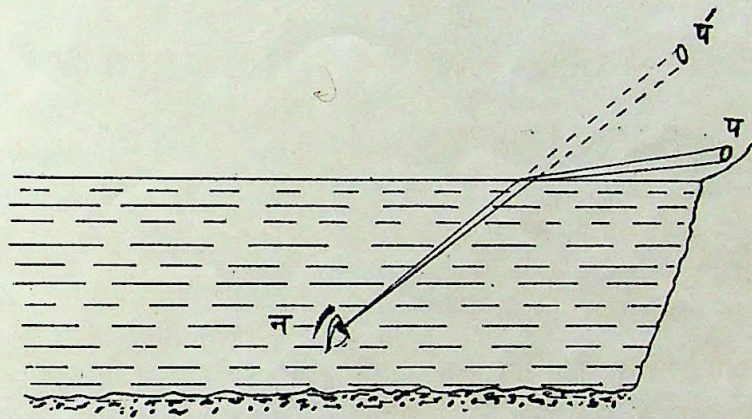
नं० २
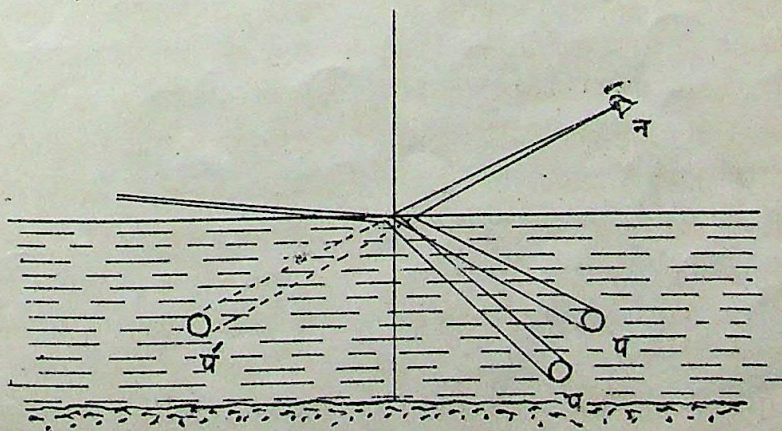
नं० ३
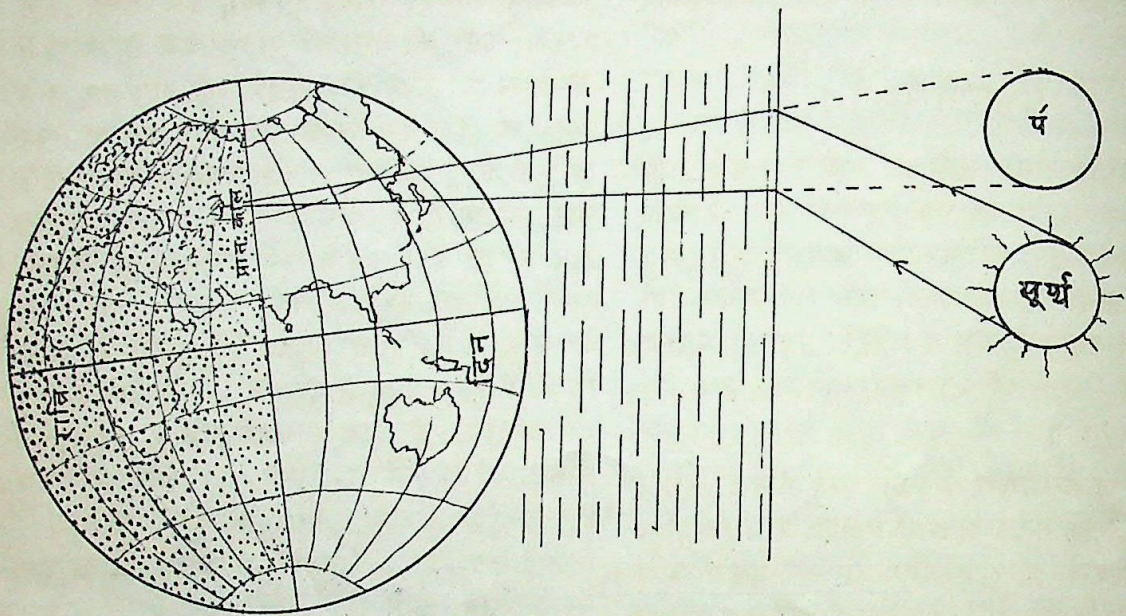
नं०४
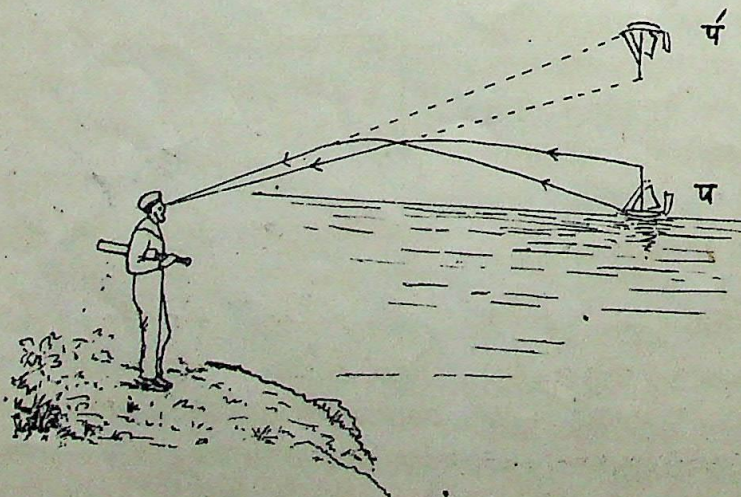
नं०५

दिखाया गया है तब यह दृश्य दिखाई देता है। उस समय वह वस्तु बजाय (प) के (पं) पर दिखाई देती है।

भ्रमरूपी सूर्य्य ।

उदय होते समय सूर्य्य का रूप रक्त-वर्ण होता है। परन्तु ज्यों ज्यों यह रक्त-पिण्ड आकाश में ऊपर उठता जाता है त्यों त्यों प्रकाशवान् होता जाता है। कुछ काल में उसका प्रकाश नेत्रों को असह्य होने लगता है। यह भ्रम मात्र है। सूर्य्य एक ही अवस्था में रहता है; उसमें परिवर्तन नहीं होता। इस भ्रान्ति का कारण यह है:—

पृथ्वी से लगभग १०० मील की ऊँचाई तकही वायु है। उसके ऊपर शून्य आकाश है। जब सूर्य्य की किरणें इस शून्य नभोमण्डल में होकर वायु को पार करती हैं तब उनको हमारे नेत्रों तक पहुँचने के लिए रुकना पड़ता है। चित्र नं० ४ देखिए। झुकने से उनका तेज बहुत कम हो जाता है। इसी से सूर्य्य की एक मिथ्या रक्ताभ मूर्ति के दर्शन (पं) स्थान पर होने लगते हैं, जैसा कि चित्र नं० ४ में दिखाया गया है। ज्यों ज्यों सूर्य्य ऊपर आकाश में चढ़ता है त्यों त्यों उसकी किरणों की वक्रता कम हो जाने से तेज बढ़ता जाता है और वह भ्रमरूपी मूर्ति प्रकाशित होती जाती है। ऐसे भ्रमरूपी सूर्य्य के दर्शन हमको उस समय तक होते रहते हैं जब तक सूर्य्य ठीक हमारे नेत्रों के सामने नहीं आ जाता। इस तरह प्रति दिन सूर्य्योदय से अस्त तक, दो पहर को छोड़ कर, अन्य भ्रमरूपी सूर्य्य ही हमारे नेत्रों के सामने रहता है।

पृथ्वी के ऊपर की वस्तुओं का आकाश में दिखाई देना ।

ये दृश्य विशेष कर ईजिप्ट और अफ़रीक़ा के मरुस्थलों में दृष्टिगोचर होते हैं। सबसे पहले इनके दिखाई देने का कारण मिस्टर मौंग (Monge) ने जाना था। इन दृश्यों के दिखाई देने का यह कारण है कि जब सूर्य्य के तेज से पृथ्वी अतिशय तप्त हो जाती है और इस उष्णता के कारण ऊपर की वायु का घनत्व कम हो जाता है तब भूमि के ऊपर की वस्तुओं से प्रतिक्षिप्त कुछ किरणें तो इस कम घनत्ववाली वायु को पार कर जाती हैं और कुछ पार न कर सकने के कारण पीछे लौट जाती हैं। अर्थात् उनका पूर्ण प्रतिक्षेप होने लगता है। जब ये पूर्ण प्रतिक्षिप्त हुई किरणें हमारे नेत्रों पर पड़ती हैं तब (पं) पर की वस्तु हम को आकाश में (प) पर दिखाई देने लगती हैं, जैसा कि चित्र नं० ५ में दिया हुआ है। अभी थोड़े ही दिन हुए अमेरिका के एक समाचारपत्र में यह ख़बर निकली थी कि बफ़ेलो (Buffalo) नगर का दृश्य टोरेन्टो (Toronto) नगर के ऊपर आकाश में दिखाई दिया था। इसका कारण यही था जो यहाँ पर बतलाया गया।

कृष्णचन्द्र गुप्त ।

मथुरा-पञ्चदशी ।

(१)

जयति सा परमाद्भुतराधिका-रमणवृत्तपवित्रंतरी कृता ।
कुसुमितद्रुमराजिविराजिता व्रततिकाततिकापरिवेष्टिता ॥

श्रीकृष्ण के अनोखे पवित्र चरित्रों से परम पुनीत और फूले हुए वृक्षों और फैली हुई बेलों से चारों तरफ़ घिरी हुई मथुरापुरी ख़ूब ही शोभित है।

(२)

सरसरासविहाररतस्वभू —चरणपङ्कजलाञ्छितभूतला ।
वनगुहान्तरवासकसज्जिका—नवरता वरतामरसोदका ॥

जहाँ रसमय रास-विहार करने से भूमि पर चरणों का चिह्न हो गया है, वनों की कन्दराओं में विहार-स्थान नये नये अनुरागों के बढ़ाने वाले हैं और पास ही खिले हुए कमलों से जलाशय ख़ूब मनोहर हैं।

(३)

अभिनवस्फुटशाखिशिखास्खल—त्कुसुमसौरभसंकुलसंचरा ।
नददुदारखगावलिरुच्चकै—रुपवना पवनाधुतपल्लवा ॥

जहाँ नये नये सुन्दर वृक्षों से गिरे हुए फूलों के ढेर के कारण गलियों में चलना कठिन है और वायु से हिलाये गये वृक्ष-पल्लवों पर मनोहर पक्षियों के मीठे आलापों से उपवन बड़ाही सुहावना मालूम होता है।

(४)

रुचिरकुञ्जगृहान्तरसंचर—द्भुजगभोजिविकासितताण्डवा ।
विपुलसूरसुतापुलिनान्तरे सुनयना नयनादरजृम्भिता ॥

कहीं रमणीय कुञ्जगृहों के भीतर मोर आनन्द से नाच रहे हैं, कहीं यमुनाजी के तट मान-पूर्वक बुलाई हुई व्रज-सुन्दरियों से जगमगा रहे हैं।

(५)

विकिरकेलिविमर्दसमुच्चर—त्कुसुमसौरभसान्द्रदिगन्तरा ।
किमपि चेतसि नर्म वितन्वती, मुरजितो रजितोद्धतसंपदः ॥

कहीं कूलों के गुच्छों पर खेलनेवाले पक्षियों की रगड़ से फैली हुई पुष्प-सुगन्धियों से दिशायें गूँज रही हैं। जगह जगह पर भगवान की अपार विभूतियों का विकाश देख कर चित्त में बड़ा ही आनन्द होता है।

(६)

स्फुरितनैकविधच्छवितूलिका—लिखितवर्णगणैर्हरिनामभिः ।
विविधचित्रचणासु कनत्प्रजा—सुखचिता खचितालयभित्तिषु ॥

जहाँ मनुष्यों को सब तरह का सुख प्राप्त है। नाना भाँति की सुन्दर सलाइयों से लिखे हुए भगवान के चित्र-विचित्र नाम मकानों की दीवारों पर बहुत ही मनोहर मालूम होते हैं।

(७)

निबिड़भावसमेधितसुन्दर—स्वरजुषां रजसां तमसामपि ।
क्षतिकृतां महतां हरिकीर्त्तन—ध्वनिरमा निरमानितकल्मषा ॥

महापुरुषों द्वारा बड़ी भक्ति से सुन्दर स्वरों में की गई हरि-कीर्तन-ध्वनि की महिमा रजोगुण और तमोगुण का नाश कर के सुख देती है ॥ ७ ॥

(८)

विबुधसद्मसुपल्लवितोल्लस-ल्ललितभागवतामृतपायिभिः ।
विविधभक्तजनैश्च समन्ततोवलयिता लयितालसमन्विता ॥

जहाँ सत्संगियों के स्थान सुन्दर पल्लवों के वंदनवार से भूषित और कथामृत पीनेवाले भक्तजनों से शोभित हैं और बाजों में ताल का लय बड़ा आनन्ददायक है।

(९)

महितरामचरित्रपवित्रिता ललितसारवनीरतरङ्गिता ।
दशरथस्य पुरीव हरीक्षिता सुभरता भरताशयसंस्कृता ॥

जो पूज्य बलराम के चरितों से पुनीत, सुन्दर वन-विहारों से पूर्ण भगवान् की दया-दृष्टि से देखी गई, और नाना विध नृत्यशालाओं से भरी हुई, दशरथ की पुरी—अयोध्या—की तरह शोभित है। अयोध्यापक्ष में—भगवान् रामचन्द्र के चरितों से पवित्र, सुन्दर सरयू-जल से पूर्ण, वानरों से भरी पूरी, भरतजी के निवास से शोभित है।

(१०)

सततसंगतसाधुमहोदया—धिमणिकर्णिकविष्णुपदाञ्चिता ।
स्मरजितो नगरीव शिवोज्ज्वला सुरुचिरा रुचिराजितनागरा ॥

जहाँ अच्छे उत्सव के कार्य होरहे हैं और भाग्यशाली पुरुष निवास करते हैं तथा भाँति भाँति के रत्नों के आभूषण और भगवान् के मन्दिर दिखाई दे रहे हैं। काशी-पक्ष में—जो पुराणों में प्रसिद्ध महोदय-योग से, मणिकर्णिका के समीप विष्णुपद से, (एक श्मशान), रुद्रगणों से और बहुत भाँति की शोभाओं से युक्त है।

(११)

गहनसालसमाकलितावने प्रतिदिनं विकसन्मधुसूदना ।
यदुपुरीव च सागरसंश्रिता मधुरसाधुरसा स्फुरदुद्धवा ॥

जहाँ घने वृक्षों में भ्रमर घूम रहे हैं; भगवान् के गोवर्धन पर्वत उठाने का आनन्द छा रहा है; साधु-महात्मा लोग पुलकित हैं; और उत्सवों की धूम हो रही है।

द्वारका-पक्ष में—जिसकी सीमा का कोई उल्लंघन नहीं कर सकता; जहाँ भगवान् स्वयं

प्रजापालन में तत्पर हैं, और जहाँ उद्धव विराजमान हैं। समुद्र के तट पर वह नगरी शोभित होरही है।

(१२)

प्रथितविक्रमरस्यरसाश्रिता सरितमादधती खलु भास्वतीम्।
स्फुरितधाममहेशमवन्तिका कविकलाविकलाकलनालया॥

जहाँ श्रीकृष्ण के दैत्यवध के स्मारक चिह्न वर्तमान हैं और पक्षियों के इधर उधर संचार और निवास से जहाँ आनन्द छाया हुआ है। यमुना जहाँ बह रही हैं। जो महेश को हर्षदायक है और जो कवियों की सुन्दर कविताओं का स्थान है।

उज्जयिनी-पक्ष में—विक्रमादित्य, शिप्रानदी, महाकाल शिव, और कवियों से अवन्ती—उज्जयिनी—शोभित है।

(१३)

अधिगताधिकदक्षिणमण्डलं सदनुकम्पकृतस्थितिशालिनी।
मुदितमुक्तिसतीवरकाञ्चिका सुरचिता रचिताघविनाशना॥

जिस मथुरानगरी में उदार पुरुषों का मण्डल वर्तमान है, जो दयाशील महानुभावों से शोभित है, सती मुक्ति का जो उत्तम भूषण है; जहाँ पाप-क्षय होगया है।

काञ्ची-पक्ष में—काञ्ची सब पुरियों से दक्षिण है, क्योंकि वहाँ अक्षांश ९°।५६, द्वारका में २२°।१५,' उज्जयिनी में २३°।९', काशी में २५°।२०'' अयोध्या में २६°।४८', मथुरा में २७°।२९, हरद्वार में २९°।५५', है। वह कम्पा नदी के समीप शोभायमान है। वहाँ मुक्ति प्रसन्न होरही है और देवतागण निवास कर रहे हैं।

(१४)

कुकुदुद्यसुपर्वतरङ्गिणी विबुधदत्तनिरूपितसक्रिया।
नववती महतां बहुमायका, गमहिता महिताश्रुतशासनैः॥

जो गोवर्धन पर्वत से शोभा को प्राप्त है। जहाँ विद्वान् लोग नानाविध श्रौत-स्मार्त कर्म कर रहे हैं। सम्पत्तियों से जो भरी पूरी है। जिसकी महिमा शास्त्रों में गाई गई है।

मायापक्ष में—सुपर्वतरङ्गिणी-गङ्गा। दक्ष प्रजापति। महापुरुषों का निवास। नानावृक्ष-लताओं से सुशोभित।

(१५)

अमरराजपुरीव सुवज्रिका, भुजगराजपुरीव सुभोगिका।
मधुपुरी प्रतिसद्मसमुल्लसन्नवसुधा वसुधातलभूषणा॥

जो मथुरापुरी, इन्द्रनगरी के समान हीरक आदि रत्नों से सम्पत्ति वाली है। विलासी लोगों की जो विलासभूमि है। जहाँ के स्थान चूना, अस्तरकारी आदि से .खूब मनोहर हैं।

अथवा, वज्री—इन्द्र, भोगी—सर्प जहाँ निवास करते हैं।

श्रीदुर्गाप्रसाद द्विवेदी।

एक वैज्ञानिक का स्वप्न।

['प्रवासी' में प्रकाशित श्रीजगदानन्द राय के लेख का आशय]

हम लोगों के शास्त्रों में जिन "क्षित्यप्तेजोमरुद्व्योम" नामक पञ्चभूतों का उल्लेख है, अष्टादश शताब्दी के पहले पाश्चात्य पण्डित उनमें से केवल चार अर्थात् मृत्तिका, जल, अग्नि और वायु को ही मूल पदार्थ मानते थे। उनका विश्वास था कि भूमि के प्राणधारी उद्भिज्ज, नदी-समुद्र, शिलाकङ्कर आदि सभी पदार्थ उन्हीं चार मूल पदार्थों से बने हुए हैं। अठारहवीं शताब्दी के पण्डित जिस समय चिरकाल से प्रचलित असम्बद्ध भावों, चिन्ताओं और अद्भुत कहानियों के कूड़ा-करकट के बीच से रासायनिक तत्त्वों को खोज खोज उन्हें मूर्तिमान करने की चेष्टा कर रहे थे उस समय वे इसी चातुर्भौतिक सिद्धान्त पर विश्वास करते थे।

उन्नीसवीं शताब्दी को हम सब प्रकार की उन्नति का युग कह सकते हैं। वसन्त की दक्षिण-वायु का स्पर्श जिस प्रकार सारी प्रकृति को सजीव

कर देता है, उन्नीसवीं शताब्दी के ऊषालोक के स्पर्श ने उसी प्रकार सारे सभ्य देश को जाग्रत कर दिया। वैज्ञानिक, दार्शनिक, समाजतत्त्वज्ञ आदि सभी लोग दीर्घकाल की जड़ता परित्याग करके सत्य के यथार्थ ज्ञान के लिए लालायित हो पड़े। रसायनशास्त्रियों ने भी प्राचीन पुस्तकों के पन्ने उलट उलट कर इस बात का अनुसन्धान आरम्भ कर दिया कि मृत्तिका, जल, वायु और अग्नि किस कारण से मूल पदार्थ माने जा रहे थे। परीक्षा-गृहों में भी देशविदेश के महा-पण्डितों ने परीक्षायें आरम्भ कर दीं। थोड़े ही दिनों में यह निश्चित हो गया कि जल, वायु, अग्नि और मृत्तिका में से एक भी मूल पदार्थ नहीं। आक्सिजन, हाइड्रोजन आदि कई एक वायवीय पदार्थ तथा गन्धक, ताम्र, लोह, स्वर्ण, रौप्य और पारद आदि तरल और कठिन पदार्थ ही सृष्टि के मूल उपादान हैं। इसके उपरान्त अणु-परमाणु के अस्तित्व आदि की जाँच और प्रयोग द्वारा किस प्रकार आधुनिक रसायनशास्त्र की प्रतिष्ठा हुई, उसका विशेष विवरण देना निष्प्रयोजनीय है। अधिक दिन नहीं हुए, दसही बारह वर्ष पूर्व, वैज्ञानिक लोग उसी अणु-परमाणु का स्वप्न देखते थे और उसी का अवलम्बन करके सृष्टि के मूल रहस्य का आविष्कार करने की चेष्टा में थे। उस समय एक बड़ी भारी समस्या ने उपस्थित होकर वैज्ञानिकों के उस सुख-स्वप्न में विघ्न डाल दिया।

पदार्थ मात्र को हम साधारणतः कठिन, तरल और वायवीय—इन्हीं तीन अवस्थाओं में देखते हैं। तीस वर्ष पहले अँगरेज़ वैज्ञानिक क्रुक्स (Crooks) ने पदार्थ की एक चौथी अवस्था की चर्चा चलाई। वायुशून्य शीशे की नली के दोनों सिरों पर "बैटरी" का तार लगा कर उसके भीतर विद्युत् प्रवाहित करने से शून्य नल के भीतर बिजली की धारा बहने लगती है। इस प्रकार की परीक्षा में क्रुक्स साहब ने एक अति सूक्ष्म जड़-कणिका को विद्युत् वहन करते देखा। इन कणिकाओं में कठिन, तरल अथवा वायवीय किसी पदार्थ के कोई लक्षण न देख पड़े। इसी से आविष्कर्त्ता ने पदार्थ की एक चतुर्थ अवस्था का होना भी निश्चय किया। आधुनिक वैज्ञानिकों के अन्यतम नेता सर विलियम लाज (Lodge) ने भी इन कणिकाओं की परीक्षा आरम्भ की। उन्होंने यह सिद्धान्त स्थिर किया कि ये कणिकायें आकार और गुरुत्व में लघुतम परमाणु की अपेक्षा भी सैकड़ों गुना छोटी हैं। लाज साहब ने सोचा कि हो न हो यही सृष्टि के सारे पदार्थों का मूल उपादान है। किन्तु उस समय इस विषय की कुछ विशेष आलोचना न हुई। इसी कारण क्रुक्स साहब की वह चतुर्थ अवस्था वाली बात जहाँ की तहाँ ही रह गई।

प्रायः बीस वर्ष हुए, सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक स्टोनी (Johnstone Stoney) साहब ने देखा कि बहुत से यौगिक पदार्थों में "बैटरी" के दोनों तार डुबो कर रखने से पदार्थ विश्लिष्ट हो जाता है, और विश्लिष्ट अंश (Ions) तारों के पास निर्दिष्ट परिमाण में विद्युत् वहन कर वहीं इकट्ठा भी हो जाता है। उन्होंने नाप जोख कर इस विद्युत् के परिमाण को इलेक्ट्रन (Electron) नाम दिया। इसके बाद क्रुक्स साहब की उस परमाणु की अपेक्षा भी क्षुद्र विद्युत्पूर्ण कणिकाओं के ऊपर वैज्ञानिकों की दृष्टि पड़ी। अनुसन्धान करने पर यह बात देखी गई कि इन कणिकाओं का भी विद्युत्-परिमाण स्टोनी साहब के इलेक्ट्रन के सर्वथा सदृश है। अतएव सब लोग क्रुक्स साहब की उन सूक्ष्म कणिकाओं को भी इलेक्ट्रन नाम से पुकारने लगे। तब चिन्ताशील वैज्ञानिक जड़कणिका और इलेक्ट्रन की एकता देख कर यह कहने लगे कि आज तक स्वर्ण, रौप्य, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन आदि को जो मूल पदार्थ समझते थे वह भूल थी। इलेक्ट्रन के आविष्कार ने प्रचलित रासायनिक सिद्धान्तों को ख़ूब ही विचलित कर दिया।

ये नई नई बातें होने पर वैज्ञानिक लोग निश्चेष्ट कैसे रह सकते थे। नाना प्रकार की नूतन गवेषणाओं के लिए हज़ारों द्वार खुल पड़े। इँगलैंड,

फ्रांस और जर्मनी आदि सभी देशों के बड़े बड़े वैज्ञानिकों के मन में यह बात आने लगी कि सत्तर या अस्सी मूल पदार्थ नहीं हैं; जान पड़ता है कि एक ही मूल पदार्थ से सारे विश्व की रचना हुई है और यह एक पदार्थ यही इलेक्ट्रन है।

क्रुक्स साहब भी निश्चेष्ट नहीं बैठ रहे। सब मूल पदार्थों की जड़ में केवल एक ही मूल पदार्थ के अस्तित्व की बात इनके भी मन में उदित हुई। इस काल्पनिक वस्तु को "प्रोटाइल" (Protyle) नाम देकर, अपने निर्जन परीक्षागार में वे विश्व-रचना का स्वप्न देखने लगे। उनके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि उनकी आविष्कृत वे अति सूक्ष्म कणिकायें ही किसी अज्ञात शक्ति द्वारा एकत्र होकर हाइड्रोजन के परमाणुओं की रचना करती हैं। कई एक और नूतन कणिकायें, अल्पाधिक परिमाण में उनके साथ मिल कर गन्धक, आर्सेनिक, लोह, ताम्र आदि की सृष्टि करती हैं; तथा सम्मिलित कणिकाओं की समष्टि अत्यन्त अधिक हो जाने पर यूरेनियम सदृश गुरुत्वपूर्ण धातुओं की सृष्टि होती है। अन्त को उन्हें विदित हुआ कि वह विद्युद्वाहक कणिका केवल लघुगुरु पदार्थ का जन्म देकर ही क्षान्त नहीं होती, किन्तु गुरुत्व-पूर्ण धातुओं से बाहर निकल कर वह अन्य लघुतर पदार्थों में परिणत हो जाती है।

पचीस वर्ष पूर्व अध्यापक क्रुक्स की पूर्वोक्त चिन्ता सचमुच ही स्वप्न के सदृश थी। अब बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में वही सत्य में परिणत हो चली है। इलेक्ट्रन क्या चीज़ है, यह बात आज भी अच्छी तरह ज्ञात नहीं। कोई तो उसे विद्युत्पूर्ण जड़ कण के नाम से अभिहित करना चाहते हैं, कोई उसे विशुद्ध विद्युत् अथवा मूर्तिमती शक्ति ही कहना चाहते हैं। किन्तु यह पदार्थ ही सृष्टि का मूल उपादान है, इस विषय में प्रायः किसी को भी सन्देह नहीं है। इलेक्ट्रन का संगठन-तत्त्व यद्यपि अभी तक अज्ञात है, तथापि उसके आकार-प्रकार के सम्बन्ध में अनेक नूतन तत्त्व जाने जा चुके हैं। ये इलेक्ट्रन इतने छोटे होते हैं कि जब तक एक हज़ार एकत्र होकर मिल नहीं जाते तब तक उनका आकार और गुरुत्व हाइड्रोजन के परमाणु के समान नहीं होता। जिस समय वे विश्लिष्ट होकर चल निकलते हैं उस समय उनके वेग का परिमाण आलोक के वेग के प्रायः दो तिहाई तक पहुँच जाता है।

रसायनशास्त्री जिस समय इस पदार्थ का पता पाकर उसके रहस्य की बातें जानने के लिए अँधेरे में टटोल रहे थे उस समय "रेडियम" नामक एक अद्भुत धातु के आविष्कार ने गवेषणा का एक नवीन पथ उन्मुक्त कर दिया। इस नई धातु का आणविक गुरुत्व (Atomic Weight) जान लिया गया है। किन किन रंगों की किरणें उससे निकल कर यन्त्र विशेष में दिखाई देती हैं, यह भी विदित हो गया है। किन किन पदार्थों के मेल से उसके कितने यौगिक मिश्रण उत्पन्न होते हैं, इसका भी पता लग गया है। किन्तु एक रत्ती रेडियम से जो अविराम तापरश्मि और इलेक्ट्रन निर्गत होते रहते हैं, उनका यथार्थ ज्ञान अभी तक किसी को नहीं हो सका। इस मूल पदार्थ में परिवर्तन नहीं होता। आलोक और विद्युत् की उत्पत्ति के विषय में जो सिद्धान्त इस समय प्रचलित हैं उनको भी यह पदार्थ भ्रामक सिद्ध करने का लक्षण दिखा रहा है।

इसी विद्युन्मय इलेक्ट्रन और रेडियम के सम्बन्ध में आज तक भिन्न भिन्न देशों में अनन्त गवेषणायें हुई हैं। इनका फल यह हुआ है कि प्रचलित रासायनिक सिद्धान्तों में वैज्ञानिकों के अविश्वास की मात्रा बढ़ती ही जा रही है। रेडियम एक प्रकार का धातव मूल पदार्थ है। अतएव प्रचलित सिद्धान्तानुसार इसका रूपान्तर न होना चाहिए। किन्तु जब हम देखते हैं कि इससे निकले हुए इलेक्ट्रन जिस समय एकत्र किये जाते हैं उस समय हेलियम (Helium) नामक एक और धातु की उत्पत्ति होती है तब रेडियम को परिवर्तनशील मूल पदार्थ स्वीकार करना ही पड़ता है। यदि केवल रेडियम में ही यह

विरोधी धर्म देखा जाता तब तो विशेष विवाद की बात न थी। परन्तु वैज्ञानिकों ने कई मूल पदार्थों में एक ऐसे पदार्थ का पता लगाया है जो मूल पदार्थ से निकल कर दूसरे पदार्थ में परिवर्त्तित हो जाता है। इसीसे इस बात को इतना महत्त्व प्राप्त हुआ है।

क्रुक्स साहब अपने स्वप्न की केवल आंशिक सफलता को ही देख कर चुप नहीं हो बैठे। पूर्वोक्त यूरेनियम नामक धातु की आपने जो परीक्षा की तो मालूम हुआ कि यह पदार्थ जिस जगह होता है उसके चारों तरफ़ रेडियम भी पाया जाता है। पहले उन्होंने इसे केवल एक आकस्मिक व्यापार समझ लिया था; किन्तु आज कल देखा जाता है कि जहाँ यूरेनियम रहता है उसके चारों तरफ़ रेडियम भी पाया जाता है। इससे यह निश्चय हुआ है कि यूरेनियम से इलेक्ट्रन निकलने पर यूरेनियम क्षीण हो जाता है। अतएव उससे उसकी अपेक्षा लघुतर धातु रेडियम की उत्पत्ति होती है। यह बात अविश्वसनीय नहीं। किसी वंश का परिचय देते समय वंश के प्रतिष्ठाता का नाम शीर्ष स्थान में जगह पाता है। उसके बाद पुत्र, कन्या, पौत्र, दौहित्र आदि का नाम यथाक्रम लिखा जाता है। क्रुक्स साहब एवं अन्य वैज्ञानिकों ने यूरेनियम की एक इसी प्रकार की वंशतालिका प्रस्तुत की है। जितने धातव अथवा अधातव तत्त्व अब तक ज्ञात हुए हैं उन सब से यह पदार्थ गुरुत्व में श्रेष्ठ है। इसी से इसे प्रतिष्ठाता का आसन दिया गया है। इसके बाद इसके देहच्युत इलेक्ट्रन द्वारा जिन जिन पदार्थों की उत्पत्ति हुई देखी गई है उन सब का यथाक्रम उल्लेख किया गया है। इस प्रकार अकेले यूरेनियम ही के पुत्र-पौत्रादिकों के नाम से पूर्ण एक बड़ी लम्बी तालिका बन गई है। इनमें से कौन किस खानि में किस रूप में पाई जाती है, इस बात का अनुसन्धान अब तक नहीं हुआ। तथापि यूरेनियम वंशधरों की संख्या प्रायः बीस तक पहुँच गई है। ये सभी डाल्टन साहब के सिद्धान्तानुसार मूल पदार्थ अर्थात् उच्च कुलवाले हैं। किन्तु इस समय ये सब गड़बड़ हो कर अपना कुल-गौरव कम कर रहे हैं।

विद्यालय में अध्यापक महाशय सत्तर-अस्सी मूल पदार्थों के नाम कण्ठस्थ करा कर यह बतलाते हैं कि उनमें न परिवर्तन होता है और न उनका क्षय ही होता है। परन्तु, इस समय देखते हैं कि यही दोनों बातें बीसवीं शताब्दी के मूल-पदार्थ का प्रधान धर्म्म हो रही हैं। प्राणिवर्ग में सब प्राणियों की उम्र एक सी नहीं। जो दो ही चार घंटों में अपनी जीवन-लीला समाप्त कर देते हैं ऐसे कई एक उद्भिज्ज प्राणियों को हम जानते हैं। और, जो दो चार सौ अथवा दो चार हज़ार वर्ष तक जीवित रहते हैं ऐसे जीवों के साथ भी हमारा परिचय है। अद्यावधि विद्वान् जिन सब वस्तुओं को मूल पदार्थ समझते थे उन सबके जीवन की भी सीमा का निश्चय हो गया है। यूरेनियम प्रायः तीस करोड़ वर्ष जीवित रहता है; रेडियम कई सहस्र वर्षों में ही विकार को प्राप्त हो कर पदार्थान्तर में परिणत हो जाता है। अर्थात् एक रत्ती यूरेनियम धातु एक पात्र में रख कर यदि तीस करोड़ वर्षों तक प्रतीक्षा की जाय तो शेष में यूरेनियम का कुछ भी पता न चलेगा। उसके देहनिर्गत तेज, अर्थात् इलेक्ट्रन, के द्वारा जिन अन्य पदार्थों की उत्पत्ति होती है उन्हीं से वह पात्र पूर्ण पाया जायगा। सीसक का आणविक गुरुत्व स्वर्ण और रौप्य सदृश बहुमूल्य धातुओं से बहुत अधिक है। अतएव कालान्तर में क्षय को प्राप्त होकर सीसक का स्वर्ण में परिवर्त्तित हो जाना कोई विचित्र बात नहीं। कोई भविष्यद्दर्शी मनुष्य यदि अपने लोहे के सन्दूक़ में सीसा रख कर सुवर्ण पाने की आशा में प्रतीक्षा करे, तो अवैज्ञानिकों द्वारा लाञ्छित किये जाने पर भी, वैज्ञानिक-मण्डली में उसके आदर पाने की सम्भावना है।

यही सब बातें देख-सुन कर पदार्थतत्त्वज्ञ कहते हैं कि यह जो नदी-समुद्र और उद्भिज्ज आदि से परिपूर्ण जगत् दिखलाई पड़ता है सो वास्तव में कुछ भी नहीं है। कोई भी जड़ वस्तु संसार में नहीं। जड़

पदार्थ के सूक्ष्मतम कण अर्थात् परमाणु तोड़ कर हज़ार अथवा उससे भी अधिक अंशों में उसे विभक्त करने पर देखा जायगा कि इन सूक्ष्मातिसूक्ष्म कणों ने उसी इलेक्ट्रन की मूर्त्ति ग्रहण कर ली है। और, इलेक्ट्रन विशुद्ध विद्युत् की कणिका के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इसी से यह कहना पड़ता है कि यह ब्रह्माण्ड विद्युत् का ही एक रूपान्तर है। अर्थात् संसार में जड़ पदार्थ एक भी नहीं; सारा विश्व ही शक्तिमय है।

गत शताब्दी के पिछले भाग में क्रुक्स साहब ने जो स्वप्न देखा था वह सत्य सिद्ध हो गया। पदार्थ-तत्त्ववेत्ता इस समय स्वप्न में जड़ की जो शक्तिमयी मूर्त्ति देख रहे हैं वह भी सफलता ही की ओर अग्रसर हो रही है। बीसवीं शताब्दी के अन्त में इस स्वप्न के स्थान में कौन सा स्वप्न विश्व की किस मूर्त्ति का आविर्भाव करेगा सो केवल विश्वनाथ ही का ज्ञेय विषय है।

"कुञ्ज"।

क्राइमिया के युद्ध में कुमारी नाइटिंगेल।

स परोपकारिणी नारी का जन्म १८२० ईसवी में फ्लारेन्स में हुआ। इटली देश में फ्लारेन्स एक सुन्दर नगर है। १८७० ईसवी के पहले इसी नगर में इटली की प्राचीन राजधानी थी। नाइटिंगेल के पिता का नाम विलियम एडवर्ड नाइटिंगेल था। आप लीहर्ट्स में रहते थे जो इँगलैण्ड के डरबीशायर सूबे में एक गाँव है। माता-पिता के इच्छानुसार फ्लारेन्स को गणित और गायन भली भाँति सिखाया गया। इँगलैण्ड के बड़े घर की युवतियों में जिन गुणों की आवश्यकता समझी जाती है वे सब गुण नाइटिंगेल में थे। इतना ही नहीं वह अपने समय की युवतियों से कई बातों में बढ़ कर थी। अँगरेज़ होने के कारण अँगरेज़ी भाषा तो वह जानती ही थी। उसके सिवा योरप की अन्य कई भाषाओं में भी उसकी निपुणता कम न थी। बाल्यावस्था से ही उसका स्वभाव परोपकारी था। जब वह २१ वर्ष की हुई तब पिता के विपुल धन की स्वामिनी हो गई। यदि वह चाहती तो आराम से अपना जीवन व्यतीत कर सकती थी; परन्तु परोपकार ही उसे परम प्रिय था। उसका द्रव्य और समय विशेष कर दीन-दुखियों की सहायता में ही ख़र्च होता था। बीमारों की सेवा-शुश्रूषा करना उसे बहुत प्रिय था। और, केवल इसी काम को सीखने के लिए उसने सारे योरप में भ्रमण किया। इस भ्रमण में वह उन स्थानों को गई जहाँ कई प्रकार की बीमारियाँ फैली हुई थीं। वहाँ वह बीमारों की शुश्रूषा करती रही। १८५४ ई० में इँगलैण्ड और रूस के बीच क्राइमिया का भयङ्कर युद्ध शुरू हुआ। उस समय इँगलैण्ड से २५००० सिपाही युद्ध में भेजे गये। यद्यपि अँगरेज़ सैनिक अच्छे योद्धा होते हैं, तथापि कई वर्षों से लड़ने का मौक़ा न आने के कारण वे इस विद्या को भूल सा गये थे। ओमन नाम के एक साहब का कथन है कि १८१५ से १८५४ तक किसी अँगरेज़ सिपाही ने योरप में गोली न चलाई थी। १८१५ में नपोलियन हराया और क़ैद किया गया था। उसके बाद, तब तक, लड़ाई का मौक़ा ही नहीं आया था। इस समय सारे सैनिक और सेनापति, ड्यूक आव् वेलिंगटन और उसकी उच्च सैनिक शिक्षा को याद करते थे। परन्तु उसकी सी बुद्धिमानी एक में भी न थी। हो कहाँ से, प्रत्येक वस्तु का ज्ञान अनुभव से बढ़ता है। पर बेचारे सैनिकों को ३९ वर्ष से गोली चलाने का काम ही न पड़ा था। यद्यपि अँगरेज़ ही इस युद्ध में विजयी हुए तथापि जितना कष्ट इस युद्ध में उन्हें हुआ उतना शायद ही किसी और युद्ध में हुआ होगा। जाड़ा शुरू हो गया था; परन्तु सैनिकों के पास गरम कपड़े न थे। इस कारण कितने ही लोग ठंड से अकड़ गये और कितने ही मर भी गये। सैनिकों की बड़ी दुर्दशा होने लगी। समाचारपत्रों द्वारा जब इस बात की

ख़बर इँगलैण्ड पहुँची तब सारे देश में खलबली मच गई। पारलियामेंट में तूफ़ान सा आ गया। प्रधान मन्त्री और मन्त्रिमण्डल के लोग मनमाने दोष देने लगे। बेचारे मन्त्री भी घबरा गये। जल्दी जल्दी सामान भेजने की वे तैयारी करने लगे। परन्तु जो काम जल्दी और घबराहट में किया जाता है वह ठीक नहीं होता। सैनिकों के लिए बहुत सा क़हवा भेजा गया। परन्तु यह बात किसी को न सूझी कि उसे भुनवा और कुटवा कर भेजें। यदि यह न हो सका था तो कूटने के लिए कोई मशीन ही भिजवानी थी। पर वह भी न किया गया। बेचारे सैनिक क़हवा के बीजों को क्या चबाते? गार्डिनर नाम के एक महाशय एक बड़ी ही हास्यकारक बात लिखते हैं। आपका कथन है कि सैनिकों के लिए जो जूते भेजे गये थे वे सब बायें ही पैर के थे, दाहने पैर का एक भी न था! बीमार सैनिक जिस स्थान पर थे वहाँ न भेज कर और कहीं उनके लिए दवायें भेजी गईं!! जिस जहाज़ द्वारा सेना के लिए सामान भेजा गया था वह काले सागर में तूफ़ान आने से डूब गया!!! घबराहट में कोई काम ठीक ठीक नहीं होता। ख़ैर, धीरे धीरे सब बातें ठीक हो गईं। बहुत से डाक्टर भेजे गये। बीमार सैनिकों के लिए टर्की के स्कुटारी नामक नगर में अस्पताल भी खोले गये। यद्यपि डाक्टर लोग यथाशक्ति इलाज करते थे, तथापि सैनिकों की शुश्रूषा अच्छी तरह न हो सकती थी। इस काम के लिए कुछ बुद्धिमती स्त्रियों की आवश्यकता समझी गई। स्वर्गीया महारानी विक्टोरिया ने यह काम नाइटिंगेल को सौंपा। नाइटिंगेल ने प्रसन्नतापूर्वक इस काम को स्वीकार किया। हम पहले ही कह चुके हैं कि उसे ऐसे काम बहुत पसन्द थे। बयालीस स्त्रियों को लेकर वह रवाना हो गई। इनमें से कई स्त्रियाँ उच्च और अमीर घराने की थीं। उसके स्कुटारी पहुँचने के दूसरे ही दिन सारे घायल सिपाही वहाँ अस्पताल में लाये गये। जगह कम होने के कारण सिपाही बहुत पास पास सुलाये गये। कुमारी नाइ-टिंगेल, दूसरी स्त्रियों के साथ, सफ़ेद पोशाक पहन कर बीमारों की निगरानी करने लगी। जो लोग सख्त बीमार थे और मामूली खाना, जो बीमारों के लिए बनाया जाता था, न खा सकते थे उनके लिए अरारोट और शोरबा इत्यादि वह बनवाती थी। कभी कभी तो वह ख़ुद ही खाना पकाने में भिड़ जाती थी और बीमारों को ख़ुद ही खिलाती भी थी। अनेक घायल सिपाही घाव पर नश्तर चलवाने की अपेक्षा मर जाना पसन्द करते थे। परन्तु वह उन्हें धैर्य देती और उनके पास खड़ी रहती थी। सिपाही उसे माँ या बहिन के समान मानते थे। इस कारण उसके कहने से वे चीड़फाड़ का कष्ट सह लेते थे। रात को वह एक छोटा सा लैम्प ले कर बीमारों की देखभाल करती हुई इधर उधर घूमती थी। इससे वह इतिहास में लैम्पवाली लेडी (Lady of the lamp) के नाम से प्रसिद्ध है। जब वह अस्पताल में घूमती थी तब बीमार उसी की ओर देखा करते थे। प्रत्येक की यही इच्छा होती थी कि नाइटिंगेल उसी के पास रहे। उसके कहने से जितनी शान्तता से सिपाही कष्ट सह लेते थे उतनी शान्तता से शायद ही और किसी के कहने से वे सहते। उसका कथन है कि उसके सामने सिपाही कभी अभद्र शब्दों का उच्चारण न करते थे। यह सोच कर बहुधा उसकी आँखें डब डबा आती थीं कि जो सिपाही स्वभाव ही से मुँह के हलके और उद्धत होते हैं वे बीमारी में कैसे शान्त और दीन हो गये हैं। यथार्थ में सैनिकों के शान्त स्वभाव का कारण बीमारी न थी। मनुष्य चाहे कैसा ही शान्त क्यों न हो, बीमारी में वह अवश्य ही चिड़चिड़ा हो जाता है। बात यह है कि उद्धत होने पर भी सिपाही लोग कुमारी नाइ-टिंगेल की मातृतुल्य शुश्रूषा और अच्छे बरताव के कारण उसके वशीभूत हो गये थे। जब वह पहले पहल अस्पताल में पहुँची तब सैनिकों के कपड़े धोये जाने का कोई प्रबन्ध न था। पर उसके प्रबन्ध से बीमारों को साफ़ कपड़े मिलने लगे। दिसम्बर में जब एक दिन कुमारी के पास महारानी विक्टोरिया का पत्र
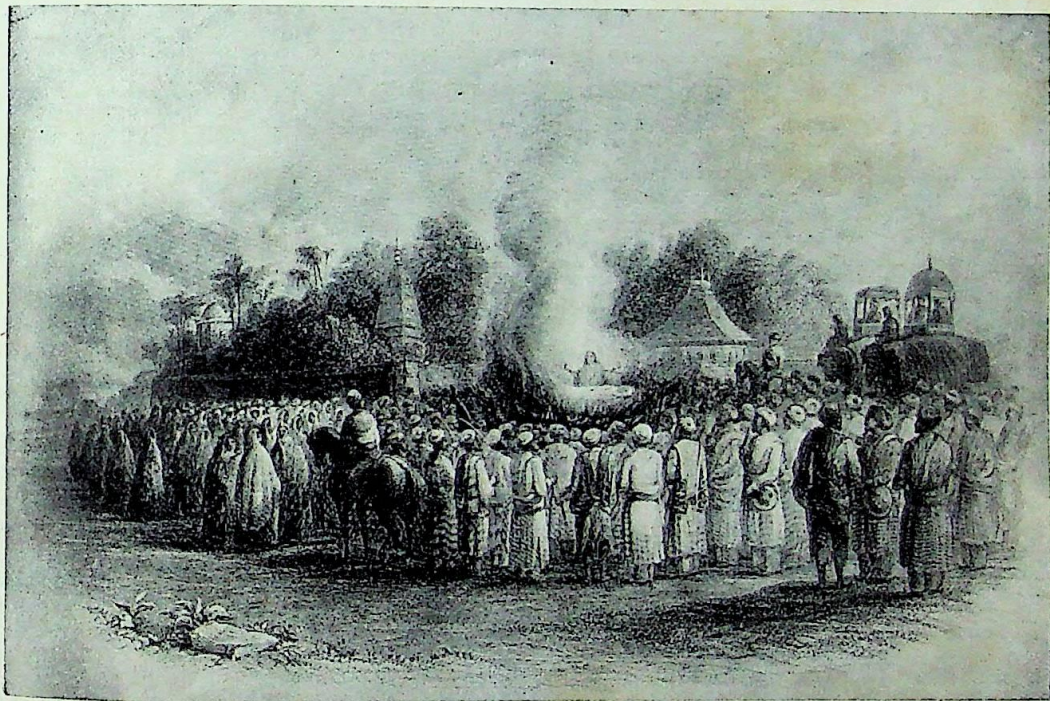
सती का अग्नि-संस्कार ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

आया तब सारे अस्पताल में आनन्द छा गया। महारानी ने उसे लिखा था कि "आप कृपा करके मेरे बीमार और देशभक्त सैनिकों से कह दें कि उनके दुःख से मैं बहुत दुःखी हूँ। रात दिन मुझे उन्हीं की चिन्ता रहती है। उनसे मेरी पूर्ण सहानुभूति है। उनके शौर्य और पराक्रम का सब से अधिक गर्व मुझे है"। इस पत्र की कई नक़लें की गईं और बीमारों को पढ़ कर सुनाई गईं। जब पढ़ने वाले अन्त को "God save the Queen" (परमेश्वर महारानी की रक्षा करें) कहते थे तब बीमार और अधमरे सिपाही भी ज़ोर से Amen (तथास्तु) कह उठते थे। इस पत्र से उनको जो सन्तोष और आनन्द हुआ वह लिखा नहीं जा सकता। गरमी के दिनों में वह एक और अस्पताल में दवा लेकर गई। वहाँ पर बीमार सिपाही उसके आने से बड़े प्रसन्न हुए। वहाँ कुछ दिन रहने के बाद वह ख़ुद ही बीमार हो गई और एक अन्य अस्पताल में भेजी गई। वहाँ कुछ दिनों तक वह बहुत बीमार रही। कुछ अच्छी होने पर वह इँगलैण्ड लौट गई। यद्यपि वह अशक्त और बीमार थी तथापि उसका मन सदा स्कुटारी के अस्पताल ही की चिन्ता में मग्न रहता था। इसी से वह शीघ्र ही वहाँ लौट आई। १८५५ ईसवी में परस्पर सन्धि होकर लड़ाई बन्द होगई। परन्तु नाइटिंगेल १८५६ तक वहीं रही। क्योंकि अनेक सिपाही तब तक चंगे नहीं हुए थे। जब वह इँगलैण्ड लौटने लगी तब महारानी से लेकर ग़रीब से ग़रीब किसान तक ने उसके सुस्वागत का विचार किया। परन्तु वह ऐसे भारी सम्मान को पसन्द न करती थी। अतएव इँगलैण्ड पहुँचने पर वह इस तरह चुपचाप घर चली गई कि कोई उसे पहिचान ही न सका। तथापि लोग उस पर अपनी कृतज्ञता प्रकट करना ही चाहते थे। इसलिए उन्होंने ७,५०,००० रुपया चन्दा करके जमा किया। इसमें अधिक चन्दा उन सैनिकों का था जो लड़ाई में ज़ख़्मी हो कर कुमारी को सौंपे गये थे। उसकी इच्छा के अनुसार इस धन से एक अस्पताल खोला गया जिसमें स्त्रियों को बीमारों की सेवा शुश्रूषा सिखलाई जाने लगी। सैनिकों की वह विशेष आदर पात्र हो गई; क्योंकि उन्हीं के लिए अपने स्वास्थ्य की कुछ भी परवा न करके वह स्कुटारी गई थी। लौटते समय टर्की के सुलतान ने उसे एक बहुमूल्य आभूषण नज़र किया; और, महारानी ने उसे हीरा जड़े हुए एक सुवर्ण पदक से सम्मानित किया। उसके एक ओर Crimea और दूसरी ओर "To Florence Nightingale as a mark of esteem and gratitude for the devotion towards the Queen's brave soldiers. From Victoria R. खुदा हुआ था।

वह कई अच्छी अच्छी पुस्तकें लिख गई। उसकी अन्तिम पुस्तक का नाम—Notes on Nursing है। इस पुस्तक में अच्छी तरह समझाया गया है कि बीमारों की अच्छी तरह सेवा न होने से कितनी हानि होती है। इस पुस्तक में स्वच्छ वायु को ही विशेष महत्त्व दिया गया है। वह सदा सरकार से प्रार्थना करती थी कि गाँवों और नगरों की स्वच्छता की ओर विशेष ध्यान दिया जाय। अनेक लोग, जिन्हें उसका नाम तक न मालूम था, उसकी पुस्तकों से लाभ उठा रहे हैं। एक दफ़े रात को एक अँगरेज़ कवि क्राइमिया की लड़ाई का वर्णन पढ़ रहा था। जब वह स्कुटारी के अस्पताल और नाइटिंगेल का वर्णन पढ़ने लगा तब वह उसमें इतना मग्न हो गया कि उसे मालूम होने लगा जैसे किसी जगह कई बीमार और ज़ख़्मी पड़े हैं और एक युवती सफ़ेद कपड़े पहने, हाथ में एक छोटा सा लैम्प लिए, प्रत्येक के पास जाती है और उसकी सेवा करती है। पढ़ना समाप्त होते ही उसने यह कविता बनाई:—

A lady with a lamp will stand,
In the great History of the land,
A noble type of good.
Heroic Womanhood.

लक्ष्मणराव काटोलकर।

वैदिक उपदेश।
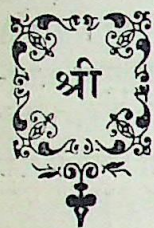
श्रीमान् नारायणराव पेशवा के रक्त का तिलक अपने मस्तक पर लगा कर राघोवा दादा पेशवा की गद्दी पर बैठ गये। उन्हें गद्दी तो प्राप्त होगई पर तत्कालीन प्रसिद्ध राजनैतिकों की सहायता उन्हें न प्राप्त हो सकी। राजनीति-कुशल पुरुष उन्हें ज़रा भी न चाहते थे। सदा परस्पर एक दूसरे की घात में लगे रहते थे। इसका कारण यह था कि जिस समय नारायणराव पेशवा का शवदाह हो रहा था, उस समय, श्मशान में ही, कुछ लोगों ने प्रण कर लिया था कि ऐसे क्रूरकर्म्मा नरेश की आज्ञा पालना महान् पातक है। हम लोग तो उसको अभिवादन तक न करेंगे। अन्त में इन लोगों ने अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया और विकट षड्यन्त्र रच कर राघोवा को पद-भ्रष्ट करके ये लोग नारायणराव की रानी के गर्भस्थ स्वामी की प्रतीक्षा करने लगे। इस राज्यक्रान्ति के मुखिया, नाना फड़नवीस आदि बारह चतुर पुरुष थे। यही कारण है कि यह "बारह भाई" अथवा "बारह भाइयों का-षड्यन्त्र" कहलाता है।

जिस प्रकार उत्तम फल-फूल-दायक वृक्ष होने के लिए अच्छे बीज की ज़रूरत होती है उसी प्रकार अच्छी उर्वरा ज़मीन की भी ज़रूरत होती है। छत्रपति शिवाजी महाराज स्वयं बड़े तेजस्वी थे। फिर श्रीसमर्थ रामदास जी के वचनामृत में अपूर्व शक्ति थी। इसी से महाराष्ट्र-महाराज रूपी तरुवर की उत्पत्ति हुई। इसी प्रकार इन बारह भाइयों के नीति-कौशलरूपी क्षेत्र में नाना फड़नवीस के विचाररूपी बीज बोये गये और उन पर परम विद्वान् राम शास्त्री का उपदेशामृत सींचा गया। इसीसे "बारह भाई" का प्रसङ्ग-तरुवर उत्पन्न हुआ और उसमें शाखा-प्रशाखायें फूट कर कुछ समय बाद सवाई माधव-राव रूपी उत्तम फल लगा।

नाना फड़नवीस और सखाराम बापू के साथी सज्जन भी स्वयं धुरन्धर राजनीतिज्ञ, विचारवान् और नीतिनिपुण थे। इतने पर भी श्रीरामशास्त्री जैसे सत्पुरुष से सहायता मिली। फिर सफलता में शङ्का ही क्या? समय पाकर बाल-राजदिनकर का उदय हुआ। इससे थोड़ेही समय में उदासीनतारूपी तमोराशि विलीन होगई और सभी के हृत्कमल प्रफुल्लित हो उठे।

इस "बारह भाई" को न्यायमूर्ति श्रीरामशास्त्री ने जो उपदेश दिया—जो अमृत पिलाया—वह यद्यपि थोड़ा ही सा था, तथापि उसमें शक्ति अपरिमित थी। वेदोक्त होने के कारण वह इतना रसाल और प्रसादमय था कि यदि सब लोग उसे सर्वदा ध्यान में रक्खें तो वह उन्हें बहुत ही कल्याण-दायक हो। क्योंकि सत्पुरुषों के शब्दों में जगत् के कल्याण का हेतुही प्रधान रहता है। इसी से उनका मूल्य भी बहुत होता है। "केरल-कोकिल" के आधार पर हम केवल यही बतलाते हैं कि यह योगायोग कब और कैसे हुआ।

रघुनाथराव ने अमानुषी काम करके पेशवा की गद्दी तो प्राप्त करली, पर वह मानसिक चिन्ता और लोकापवाद से अपना पीछा न छुटा सके। सोते जागते, खाते-पीते, सर्वदा उनके आगे मूर्तिमान् ब्रह्म-बाल-हत्या खड़ी रहती थी। यह हत्या उनके हृदय में रह रह कर दारुण व्यथा पैदा करती थी। इसके अतिरिक्त कुछ साहसी लोग उन्हें ताने भी दिया करते थे। कुछ ऐसे भी निस्पृह सज्जन थे जो उनके आगे यह बात साफ़ साफ़ कह दिया करते थे कि पेशवाओं के वंश में जन्म लेकर आपने अच्छी नाम-वरी पैदा की! इसीसे उन्हें अपना जीवन दुस्सह होगया। बेचारा अपनी स्त्रीरूपिणी राक्षसी के जाल में फँसकर अपकीर्ति के अन्धकूप में गिर पड़ा। बालक के रक्त से रँगा पेशवा का राज्य तो मिल गया, पर वैभव-सुख का लेश भी न मिला। अहोरात्र चिन्ता के मारे बेचारे को शान्ति न मिलने पाई। बिना शान्ति के जीवन ही व्यर्थ है। संसार में यदि

सब कुछ मिला और शान्ति न मिली तो बेचैनी नहीं दूर होती। यही सोच कर राघोबा ने रामशास्त्री जी को इस उद्देश से बुलवाया कि इस कृतापराध का किञ्चित् प्रायश्चित्त कर पातकों का यथासम्भव क्षालन करूँ और किसी तरह लोकापवाद से छुट्टी पाऊँ।

शास्त्रीजी की बुद्धिमानी, न्यायप्रीति और निस्पृहता सबको विदित थी। इन्हें श्रीमान् माधवराव ने अपना मुख्य न्यायाधीश बनाया था। निमन्त्रण पाते ही वे राजमहल में पहुँचे और उचित अभिवादन कर बैठ गये। कुछ इधर उधर की बातें करके राघोबा ने शास्त्रीजी से कहा कि "आप उद्भट विद्वान् हैं। हमारे महल में जो दुर्घटना हो चुकी है उसका सब आद्योपान्त वृत्तान्त भी आप जानते हैं। आपसे कोई बात छिपी नहीं। नारायणराव को मारा तो किसी ने और लोकापवाद पड़ा मुझ पर! किसी के मुहँ पर कोई हाथ थोड़ेही रख सकता है। अब मेरी इच्छा है कि "यद्यपि सिद्धं लोकविरुद्धम्" के नाते मैं उस पाप का कुछ प्रायश्चित्त करूँ। कृपा करके आप बतलावें कि इसका क्या प्रायश्चित्त हो सकता है"?

यह सुन कर शास्त्रीजी कुछ देर तक न बोले। अन्त में यह कह कर वे अपने घर चले गये कि मैं विचार करके रात को उत्तर दूँगा। घर जाकर उन्होंने भोजन इत्यादि नैमित्तिक काम किये और घर का सारा असबाब गाड़ियों में लदवा कर बाल-बच्चों को काशी रवाना कर दिया। इस प्रकार घर की व्यवस्था करके वे पेशवा से मिलने गये। नाना फड़नवीस और सखाराम बापू आदि दरबारी भी वहाँ उपस्थित थे। शास्त्रीजी को देख कर राघोबा दादा ने उनकी अभ्यर्थना की और पूछा कि "कहिए पण्डितजी, हमने सबेरे जो प्रश्न किया था उसका आपने क्या निर्णय किया?" राघोबा दादा समझते थे कि कुछ पूजा-पाठ कराने और ब्राह्मणों को लड्डू खिलाकर दक्षिणा में अशर्फ़ियाँ देने से ही मेरा पिण्ड छूट जायगा। इसी आशासूत्र में बद्ध होकर वे जल्दी कर रहे थे।

परन्तु शास्त्रीजी पूरे न्याय-मूर्ति थे। उन्हें रत्ती भर भी अन्याय न रुचता था। उनके मन में सदा यह तत्त्व जागृत रहता था कि "निस्पृहस्य तृणं जगत्।" भला ऐसे सत्पुरुष के हाथ से इस अघोर कर्म का आच्छादन कैसे हो सकता था? उन्होंने भरे दरबार में पेशवा को उत्तर दिया—"अन्नदाता, ऐसे पातकों का प्रायश्चित्त प्राणान्त के अतिरिक्त और कुछ नहीं है"। हम नहीं कह सकते कि इस उत्तर को पाकर पेशवा की कैसी दशा हुई होगी। पर इतना ज़रूर बतलाये देते हैं कि उन्हें यह सोच कर और भी अधिक विषाद हुआ कि रामशास्त्री सरकारी नौकर हैं। अपने स्वामी को ऐसा उद्दण्डता-पूर्ण उत्तर देने का उन्हें साहस कैसे हुआ। अतएव शास्त्रीजी के उत्तर को सुनकर क्रोधवश उन्होंने इतना ही कहा "हाँ ठीक है"। इस पर शास्त्रीजी ने नमस्कार करके यह कहा कि श्रीमान् अधिक सोच विचार में न पड़ें। मैंने अपना सारा सामान पूने से रवाना कर दिया है। काशी-यात्रा की तैयारी करके यहाँ आया हूँ। आज तक मैंने श्रीमान् की यथामति सेवा की। अब यहाँ रहने में भलाई नहीं है; और मेरी अब यहाँ ज़रूरत भी नहीं है। इतना कह कर वे महलों के बाहर होगये। पेशवा कुछ कहने वाले थे, पर उन्होंने उधर ध्यान ही नहीं दिया। इसीसे क्रोधवश पेशवा ने भी उनसे रहने के लिए विशेष आग्रह नहीं किया।

नाना फड़नवीस वग़ैरह समीप ही बैठे थे। अकस्मात् शास्त्रीजी को जाते देख उनके मन अधिक उद्विग्न हुए। अतएव उन्होंने पेशवा से यह कह कर आज्ञा माँग ली कि हम लोग शास्त्रीजी को पहुँचाने जाते हैं। जाते समय शास्त्रीजी ने सोचा कि अब जाते तो हैं ही, देव-दर्शन क्यों न करते चलें। इससे वे पूने के एक सर्वश्रेष्ठ मन्दिर में दर्शन करने चले गये। नाना फड़नवीस वग़ैरह भी उनके पीछे पीछे वहाँ पहुँचे। मन्दिर में सबसे मुलाक़ात हुई। वहाँ बिलकुल एकान्त था। बारह राजनीतिज्ञ मंत्री और

तेरहवें शास्त्रीजी को छोड़ वहाँ ग्रौर कोई न था। उस समय पेशवाओं के राज्य में शास्त्रीजी एक तेजो-मय रत्न थे। राज-मन्त्रियों की उनके सम्बन्ध में विशेष पूज्य बुद्धि थी। बिना शास्त्रीजी की सलाह के वे कोई काम न करते थे। ऐसे विकट समय में उनका चला जाना सबको दुःखदायी हुआ। नाना फड़नवीस के नेत्रों से आँसू टपकने लगे। सब लोग शास्त्रीजी से रहने की प्रार्थना करते करते थक गये; पर उन्होंने एक न मानी। वे अपने निश्चय पर अटल रहे। अन्त में नाना ने गद्गदकण्ठ से कहा कि "शास्त्रीजी, आप यह बख़ूबी जानते हैं कि आजकल पेशवाओं की गद्दी पर कैसे भयानक सङ्कट आरहे हैं। अकेला यह घरेलू झगड़ा ही कितना अनर्थ कर रहा है। यह गद्दी ब्रह्म-बाल-राजा के रक्त से भीगी हुई है। वर्तमान हिरण्यकशिपु को परास्त करने का हमने विचार कर लिया है। हमें ऐसे घातकी पुरुष की सेवा करने की इच्छा नहीं। अवसर ढूँढ़ रहे हैं। दैव-कृपा से आशा-तन्तु भी मिल गया है। आपसे कहना नहीं होगा कि राज्यक्रान्ति उत्पन्न करना कितना विकट काम है। ऐसे समय में आपके न रहने से हमारी दक्षिण भुजा टूट जायगी। हमें सलाह देने के लिए कोई योग्य पुरुष न रहेगा। आप इस बात का विचार क्यों नहीं करते। यदि आपको यहाँ रहना मंज़ूर नहीं है तो हम भी आपके ही साथ चलते हैं। फिर यहाँ रक्खा ही क्या है"! नाना फड़नवीस के इन शब्दों को सुन कर शास्त्रीजी का गला भर आया। वे कहने लगे "नाना, यह बड़े आश्चर्य की बात है कि तुम्हारे जैसा राज-कार्य-धुरन्धर ज़रा सी बात के कारण उदासीन हो रहा है। सभी काम ईश्वर के सङ्केतानुसार हुआ करते हैं। उनके लिए ज्ञानवान् को विशेष सुख-दुःख न मानना चाहिए। आप सब लोग चतुर, दूरदर्शी ग्रौर राज-कार्य-पटु हैं। इसमें ज़रा भी संदेह नहीं कि आप अभीष्ट कार्यों को अच्छी तरह करके गभस्थ प्रभु की कीर्ति दिग्दिगन्त में फैलावेंगे। मैं आपके राजकार्य्य में कभी नहीं पड़ा ग्रौर मुझसे वह सिद्ध भी नहीं हो सकता। मैं तो केवल धर्मशास्त्र की सहायता से अभियोगों का निर्णय करता रहा हूँ। हाँ, आप भाईबन्धु के समान सलाह लेने आते थे; सो मैं आपसे यथामति निवेदन कर देता था। बस, इतनी ही बात थी। किन्तु अब यहाँ रहना अच्छा नहीं। इससे आप भी आग्रह करना छोड़ दें"।

यह सुन कर सब निरुपाय होगये। उन्होंने जान लिया कि शास्त्रीजी रोके न रुकेंगे। तथापि नाना ने एक ग्रौर विनती की। वे बोले—"महाराज आप सबमें वयोवृद्ध ग्रौर पूज्य हैं। अब हमें आपके विचारपूर्ण, मधुर एवं उत्तम उपदेश दुर्लभ होजायँगे। हाय अब हमारे कर्णकुहरों में आपके मधुर शब्द कदाचित् ही फिर प्रविष्ट हों! अतएव हमें आपके मुखारविन्द से दो चार शब्दोपदेश सुनने की इच्छा है। उतनेही से हमें समाधान होगा"।

इस पर शास्त्रीजी कुछ हँस कर बोले—"नाना ग्रौर बापू, तुम दोनों क्या कम हो? काशी से लेकर रामेश्वर पर्यन्त तुम्हारी बुद्धि का डङ्का बज रहा है। तुमको मैं क्या उपदेश दूँ? तथापि तुम भक्तिभाव से पूछ रहे हो ग्रौर मेरे अल्पोपदेश को भी सदैव ध्यान में रखने का वचन देते हो। अतएव मैं कुछ कहता हूँ। तुम सब एक से एक बढ़ कर चतुर हो, परन्तु, सम्भव है, कभी मतविरोध होजाय। आपस में फूट होते समय मेरे विचार तुम्हारे काम आवेंगे। साधारणतः सभी ज्ञानवान् हैं। ऐसा कौन है जिसे भले बुरे का ज्ञान न हो। ग्रौर यह बात भी नहीं है कि जो कुछ मैं कहूँगा वह पूर्वजों के कथन से अधिक महत्त्व का होगा या कोई एक दम नई बात होगी। किन्तु जिसके मुख से उपदेश होता है उसमें पूज्य बुद्धि होने के कारण श्रोताओं को उसका बारम्बार स्मरण होता रहता है। अतएव मैं भी सूत्र-रूप में एक बात तुमसे कहता हूँ। वैदिक मन्त्रों के द्वारा निवेदन करना चाहता हूँ। क्योंकि वेदों में हम सबकी बड़ी ही पूज्य बुद्धि है। आप ऋग्वेद-संहिता के अन्तिम दो मन्त्रों को सर्वदा ध्यान में रक्खें। बस मैं इतनाही कहना चाहता हूँ।

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥ २॥
समानीव आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥ ४ ॥

इस वेदवाणी के अनुसार आचरण करने से सब सिद्धियाँ प्राप्त होंगी । मेरा भी यही आशीर्वाद है। नाना ने कहा महाराज, हम इन वेदमन्त्रों का अर्थ नहीं समझे। अतएव आप अर्थ भी श्रीमुख से ही बतलावें। शास्त्रीजी ने कहा, इनका अर्थ बहुत ही अच्छा है। तदनुसार व्यवहार करना बहुतही हितकर है। अर्थ है :—"तुम सब मित्र भाव से रहो । परस्पर का विरोध भाव छोड़ो। एक मत होकर भाषण करो । तुम सब अपने मन का रुख़ एक ही तरफ़ को रहने दो। जिस प्रकार अनादि देवता एक मत से अपना अपना हविर्भाग ग्रहण करते हैं, उसी प्रकार तुम भी मत-मतान्तर के वैमनस्य को त्याग कर इष्ट फल की प्राप्ति की तरफ़ ध्यान रक्खो ।

"अपना निश्चय एक रहने दो । अन्तःकरणों को एकरूप का बनाओ । तुम्हारे मन समान हों; तुम्हारा हृदय एक सा हो; सर्वत्र समानता रहे ।

यही इन मन्त्रों का आशय है। अपना व्यवहार तुम इसी उपदेशानुसार करो। ये मन्त्र वेदोक्त हैं और इनका अर्थ रामशास्त्री के मुख से निकला हुआ है। इन मन्त्रों में और इनके अर्थ में अपूर्व शक्ति है। इनका अनुसरण करना सर्वथा शुभफलदायक है।

लल्लीप्रसाद पाण्डेय ।

विविध-विषय ।

१-बङ्गालियों की हिन्दी ।

हिन्दी वह भाषा है जिसे वे लोग भी समझ सकते हैं जो बङ्गाल, मदरास और बम्बई प्रान्तों के निवासी हैं । समझ ही नहीं सकते किन्तु आवश्यकता पड़ने पर अपने विचार भी इस भाषा में प्रकट कर सकते हैं। इन बातों को सभी जानते हैं। परन्तु एक बात शायद सब लोग नहीं जानते। वह यह कि बिना हिन्दी पढ़े और बिना उसे लिखने का अभ्यास किये अन्य प्रान्त वाले इस भाषा को लिख भी सकते हैं। भाषा अच्छी न हो, वह अशुद्धियों से भरी हो, उसमें प्रान्तिक शब्दों का बाहुल्य हो, उसे पढ़ कर आप भले ही हँसे—तथापि फिर भी वह हिन्दी ही है। हिन्दी-भाषा-भाषियों को उससे अर्थ-ज्ञान तो होजाता है। यह बात नीचे दिये गये एक विज्ञापन की नक़ल से स्पष्ट हो जायगी। देखिए:—

हामलोक माड़ोवारी लेड़का को सुबिस्ता का ओवास्ते १४ नं० पगेया पटी विठलदास का मोकाम में अङ्क इंराजी ओ बाङ्गाला पड़ाने का ओयास्ते एकठी भाला बन्दोबस्त किया, हिंया तिनठो माष्टार बाबू हाय उलोक क, ख, से इंराजी स्कुल का एण्ट्रस क्लास तक पड़ायगा माड़ोवारी भद्र आदमी का लेड़का लोक को पड़ाने का ओवास्ते हिया बहुत सूबिस्ता होगा ।

समय फजिर सात से नय बाजातक बेला एक टा से चार बाजातक माष्टार लोक रहेगा । जिसका जो घण्टा में सुबिस्ता होगा, उलोक ऐ घण्टा में आने सेकेगा ।

फि महिना में दू, चार, छय, आट, दश रुपेया, करके। किसका केसा माफिक फि लागेगा मुलाकात से ओ सब मिल यायेगा । भर्ति होने का बक्त एकठो रुपेया देने होगा ।

यह कलकत्ते के किसी बङ्गभाषा-भाषी की हिन्दी है। लेखक महाशय को हिन्दी का बिलकुलही अभ्यास नहीं है । उनकी हिन्दी विलक्षणता से परिपूर्ण है। उसमें बँगलापन भरा हुआ है। पर जिस उद्देश से उन्होंने यह विज्ञापन हिन्दी में प्रकाशित किया है वह अवश्यही सिद्ध होगया है।

२—व्योमयान बनाने और उस पर बैठ कर उड़नेवाला पहला भारतवासी।

ऐसा कोई काम नहीं जिसे और देश वाले करते हों पर भारतवासी न कर सकें । समय, सुभीता और सहायता मिलने पर भारतवासी क्या नहीं कर सकते ? हाल में एस० वी० सेटी नामक एक महाशय ने व्योमयान-विद्या में अच्छी योग्यता दिखाई

है। आप भारतवासी हैं। माईसोर में असिस्टंट इंजिनियरी के पद पर नियुक्त हैं। बी० ए० हैं। रुड़की के इंजिनियरी कालेज का इम्तहान पास किये हुए हैं। व्योमविहारिणी विद्या से अधिक प्रेम होने के कारण, कुछ समय से, आप इँगलैंड में हैं। माडर्नरिव्यू के एक लेख से मालूम हुआ कि अब आप इस विद्या में पारङ्गत हो गये हैं। आपने एक व्योमयान अपने हाथ से भी बनाया और उस पर बैठ कर लन्दन से कुछ दूर एक मैदान में सफलता-पूर्वक आप उड़े भी। आपकी कारीगरी और कामयाबी पर मुग्ध होकर आपके यान को एक साहब ने तुरन्त ख़रीद लिया। अब आप एक और उससे भी बढ़िया आकाश-यान बना रहे हैं। आपने व्योमयान बनाने और उड़ने का आजन्म व्यवसाय करने का निश्चय कर लिया है। सिद्धिरस्तु।

३—बेतार का टेलिफ़ोन।

बेतार के तार की तरह अब बेतार का टेलिफ़ोन भी चल निकला। इस तरह के टेलिफ़ोन के आविष्कार का समाचार प्रकाशित हुए तो बहुत दिन हुए; परन्तु अब वह चलने भी लगा और उसके सम्बन्ध की बहुतसी बातें भी प्रकाशित होगईं। एच० ग्रिंडल मैथ्यूज़ नाम के एक यंजिनियर ने इसका आविष्कार किया है। बारह मील इससे बात-चीत की जासकती है। तार की बिलकुल ज़रूरत नहीं पड़ती। इसका यंत्र बहुत छोटा होता है और आसानी से एक जगह से दूसरी जगह जासकता है। एक आदमी यदि एक कोठरी के भीतर बैठे और इसके यन्त्र के चोंगे के सामने मुँह कर के कुछ कहे तो, दूसरा आदमी दूसरी कोठरी के भीतर, वैसेही यन्त्र के सामने बैठ कर और उसके चोंगे को कान में लगा कर उसकी बात सुन सकता है। बीच में चाहे जितनी दीवारें और दरवाज़े आजायँ, बात सुनने में कुछ भी रुकावट नहीं होती। इस यन्त्र का प्रचार हो जाने पर लोग घर बैठे पुलिस के दफ़्तर, डाकख़ाने, रेलवे स्टेशन और तारघर से बात-चीत कर सकेंगे। लड़ाई के समय एक सेनानायक दूसरे सेनानायक से कोसों की दूरी से बातचीत कर सकेगा। जो लोग खानों के भीतर काम करते हैं वे वहीं से ऊपरवालों से बातचीत कर सकेंगे और कोई दुर्घटना होने पर उसकी सूचना भी देसकेंगे। इस टेलिफ़ोन के यन्त्र भी बहुत सस्ते हैं। अतएव साधारण आमदनी के लोग भी इससे फ़ायदा उठा सकेंगे।

४—देशी भाषाओं की शिक्षा।

गत ३ अगस्त को, सन्ध्या समय, इन प्रान्तों के छोटे लाट, सर जान हिवेट ने इलाहाबाद-विश्वविद्यालय के सिनेट का नया भवन खोलते समय, शिक्षा के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण वक्तृता की। उसमें आपने इस बात पर खेद प्रकट किया कि उनके एक बार पहले सूचना देने पर भी विश्वविद्यालय ने देशी भाषाओं की शिक्षा का कुछ भी प्रबन्ध नहीं किया। आपकी राय है कि अपने देश की भाषाओं का साहित्य अच्छी तरह समझने के लिए भाषा-शिक्षा की बड़ी ज़रूरत है। तिस पर भी भाषा-विज्ञान के सिखाने का अब तक कोई यत्न नहीं हुआ। स्कूलों और कालेजों में अँगरेज़ी के सिवा अन्य भाषाओं की जो शिक्षा दी जाती है वह बहुत ही थोड़ी है। उससे काम नहीं चल सकता। हाल में गवर्नमेंट को अपने गैज़ट का अनुवाद कराने की आवश्यकता पड़ी। अतएव कई एक बाहरी शिक्षित आदमियों से इस काम के लिए कहा गया। उन्होंने जो अनुवाद के नमूने भेजे वे अशुद्धियों से भरे हुए थे। उनका प्रायः नख से सिख तक संशोधन करना पड़ा। तब कहीं वे अनुवाद छपने योग्य हुए। सुनते हैं, अब ऐसा प्रबन्ध हो रहा है कि बी० ए० तक के विद्यार्थियों से उर्दू और हिन्दी से अँगरेज़ी में और अँगरेज़ी से उर्दू और हिन्दी में अनुवाद कराया जायगा। एम० ए० में अब भाषा-विज्ञान भी पढ़ाया जायगा। शुभस्य शीघ्रम्।

५—लन्दन में कविवर रवीन्द्रनाथ का आदर।

बङ्गाल के कविश्रेष्ठ बाबू रवीन्द्रनाथ ठाकुर इस समय लन्दन में हैं। १० जूलाई को इंडिया सोसायटी नाम के एक समाज ने उन्हें भोज दिया। इँगलैंड के अनेक कवि और लेखक भी आमन्त्रित हुए। उनसे रवि बाबू का परिचय कराने ही के लिए यह उत्सव किया गया था। प्रत्येक विद्वान् स्त्री-पुरुष एकत्र हुए। रवि बाबू की तीन कविताओं का अनुवाद अँगरेज़ी में एक महाशय ने सुनाया। सुन कर सब लोग आनन्द-मग्न हो गये। सबने रवि बाबू के विचारों और प्रतिभा की प्रशंसा की। एक कवि की राय में तो रवि बाबू की बराबरी करने वाला कवि इस समय भारत में तो क्या संसार में कोई नहीं और उनसे बढ़ कर कविता करने वाला एक भी कवि इस समय इँगलैंड या अमेरिका में नहीं। रवि बाबू की कुछ कविताओं का अनुवाद अँगरेज़ी में प्रकाशित होने वाला है। उनमें से एक का अँगरेज़ी अनुवाद, रवि बाबू का ही किया हुआ, पूर्वोक्त कवि महाशय को दिया गया और प्रार्थना की गई कि ज़रा इसका संशोधन कर दीजिए। अँगरेज़ कवि ने उत्तर में कहा कि इसका संशोधन करने की चेष्टा करना मूर्खता है। जो इसके संशोधन की चेष्टा करेगा उसे मैं समझूँगा कि वह साहित्य का अर्थ नहीं जानता। रवि बाबू का इस समय लन्दन में इतना आदर हो रहा है कि भारत में नौकरी करने के बाद पेन्शन पाने पर अपने देश को लौटते हुए एक गोरे अफ़सर ने तो रवि बाबू के पैर छू कर उनको प्रणाम किया! रवि बाबू के इस कीर्ति-प्रसार और आदरातिथ्य का वृत्तान्त सुन कर किस भारतवासी को सन्तोष न होगा?

६—ईसामसीह के जीवन-चरित की तिब्बत में प्राप्ति।

ईसा के जीवन-चरित के विषय में, योरप और अमेरिका के समाचारपत्रों में, एक अद्भुत समाचार प्रकाशित हुआ है। लिखा है कि नोटविच नाम के एक रूसी यात्री को तिब्बत के हीमिस नामक मठ में ईसा का एक जीवनचरित मिला है। यह चरित बहुत पुराना है। इसमें लिखा है कि तेरह चौदह वर्ष की उम्र में अपने माँ-बाप से रूठ कर ईसा अपने घर से भाग निकला और हिन्दुस्तान आया। यहाँ वह राजगृह, काशी, पुरी आदि स्थानों में घूम कर कई वर्ष बाद अपने देश को लौटा। भारत में उसने पाली भाषा सीखी और बौद्धों के धर्म्म-ग्रन्थों का परिशीलन किया। कुछ समय तक के लिए वह बौद्ध भी हो गया। पर अपने देश को लौट कर उसने अपना नया ही धर्म्म चलाना चाहा। इसी बखेड़े में उसे फाँसी की सज़ा हो गई। ईसाई लोग नोटविच की इन बातों को जाल बताते हैं। जाल हों या यथार्थ, ईसाई अब ईसा को ईश्वर का पुत्र मानने से पश्चात्पद नहीं हो सकते। बहुत दिन की बात है, हमने पुरानी छपी हुई एक पुस्तक अँगरेज़ी में पढ़ी थी। उसमें बड़े बड़े प्रमाण देकर ईसामसीह के अस्तित्व ही पर कुठाराघात किया गया था और ईसा के सूली पर चढ़ाये जाने की बात भी कल्पना-प्रसूत ठहराई गई थी। परन्तु ईसाई धर्म्म अब तक बना हुआ है और पादरी साहब पापी प्राणियों को स्वर्ग के फाटक के भीतर ढकेलते ही जा रहे हैं।

७—प्रसिद्ध आविष्कारक एडीसन के बनाये हुए सीमेंट के अद्भुत सामान।

बहुत दिनों से अमेरिका के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक मिस्टर एडीसन सीमेंट की कुछ चीज़ें साँचे में ढाल कर बनाना चाहते थे। अब उन्होंने इस समस्या को हल भी कर लिया है। आपने अपने ही लिए मेज़, कुर्सी, आलमारी आदि कुछ चीज़ें ढाल कर बनाई हैं। ये चीज़ें बहुत ही सुन्दर और मज़बूत बनी हैं। इनकी सुन्दरता के मुक़ाबले में बहु-मूल्य लकड़ी की बनी हुई वैसी ही चीज़ें मात हैं। उन्होंने एक आलमारी बनाई है जो बड़ी ही मनोहर है। उसके ऊपर अङ्कित बेल-बूटे उसकी सुन्दरता को और भी

बढ़ाते हैं। उसका मूल्य तीस रुपया है। परन्तु एडीसन साहब का कथन है कि अधिक संख्या में बनाने से वह और भी सस्ती पड़ेगी। इन चीज़ों की मज़बूती की भी परीक्षा की गई। बिना विशेष हिफ़ाज़त के रेल पर लाद कर ये सैकड़ों कोस दूर भेज दी गईं; परन्तु इनमें से कोई भी ज़रा न टूटी। इनमें यह भी .खूबी है कि इन पर जैसा रङ्ग देना चाहो दे लो।

एडीसन साहब एक बात इससे भी विशेष महत्त्व की सोच रहे हैं। वे बड़े बड़े मकानों को भी साँचे में ढाल कर बनाना चाहते हैं। उनका अनुमान है कि इस तरह का एक घर इक्कीस दिन में तैयार हो सकेगा। ऐसे घर की कोठरियाँ, दालान, कमरे, आँगन, रसोई घर, स्नान-घर आदि सब साँचे में ढाल कर बनाये जायँगे। सीमेंट का गारा बना कर और उसमें कुछ मसाले मिला कर लोहे के साँचों में भर दिया जायगा। दो चार दिन में जब वह सूख जायगा तब साँचा निकाल लिया जायगा। फिर उस पर उसी तरह बना कर सीमेंट की छत रख दी जायगी। दरवाज़े और खिड़कियाँ पीछे से लगा दी जायँगी। इस तरह के मकान हज़ारों वर्ष रहेंगे। टपकेंगे भी नहीं। ख़र्च भी बहुत नहीं पड़ेगा। उन्होंने सीमेंट की दीवारें और छतें आदि ढाल कर इस तरह के एक आध मकान नमूने के तौर पर तैयार भी किये हैं। वे बहुत ही सुन्दर और मज़बूत हैं। उनकी दीवारों पर रङ्ग भी बहुत अच्छा आया है। अमेरिका का यह विश्वकर्म्मा चाहे जो करे।

८—अन्धों के लिए नये ढंग से छापी गई पुस्तकें।

अन्धों के लिए पुस्तकें पहले उभड़े हुए अक्षरों में छपती थीं, फिर बिन्दुओं में छपने लगीं। बिन्दुओं का छपना विशेष उपयोगी सिद्ध हुआ। ये बिन्दु-मय पुस्तकें टाइप में नहीं छपतीं। इनका मज़मून प्लेटों पर ढाल लिया जाता है। इस छपाई में एक दोष है। वह यह है कि प्लेट का मज़मून काग़ज़ के एक ही तरफ़ छप सकता है। दूसरी तरफ़ नहीं। परन्तु हाल ही में न्यूयार्क के एक बड़े भारी छापेख़ाने ने, जिसमें केवल अन्धों ही के लिए पुस्तकें छपती हैं, एक नई युक्ति ढूँढ निकाली है जिससे पचीस हज़ार पृष्ठ दोनों तरफ़ केवल एक घंटे में छप सकते हैं।

९—एक अद्भुत बालक।

मदरास प्रदेश के एक साधारण लड़के ने अपने असाधारण गणित-ज्ञान का परिचय दिया है। वह अभी निरा बच्चा है। उसकी सूरत शकल से यह नहीं जान पड़ता कि उसमें कुछ भी विलक्षणता या प्रतिभा होगी। पढ़ा लिखा भी वह राम का नाम ही है, परन्तु गणित के कठिन से कठिन प्रश्नों को वह बड़ी ही सरलता से हल कर देता है। कोचीन के एक साहब ने उसकी परीक्षा ली। उन्होंने पहले उस से ९७६ का ७९ से गुणनफल पूँछा। उनके मुहँ से प्रश्न निकलने की देरी थी कि बालक ने चट से उत्तर दिया-७७,१०४। तब उन्होंने इससे भी लम्बे गुणा का एक सवाल बोला। लड़के को उसके भी उत्तर देने में देर न लगी। साहब को इतने से सन्तोष न हुआ। वे एक अङ्क-गणित की पुस्तक उठा लाये। उसमें से उन्होंने वर्ग-मूल, घन-मूल, आना पाई का गुणा, सूद दर सूद आदि कितने ही प्रकार के प्रश्न दिये। साहब को तो बोलने में देर लगती थी; परन्तु उत्तर देने में लड़के को मुश्किल से पाँच सेकन्ड लगते थे। इसके पूर्व कि वे अङ्क-गणित को उलट कर किये गये प्रश्न का उत्तर देखें बालक उनके प्रश्न का उत्तर दे देता था। इस प्रतिभा पर मुग्ध हो कर उक्त साहब ने "मदरास मेल" नामक पत्र में लिखा है कि देश के बड़े बड़े वैज्ञानिकों को इस बालक के मस्तिष्क की जाँच करनी चाहिए और इस "गुदड़ी में छिपे हुए लाल" से दर दर की भिक्षा-वृत्ति छुड़ा कर इसकी शिक्षा और रक्षा का उचित प्रबन्ध करना चाहिए।

१०—"सती-मोह"।

जून की सरस्वती में पण्डित रूपनारायण पाण्डेय का "सती-मोह" नामक लेख निकल चुका है।

उसमें लेखक महोदय को यह शङ्का हुई है कि सतीमोह की कथा तुलसीदास ही की कल्पना है। इस पर मुकामा से बाबू आदित्यनारायणसिंह ने एक लम्बा लेख भेजा है और आनन्द-रामायण तथा शिवपुराण के सतीखण्ड से अनेक श्लोक उद्धृत करके यह दिखाया है कि यह कथा तुलसीदास की कल्पना नहीं। उनमें से दो चार श्लोक नीचे दिये जाते हैं। आनन्द-रामायण में पार्वती से शङ्कर कहते हैं :—

त्वं गत्वा च समीपं श्रीराघवस्य तदा वने।
सीतारूपेण स रामस्त्वया प्रोक्तः शुभं वचः ॥ १४३॥
राम राजीवपत्राक्ष मामग्रे पश्य जानकीम्।
क्रीडस्वात्र मया सार्द्धमेहि शीघ्रं सुखी भव ॥ १४४ ॥
आनन्द रामायण, मार्कण्डेय सप्तम सर्ग,
शिव-पार्वती-संवाद।

शिवपुराण में रामचन्द्रजी सीतारूपिणी सती से पूछते हैं :—

प्रेमतस्त्वं सति ब्रूहि क शम्भुस्ते नमो गतः।
एका हि विपिने कस्मादागता पतिना विना ॥ ४६ ॥
त्यक्त्वा स्वरूपं कस्मात्ते धृतं रूपमिदं सती।
ब्रूहि तत्कारणं देवि कृपां कृत्वा ममोपरि ॥ ५० ॥
शिवपुराण, द्वितीय खण्ड, चौबीसवां अध्याय।

११—खेती के लिए नेत्रजन-तत्त्व की उपयोगिता।

अमेरिका के संयुक्त राज्य कृषि में बड़ी उन्नति कर रहे हैं। इस उन्नति का कारण यह है कि वहाँ वालों को, भूमि को विशेष उर्वरा बनाने का एक नया उपाय मालूम हो गया है। नेत्रजन नामक तत्त्व पौदों की बाढ़ के लिए ख़ूराक का काम देता है। जब किसी भूमि में इस तत्त्व की कमी हो जाती है तब उसकी उपज भी कम हो जाती है। भूमि के उपजाऊ होने से यही मतलब है कि उसमें नेत्रजन यथेष्ट अंश में मौजूद है। नेत्रजन की कमी की पूर्ति अदल बदल कर फ़सल बोने से हो सकती है। भारतवासी कृषक भी इस बात को जानते हैं; परन्तु उन्हें अभी तक यह नहीं मालूम कि ऐसा क्यों होता है। एक जर्मन रसायन-शास्त्र-वेत्ता ने इसका कारण यह बताया है कि कुछ पौदे ऐसे होते हैं जो अपनी नेत्रजनरूपी ख़ूराक भूमि से नहीं, किन्तु हवा से पाते हैं। मटर, सेम, मसूर, उड़द इत्यादि ऐसे ही पौदे हैं। इन पौदों की जड़ों में गाँठें होती हैं। ये गाँठें छोटी से छोटी आलपीन के सिर के बराबर और बड़ी से बड़ी आलू के बराबर होती है। लोग इन गाँठों को अभी तक व्यर्थ समझते थे, परन्तु, यथार्थ में ये बड़ी ही उपयोगी वस्तु हैं। इनमें लाखों जीवाणु होते हैं जो हवा से पौदे की ख़ूराक प्राप्त करते हैं। ऐसे खेत में जिसकी उपज कम हो गई हो, मटर की फसल बहुत अच्छी तो होगी ही, परन्तु उससे यह भी लाभ होगा कि फसल कट जाने पर उसमें बहुत सा नेत्रजन-तत्त्व रह जायगा। फल यह होगा कि वह खेत पहले से अधिक उपजाऊ हो जायगा।

पुस्तक-परीक्षा।

१—सनातनधर्म्मोद्धारः। माननीय पण्डित मदन-मोहन मालवीय बहुत दिनों से सनातनधर्म्म-सम्बन्धी एक संग्रह प्रकाशित कराने के विचार में थे। उनका वह विचार सफल हो रहा है। उन्हीं की प्रेरणा से इस धर्म्मोद्धार की रचना काशीवासी पण्डित उमापति द्विवेदी। (उपनाम नक-छेद राम शर्म्मा) ने की है। यह पूरे ग्रन्थ के सामान्य काण्ड के पूर्वार्द्ध का प्रथम खण्ड है। यह बड़े बड़े ४१० पृष्ठों में समाप्त हुआ है। दाम इसका ३ रुपया है। मिलने का पताः—पण्डित रुद्रदत्त द्विवेदी मिश्र—पोखरा, बनारस है। इसके अगले खण्ड भी शीघ्र छप कर प्रकाशित होने वाले हैं। अनेक सज्जन इस कार्य में सहायक हैं। इस खण्ड में धर्म और अधर्म का स्वरूप और लक्षण लिख कर विद्वान् संग्रह-कार ने वेदों के विषय में अपने विचार प्रकट किये हैं। अनेक ग्रन्थों के प्रमाण-प्रमेय आदि पर बहस करके आपने वेदों की अनित्यता, धर्ममूलकता, शब्दभावना और अर्थवाद आदि

पर बहुत कुछ लिखा है। इसके सिवा वेद-सम्बन्धी और भी कितनीही बातों का आपने विचार किया है और वेदों पर जिन सम्प्रदायों या धर्म्मों ने आक्षेप किये हैं उनका उत्तर भी आपने दिया है। संग्रहकारजी अच्छे विद्वान् मालूम होते हैं। अनेक शास्त्रों में आपकी गति जान पड़ती है। बड़ी योग्यता से आपने नाना ग्रन्थों के वाक्य उद्धृत करके अपने कथन का सामाञ्जस्य सिद्ध किया है। ऐसा करने में आपने किसी को न कटुवाक्य कहा और न किसी के आक्षेपों का उत्तर देते समय वितण्डा और छल आदि तार्किक-दोषों को ही पास आने दिया। भावप्रभा नाम की हिन्दी टीका करके आपने इस ग्रन्थ का आशय असंस्कृतज्ञों के लिए भी सुलभ कर दिया है। अतएव आपको अनेक साधुवाद। यह नोट लिख चुकने पर, आपकी पञ्चत्वप्राप्ति का समाचार सुन कर दुःख हुआ।

❋

२—**सुमतिप्रकाशिका**। ज़िला इलाहाबाद में सराय-आक़िल के पास बुद्धिपुरी नाम की कोई पुरी है। वहाँ के निवासी, पण्डित इन्द्रनारायण शर्म्मा द्विवेदी ने साठ सत्तर पृष्ठ की सुमतिप्रकाशिका नामक एक पुस्तक लिख कर एक रुपया उसका मूल्य रक्खा है। आज तक स्वदेशी और परदेशी, नये और पुराने—भास्कर, बापूदेव और गैलीलियो आदि—जितने विद्वान् इस बात के मानने वाले हो गये हैं कि पृथ्वी चलती है उन सबकी समझ को सुमतिप्रकाशिका में दुर्मति-दुष्ट सिद्ध करने की चेष्टा की गई है। लिखा गया है कि आर्यभट्ट और भास्कराचार्य की जिन युक्तियों से लोग भूभ्रमण सिद्ध करते हैं उनका ठीक अर्थही उनकी समझ में नहीं आया। इसी से प्रकाशिकाकार जी ने वेद, विज्ञान और ज्योतिर्विद्या के आधार पर उन लोगों के भ्रम को दूर करने और "भूरचला स्वभावतः" को सिद्ध करने के लिए यह प्रयास स्वीकार किया है। आपकी सचक्र सुमतिप्रकाशिका का यह केवल ज्योतिष-खण्ड है। वेद और विज्ञान-खण्ड शायद कभी फिर प्रकाशित होंगे। पण्डित इन्द्रनारायणजी ने इस पुस्तक को हमारे पास समालोचना के लिए भेज कर हम पर बड़ी कृपा की। परन्तु हममें इसकी समालोचना करने की योग्यता नहीं। क्योंकि वेद, विज्ञान और ज्योतिष में से एक का भी पर्य्याप्त ज्ञान हममें नहीं। अतएव इस विषय में सिवा चुप रहने के हम और कुछ नहीं कह सकते। क्योंकिः—

विशेषतः सर्व्वविदां समाजे
विभूषणं मौनमपण्डितानाम्।

हाँ, इतना हम निःसन्देह कह सकते हैं कि आपकी इस पुस्तक की हिन्दी कहीं कहीं संशोधन अवश्य माँगती है।

❋

३—The Hindu Realism। श्रीयुत जगदीशचन्द्र चैनर्जी बी० ए० (केम्ब्रिज), विद्यावारिधि, दर्शन शास्त्र के अच्छे विद्वान् हैं। आप काश्मीरराज्य में पुरातत्त्व-विभाग के डाइरेक्टर हैं। आपही इस पुस्तक के प्रणेता हैं। भारतवर्षीय दर्शनशास्त्र की समस्त शाखाओं का अध्ययन और उन पर आजतक जो कुछ—टीका, टिप्पणी, व्याख्यान और भाष्य के रूप में—लिखा गया है उसका मन्थन करके इस पुस्तक को आपने लिखा है। इसमें विशेष करके आपने न्याय—वैशेषिक के ही मुख्य मुख्य सिद्धान्तों का आशय समझाया है। पर अन्यान्य दर्शनों के सिद्धान्तों का भी उल्लेख, जहाँ जैसी आवश्यकता आ गई है, आपने किया है। इस देश के और पश्चिमी देशों के दार्शनिक विचारों में जहाँ कहीं भेद है उसे भी आपने योग्यतापूर्वक दिखा दिया है। भारतीय दर्शन-शास्त्र के धर्ममीमांसा और तत्त्व-मीमांसा, ये दो भाग करके आत्मा, मन, परमाणु, काल और दिक् तथा सृष्टि की उत्पत्ति, आत्मा के मायाबन्धरूप दुःख, पुनर्जन्म आदि पर आपने बड़ीही योग्यता से शास्त्रीय विचारों को प्रकट किया है। दर्शन-शास्त्र के ज्ञाता सैकड़ों क्या हज़ारों होगये हैं और अब भी हैं। पर इस शास्त्र के तत्त्व दूसरों को सरल भाषा में समझा देने वाले विद्वान् बहुत ही थोड़े हैं। विद्यावारिधिजी इन्हीं थोड़े विद्वानों में से हैं। आपकी यह पुस्तक अँगरेज़ी में है। इलाहाबाद के इंडियन प्रेस में बहुतही चिकने-मोटे काग़ज़ पर सुन्दर टाइप में छपी है। मनोहर जिल्द बँधी हुई है। दाम ३) है।

❋

४—Shaktism। प्रयाग में ९, १० और ११ जनवरी १९११ को एक धर्म-संघ हुआ था। महाराजा दरभङ्गा उसके सभापति थे। अनेक धर्म्मों, मतों और सम्प्रदायों के सम्बन्ध में उसमें लेख पढ़े गये थे और वक्तृतायें हुई थीं। उस धर्म-

सम्बन्धी जन-समुदाय में सिवान, ज़िला सारन, के वकील बाबू काशिनाथ सहाय ने शाक्त मत पर एक निबन्ध अँगरेज़ी में पढ़ा था। उसकी बड़ी प्रशंसा हुई थी। वही अब पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ है। पुस्तक बहुत छोटी, कोई २० पृष्ठ की है। आरम्भ में महाराजा दरभङ्गा की सूचना से ऋग्वेदोक्त देवीसूक्त भी, अँगरेज़ी-अनुवाद सहित, रख दिया गया है। थोड़े में शक्तिपूजा के स्थूल सिद्धान्त बड़ी योग्यता से इसमें बतलाये गये हैं।

❋

५—बाबू रामलाल वर्म्मा की भेजी हुई तीन पुस्तकें। पहली पुस्तक का नाम है—भारत के कारख़ाने। पृष्ठ-संख्या ८८; मूल्य १० आने। इसमें भारत के आटे, ईंट, लोहे, लकड़ी, कपड़े, चमड़े, चीनी, चावल, जूट, ग्लास आदि के मुख्य मुख्य कारख़ानों तथा खानों के नाम और पते हैं। पण्डित चतुर्भुज औदीच्य ने इस नामावली का सङ्कलन किया है। व्यवसायियों के यह काम की चीज़ है। दूसरी पुस्तक का नाम है—रोमिओ जुलियट। शेक्सपियर के इस नाम के नाटक का यह आख्यानात्मक अनुवाद है। अनुवादक हैं पूर्वोक्त पण्डित चतुर्भुज जी औदीच्य। अनुवाद सरल भाषा में किया किया है। कहानी पढ़ने योग्य है। इस छोटे आकार की ६० पृष्ठ का मूल्य ४ आने है। तीसरी पुस्तक का नाम है—नलिनी बाबू। यह हास्यरसपूर्ण एक छोटा सा सामाजिक उपन्यास है। पण्डित ईश्वरीप्रसाद शर्म्मा का यह लिखा हुआ है। पृष्ठ इसमें केवल ३० हैं। मूल्य दो आने है। तीनों पुस्तकों पर—"बड़ा बाज़ार गज़ट का १९११ ईसवी का उपहार" छपा हुआ है। बाबू रामलाल वर्म्मा, २०१-२, अपर चीतपुर रोड, कलकत्ते से ये पुस्तकें मिल सकती हैं।

❋

६—पञ्चम जार्ज का जीवन-चरित। इस ८७ पृष्ठ की पुस्तक के लेखक, कर्वी (बांदा) के स्कूलों के सब डिप्युटी इन्सपेक्टर ठाकुर शिवकुमारसिंह हैं। इसमें महाराज पञ्चम जार्ज का जीवन-चरित वर्णित है। महारानी मेरी और उनकी सन्तति का भी संक्षिप्त वृत्तान्त इसमें है। हिन्दी और संस्कृत के अनेक सामयिक पद्यों से पुस्तक की रोचकता बढ़ गई है। टायटिल पेज के बाद सम्राट् का एक सुन्दर चित्र भी है। भाषा सरल और शुद्ध है। छपाई और काग़ज़ भी अच्छा है।

❋

७—प्रोफ़ेसर राममूर्ति और उनका व्यायाम। बाबू कालिदास माणिक ने इस ४८ पृष्ठ की पुस्तक को लिखा है। इसमें प्रसिद्ध पहलवान राममूर्ति का संक्षिप्त चरित और उनकी कसरतों का संक्षिप्त वर्णन है। पुस्तक उपयोगी है और सरल भाषा में लिखी गई है। मूल्य २ आने। मिलने का पता:—

बाबू हरिदास माणिक, १४ मिश्र पोखरा, काशी।

❋

८—भारत-धर्म्मनेता। यह पत्र पहले पाक्षिक था; अब साप्ताहिक हो गया है। रायल चौपेजी आकार के चार पृष्ठों पर बनारस से निकलता है। पहले और चौथे पृष्ठ पर विज्ञापन रहते हैं, दूसरे और तीसरे पर नोट, लेख और समाचार। २५ जून की संख्या में समाज-रक्षा नामक लेख अच्छा है। मूल्य इसका मुफ़स्सिल में केवल डेढ़ रुपया वार्षिक है। सामाजिक, धार्म्मिक, नैतिक और साहित्यविषयक—सभी तरह के लेख प्रकाशित करने का विचार इसके सम्पादक महाशय का है। ईश्वर करे वे अपनी सदिच्छा की पूर्ति कर सकें और उनके पत्र की उन्नति हो।

❋

९—नीति-कथा। श्रीमती लावण्यप्रभा वसु की लिखी हुई इस नाम की एक पुस्तक बँगला में है। श्रीयुत प्रकाशदेव-कृत उसी का यह हिन्दी-अनुवाद है। इसमें सत्यता, न्यायपरता, कर्त्तव्यपालन, सहनशीलता आदि कई नैतिक विषयों पर अच्छे अच्छे निबन्ध हैं। कथाओं और पौराणिक आख्यानों के आधार पर इन गुणों का महत्त्व इन निबन्धों में व्यक्त किया गया है। भाषा सरल है। पृष्ठ-संख्या ११८ और मूल्य ५ आने है। पञ्जाब-ब्रह्मसमाज, अनारकली, लाहौर के पते पर प्रकाशक से यह पुस्तक मिलती है।

❋

१०—गृह-कथा। श्रीमती लावण्यप्रभा वसु की एक बँगला पुस्तक का यह भी हिन्दी अनुवाद है। अनुवादक हैं:—अनारकली—लाहौर—के ब्रह्मसमाज के श्रीयुत प्रकाशदेवजी।

वही इसे तीन आने में बेचते हैं। पुस्तक छोटी, केवल ५४ पृष्ठ की, है। पर विषय इसके सुन्दर और बालोपयोगी हैं। माता-पिता, भाई-बहन और दास-दासी आदि पर लिखे गये इसके निबन्ध बच्चों के लिए विशेष लाभदायक हैं। इसमें जो निबन्ध हैं उनके बीच बीच आख्यान और कल्पित कथायें रख कर लेखिका ने इसकी उपयोगिता को और भी बढ़ा दिया है।

११—शब्द-सुमन-माला—प्रथम भाग—कानपुर के आर्य्य-समाज-स्कूल के अध्यापक पण्डित रामरत्न त्रिपाठी ने इसे गूँथा है। इसमें, अमरकोश के ढँग पर, एक एक के अनेकानेक पर्य्यायवाची शब्द दिये गये हैं। पुस्तक पद्य में है। जैसा नीरस विषय है कविता भी वैसीही है। पुस्तक विद्यार्थियों के लिए बनाई गई है। छपाई और काग़ज़ साधारण है। ६० पृष्ठ की इस पुस्तक का मूल्य ≡) तीन आना है। लेखक से प्राप्य।

चित्रपरिचय।

(१)
श्रीकृष्णाष्टमी

भगवान् श्रीकृष्ण के जन्म की अद्भुत कथा को प्रायः सभी लोग जानते हैं। जिस समय पापी कंस के बन्धनों से छुट कर वसुदेव जी शिशु कृष्णचन्द्र को लिये मथुरा से गोकुल जा रहे थे उस समय भाद्रमास की कृष्णाष्टमी थी। आधी रात का समय था। आकाश घनघोर घटा से आच्छादित था। चञ्चला की चञ्चल चमक नेत्रों में चकाचौंध पैदा कर रही थी। वर्षाकाल के कारण बढ़ी हुई यमुना को पैदल ही पार करते हुए वसुदेव जी श्रीकृष्ण को लिये जा रहे हैं। देखिए, चतुर चित्रकार ने तत्कालीन दृश्य इस चित्र में कैसी उत्तमता से दिखाया है।

(२)
समुद्र-मन्थन।

समुद्र-मन्थन का जो चित्र इस संख्या में अन्यत्र प्रकाशित है वह कई सौ वर्ष के पुराने एक चित्र के फ़ोटो से तैयार किया गया है। समुद्र-मन्थन-सम्बन्धिनी पुराण-प्रसिद्ध घटना का सारा दृश्य इस चित्र को देखने से नेत्रों के सामने आ जाता है।

(३)
सती का अग्नि-संस्कार।

अपने पति के साथ स्त्रियों का सती हो जाना, इस देश में, किसी समय, एक साधारण सी बात थी। ईस्ट इंडिया कम्पनी के ज़माने में कम्पनी के अफ़सरों ने ऐसे कितनेही सती-संस्कारों को प्रत्यक्ष देख कर उनके वर्णन लिखे थे। वे अबतक प्राप्य हैं। कई एक तो इतिहासों में सम्मिलित होगये हैं। इन घटनाओं के चित्र भी वहाँ दिये हुए हैं। सती के एक ऐसेही अग्नि-संस्कार का चित्र इस संख्या में दिया जाता है। इसका सम्बन्ध बङ्गाल से है। स्त्रियों के लिए वैधव्य से बढ़ कर कोई और दुःख नहीं:—

"दहनजा न पृथुर्दवथुव्यथा विरहजैव पृथुर्यदि नेदृशम्।
दहनमाशु विशन्ति कथं स्त्रियः प्रियमपासुमुपासितुमुद्धुराः"॥

अर्थात्—अग्नि के ताप की अपेक्षा वैधव्यताप स्त्रियों को अधिक असह्य होता है। इसी से जल जाने की कुछ भी परवा न करके वे मृत पति का अनुगमन कर जाती हैं।

कृतज्ञता-ज्ञापन।

मुझ पर जो कौटुम्बिक आपदा आई है उसका समाचार सुन कर मेरे अनेक उदाराशय मित्रों ने तार, पत्र और लेख द्वारा अपनी सहानुभूति और समवेदना प्रदर्शित की है। मैं नहीं जानता, किस तरह मैं उनको धन्यवाद दूँ और किन शब्दों में कृतज्ञता-ज्ञापन करूँ। दुःख में आश्वासन देनेवाले मित्र भी भाग्य से ही मिलते हैं। सो मुझे मिले हैं। आशा है, उनके सान्त्वना-वाक्य विफल न जायँगे। सब के पत्रादि का उत्तर देने की मुझ में शक्ति नहीं। और यदि उत्तर देना भी चाहूँ तो क्या लिखूँ, यही मेरी समझ में नहीं आता। अतएव इस विज्ञप्ति-द्वारा, एकही साथ, मैं सबके तारों और पत्रों की पहुँच लिखता हूँ और प्रार्थना करता हूँ कि जो कृपा उन्होंने मुझ पर की है उसे मैं कभी भूलने का नहीं।

महावीरप्रसाद द्विवेदी।

Printed and Published by Apurva Krishna Bose at the Indian Press, Allahabad.
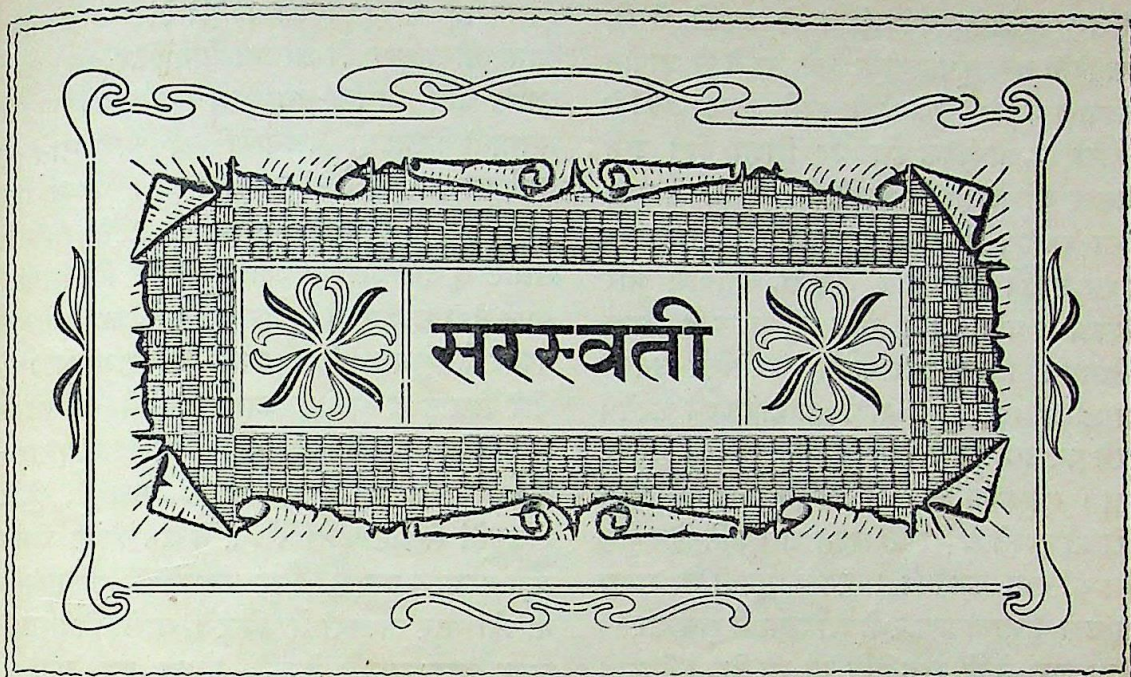
सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग १३] १ सितंबर, १९१२—भाद्रपद कृष्ण ५, १९६९। [संख्या ९

परलोकवासी मिकाडो मुत्सू हीटो।

इस नन्हें से जापान ने हाल ही में संसार की महाशक्ति रूस को रण-क्षेत्र में पछाड़ा था, जिसके बल और वैभव, उन्नति और पराक्रम का इतने थोड़े काल में विकास होते देख संसार के बड़े बड़े उन्नतिशील देशों तक को आश्चर्य्य से दाँतों तले उँगली दबानी पड़ी थी और जिसने अपने बाहु-बल द्वारा संसार की महान् से भी महान् जातियों की पंक्ति में खड़े होने का स्वत्व प्राप्त करके पूर्व के नीचे झुके हुए सिर को ऊपर उठाया था उसे इस उन्नतावस्था को पहुँचाने के सबसे बड़े सूत्रधार, उसके सम्राट् मुत्सू हीटो, का गत २९ जूलाई को देहान्त होगया।

मुत्सू हीटो का जन्म तीसरी नवम्बर सन् १८५२ ईसवी को हुआ था। जापान का राजवंश बहुत पुराना है। जापान के प्रथम सम्राट् जिम्मू टेनो ने सन् ईसवी के ६६० वर्ष पूर्व से राज्य करना आरम्भ किया था। परलोकवासी सम्राट् मुत्सू हीटो जिम्मो टेनो की १२१ वीं पीढ़ी में थे*

मुत्सू-हीटो की शिक्षा पूर्वी देशों के राज-कुमारों की तरह लाड़ प्यार से न हुई थी। उनके पिता सम्राट् ओसा हीटो काल-चक्र की गति को

* जापान के सम्राट् मिकाडो (अर्थात् आली जनाब or Honourable Gateway) कहलाते हैं। परन्तु इस नाम का व्यवहार जापान में बहुत कम किया जाता है। वहाँ सम्राट् को "टेनो" और "टेनशी" कहते हैं। मुत्सू हीटो "मीजी" (अर्थात् प्रकाश-पूर्ण शान्ति) के नाम से जापान में प्रसिद्ध हैं।

अच्छी तरह समझ चुके थे। वे जानते थे कि अधिक दिनों तक कूप-मण्डूक बने रहने से जापान का कल्याण न हो सकेगा। इसी लिए उन्हों ने मुत्सू-हीटो को आधुनिक ढँग पर शिक्षा दी। उन्हें इस प्रकार की शिक्षा दी जाती थी जिसमें वे नरम गद्दे का सहारा ढूँढ़नेवाले कोमलाङ्ग राजकुमार ही न रह जायँ। घोड़े की सवारी, व्यायाम और अस्त्र-शस्त्र के प्रयोग में वे थोड़े ही काल में सिद्ध-हस्त होगये। नियमानुसार कार्य्य करने की उनकी आदत डाली गई। वे सदा आज्ञा-पालन करते। न करने पर उन्हें साधारण बालक की तरह दण्ड मिलता। लड़कपन ही से वे सहिष्णु थे। वे बहुत कम खेलते कूदते थे; पढ़ते बहुत थे। प्रति-दिन कुछ कविता भी रचा करते थे। इन कामों से जो समय बचता उसे वे नाना प्रकार के व्यायामों में ख़र्च करते। बड़े होने पर उन्हें राजनीति की भी शिक्षा मिली। विदेशों का इतिहास और वहाँ की राज-प्रणालियों का वृत्तान्त उन्हें अच्छी तरह पढ़ाया गया।

१८६७ में, अपने पिता के मरने पर, मुत्सू-हीटो राज-सिंहासन पर आसीन हुए। उस समय जापान की अवस्था बड़ी ही शोचनीय थी। जापान में शोगन नाम का एक पद था। जापान के सम्राट् केवल नाम मात्र को सम्राट् थे। वे इतने पवित्र और मनुष्य-कोटि से इतने उच्च समझे जाते थे कि प्रजा को उनके दर्शन तक दुर्लभ थे। अतएव शोगन लोग ही उनके नाम से जापान पर राज्य करते और विदेशी राज्यों से सन्धि आदि करते थे। १८५४ में, तत्कालीन शोगन ने, जापान के कुछ बन्दरगाहों को विदेशी वाणिज्य और विदेशियों के निवास के लिए खोल दिया। इस पर पुराने विचार के लोग बड़े नाराज़ हुए। उनकी नाराज़ी बढ़ती ही गई। वे शोगन-पद तक के उड़ा देने के लिए तैयार होगये। नये सम्राट् ने भी इनका साथ दिया। शोगन का पद तोड़ दिया गया, परन्तु सहज ही में नहीं। बड़े बड़े उत्पात हुए। वे सब बलपूर्वक शान्त किये गये। लोगों ने सोचा था कि शोगन-पद के टूटते ही विदेशियों का जापान में आना जाना बन्द हो जायगा और फिर वही पुराना शान्ति और आनन्द-मय समय आ जायगा, जब मनमानी करना ही बलवानों का और लातें और बातें सहना ही निर्बलों का काम था। परन्तु उनकी आशा पूर्ण न हुई। शोगन-पद के टूटते ही नवीन सम्राट् ने उस दल का पक्ष लिया जो विदेशियों को अपने देश में आने देने और जापानी जाति में नाना प्रकार के सुधार किये जाने का हामी था। धीरे धीरे सम्राट् के विचार कार्य्य-रूप में परिणत होने लगे। जिस सम्राट् का दर्शन उसकी प्रजा तक को दुर्लभ था उसी ने, १८६८ के मार्च में, विदेशी राजदूतों से भेंट की। लोगों ने उनके इस काम पर बड़ी आपत्ति उठाई, और कितने ही जापानियों ने गलियों और बाज़ारों में फिरने वाले विदेशियों के ऊपर आक्रमण भी किया; परन्तु इन बातों से वे तनिक भी भयभीत न हुए। सम्राट् अपनी राजधानी क्योटो से ईडो (वर्तमान टोकियो) नगर में उठा लाये। उन्होंने विदेशियों पर आक्रमण करनेवालों को उचित दण्ड दिया और विदेशियों की जो क्षति हुई थी उसे राज-कोष से पूर्ण कर दिया।

देश में कौन कौन से सुधार किये जायँ, इस विषय पर विचार करने के लिए, १८६८ में, मुत्सू-हीटो ने देश के गण्य-मान्य पुरुषों की एक सभा का सङ्गठन किया। इस सभा के अधिकारी ज़मींदार-सदस्यों ने जिस प्रकार की देश-भक्ति उस समय प्रकट की उस प्रकार की शायद ही संसार के किसी भी देश के ज़मींदारों ने कभी प्रकट की हो। उन्होंने एक संयुक्त प्रार्थनापत्र सम्राट् के सामने पेश किया। उसमें उन्होंने लिखा:—"हम और हमारे पूर्वजों ने चिरकाल तक इन ज़मींदारियों की आमदनी से सुख-भोग किया है। इनमें निवास करने वालों के तो हम विधाता ही हैं; परन्तु देश और जाति के सुधार के लिए, और इस लिए कि हमारा देश संसार के उन्नत देशों की श्रेणी में गिना जाय, और हमारी जाति

संसार की उच्च जातियों की बराबरी कर सके, हम इन ज़मींदारियों से, जिन पर आज तक हमें स्याह और सुफ़ेद तक करने का अधिकार प्राप्त था, जिनकी आमदनी से हम शारीरिक आनन्द लूटते थे और जिनके निवासियों को हम ग़ुलामी की रस्सी के अमानुषिक बन्धनों से बाँधे हुए अपनी इच्छा के अनुसार नाच नचाते थे—हाथ उठाते हैं और अपने सब स्वत्वों को त्यागते हैं। ये ज़मींदारियाँ अब आपके चरणों में अर्पित हैं। इनका जो चाहिए सो कीजिए। इतना ही नहीं, जननी-जन्म-भूमि के लिए यदि हमारे शरीरों की आवश्यकता हो तो वे भी हाज़िर हैं"।

ज़मींदारों के इस आत्मोत्सर्ग से सम्राट् की शक्ति बढ़ गई और निम्न-श्रेणियों को पराधीनता की शृङ्खला में बाँधे रखने वाली ज़मींदारी की कुत्सित प्रथा का दौर दौरा जापान से उठ गया।

अब सुधार शुरू हुए। अत्याचारी दण्डों की प्रथा बन्द हुई। नये सिरे से, फ़्रान्स के क़ानून के आधार पर, जापानी क़ानून की रचना हुई। १८७२ में, जापान की पहली रेल बनी। पाश्चात्य सन् और तारीख़ का व्यवहार होने लगा। पाठशालाओं में अँगरेज़ी की शिक्षा भी आरम्भ हो गई। दल के दल जापानी युवक शिल्प-कला की शिक्षा प्राप्त करने के लिए अमेरिका और योरप पहुँचे। बड़े आदमी भी घर में न बैठे रहे। विदेशों में जा जाकर उन्हों ने भी देश के लिए अनुभव प्राप्त किया। विद्वान् और व्यापारी भी पीछे न रहे। वे भी पाश्चात्य देशों की शिक्षा-प्रणाली और व्यापारी ढँग देखते फिरे। राष्ट्र ने भी बल-वृद्धि की चेष्टा की। अँगरेज़ों को नौकर रख रख कर उसने अपनी नौ-शक्ति को बढ़ाया और जर्मन सैनिकों द्वारा अपनी थल-सेना का सुधार किया। १८८९ में सम्राट् ने प्रजा को पार्लियामेंट देने का वचन दिया और १८९० के नवम्बर में पहली जातीय महासभा (पार्लियामेंट) की बैठक हुई।

जापान में महान् परिवर्त्तन हो गया। उसका रूप ही बदल गया। इतने अल्प काल में इस प्रकार के परिवर्त्तन संसार में थोड़े ही हुए होंगे। ये परिवर्त्तन हो गये, और मुत्सू-हीटो तथा उनकी प्रजा की बुद्धिमत्ता के कारण इतने अल्प काल में हो गये; परन्तु निर्विघ्न नहीं हुए। १८७६ से लेकर १८८४ तक—आठ वर्ष तक—जापान के भिन्न भिन्न प्रान्तों में, जगह जगह, सुधारों के विरुद्ध कई एक छोटे बड़े विप्लव हुए। इधर घर की इस अग्नि को शान्त करने में मुत्सू-हीटो रत थे, उधर उन्हें अपने घर से बाहर चीन ऐसी बड़ी शक्ति से तलवार नापनी पड़ी। १८७४ में फारमोसा द्वीप के कुछ नौकारोही डाकुओं ने कई जापानी जहाज़ों को लूट लिया। उस समय फारमोसा चीन के अधीन था। शिकायत करने पर चीन ने डाकुओं को सज़ा देने में अपनी असमर्थता प्रकट की। तब मुत्सू-हीटो को लाचार होकर चीन के विरुद्ध शस्त्र-ग्रहण करना पड़ा। जापानी नौ-सेना ने फारमोसा पर अधिकार करके डाकुओं को दण्ड दिया और द्वीप को उस समय तक न छोड़ा जब तक चीन ने उनकी क्षति की पूर्ति न कर दी।

इन घरेलू और बाहरी झगड़ों को निपटा कर मुत्सू-हीटो ने जापान को अन्य विदेशीय स्वतन्त्र देशों के बराबर समझे जाने का दावा संसार के सामने पेश किया। पहले तो किसी ने इस दावे की ओर ध्यान न दिया; परन्तु १८९४ में, अपने इस दावे को ज़ोर से पेश करने पर मुत्सू-हीटो को सफलता प्राप्त हुई। इँगलेंड ने जापान से समानता-सूचक सन्धि कर ली। अन्य देश भी आगे बढ़े; और, अन्त में, १९०१ तक, अन्य स्वतन्त्र शक्तियों ने भी जापान के साथ मैत्री स्थापन की।

१८९४ में जापान को फिर चीन का मुक़ाबला करने के लिए रण-क्षेत्र में अवतीर्ण होना पड़ा। इस बार पहले की सी लड़ाई न थी। चीन ने पूरी पूरी तैयारी कर ली थी। पर अन्त में चीन को हार ज़ाना ही पड़ा। जापानी योद्धाओं ने अपनी वीरता

का सिक्का संसार पर जमा दिया। इस युद्ध में मुत्सू-हीटो ने अपने सेना-नायकों को बहुत उत्साहित किया।

१९०४ में, जापान को फिर अपनी वीरता प्रकट करने का अवसर प्राप्त हुआ। रूस से उस की खट पट होगई। वर्ष भर तक जिस ज़ोर के साथ यह युद्ध होता रहा और जापानियों ने जिस प्रकार की क़ुर्बानियाँ करके अपनी देश-भक्ति और वीरता का परिचय संसार को दिया, वह समाचार-पत्रों के पाठक भूले न होंगे। संसार उनकी वीरता और उनके सम्राट् मुत्सू-हीटो और अन्य राज-पुरुषों की बुद्धिमत्ता और राजनीतिज्ञता का लोहा मान गया। उनके बल के सामने संसार की महाशक्ति रूस को अन्त में नीचा देखना पड़ा और नन्हें से जापान की गणना अब संसार की महती शक्तियों में होने लगी।

अज्ञात जापान अवनति के गढ़े से निकाला जाकर उन्नति और प्रसिद्धि के शिखर पर चढ़ा दिया गया। गला घोंटने और शरीर को छिन्न भिन्न करने वाली ज़मींदारी-प्रथा से उसे छुटकारा मिला। संसार की अग्र-गण्य जातियाँ और देश उसे अपनी बराबरी का समझने लगे। इतना ही नहीं, उसने अपनी उन्नति से भूमि-लोलुप पाश्चात्य महा-शक्तियों को समझा दिया कि अब भविष्यत् में वे एशिया महाद्वीप में फूँक फूँक कर क़दम रक्खें। ये सब महत्त्व-पूर्ण बातें थीं; पर ये बहुत ही अल्प काल में होगईं। इनका करना किसी एक आदमी का काम न था और न ये एक दिन में हो ही सकती थीं। वर्षों पूर्व्व से भीतर ही भीतर नाना प्रकार की शक्तियाँ जापानी जाति को ठोंक पीट कर इस परिवर्तन के लिए तैयार कर रही होंगी। परन्तु जापान के सम्राट् मुत्सूहीटो ने इस उन्नति-चक्र को घुमाने का जो यत्न किया वह कम महत्त्व का नहीं कहा जा सकता। पराधीनता के अन्धकार में ठोकर खाती फिरने वाली जाति का पुनरुद्धार करना बड़ा भारी काम अवश्य है; परन्तु अवनति के गढ़े में गिरी हुई जाति को सचेत कर के उन्नति के शिखर पर विठा देना और संसार से उसकी प्रतिष्ठा करा लेना भी कम महत्त्व का काम नहीं। मुत्सूहीटो ने दूसरे प्रकार का काम कर दिखाया। यदि नेपोलियन बीस लाख से अधिक मनुष्यों का रक्तपात करा कर—फ़्रान्स के प्रजा-सत्ताक राज्य का अपनी उच्च-अभिलाषाओं की पूर्त्ति के निमित्त बलिदान दे कर और अन्त में—हार जाने पर—फ़्रान्स को योरप की शक्तियों के सामने घुटने टेके दया-प्रार्थी होते हुए छोड़ कर—महान् पुरुष कहा जा सकता है, तो संसार में शायद ही कोई ऐसा हृदय-शून्य मनुष्य हो जिसे मुत्सूहीटो को—जिन्हों ने अपने देश जापान ही को इस उच्च अवस्था को नहीं पहुँचाया, किन्तु पाश्चात्य शक्तियों के बढ़े हुए हाथों से पास के अन्य पूर्व्वीय देशों को भी अंशतः निर्भय करने का पुण्य कमाया—महान् पुरुष कहने में सङ्कोच हो।

जापानी जाति मुत्सुहीटो को जी-जान से चाहती थी। समय समय पर इस बात के कितने ही उदाहरण मिल चुके हैं। परन्तु उस समय की राज-भक्ति का दृश्य, जब मुत्सूहीटो मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए थे और चिकित्सकों ने जवाब दे दिया था, बड़ा ही कारुणिक था। राजमहल के चारों ओर हज़ारों जापानी उदास घूमते रहते थे और सम्राट् के नीरोग होने के लिए झुक झुक कर ईश्वर से प्रार्थना करते थे। एक आदमी ने तो सम्राट् के आरोग्य-लाभ के लिए बलिदान-स्वरूप आत्म-हत्या तक कर डाली। देश भर में नाच और तमाशे बन्द हो गये। व्यापार बन्द पड़ गया। मन्दिरों में पूजा-पाठ और प्रार्थनायें होने लगीं। महारानी दिन रात सम्राट् की सेवा-शुश्रूषा किया करतीं। युवराज योशीहीटो बीमार थे। पिता की नाज़ुक अवस्था का समाचार सुन कर वे बेहोश हो गये; परन्तु अच्छी चिकित्सा के प्रभाव से शीघ्र ही चंगे हो गये। वे भी पिता की रोग-शय्या के पास सदा मौजूद रहते। अन्त में स्त्री, पुत्र, और प्रजा, किसी की कोई सेवा काम न आई। सब को रोते छोड़ कर सम्राट उस

परलोकवासी जापान-नरेश मुत्सो हीटो (मिकाडो)।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद।

लोक को चले गये जहाँ एक दिन हम सब को जाना है।

मुत्सुहीटो के बाद उनके युवराज योशी हीटो जापान की गद्दी पर विराजमान हुए हैं। आपने घोषणा-पूर्व्वक प्रण किया है कि मैं उसी तरह शासन करूँगा जिस तरह कि मेरे पिता करते थे। एवमस्तु।

कालिदास का समय-निरूपण।

लिदास नाम के कई संस्कृत-कवि हो गये हैं। कोई एक हज़ार वर्ष पहले, अपना नाम कालिदास रखने की चाल सी पड़ गई थी। कोई कालिदास का नाम पदवी के तौर पर अपने नाम के पीछे लगाता था; कोई अपना निज का नाम छोड़ कर कालिदास ही के नाम से अपने को प्रसिद्ध करता था; कोई अभिनव-कालिदास बनता था। राजशेखर नामक एक जैन कवि हो गया है। उसने अपनी सूक्तिमुक्तावली नाम की पुस्तक में तीन कालिदास होने का उल्लेख किया हैः—

एकोऽपि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित्।
शृङ्गारे ललितोद्गारे कालिदासत्रयी किमु॥

नवसहसाङ्कचरित के कर्त्ता पद्मगुप्त ने अपना नाम परिमल-कालिदास रक्खा था। वह धाराधिप मुञ्ज का सभा-कवि था। भोज के शासन-समय में भी एक कालिदास हो गया है। ज्योतिर्विदाभरण और शत्रुपराभव नामक ज्योतिष-ग्रन्थों के कर्त्ताओं का नाम भी कालिदास ही था। रघुवंश आदि काव्यों के कर्त्ता विश्वविश्रुत कालिदास को लोग दीपशिखा-कालिदास कहते आये हैं। रघुवंश के छठे सर्ग में एक श्लोक हैः—

सञ्चारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः॥

इस मनोहर पद्य में जो 'दीपशिखा' पद है उसी के कारण प्रसिद्ध कालिदास का नाम दीपशिखा-कालिदास पड़ गया है। किरातार्ज्जुनीय के एक पद्य में 'आतपत्र', शिशुपालवध के एक पद्य में 'घण्टा' और हरविजय के एक पद्य में 'ताल' आजाने से इन तीनों काव्यों के कर्त्ता यथाक्रम आतपत्र-भारवि, घण्टा-माघ और ताल-रत्नाकर कहलाते हैं। इससे यह जान पड़ता है कि प्राचीन कवियों के काव्यों में यदि कोई विशेष सुन्दर शब्द आ जाते थे तो वे उन शब्दों के नाम से पुकारे जाने लगते थे। अस्तु। हमें औरों से मतलब नहीं; मतलब केवल दीपशिखा-कालिदास से है।

जिस महाकवि ने रघुवंश की रचना की है उसी ने कुमारसम्भव, मेघदूत, शकुन्तला, विक्रमोर्व्वशीय और मालविकाग्निमित्र की भी रचना की है। इनके सिवा ऋतुसंहार और शृङ्गारतिलक आदि और भी कई छोटे छोटे काव्य इसी महाकवि के बनाये हुए मालूम होते हैं। पर इन पिछले काव्यों की रचना रघुवंश आदि पूर्व्व-निर्दिष्ट काव्यों की रचना के पहले की है।

कालिदास के ग्रन्थों में, तथा अन्यत्र भी, ऐसी अनेक बातें पाई जाती हैं जिनके आधार पर कालिदास के समय आदि का निरूपण किया जा सकता है। उनमें से कुछ का उल्लेख नीचे किया जाता हैः—

(१) किसी विक्रम-नामधारी राजा से इस महाकवि का सम्बन्ध।

(२) उसके द्वारा की गई वाल्मीकि की प्रशंसा *

(३) रघुवंश में हूण, यवन आदि जातियों का उल्लेख †

(४) प्रशस्ति आदि में उसके नाम का पाया जाना।

---

* तामन्वगच्छद्रुदितानुसारी कविः कुशेध्माहरणाय यातः।
निषादविद्धाण्डजदर्शनोत्थः श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः॥
रघुवंश, सर्ग १४

† तत्र हूणावरोधानां; यवनीमुखपद्मानां-इत्यादि। रघुवंश, सर्ग ४

(५) रघुवंश की आकस्मिक समाप्ति।

(६) भास, धावक, कविपुत्र आदि उसके समकालिकों का उसके तथा अन्यों के द्वारा नामोल्लेख।

आज तक कालिदास के समय-सम्बन्ध में विद्वानों ने जिन कल्पनाओं का आश्रय लिया है उनमें से प्रधान प्रधान कल्पनाओं का सम्बन्ध नीचे लिखी गई घटनाओं से है :—

(क) अग्निवर्ण के पुत्र का समय।

(ख) विक्रम-संवत् के आरम्भ का समय।

(ग) स्कन्दगुप्त का समय।

(घ) कोरूर के युद्ध का समय।

इनके सिवा किसी किसी ने ईसा के ग्यारहवें शतक में, धाराधिप भोज के यहाँ भी कालिदास के होने की कल्पना की है। पर यह कल्पना बिलकुल ही युक्तिहीन है। इस कल्पना के उद्भावकों को इसकी शायद ख़बर ही न थी कि कालिदास नाम के अनेक कवि हो गये हैं। भोज के समय में यदि कालिदास नाम का कोई कवि रहा हो तो हो सकता है; पर वह रघुवंश आदि का कर्त्ता नहीं हो सकता। बम्बई के डाक्टर भाऊ दाजी ने मातृगुप्त को ही कालिदास सिद्ध करने की चेष्टा की थी। पर उनकी वह चेष्टा और कल्पना अत्यन्त ही असार है। अतएव उस पर भी कुछ न कह कर पूर्वोक्त कल्पनाओं पर ही विचार किया जाता है।

रघुवंश के उन्नीसवें सर्ग में राजा अग्निवर्ण का वृत्तान्त है। उसी को लिख कर कालिदास ने रघुवंश की समाप्ति कर दी है। पर समाप्ति-सूचक कोई बात नहीं लिखी। कुछ परीक्षकों का ख़याल है कि अग्निवर्ण के पुत्र के समय में ही कालिदास थे। इसी से उन्हों ने अपने आश्रयदाता के पिता तक ही का वृत्तान्त लिखा है। अतएव वे ईसवी सन् के कोई ८०० वर्ष पहले विद्यमान थे। यह कल्पना ठीक नहीं। अग्निवर्ण के समय से रघुवंशी-राजाओं की महिमा और प्रभुता बहुत कुछ क्षीण हो चली थी। अतएव आगे होने वाले उपप्लवों और राज्यक्रान्तियों का वर्णन करने की कालिदास ने आवश्यकता न समझी। फिर, और राजाओं का वृत्तान्त लिखने से काव्य का विस्तार भी बहुत बढ़ जाता। एक बात और भी है। यदि कालिदास अग्निवर्ण के पुत्र के समय में होते तो वे उस राजा का भी कुछ हाल अवश्य लिखते। अपने आश्रयदाता अथवा सामयिक राजा का वर्णन न लिख कर पुस्तक की पूर्त्ति कर देना किसी तरह युक्तिसङ्गत नहीं ज्ञात होता। यह भी तो सोचने की बात है कि अग्निवर्ण के पुत्र के समय में होकर वे उसके पिता अग्निवर्ण की कामुकता का वर्णन कैसे कर सकते थे। अतएव यह कल्पना ग्राह्य नहीं।

कुछ लोगों की राय है कि कालिदास, विक्रम-संवत् के आरम्भ में, महाराज विक्रमादित्य की सभा में थे। यह राय ठीक भी है और ठीक भी नहीं है। जहाँ तक इसका सम्बन्ध समय से है तहाँ तक यह ठीक नहीं। पर जहाँ तक इसका सम्बन्ध विक्रम नामक राजा से है तहाँ तक ठीक है। इस पर आगे चल कर हमें बहुत कुछ कहना है।

रघुवंश में हूणों का वर्णन देख कर कुछ परीक्षक पण्डितों ने यह कल्पना की है कि कालिदास, महाराज स्कन्दगुप्त के समय में, अर्थात् ईसवी सन् के पाँचवें शतक के अन्त में, विद्यमान थे। परन्तु भारतीय ग्रन्थकारों ने हूण, यवन, शक आदि शब्दों का प्रयोग जाति-वाचक कई अर्थों में किया है। अतएव यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि कालिदास के हूण वही इतिहास-प्रसिद्ध हूण थे जिन्होंने, ४५८ ईसवी में, भारत पर चढ़ाई की थी। बहुत सम्भव है, उसके पहले भी उनका नाम भारत-वासियों को ज्ञात रहा हो; क्योंकि लूट-पाट करने के लिए ये लोग इस देश की सीमा के भीतर ज़रूर घुस आया करते रहे होंगे।

किसी किसी इतिहास-लेखक की राय है कि उज्जैन के किसी विक्रम नामधारी राजा ने कोरूर की लड़ाई में म्लेच्छों को परास्त किया था। यह लड़ाई ईसवी सन् के छठे शतक के मध्य भाग में हुई थी। विन्सेंट स्मिथ साहब ने अपने भारतवर्षीय

इतिहास में लिखा है कि मध्य भारत में यशोधर्म्मा नाम का एक राजा था। मगध-नरेश बालादित्य की सहायता से उसी ने मिहिरगुल नामक म्लेच्छ राजा को हराया था। यद्यपि यह घटना कोरूर-युद्ध के बहुत पहले की है तथापि कुछ लेखकों ने यशोधर्म्मा ही को विक्रमादित्य समझ लिया और यह कल्पना करली कि मालव-संवत् को उसी ने, अपनी जीत के उपलक्ष्य में, अपने नाम के अनुसार परिवर्त्तित करके उसका नाम विक्रम-संवत् कर दिया। यही नहीं, उन लोगों ने यह भी कल्पना कर ली कि संस्कृत-साहित्य का पुनरुज्जीवन भी यशोधर्म्मा ही के समय में हुआ और कालिदास भी उसी की सभा के सभासद् थे। इस कल्पना की उद्भावना का एक कारण यह भी हुआ कि—"धन्वन्तरिः क्षपणकोऽमरसिंहशङ्कुः"—इत्यादि नवरत्न-सम्बन्धी श्लोक में कालिदास के साथ वराहमिहर का भी नाम है। और, वराहमिहर का समय सन् ईसवी के छठे शतक का उत्तरार्ध माना जाता है। इसी से परीक्षा-प्रवृत्त पण्डितों ने यह सिद्धान्त निकाला कि जब वराहमिहिर यशोधर्म्मा के समय में थे तब कालिदास भी ज़रूर ही रहे होंगे। क्योंकि वे दोनों विक्रम की नवरत्नमालिका के अन्तर्गत थे। परन्तु नवरत्न-सम्बन्धी इस श्लोक में उतना ही सत्यांश है जितना कि भोजप्रबन्ध के उन लेखों में जिन में भवभूति, भारवि, माघ और कालिदास सब समकालीन माने गये हैं। अतएव यह कल्पना भी अग्राह्य है। अच्छा तो फिर कालिदास थे कब? सुनिए।

इसमें सन्देह नहीं कि कालिदास किसी विक्रम नामधारी राजा के सभासद् थे। अपने रूपकों में से एक का नाम विक्रमोर्वशीय रखना और उसकी प्रस्तावना में यह लिखना कि—"अनुत्सेकः खलु विक्रमालङ्कारः—" इस बात की पुष्टि करता है कि राजा विक्रम से कालिदास का कुछ सम्बध अवश्य था। जनश्रुति भी यही कहती है। कविवर अभिनन्द-कृत रामचरित का:—

ख्यातिं कामपि कालिदासकवयो नीताः शकारातिना

इत्यादि श्लोक भी इसकी पुष्टि करता है। अतएव जब तक इस कल्पना के विरुद्ध कोई प्रमाण न मिले तब तक इसे स्वीकार करने में कोई बाधा नहीं।

अच्छा तो अब यह देखना है कि किस विक्रम के समय में कालिदास विद्यमान थे।

ईसा के पहले शतक में विक्रम नाम का कोई ऐतिहासिक राजा नहीं हुआ। उसके नाम से जो संवत् चलता है वह पहले मालवगणस्थित्याब्द * कहलाता था। महाराज यशोधर्मा के बहुत काल पीछे उसका नाम विक्रम-संवत् हुआ। गणरत्न-महोदधि के कर्ता वर्धमान पहले ग्रन्थकार हैं जिन्हों ने विक्रम-संवत् का उल्लेख किया है। यथा:—

सप्तनवत्यधिकेष्वेकादशसु शतेष्वतीतेषु।
वर्षाणां विक्रमतो गणरत्नमहोदधिर्विहितः॥

इसका पता नहीं चलता कि कब और किसने मालव-संवत् का नाम विक्रम-संवत् कर दिया। सम्भव है, यह परिवर्तन भ्रम से हुआ हो। मालवगण-स्थित्याब्द, एक तो बहुत लम्बा नाम है। फिर कर्ण-मधुर भी नहीं। इसी से किसी ने कथासहस्र के नायक कल्पित विक्रमादित्य को मालवेश्वर समझ कर उसी के नाम से इस संवत् को प्रसिद्ध कर दिया होगा।

अच्छा तो अब कालिदास के विक्रम का पता लगाना चाहिए। कालिदास शुङ्ग राजाओं से परिचित थे। वे फलितज्योतिष भी जानते थे और गणित ज्योतिष भी। मेघदूत में उन्होंने बृहत्कथा की कथाओं का उल्लेख किया है।

हूण आदि सीमाप्रान्त की जातियों का भी उन्हें ज्ञान था। उन्होंने अपने ग्रन्थों में पातञ्जल के अनुसार कुछ व्याकरण-प्रयोग जान बूझ कर ऐसे किये हैं जो बहुत कम प्रयुक्त होते हैं। इन कारणों से हम कालिदास को ईसवी सन् का पूर्ववर्ती नहीं मान सकते।

---

* मन्दसौर में ५२९ संवत् का जो उत्कीर्ण लेख मिला है:—वह इस संवत् का दर्शक सब से पुराना लेख है। उसमें लिखा है:—

मालवानां गणस्थित्या याते शतचतुष्टये—इत्यादि।

वे उसके बाद हुए हैं। पतञ्जलि ईसा के पूर्व दूसरे शतक में थे। उनके बाद पाली की पुत्री प्राकृत ने कितने ही रूप धारण किये। वह यहाँ तक प्रबल हो उठी कि कुछ समय तक उसने संस्कृत को प्रायः दबा सा दिया। अतएव जिस काल में प्राकृत का इतना प्राबल्य था उस काल में कालिदास ऐसे संस्कृत-कवि का प्रादुर्भाव नहीं हो सकता। फिर, पैशाची भाषा में लिखी हुई गुणाढ्यकृत बृहत्कथा की कथाओं से कालिदास का परिचित होना भी यह सूचित कर रहा है कि वे गुणाढ्य के बाद हुए हैं, प्राकृत के प्राबल्य-काल में नहीं। कालिदास ने अपने ग्रन्थों में ज्योतिष-सम्बन्धिनी जो बातें लिखी हैं उनसे वे आर्य्यभट्ट और वराहमिहिर के समकालीन ही से जान पड़ते हैं। या तो उन्होंने ज्योतिष का ज्ञान इन्हीं दोनों ग्रन्थकारों के ग्रन्थों से प्राप्त किया होगा या ठीक इनके पूर्ववर्त्ती ज्योतिषियों के ग्रन्थों से। इससे सूचित होता है कि कालिदास ईसवी सन् के तीसरे शतक के पहले के नहीं। पर इसके साथ ही यह भी मानना पड़ता है कि वे ईसवी सन् के पाँचवें शतक के बाद के भी नहीं, क्योंकि सातवें शतक के कवि बाणभट्ट ने हर्षचरित में कालिदास का नामोल्लेख किया है। दूसरे पुलकेशी की प्रशस्ति में रविकीर्त्ति ने भी भारवि के साथ कालिदास का नाम लिखा है। यह प्रशस्ति भी सातवें शतक की है। इस प्रशस्ति के समय भारवि को हुए कम से कम सौ वर्ष ज़रूर हो चुके होंगे। क्योंकि किसी प्रसिद्ध राजा की प्रशस्ति में उसी कवि का नाम लिखा जा सकता है जो स्वयं भी ख़ूब प्रसिद्ध हो। और, प्राचीन समय में किसी की कीर्त्ति के प्रसार में सौ वर्ष से क्या कम लगते रहे होंगे। इधर बाण ने कालिदास का नामोल्लेख करने के सिवा सुबन्धु की वासवदत्ता का भी उल्लेख किया है। अतएव सुबन्धु भी बाण के कोई सौ वर्ष पूर्व हुए होंगे। इस हिसाब से भारवि और सुबन्धु का अस्तित्व-समय ईसवी सन् के छठे शतक के पूर्वार्द्ध में सिद्ध होता है। भारवि और सुबन्धु की रचना में भङ्गश्लेष आदि के कारण क्लिष्टता आ गई है। पर यह दोष कालिदास की कविता में नहीं है। अतएव वे भारवि और सुबन्धु के कोई सौ वर्ष ज़रूर पहले के हैं। इस प्रकार कुछ विद्वानों का जो यह मत है कि कालिदास या तो ईसवी सन् के चौथे शतक के अन्त में विद्यमान थे, या पाँचवें शतक के आरम्भ में, सो बहुत ठीक मालूम होता है। हमारी राय तो यह है कि वे गुप्त-नरेश द्वितीय चन्द्रगुप्त, उपनाम विक्रमादित्य, और तत्परवर्ती कुमारगुप्त के समय में थे। अर्थात् अनुमान से वे ३७५ से ४५० ईसवी के बीच में विद्यमान थे।

छठे शतक में उत्पन्न भारवि और सुबन्धु ने पाणिनीय व्याकरण के नियमों का उल्लङ्घन नहीं किया; पर—"तं पातयां प्रथममास पपात पश्चात्;" "वपुः प्रकर्षात्;" "शक्यमालिङ्गितुं पवनः" इत्यादि में कालिदास ने उल्लंघन किया है। अतएव वे भारवि और सुबन्धु के ज़रूर पहले के हैं। भारवि और सुबन्धु के समय में पाणिनि की व्याकरण-विषयक आज्ञा सर्वमान्य हो चुकी थी। अतएव उसका किसी ने उल्लङ्घन नहीं किया। पर कालिदास के समय में यह बात न थी; तब पाणिनि के किसी किसी नियम का पालन न भी किया जाता था। इसी से कालिदास और अश्वघोष के काव्यों में पाणिनि की आज्ञा के प्रतिकूल प्रयोग पाये जाते हैं। अतएव इसमें सन्देह नहीं कि कालिदास, भारवि और सुबन्धु के पहले के हैं।

कालिदास के ग्रन्थों का आकलन करने से ज्ञात होता है कि उनका ज्योतिष-विद्या-विषयक ज्ञान गहन न था। अतएव वे आर्य्यभट्ट के बाद के नहीं हो सकते। वराहमिहिर के वे समकालीन भी नहीं हो सकते। क्योंकि इस समकालीनता का सूचक एक मात्र नवरत्न वाला पद्य है, जो योग्य प्रमाण नहीं। यह पद्य ज्योतिर्विदाभरण का है। इस पुस्तक की रचना किसी अर्वाचीन जैन पण्डित की जान पड़ती है। इसकी संस्कृत महा अशुद्ध है। इसका पूर्वोक्त श्लोक कदापि विश्वसनीय नहीं।

कालिदास यद्यपि उज्जयिनी-नरेश की सभा के सदस्य थे तथापि उज्जयिनी उनकी जन्मभूमि नहीं कही जा सकती। कालिदास को ग्रीष्म ऋतु से सविशेष प्रेम था। उन्होंने अपने काव्यों में इस ऋतु का वर्णन कई जगह किया है। हिमालय-प्रदेश के दृश्यों से भी उनका अधिक परिचय था। जहाँ कहीं उनका वर्णन उन्होंने किया है बहुत ही अच्छा किया है। अतएव महाकवि बाण की तरह वे भी काश्मीर के निवासी थे। इसी से तो विल्हण ने विक्रमाङ्कदेवचरित में लिखा है* कि कविता और केसर केवल काश्मीर में पैदा होती है, अन्यत्र नहीं। यदि कालिदास काश्मीरी न होते तो विल्हण को यह गर्वोक्ति लिखने का कभी साहस न होता।

अनुमान से मालूम होता है कि प्रौढ़ वय में कालिदास ने उज्जयिनी-नरेश का आश्रय स्वीकार किया। क्योंकि कुमारसम्भव और मालविकाग्निमित्र में उनके उज्जयिनी-सम्बन्ध की कोई सूचना नहीं। कालिदास की युवावस्था के यही ग्रन्थ हैं। यदि वे उनकी रचना के समय उज्जेन में होते तो बहुत सम्भव था कि वहाँ का कुछ न कुछ हाल उनमें अवश्य पाया जाता। अब मेघदूत आदि पीछे के ग्रन्थों को देखिए। उनमें उज्जेन के मन्दिर, प्रासाद, उद्यान आदि का आँखों देखा सा वर्णन है। इससे मालूम होता है कि वे प्रौढ़ वय में उज्जेन आये और वहाँ के तत्कालीन राजा के आश्रय में उसकी सभा के सदस्य होकर रहे।

अच्छा तो उस समय उज्जेन का राजा कौन था। रघुवंश के छठे सर्ग में इन्दुमती के स्वयंवर का वर्णन है। स्वयंवर में आये हुए जिन राजाओं का उल्लेख कालिदास ने वहाँ पर किया है उनमें उन्होंने मगध-नरेश को प्रधानता दी है। पहले उसी का वर्णन किया है। उसी के सामने पहले इन्दुमती को खड़ा किया है। यह क्यों? उज्जयिनी-नरेश को क्यों प्रधानता न दी? इसका उत्तर यह है कि कालिदास के समय में मगधेश्वर ही अवन्ती का भी अधीश्वर था। इस बात को मान लेने से सारे झंझट दूर हो जाते हैं। यदि कालिदास यशोधर्म्मा या और किसी ऐसे राजा के यहाँ होते जिसका शासन मगध पर न होता, तो वे मगधेश्वर को कदापि इतनी प्रतिष्ठा न देते और उसका इतना पक्षपात न करते। रघुवंश के छठे सर्ग में जितने राजाओं का वर्णन कालिदास ने किया है उनमें अवन्ती और मगध के राजाओं को ही सब से अधिक बली और शक्तिशाली ठहराया है। लिखा है कि मगधपति की ही बदौलत पृथ्वी राजन्वती है; और राजा तो बहुत ही क्षुद्र हैं। अवन्ती के राजा के विषय में लिखा है कि उसके घोड़ों के खुरों से उड़ाई हुई धूल ने अन्यान्य राजाओं की मुकुट-मणियों की प्रभा क्षीण कर दी। इससे जान पड़ता है कि कालिदास के समय में अवन्ती (जिसकी राजधानी उज्जेन थी) और मगध का शासक एक ही राजा था। जो मगध का राजा था वही अवन्ती का भी। अच्छा तो ईसवी सन् के चौथे शतक के अन्त में ऐसा कोई राजा था भी? ज़रूर था। उसका नाम क्या था? उसका नाम था द्वितीय चन्द्रगुप्त। इतिहासवेत्ताओं ने लिखा है कि मगध के सिंहासन पर उस समय यही राजा विराजमान था और इसी ने अवन्ती को जीत कर उसे भी अपने राज्य में मिला लिया था। अतएव, सिद्ध हुआ कि इसी राजा के आश्रय में कालिदास थे।

इस सिद्धान्त की पुष्टि में कितनी ही बातें कही जा सकती हैं। रघुवंश के छठे सर्ग में इन्दुमती जब मगधाधिप और अवन्तिनाथ के सामने हुई तब यद्यपि उसने उनमें से एक को भी पसन्द न किया तथापि वह उनसे बड़ी ही श्रद्धा और भक्ति से पेश आई। न उनके सामने उसने कोई अनादरसूचक चेष्टा ही की, न कोई आक्षेप-योग्य बात ही कही। परन्तु और राजाओं का उल्लङ्घन घृणा और तिरस्कारपूर्वक कर के वह आगे बढ़ती गई। इस से सूचित होता

---

* सहोदराः कुङ्कमकेसराणां भवन्ति नूनं कविताविलासाः।
न शारदादेशमपास्य दृष्टस्तेषां यदन्यत्र मया प्ररोहः॥

है कि कालिदास को मगध और अवन्ती के राजा का आदर मंज़र था। जिस समय रघुवंश का पूर्वार्द्ध लिखा गया उस समय रुद्रदामा का विजेता मगधाधिप द्वितीय चन्द्रगुप्त बूढ़ा हो चला था। कालिदास ने स्वयंवर में आये हुए मगध-नरेश का नाम परन्तप लिखा है। उसे इन्दुमती ने पसन्द न किया। कालिदास के इस लेख की चन्द्रगुप्त ने बूढ़े होने के कारण विशेष परवा न की होगी। पर यदि परन्तप के विषय में कालिदास कोई अनुचित बात लिख देते तो वह चन्द्रगुप्त को अवश्य असह्य होती। इसी से उन्हों ने ऐसा नहीं किया।

रघुवंश के छठे सर्ग में मगधाधिप परन्तप का वर्णन करते समय कालिदास ने लिखा है:—

ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रिः

इसके आगे अवन्ति-नरेश के वर्णन में उन्होंने कहा है:—

इन्दुं नवोत्थानमिवोन्दुमत्यै

इन श्लोकों में 'चन्द्रमस' और 'इन्दु' शब्दों का प्रयोग करके तो कालिदास ने चन्द्रगुप्त से अपना सम्बध साफ़ही साफ़ प्रकट कर दिया है। इसी प्रकार का साङ्केतिक वर्णन विशाखदत्त ने मुद्राराक्षस की प्रस्तावना में भी किया है। यथाः—

क्रूरग्रहः सकेतुश्चन्द्रमसं पूर्णमण्डलमिदानीम्।
अभिभवितुमिच्छति बलाद्रक्षत्येनं तु बुधयोगः॥

यहाँ पर भी 'चन्द्रमसं' पद से मौर्य्य चन्द्रगुप्त का अर्थ ध्वनित किया गया है। कालिदास ने भी पूर्वोक्त श्लोकों के 'चन्द्रमस' और 'इन्दु' शब्दों में द्वितीय चन्द्रगुप्त की ध्वनि निहित कर दी है।

इस सिद्धान्त के पुष्टीकरण में और भी बहुत कुछ कहा जा सकता है। दिलीप और रघु का चरित, जैसा कि कालिदास ने चित्रित किया है, विलक्षणता से ख़ाली नहीं। चन्द्रगुप्त से कालिदास का सम्बन्ध मान लेने से इस विलक्षणता का कारण भी समझ में आ जाता है। प्राचीन पुराण-कथाओं में यह कहीं नहीं लिखा कि दिलीप ने अश्वमेध-यज्ञ किया था। रघु के दिग्विजय का उल्लेख भी उनमें नहीं। यदि हम यह मान लेते हैं कि कालिदास ने द्वितीय चन्द्रगुप्त के चरित को आदर्श मान कर रघु का चरित चित्रित किया है तो दिलीप और रघु के विषय में जो नई नई बातें उन्हों ने कहीं हैं उनका आशय तत्काल ही ध्यान में आ जाता है। रघुवंश में जिन राजाओं का वृत्तान्त है उनमें रघु और राम ही श्रेष्ठ हैं। रामचन्द्र का चरित तो इतना विश्रुत है कि उसको आदर्श मान कर अपने आश्रयदाता द्वितीय चन्द्रगुप्त के चरित का चित्रण करना कालिदास ने मुनासिब नहीं समझा। इसी से उन्होंने रघु को चन्द्रगुप्त का प्रतिनिधि बनाया।

कालिदास के आश्रयदाता द्वितीय चन्द्रगुप्त के पिता का नाम था समुद्रगुप्त। इस समुद्रगुप्त ने अश्वमेध-यज्ञ किया था। बस इसी से कालिदास ने रघु के पिता दिलीप से भी अश्वमेध-यज्ञ करा डाला। यह सिर्फ़ इस लिए कि पिता-पुत्र का सम्बन्ध ठीक हो जाय। चन्द्रगुप्त हुआ रघु और समुद्रगुप्त हुआ दिलीप। और देखिए। द्वितीय चन्द्रगुप्त की माँ बहुत करके किसी मगध-देशीय राजा की कन्या थी। इसी से रघु की माँ भी 'मागधी' बनाई गई। चन्द्रगुप्त की माँ का नाम था दत्ता देवी और रघु की माँ का था सुदक्षिणा। ये 'दत्ता' और 'दक्षिणा' शब्द भी समानार्थवाची हैं। चन्द्रगुप्त का विजयी होना इतिहास-प्रसिद्ध है। इसी से रघु से भी कालिदास ने दिग्विजय कराया। फा-हियान नामक चीन-देशीय यात्री ने गुप्त-साम्राज्य के प्रथम भाग में भारतपर्य्यटन किया था। उसने लिखा है कि इस राज्य में चोरों का कहीं नामोनिशान भी नहीं। कालिदास ने दिलीप और रघु के शासन-समय के वर्णन में भी यही बात लिखी है:—

वातोऽपि नास्रंसयदंशुकानि
को लम्बयेदाहरणाय हस्तम्?

कालिदास ने रघुवंश में अपने वर्णन किये गये राजाओं के लिए गोप्तृ शब्द का अनेक बार प्रयोग किया है। यह शब्द और कवियों ने बहुत ही कम लिखा है। अब देखिए, जिस धातु से गोप्तृ शब्द

बना है उसी से गुप्त भी बना है। अतएव कालिदास के 'गोप्ता' और 'गोप्तरि' आदि प्रयोग मगध के गुप्त-नरेश के ही स्मारक हैं। एक जगह, रघुवंश में, तोः—

स्ववीर्यगुप्ता हि मनोः प्रसूतिः

लिख कर गुप्त-शब्द का उन्हों ने स्पष्ट ही उल्लेख कर दिया है।

अतएव सर्वथा सिद्ध है कि विक्रमादित्य और विक्रमाङ्क आदि विरुदधारी, पश्चिमी सागर पर्य्यन्त गुप्त-राज्य का विस्तार बढ़ानेवाले, गुजरात के शक-क्षत्रपों का संहार करने के कारण शकारि पदवी पानेवाले मगधाधीश दूसरे चन्द्रगुप्त के समय में ही कालिदास विद्यमान थे। सुदूरवर्ती पूर्व के सुह्म आदि और दक्षिण के चोल आदि कुछ प्रदेशों को छोड़ कर अवशिष्ट सारे भारत का कोई चालीस वर्ष तक यही चक्रवर्ती राजा था। रघुवंश के चैाथे सर्ग में कालिदास ने जिन जिन देशों का रघु के द्वारा जीता जाना लिखा है उन उन सभी देशों पर द्वितीय चन्द्रगुप्त का अधिकार था। परन्तु रघु के विजित देशों में मगध और अवन्ती का नाम नहीं। यह क्यों? यह इसी लिए कि रघु तो द्वितीय चन्द्र-गुप्त की छाया मात्र है। अवन्ती और मगध का तो वह राजा ही था। उनका उल्लेख कालिदास क्यों करते। जिसका जहाँ पहलेही से अधिकार होता है उसका जीतना कैसा? रघु को चन्द्रगुप्त का प्रति-निधि माने विना यह प्रश्न, और किसा तरह, हल नहीं हो सकता।

जान पड़ता है कालिदास की मृत्यु बूढ़े होने पर हुई। अपने आश्रयदाता चन्द्रगुप्त के मरने के बाद भी वे कुछ समय तक शायद जीवित थे। अपने अन्तिम वय में ही उन्होंने शकुन्तला और रघुवंश का उत्तरार्द्ध लिखा होगा। कालिदास को अपने नूतन वय में उज्जयिनी राजधानी से बड़ा प्रेम था। पर बुढ़ापे में राज-नगर और राज-प्रासाद से उन्हें घृणा सी होगई थी। शकुन्तला में वे दुष्यन्त के राज-भवन के विषय में कण्व के शिष्य के मुँह से कहलाते हैं:—

जनाकीर्णं मन्ये हुतवहपरीतं गृहमिव।

अनुमान से मालूम होता है कि उनका जितना आदर-सत्कार चन्द्रगुप्त के समय में था उतना उसके उत्तराधिकारी कुमारगुप्त के समय में नहीं रहा। इसी से खिन्न हो कर उन्होंने शकुन्तला और रघुवंश के अन्तिम कई सर्गों में अपने मन के विकार विवश होकर प्रकट किये हैं। मेघदूत में उज्जयिनी की इतनी प्रशंसा करके, उत्तर वय में वे नगरवास की अपेक्षा वनवास के ही विशेष अनुरागी से हो गये जान पड़ते हैं। चन्द्रगुप्त के बाद मगध की ऊर्जितावस्था क्षीण होती गई। इसी को लक्ष्य करके कालिदास ने रघुवंश के अठारहवें सर्ग में कई जगह रघुवंशियों के राज्य की हीनावस्था दिखाई है और अन्त के, अर्थात् उन्नीसवें सर्ग में तो राजा अग्निवर्ण की कामुकता और मृत्यु का वर्णन करके रघु के वंश की प्रायः समाप्तिही सी कर दी है।

अतएव यह सिद्धप्राय है कि कालिदास ईसवी सन् के चैाथे शतक के अन्त और पाँचवें शतक के आरम्भ में विद्यमान थे। अशोक के अनन्तर इसी समय भारतवर्ष की गैारववृद्धि हुई। मेण्ठ, सुबन्धु, भास आदि महाकवि, दिङ्नाग, उद्योतकर आदि दार्शनिक और आर्यभट्ट, वराहमिहिर आदि वैज्ञानिक भी इसी समय हुए। इस समय भारत में विद्योन्नति का जो प्रादुर्भाव हुआ वह कोई एक हज़ार वर्ष तक बना रहा। तेरहवें शतक में राजा लक्ष्मणसेन के राज्य का अवसान होने पर उसका भी अवसान होगया।

यह लेख साहित्याचार्य्य पण्डित रामावतार शर्म्मा, एम० ए० के एक हस्तलिखित संस्कृत-अँगरेज़ी-प्रबन्ध के आधार पर लिखा गया है।

अन्योक्ति-पुष्पावली।

खद्योत।

१—खद्योत! है लुप्त जहाँ निशेश
है वारिदाच्छन्न नभ-प्रदेश।

है यत्र सर्वत्र बड़ा अँधेरा—
है योग्य ही तत्र विकाश तेरा ॥

सन्ध्या।

२—सदैव ही क्यों रहती न बन्ध्या—
तम-प्रसू तू बनती न सन्ध्या !
कु-पुत्रता हा ! न किसे खली है ?
अपुत्रता ही उस से भली है ॥

पत्थर।

३—तप में तनुदाहक चण्ड हुए
हिम की ऋतु में हिम-खण्ड हुए।
कुछ भी सुविचार किया न अरे !
तुम आख़िर पत्थर ही ठहरे ॥

कुक्कुट।

४—मैं ही जगाता सब को पुकार के,
मानी न हो कुक्कुट ! यों विचार के।
तू बोलता जाकर है नहीं जहाँ
होता नहीं मूढ़ ! निशान्त क्या वहाँ ?

हिमालय।

५—तू भेषजालय-धनालय भी बड़ा है,
हा ! किन्तु नाम तुहिनालय ही पड़ा है।
होते प्रसिद्ध गुण सत्वर हैं न वैसे
हैं फैलते जगत में द्रुत दोष जैसे ॥

मेघ।

६—देते समान तुम तो सब को सुनीर,
पाते न किन्तु हम चातक ही अधीर।
है दोष हे जलद ! क्या इस में तुम्हारा ?
दुर्भाग्य मात्र यह निश्चय है हमारा ॥

गङ्गाजल।

७—है कौन जन्हु-तनया- जल सा पवित्र
गाते समस्त जन हैं जिस के चरित्र।
है रीति किन्तु मुझ चातक की तथापि
लेता नहीं घन बिना जल में कदापि ॥

आम्र।

८—तव मधुर फलों की प्राप्ति का ही रसाल !
यह शुभ फल मैं हूँ मानता सर्व-काल !
मुझ पिक-खग की जो भारती अर्थहीन
सहृदय रसिकों को मोद देती नवीन ॥

चन्द्रमा।

९—यदपि गुण अनेकों आप में श्रेष्ठ पाते
तदपि सब कलङ्की आप को हैं बताते !
अहह ! सच कहा है पण्डितों ने निशेश !
सब गुण हरता है एक ही दोष-लेश ॥

काक।

१०—बलि-समय तुझे जो अन्न का दान देते,
न समझ इस से तू वे तुझे मान देते !
अहह ! हृदय से भी तू रहा काक ! काला !
समय पर सभी से काम जाता निकाला ॥

मैथिलीशरण गुप्त।

मज़दूरी और प्रेम।

हल चलानेवाले का जीवन।

ल चलाने और भेड़ चराने वाले प्रायः स्वभाव से ही साधु होते हैं। हल चलाने वाले अपने शरीर का हवन किया करते हैं। खेत उनकी हवन-शाला है। उनके हवन-कुण्ड की ज्वाला की किरणें चावल के लम्बे और सुफ़ेद दानों के रूप में निकलती हैं। गेहूँ के लाल लाल दाने इस अग्नि की चिनगारियों की डलियाँ सी हैं। मैं जब कभी अनार के फूल और फल देखता हूँ तब मुझे बाग़ के माली का रुधिर याद आजाता है। उसकी मेहनत के कण ज़मीन में गिर कर उगे हैं, और हवा तथा प्रकाश की सहायता से वे मीठे फलों के रूप में नज़र आरहे हैं। किसान मुझे अन्न में,
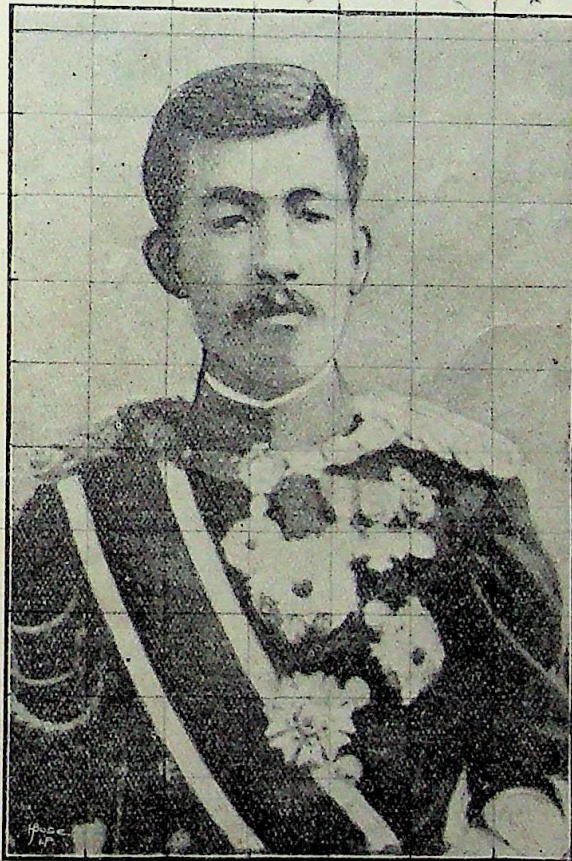
जापान के नये नरेश।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद।

फूल में, फल में आहुत हुआ सा दिखाई पड़ता है। कहते हैं, ब्रह्माहुति से जगत् पैदा हुआ है। अन्न पैदा करने में किसान भी ब्रह्मा के समान हैं। खेती उसके ईश्वरी प्रेम का केन्द्र है। उसका सारा जीवन पत्ते-पत्ते में, फूल-फूल में, फल-फल में बिखर रहा है। वृक्षों की तरह उसका भी जीवन एक प्रकार का मौन जीवन है। वायु, जल, पृथ्वी, तेज और आकाश की नीरोगता इसी के हिस्से में है। विद्या यह नहीं पढ़ा; जप और तप यह नहीं करता; सन्ध्या-वन्दनादि इसे नहीं आते; ज्ञान, ध्यान का इसे पता नहीं; मन्दिर, गिरजे, मसजिद से इसे कोई सरोकार नहीं; केवल साग-पात खाकर ही यह अपनी भूख निवारण कर लेता है। ठण्ढे चश्मों और बहती हुई नदियों के शीतल जल से यह अपनी प्यास बुझा लेता है। प्रातःकाल उठ कर यह अपने हल-बैलों को नमस्कार करता है और हल जोतने चल देता है। दोपहर की धूप इसे भाती है। इसके बच्चे मिट्टी ही में खेल खेल कर बड़े होजाते हैं। इसको और इसके परिवार को बैल और गौवों से प्रेम है। उनकी यह सेवा करता है। पानी बरसाने वाले के दर्शनार्थ इसकी आँखें नीले आकाश की ओर उठती हैं। नयनों की भाषा में यह प्रार्थना करता है। सायं और प्रातः, दिन और रात, विधाता इसके हृदय में अचिन्तनीय और अद्‌भुत आध्यात्मिक भावों की वृष्टि करता है। यदि कोई इसके घर आजाता है तो यह उसको मृदु वचन, मीठे जल और अन्न से तृप्त करता है। धोखा यह किसी को नहीं देता। यदि इसको कोई धोखा दे भी दे, तो उसका इसे ज्ञान नहीं होता; क्योंकि इसकी खेती हरी भरी है; गाय इसकी दूध देती है; स्त्री इसकी आज्ञा-कारिणी है; मकान इसका पुण्य और आनन्द का स्थान है। पशुओं को चराना, नहलाना, खिलाना, पिलाना, उनके बच्चों को अपने बच्चों की तरह सेवा करना, खुले आकाश के नीचे उनके साथ रातें गुज़ार देना क्या स्वाध्याय से कम है? दया, वीरता और प्रेम जैसा इन किसानों में देखा जाता है अन्यत्र मिलने का नहीं। गुरु नानक ने ठीक कहा है:—"भोले भाव मिलें रघुराई"। भोले भाले किसानों को ईश्वर अपने खुले दीदार का दर्शन देता है। उनकी फूस की छतों में से सूर्य्य और चन्द्रमा छन छन कर उनके बिस्तरों पर पड़ते हैं। ये प्रकृति के जवान साधु हैं। जब कभी मैं इन बे-मुकुट के गोपालों के दर्शन करता हूँ, मेरा सिर स्वयं ही झुक जाता है। जब मुझे किसी फ़क़ीर के दर्शन होते हैं तब मुझे मालूम होता है कि नङ्गे सिर, नङ्गे पाँव, एक टोपी सिर पर, एक लँगोटी कमर में, एक काली कमली कन्धे पर, एक लम्बी लाठी हाथ में लिये हुए गौवों का मित्र, बैलों का हमजोली, पक्षियों का हमराज़, महाराजाओं का अन्न-दाता, बादशाहों को ताज पहनाने और सिंहासन पर बिठाने वाला, भूखों और नंगो का पालने वाला, समाज के पुष्पोद्यान का माली और खेतों का वाली जा रहा है।

गड़रिये का जीवन।

एक बार मैंने एक बुड्ढे गड़रिये को देखा। घना जङ्गल है। हरे हरे वृक्षों के नीचे उसकी सुफ़ेद ऊनवाली भेड़ें अपना मुँह नीचे किये हुए कोमल कोमल पत्तियाँ खा रही हैं। गड़रिया बैठा आकाश की ओर देख रहा है। ऊन कातता जाता है। उसकी आखों में प्रेम-लाली छाई हुई है। वह नीरोगता की पवित्र मदिरा से मस्त हो रहा है। बाल उसके सारे सुफ़ेद हैं। और, क्यों न सुफ़ेद हों? सुफ़ेद भेड़ों का मालिक जो ठहरा! परन्तु उसके कपोलों से लाली फूट रही है। बरफ़ानी देशों में वह मानो विष्णु के समान क्षीर-सागर में लेटा है। उसकी प्यारी स्त्री उसके पास रोटी पका रही है। उसकी दो जवान कन्यायें उसके साथ जङ्गल जङ्गल भेड़ चराती घूमती हैं। अपने माता-पिता और भेड़ों को छोड़ कर उन्होंने किसी और को नहीं देखा। मकान इनका बे मकान है; घर इनका बे घर है; ये लोग बे नाम और बे पता हैं।

किसी घर में न घर कर बैठना इस दारे फ़ानी में।
ठिकाना बे ठिकाना ग्रैार मकां बर ला-मकां रखना॥

इस दिव्य परिवार को कुटी की ज़रूरत नहीं। जहाँ जाते हैं एक घास की झोपड़ी बना लेते हैं। दिन को सूर्य्य ग्रैार रात को तारागण इनके सखा हैं।

गड़रिये की कन्या पर्वत के शिखर के ऊपर खड़ी सूर्य्य का अस्त होना देख रही है। उसकी सुनहली किरणें इस के लावण्यमय मुख पर पड़ रही हैं। यह सूर्य्य को देख रही है ग्रैार वह इसको देख रहा है।

हुए थे आँखों के कल इशारे इधर हमारे उधर तुम्हारे।
चले थे अश्कों के क्या फ़वारे इधर हमारे उधर तुम्हारे॥

बोलता कोई भी नहीं। सूर्य्य उसकी युवावस्था की पवित्रता पर मुग्ध है ग्रैार वह आश्चर्य्य के अवतार सूर्य्य की महिमा के तूफ़ान में पड़ी नाच रही है।

इनका जीवन बर्फ़ की पवित्रता से पूर्ण ग्रैार वन की सुगन्धि से सुगन्धित है। इनके मुख, शरीर, ग्रैार अन्तःकरण सुफ़ेद; इनकी बर्फ़, पर्वत ग्रैार भेड़ें सुफ़ेद। अपनी सुफ़ेद भेड़ों में यह परिवार शुद्ध सुफ़ेद ईश्वर के दर्शन करता है।

जो ख़ुदा को देखना हो तो मैं देखता हूँ तुमको।
मैं देखता हूँ तुमको जो ख़ुदा को देखना हो॥

भेड़ों की सेवाही इनकी पूजा है। ज़रा एक भेड़ बीमार हुई, सब परिवार पर विपत्ति आई। दिन रात उसके पास बैठे काट देते हैं। उसे अधिक पीड़ा हुई तो इन सब की आँखें शून्य आकाश में किसी को देखने लग गईं। पता नहीं ये किसे बुलाती हैं। हाथ जोड़ने तक की इन्हें फ़ुरसत नहीं। पर, हाँ, इन सब की आँखें किसी के आगे शब्द-रहित, सङ्कल्प-रहित, मैान प्रार्थना में खुली हुई हैं। दो रातें इसी तरह गुज़र गईं! इनकी भेड़ अब अच्छी है। इन के घर मङ्गल हो रहा है। सारा परिवार मिल कर गा रहा है। इतने में नीले आकाश पर बादल घिर आये ग्रैार झम झम बरसने लगे। मानो प्रकृति के देवता भी इनके आनन्द से आनन्दित हुए। बूढ़ा गड़रिया आनन्द-मत्त हो कर नाचने लगा। वह कहता कुछ नहीं; पर किसी दैवी दृश्य को उसने अवश्य देखा है। वह फूले अङ्ग नहीं समाता। रग रग उसकी नाच रही है। पिता को ऐसा सुखी देख दोनों कन्याओं ने एक दूसरे का हाथ पकड़ कर पहाड़ी राग अलापना आरम्भ कर दिया। साथही धम-धम थम-थम नाच की उन्होंने धूम मचा दी। मेरी आँखों के सामने ब्रह्मानन्द का समाँ बाँध दिया। मेरे पास मेरा भाई खड़ा था। मैंने उससे कहा—"भाई, अब मुझे भी भेड़ें ले दो"। ऐसेही मूक-जीवन से मेरा भी कल्याण होगा। विद्या को भूल जाऊँ तो अच्छा है। मेरी पुस्तकें खो जावें तो उत्तम है। ऐसा होने से कदाचित् इस वनवासी परिवार की तरह मेरे दिल के नेत्र खुल जायँ ग्रैार मैं ईश्वरी झलक देख सकूँ। चन्द्र ग्रैार सूर्य्य की विस्तृत ज्योति में जो वेदगान हो रहा है उसे इस गड़रिये की कन्याओं की तरह मैं सुन तो न सकूँ, परन्तु कदाचित् प्रत्यक्ष देख सकूँ। कहते हैं, ऋषियों ने भी, इनसे देखाही था, सुना न था। पण्डितों की ऊटपटांग बातों से मेरा जी उकता गया है! प्रकृति की मन्द मन्द हँसी में, ये अनपढ़ लोग ईश्वर के हँसते हुए ग्रैांठ देख रहे हैं। पशुओं के अज्ञान में गम्भीर ज्ञान छिपा हुआ है। इन लोगों के जीवन में अद्भुत आत्मानुभव भरा हुआ है। गड़रिये के परिवार की प्रेम-मज़दूरी का कैान मूल्य दे सकता है?

मज़दूर की मज़दूरी।

आप ने चार आने पैसे मज़दूर के हाथ में रख कर कहा—"यह लो, दिन भर की अपनी मज़दूरी"। वाह क्या दिल्लगी है! हाथ, पाँव, सिर आँखे इत्यादि सबके सब अवयव उसने आप को अर्पण कर दिये। ये सब चीज़ें उसकी तो थीही नहीं; ये तो ईश्वरीय पदार्थ थे। जो पैसे आपने उसको दिये वे भी आपके न थे। वे तो पृथिवी से निकली हुई धातु के टुकड़े थे; अतएव ईश्वर के निर्म्मित थे। मज़दूरी का ऋण तो परस्पर की प्रेम-सेवा से चुकता होता है; अन्न-धन देने से नहीं। वे तो दोनों ही ईश्वर के हैं। अन्न-धन वही बनाता है ग्रैार जल भी वही देता है।

एक जिल्दसाज़ ने मेरी एक पुस्तक की जिल्द बाँध दी। मैं तो इस मज़दूर को कुछ भी न दे सका। परन्तु उसने मेरी उम्र भर के लिए एक विचित्र वस्तु मुझे दे डाली। जब कभी मैंने उस पुस्तक को उठाया मेरे हाथ जिल्द-साज़ के हाथ पर जा पड़े। पुस्तक देखतेही मुझे जिल्दसाज़ याद आ जाता है। वह मेरा आमरण मित्र हो गया है। पुस्तक हाथ में आतेही मेरे अन्तःकरण में रोज़ भरत-मिलाप का सा समाँ बँध जाता है।

गाढ़े की एक कमीज़ को एक अनाथ विधवा सारी रात बैठ कर सीती है; साथही साथ वह अपने दुख पर रोती भी हैः—दिन को खाना नहीं मिला; रात को भी कुछ मयस्सर न हुआ। अब वह एक एक टांके पर आशा करती है कि कमीज़ कल तैयार हो जायगी; तब कुछ तो खाने को मिलेगा। जब वह थक जाती है तब ठहर जाती है। सुई हाथ में लिये हुए है। कमीज़ घुटने पर बिछी हुई है। उसकी आँखों की दशा उस आकाश की जैसी है जिसमें बादल बरस कर अभी अभी बिखर गये हैं। खुली आँखें ईश्वर के ध्यान में लीन हो रहीं हैं। कुछ काल के उपरान्त--"हे राम"—कह कर उसने फिर सीना शुरू कर दिया। इस माता और इस बहन की सिली हुई कमीज़ मेरे लिए मेरे शरीर का नहीं—मेरी आत्मा का वस्त्र है। इसका पहनना मेरी तीर्थ-यात्रा है। इस कमीज़ में उस विधवा के सुख,दुख, प्रेम और पवित्रता के मिश्रण से मिली हुई जीवन-रूपिणी गङ्गा की बाढ़ चली जा रही है। ऐसी मज़दूरी और ऐसा काम—प्रार्थना, सन्ध्या और नमाज़ से क्या कम है? शब्दों से तो प्रार्थना हुआ नहीं करती। ईश्वर तो कुछ ऐसीही मूक-प्रार्थनायें सुनता है और तत्काल सुनता है।

प्रेम-मज़दूरी।

मुझे तो मनुष्य के हाथ से बने हुए कामों में उन के प्रेम-मय पवित्र आत्मा की सुगन्ध आती है। राफ़ेल आदि के चित्रित चित्रों में उनकी कला-कुशलता को देख, इतनी सदियों के बाद भी उन के अन्तःकरण के सारे भावों का अनुभव होने लगता है। केवल चित्र का ही दर्शन नहीं, किन्तु, साथ ही, उस में छिपी हुई चित्रकार की आत्मा तक के दर्शन हो जाते हैं। परन्तु यन्त्रों की सहायता से बने हुए फ़ोटो निर्जीव से प्रतीत होते हैं। उन में और हाथ के चित्रों में उतनाही भेद है जितना कि बस्ती और श्मशान में।

हाथ की मेहनत से चीज़ में जो रस भर जाता है वह भला लोहे के द्वारा बनाई हुई चीज़ में कहाँ। जिस आलू को मैं स्वयं बोता हूँ, मैं स्वयं पानी देता हूँ, जिसके इर्द गिर्द की घास-पात खोद कर मैं साफ़ करता हूँ उस आलू में जो रस मुझे आता है वह टीन में बन्द किये हुए अचार-मुरब्बे में नहीं आता। मेरा विश्वास है कि जिस चीज़ में मनुष्य के प्यारे हाथ लगते हैं, उस में उस के हृदय का प्रेम और मन की पवित्रता सूक्ष्मरूप से मिल जाती है और उस में मुर्दे को ज़िन्दा करने की शक्ति आ जाती है। होटल में बने हुए भोजन महा नीरस होते हैं, क्योंकि वहाँ मनुष्य मशीन बना दिया जाता है। परन्तु अपनी प्रियतमा के हाथ से बने हुए रूखे सूखे भोजन में कितना रस होता है। जिस मिट्टी के घड़े को कन्धों पर उठा कर, मीलों दूर से उसमें मेरी प्रेममग्न प्रियतमा ठण्ढा जल भर लाती है, उस लाल घड़े का जल जब मैं पीता हूँ तब जल क्या पीता हूँ—अपनी प्रेयसी के प्रेमामृत को पान करता हूँ। जो ऐसा प्रेम-प्याला पीता हो उसके लिए शराब क्या वस्तु है? प्रेम से जीवन सदा गद् गद् रहता है। मैं अपनी प्रेयसी की ऐसी प्रेम-भरी, रस-भरी, दिलभरी सेवा का बदला क्या कभी दे सकता हूँ?

उधर प्रभात ने अपनी सुफ़ेद किरणों से अँधेरी रात पर सुफ़ेदी सी छिटकी, इधर मेरी प्रेयसी, मैना अथवा कोयल की तरह, अपने बिस्तर से उठी। उसने गाय का बछड़ा खोला; दूध की धारों से अपना कटोरा भर लिया। गाते गाते अन्न को अपने हाथों

से पीस कर सुफ़ेद आटा बना लिया। इस सुफ़ेद आटे से भरी हुई छोटी सी टोकरी सिर पर; एक हाथ में दूध से भरा हुआ लाल मिट्टी का कटोरा; दूसरे हाथ में मक्खन की हाँड़ी। जब मेरी प्रिया घर की छत के नीचे इस तरह खड़ी होती है तब वह छत के ऊपर की श्वेत प्रभा से भी अधिक आनन्ददायक, बलदायक, बुद्धि-दायक जान पड़ती है। उस समय वह उस प्रभा से भी अधिक रसीली, अधिक रँगीली—जीती जागती, चैतन्य और आनन्दमयी प्रातःकालीन शोभा सी, लगती है। मेरी प्रिया अपने हाथ से चुनी हुई लकड़ियों को अपने दिल से चुराई हुई एक चिनगारी से लाल अग्नि में बदल देती है। जब वह आटे को छलनी से छानती है तब मुझे उसकी छलनी के नीचे एक अद्भुत ज्योति की लौ नज़र आती है। जब वह उस अग्नि के ऊपर मेरे लिए रोटी बनाती है तब उसके चूल्हे के भीतर मुझे तो पूर्व दिशा की नभोलालिमा से भी अधिक आनन्ददायिनी लालिमा देख पड़ती है। यह रोटी नहीं, कोई अमूल्य पदार्थ है। मेरे गुरु ने इसी प्रेम से संयम करने का नाम योग रक्खा है। मेरा यही योग है।

मज़दूरी और कला।

आदमियों की तिजारत करना मूर्खों का काम है। सोने और लोहे के बदले मनुष्य को बेचना मना है। आज कल भाफ़ की कलों का दाम तो हज़ारों रुपया है, परन्तु मनुष्य कौड़ी के सौ सौ बिकते हैं। सोने और चाँदी की प्राप्ति से जीवन का आनन्द नहीं मिल सकता। सच्चा आनन्द तो मुझे मेरे काम से मिलता है। मुझे अपना काम मिल जाय तो फिर स्वर्ग-प्राप्ति की इच्छा नहीं। मनुष्य-पूजा ही सच्ची ईश्वर-पूजा है। मन्दिर और गिरजे में क्या रक्खा है? ईंट, पत्थर, चूना, कुछ ही कहो—आज से हम अपने ईश्वर की तलाश मन्दिर, मसजिद, गिरजा और पोथी में न करेंगे। अब तो यही इरादा है कि मनुष्य की अनमोल आत्मा में ईश्वर के दर्शन करेंगे। यही आर्ट है—यही धर्म है। मनुष्य के हाथ ही से तो ईश्वर के दर्शन करानेवाले निकलते हैं। मनुष्य और मनुष्य की मज़दूरी का तिरस्कार करना नास्तिकता है। बिना काम, बिना मज़दूरी, बिना हाथ के कलाकौशल के विचार और चिन्तन किस काम के! सभी देशों के इतिहासों से सिद्ध है कि निकम्मे पादड़ियों, मौलवियों, पण्डितों और साधुओं का, दान के अन्न पर पला हुआ ईश्वर-चिन्तन, अन्त में पाप, आलस्य और भ्रष्टाचार में परिवर्तित हो जाता है। जिन देशों में हाथ और मुँह पर मज़दूरी की धूल नहीं पड़ने पाती वे धर्म और कलाकौशल में कभी उन्नति नहीं कर सकते। पद्मासन निकम्मे सिद्ध हो चुके हैं। वही आसन ईश्वर-प्राप्ति करा सकते हैं जिनसे जोतने, बोने, काटने और मज़दूरी का काम लिया जाता है। लकड़ी, ईंट और पत्थर को मूर्तिमान् करनेवाले लुहार, बढ़ई, मेमार तथा किसान आदि वैसे ही दिव्य पुरुष हैं जैसे कि कवि, महात्मा और योगी आदि। उत्तम से उत्तम और नीच से नीच काम, सब के सब, प्रेम-शरीर के अङ्ग हैं।

निकम्मे रह कर मनुष्यों की चिन्तन-शक्ति थक गई है। बिस्तरों और आसनों पर सोते सोते और बैठे बैठे मन के घोड़े हार गये हैं। सारा जीवन निचुड़ चुका है। स्वप्न पुराने हो चुके हैं। आज कल की कविता में नयापन नहीं। उसमें पुराने ज़माने की कविता की पुनरावृत्ति मात्र है। इस नक़ल में असल की पवित्रता और कुँवारेपन का अभाव है। अब तो एक नये प्रकार का कला-कौशल-पूर्ण सङ्गीत-साहित्य संसार में प्रचलित होनेवाला है। यदि वह न प्रचलित हुआ तो मशीनों के पहियों के नीचे दब कर हमें मरा समझिए। यह नया साहित्य मज़दूरों के हृदय से निकलेगा। उन मज़दूरों के कण्ठ से यह नई कविता निकलेगी जो अपना जीवन आनन्द के साथ खेत की मेड़ों का, कपड़े के तागों का, जूते के टाँकों का, लकड़ी की रगों का, पत्थर की नसों का भेद-भाव दूर करेंगे। हाथ में कुल्हाड़ी, सिर पर टोकरी, नङ्गे सिर और नङ्गे पाँव, धूल से लिपटे और कीचड़

से रँगे हुए ये बे-ज़बान कवि जब जङ्गल में लकड़ी काटेंगे तब लकड़ी काटने का शब्द इनके असभ्य स्वरों से मिश्रित होकर वायु-यान पर चढ़, दशों दिशाओं में ऐसा अद्भुत गान करेगा कि भविष्यत् के कलावन्तों के लिए वही ध्रुपद और मलार का काम देगा। चरखा कातने वाली स्त्रियों के गीत संसार के सभी देशों के क़ौमी गीत होंगे। मज़दूरी की मज़दूरी ही यथार्थ पूजा होगी। कलारूपी धर्म की तभी वृद्धि होगी। तभी नये कवि पैदा होंगे; तभी नये औलियों का उद्भव होगा। परन्तु ये सब के सब मज़दूरी के दूध से पलेंगे। धर्म-योग, शुद्धाचरण, सभ्यता और कविता आदि के फूल इन्हीं मज़दूर-ऋषियों के उद्यान में प्रफुल्लित होंगे।

मज़दूरी और फ़क़ीरी।

मज़दूरी और फ़क़ीरी का महत्त्व थोड़ा नहीं। मज़दूरी और फ़क़ीरी मनुष्य के विकाश के लिए परमावश्यक हैं। बिना मज़दूरी किये फ़क़ीरी का उच्च भाव शिथिल हो जाता है; फ़क़ीरी भी अपने आसन से गिर जाती है; बुद्धि बासी पड़ जाती है। बासी चीज़ें अच्छी नहीं होतीं। कितने ही, उम्र भर, बासी बुद्धि और बासी फ़क़ीरी में मग्न रहते हैं; परन्तु इस तरह मग्न होना किस काम का? हवा चल रही है; जल बह रहा है; बादल बरस रहा है; पक्षी नहा रहे हैं; फूल खिल रहे हैं; घास नई, पेड़ नये, पत्ते नये—मनुष्य की बुद्धि और फ़क़ीरी ही बासी! ऐसा दृश्य तभी तक रहता है जब तक बिस्तर पर पड़े पड़े मनुष्य प्रभात का आलस्य-सुख मनाता है। बिस्तर से उठ कर ज़रा बाग़ की सैर करो, फूलों की सुगन्ध लो, ठण्डी वायु में भ्रमण करो, वृक्षों के कोमल-पल्लवों का नृत्य देखो तो पता लगे कि प्रभात-समय जागना बुद्धि और अन्तःकरण को तरोताज़ा करता है और बिस्तर पर पड़े रहना उन्हें बासी कर देता है। निकम्मे बैठे हुए चिन्तन करते रहना, अथवा बिना काम किये शुद्ध विचार करने का दावा करना, मानों सोते सोते ख़र्राटे भरना है। जब तक जीवन के अरण्य में पादड़ी, मौलवी, पण्डित और साधु-संन्यासी हल, कुदाल और खुरपा लेकर मज़दूरी न करेंगे तब तक उनका आलस्य जाने का नहीं; तब तक उनका मन और उनकी बुद्धि, अनन्त काल बीत जाने तक, मलिन मानसिक जुआ खेलती ही रहेगी। उनका चिन्तन बासी, उनका ध्यान बासी, उनकी पुस्तकें बासी, उनके लेख बासी, उनका विश्वास बासी और उनका ख़ुदा भी बासी हो गया है। इसमें सन्देह नहीं कि इस साल के गुलाब के फूल भी वैसे ही हैं जैसे पिछले साल के थे। परन्तु इस साल वाले ताज़े हैं, इनकी लाली नई है, इनकी सुगन्ध भी इन्हीं की अपनी है। जीवन के नियम नहीं पलटते; वे सदा एक ही से रहते हैं। परन्तु मज़दूरी करने से मनुष्य को एक नया और ताज़ा ख़ुदा नज़र आने लगता है।

गेरुये वस्त्रों की पूजा क्यों करते हो? गिरजे की घण्टी क्यों सुनते हो? रविवार क्यों मनाते हो? पाँच वक़्त की नमाज़ क्यों पढ़ते हो? त्रिकाल-सन्ध्या क्यों करते हो? मज़दूर के अनाथ नयन, अनाथ आत्मा और अनाश्रित जीवन की बोली सीखो। फिर देखोगे कि तुम्हारा यही साधारण जीवन ईश्वरीय भजन हो गया।

मज़दूरी तो मनुष्य के समष्टि-रूप का व्यष्टिरूप परिणाम है। आत्मा-रूपी धातु के गढ़े हुए सिक्के का नक़दी बयाना है, जो मनुष्यों की आत्माओं को ख़रीदने के लिए दिया जाता है। सच्ची मित्रता ही तो सच्ची सेवा है। उससे मनुष्यों के हृदय पर सच्चा राज्य हो सकता है। जाति-पाँति, रूप-रङ्ग और नाम-धाम तथा बाप-दादे का नाम पूछे बिना ही अपने आप को किसी के हवाले कर देना प्रेम-धर्म का तत्त्व है। जिस समाज में इस तरह के प्रेम-धर्म का राज्य होता है उसका हर कोई हर किसी को बिना उसका नाम-धाम पूछे ही पहचानता है; क्योंकि पूछने वाले का कुल और उसकी जात वहाँ वही होती है जो उसकी, जिससे कि वह मिलता है। वहाँ सब लोग एकही

माता-पिता से पैदा हुए भाई-बहन हैं। अपने ही भाई-बहनों के माता पिता का नाम पूछना पागलपन से क्या कम समझा जा सकता है? यह सारा संसार एक कुटुम्बवत् है। लँगड़े, लूले, अन्धे और बहरे उसी मौरूसी घर की छत के नीचे रहते हैं जिसकी छत के नीचे बलवान, नीरोग और रूपवान् कुटुम्बी रहते हैं। मूढ़ों और पशुओं का पालन-पोषण बुद्धिमान्, सबल और नीरोगही तो करेंगे। आनन्द और प्रेम की राजधानी का सिंहासन सदा से प्रेम और मज़दूरी के ही कन्धों पर रहता आया है। कामनासहित होकर भी मज़दूरी निष्काम होती है; क्योंकि मज़दूरी का बदला ही नहीं। निष्काम कर्म्म करने के लिए जो उपदेश दिये जाते हैं उनमें अभावशील वस्तु सुभावपूर्ण मान ली जाती है। पृथ्वी अपने ही अक्ष पर दिन रात घूमती है। यह पृथ्वी का स्वार्थ कहा जा सकता है। परन्तु उसका यह घूमना सूर्य्य के इर्द गिर्द भी घूमना तो है और सूर्य्य के इर्द गिर्द घूमना सूर्य्य-मण्डल के साथ आकाश में एक सीधी लकीर पर चलना है। अन्त में, इसका गोल चक्कर खाना सदा ही सीधा चलना है। इसमें स्वार्थ का अभाव है। इसी तरह मनुष्य की विविध कामनायें उसके जीवन को मानो उसके स्वार्थ-रूपी धुरे पर चक्कर देती हैं। परन्तु उसका जीवन अपना तो है ही नहीं; वह तो किसी आध्यात्मिक सूर्य्य-मण्डल के साथ की चाल है और अन्ततः यह चाल जीवन का परमार्थ-रूप है। स्वार्थ का यहाँ भी अभाव है। जब स्वार्थ कोई वस्तु ही नहीं तब निष्काम और कामना-पूर्ण कर्म करना दोनों ही एक बात हुई। इस लिए मज़दूरी और फ़क़ीरी का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है।

मज़दूरी करना जीवन-यात्रा का आध्यात्मिक नियम है। जोन आव् आर्क (Joan of Arc) की फ़क़ीरी और भेड़ें चराना, टाल्सटाय का त्याग और जूते गाँठना, उमर ख़ैयाम का प्रसन्नतापूर्वक तम्बू सीते फिरना, ख़लीफ़ा उमर का अपने रङ्ग-महलों में चटाई आदि बुनना, ब्रह्म-ज्ञानी कबीर और रैदास का शूद्र होना, गुरु नानक और भगवान् श्रीकृष्ण का मूक पशुओं को लाठी लेकर हाँकना—सच्ची फ़क़ीरी का अनमोल भूषण है।

समाज का पालन करनेवाली दूध की धारा।

एक दिन गुरु नानक यात्रा करते करते भाई लालो नाम के एक बढ़ई के घर ठहरे। उस गाँव का भागो नामक रईस बड़ा मालदार था। उस दिन भागो के घर ब्रह्मभोज था। दूर दूर से साधु आये हुए थे। गुरु नानक का आगमन सुन कर भागो ने उन्हें भी निमन्त्रण भेजा। गुरु ने भागो का अन्न खाने से इनकार कर दिया। इस बात पर भागो को बड़ा क्रोध आया। उसने गुरु नानक को बलपूर्वक पकड़ मँगाया और उनसे पूछा कि आप मेरे यहाँ का अन्न क्यों नहीं ग्रहण करते? गुरु-देव ने उत्तर दिया—भागो अपने घर का हलवा-पूरी ले आओ तो हम इसका कारण बतलादें। वह हलवा-पूरी लाया तो गुरु नानक ने लालो के घर से भी उसके मोटे अन्न की रोटी मँगवाई। भागो की हलवा-पूरी उन्होंने एक हाथ में और भाई लालो की मोटी रोटी दूसरे हाथ में लेकर दोनों को जो दबाया तो एक से लोहू टपका और दूसरी से दूध की धारा निकली। बाबा नानक का यही उपदेश हुआ। जो धारा भाई लालो की मोटी रोटी से निकली थी वही समाज का पालन करने वाली दूध की धारा है। यही धारा शिवजी की जटा से और यही धारा मज़दूरों की उँगलियों से निकलती है।

मज़दूरी करने से हृदय पवित्र होता है; सङ्कल्प दिव्य लोकान्तर में विचरते हैं। हाथ की मज़दूरी ही से सच्चे ऐश्वर्य्य की उन्नति होती है। जापान में मैंने कन्याओं और स्त्रियों को ऐसी कलावती देखा है कि वे रेशम के छोटे छोटे टुकड़ों को अपनी दस्तकारी की बदौलत हज़ारों की क़ीमत का बना देती हैं; नाना प्रकार के प्राकृतिक पदार्थों और दृश्यों को अपनी सुई से कपड़े के ऊपर अङ्कित कर देती हैं। जापान-निवासी कागज़, लकड़ी और

पत्थर की बड़ी अच्छी मूर्तियाँ बनाते हैं। करोड़ों रुपये के हाथ के बने हुए जापानी खिलौने विदेशों में बिकते हैं । हाथ की बनी हुई जापानी चीज़ें मशीन से बनी हुई चीज़ों को मात करती हैं। संसार के सब बाज़ारों में उनकी बड़ी माँग रहती है। पश्चिमी देशों के लोग हाथ की बनी हुई जापान की अद्भुत वस्तुओं पर जान देते हैं । एक जापानी तत्त्वज्ञानी का कथन है कि हमारी दस करोड़ उँगलियाँ सारे काम करती हैं। इन उँगलियों ही के बल से, सम्भव है, हम जगत् को जीत लें। ("we shall beat the world with the tips of our fingers") जब तक धन और ऐश्वर्य की जन्मदात्री हाथ की कारीगरी उन्नत नहीं होती तब तक भारतवर्ष ही की क्या, किसी भी देश या जाति की दरिद्रता दूर नहीं हो सकती। यदि भारत की तीस करोड़ नर-नारियों की उँगलियाँ मिल कर कारीगरी के काम करने लगें तो उनकी मज़दूरी की बदौलत कुवेर का महल उनके चरणों में आप ही आप आ गिरे ।

अन्न पैदा करना, तथा हाथ की कारीगरी और मिहनत से जड़ पदार्थों को चैतन्य-चिह्न से सुसज्जित करना, क्षुद्र पदार्थों को अमूल्य पदार्थों में बदल देना इत्यादि कौशल ब्रह्मरूप हो कर धन और ऐश्वर्य की सृष्टि करते हैं । कविता, फ़क़ीरी और साधुता के ये दिव्य कला-कौशल जीते-जागते और हिलते डुलते प्रतिरूप हैं । इनकी कृपा से मनुष्य-जाति का कल्याण होता है। ये उस देश में कभी निवास नहीं करते जहाँ मज़दूर और मज़दूर की मज़दूरी का सत्कार नहीं होता ; जहाँ शूद्र की पूजा नहीं होती । हाथ से काम करने वालों से प्रेम रखने और उनकी आत्मा का सत्कार करने से साधारण मज़दूरी सुन्दरता का अनुभव कराने वाले कला-कौशल, अर्थात् कारीगरी, का रूप हो जाती है। इस देश में जब मज़दूरी का आदर होता था तब इसी आकाश के नीचे बैठे हुए मज़दूरों के हाथों ने भगवान् बुद्ध के निर्वाण-सुख को पत्थर पर इस तरह जड़ा था कि इतना काल बीत जाने पर, पत्थर की मूर्ति के ही दर्शन से ऐसी शान्ति प्राप्त होती है जैसी कि स्वयं भगवान् बुद्ध के दर्शन से होती है। मुँह, हाथ, पाँव इत्यादि का गढ़ देना साधारण मज़दूरी है ; परन्तु मन के गुप्त भावों और अन्तःकरण की कोमलता तथा जीवन की सभ्यता को प्रत्यक्ष प्रकट कर देना प्रेम-मज़दूरी है। शिवजी के ताण्डव-नृत्य को और पार्वतीजी के मुख की शोभा को पत्थरों की सहायता से वर्णन करना जड़ को चैतन्य बना देता है। इस देश में कारीगरी का बहुत दिनों से अभाव है। महमूद ने जो सोमनाथ के मन्दिर में प्रतिष्ठित मूर्तियाँ तोड़ी थीं उससे उसकी कुछ भी वीरता सिद्ध नहीं होती । उन मूर्तियों को तो हर कोई तोड़ सकता था । उसकी वीरता की प्रशंसा तब होती जब वह यूनान की प्रेम-मज़दूरी, अर्थात् वहाँ वालों के हाथ की अद्वितीय कारीगरी प्रकट करने वाली मूर्तियाँ तोड़ने का साहस कर सकता। वहाँ की मूर्तियाँ तो बोल रही हैं— वे जीती जागती हैं, मुर्दा नहीं। इस समय के देव-स्थानों में स्थापित मूर्तियाँ देख कर अपने देश की आध्यात्मिक दुर्दशा पर लज्जा आती है। उनसे तो यदि अनगढ़ पत्थर रख दिये जाते तो अधिक शोभा पाते। जब हमारे यहाँ के मज़दूर, चित्रकार तथा पत्थर और लकड़ी पर काम करने वाले भूखों मरते हैं तब हमारे मन्दिरों की मूर्तियाँ कैसे सुन्दर हो सकती हैं ? ऐसे कारीगर तो यहाँ शूद्र के नाम से पुकारे जाते हैं। याद रखिए, बिना शूद्र-पूजा के मूर्तिपूजा किंवा कृष्ण और शालग्राम की पूजा होना असम्भव है। सच तो यह है कि हमारे सारे धर्म-कर्म बासी ब्राह्मणत्त्व के छिछोरेपन से दरिद्रता को प्राप्त हो रहे हैं। यही कारण है जो आज हम जातीय दरिद्रता से पीड़ित हैं।

पश्चिमी सभ्यता का एक नया आदर्श ।

पश्चिमी सभ्यता मुख मोड़ रही है। वह एक नया आदर्श देख रही है। अब उसकी चाल बदलने

लगी है। वह कलों की पूजा को छोड़ कर मनुष्यों की पूजा को अपना आदर्श बना रही है। इस आदर्श के दरसाने वाले देवता रसकिन और टाल्स्टाय आदि हैं। पाश्चात्य देशों में नया प्रभात होने वाला है। वहाँ के गम्भीर विचार वाले लोग इस प्रभात का स्वागत करने के लिए उठ खड़े हुए हैं। प्रभात होने के पूर्व ही उसका अनुभव कर लेने वाले पक्षियों की तरह इन महात्माओं को इस नये प्रभात का पूर्व-ज्ञान हुआ है। और, हो क्यों न? इंजनों के पहियों के नीचे दब कर वहाँ वालों के भाई-बहन—नहीं नहीं उनकी सारी जाति—पिस गई; उनके जीवन के धुरे टूट गये; उनका समस्त धन घरों से निकल कर एक ही दो स्थानों में एकत्र हो गया। साधारण लोग मर रहे हैं; मज़दूरों के हाथ-पाँव फट रहे हैं; लहू चल रहा है; सरदी से ठिठुर रहे हैं। एक तरफ़ दरिद्रता का अखण्ड राज्य है; दूसरी तरफ़ अमीरी का चरम दृश्य। परन्तु अमीरी भी मानसिक दुःखों से विमर्दित है। मशीनें बनाई तो गई थीं मनुष्यों का पेट भरने के लिए—मज़दूरों को सुख देने के लिए—परन्तु वे काली काली मशीनें ही काली बन कर उन्हीं मनुष्यों का भक्षण कर जाने के लिए मुख खोल रही हैं। प्रभात होने पर ये काली काली बलायें दूर होंगी। मनुष्य के सौभाग्य का सूर्य्योदय होगा।

शोक का विषय है कि हमारे और अन्य पूर्वी देशों में लोगों को मज़दूरी से तो लेश मात्र भी प्रेम नहीं, पर वे तैयारी कर रहे हैं पूर्वोक्त काली मशीनों का आलिङ्गन करने की। पश्चिम वालों के तो ये गले पड़ी हुई बहती नदी की काली कमली हो रही हैं। वे छोड़ना चाहते हैं, परन्तु काली कमली उन्हें नहीं छोड़ती। देखेंगे, पूर्व-वाले इस कमली को छाती से लगा कर कितना आनन्द-अनुभव करते हैं। यदि हम में से हर आदमी अपनी दस उँगलियों की सहायता से साहसपूर्वक अच्छी तरह काम करें तो हम मशीनों की कृपा से बढ़े हुए पश्चिम वालों को, वाणिज्य के जातीय-संग्राम में, सहज ही पछाड़ सकते हैं। सूर्य्य तो सदा पूर्व ही से पश्चिम की ओर जाता है। पर, आओ, पश्चिम में आने वाली सभ्यता के नये प्रभात को हम पूर्व से भेजें।

इंजनों की वह मज़दूरी किस काम की जो बच्चों, स्त्रियों और कारीगरों ही को भूखा और नङ्गा रखती है; और केवल सोने, चाँदी, लोहे आदि धातुओं ही का पालन करती है। पश्चिम को विदित हो चुका है कि इनसे मनुष्य का दुख दिन पर दिन बढ़ता है। भारतवर्ष जैसे दरिद्र देश में मनुष्य के हाथों की मज़दूरी के बदले कलों से काम लेना काल का डङ्का बजाना होगा। दरिद्र प्रजा और भी दरिद्र हो कर मर जायगी। चेतन से चेतन की वृद्धि होती है। मनुष्य को तो मनुष्य ही सुख दे सकता है। परस्पर की निष्कपट सेवा ही से मनुष्य-जाति का कल्याण हो सकता है। धन एकत्र करना तो मनुष्य-जाति के आनन्द-मङ्गल का एक साधारण सा और महा तुच्छ उपाय है। धन की पूजा करना नास्तिकता है; ईश्वर को भूल जाना है; अपने भाई-बहनों तथा मानसिक सुख और कल्याण के देने वालों को मार कर अपने सुख के लिए शारीरिक राज्य की इच्छा करना है; जिस डाल पर बैठे हैं उसी डाल को स्वयं ही कुल्हाड़े से काटना है। अपने प्रिय जनों से रहित राज्य किस काम का? प्यारी मनुष्य-जाति का सुख ही जगत् के मङ्गल का मूल साधन है। विना उसके सुख के अन्य सारे उपाय निष्फल हैं। धन की पूजा से ऐश्वर्य्य, तेज, बल और पराक्रम नहीं प्राप्त होने का। चैतन्य आत्मा की पूजा से ही ये पदार्थ प्राप्त होते हैं। चैतन्य पूजा ही से मनुष्य का कल्याण हो सकता है। समाज का पालन करने वाली दूध की धारा जब मनुष्य के प्रेम-मय हृदय, निष्कपट मन और मित्रता-पूर्ण नेत्रों से निकल कर बहती है तब वही जगत् में सुख के खेतों को हरा भरा और प्रफुल्लित करती है और वही उनमें फल भी लगाती है। आओ, यदि हो सके तो, टोकरी उठाकर कुदाली हाथ में लें। मिट्टी खोदें और अपने हाथ से उसके प्याले बनावें। फिर एक एक प्याला
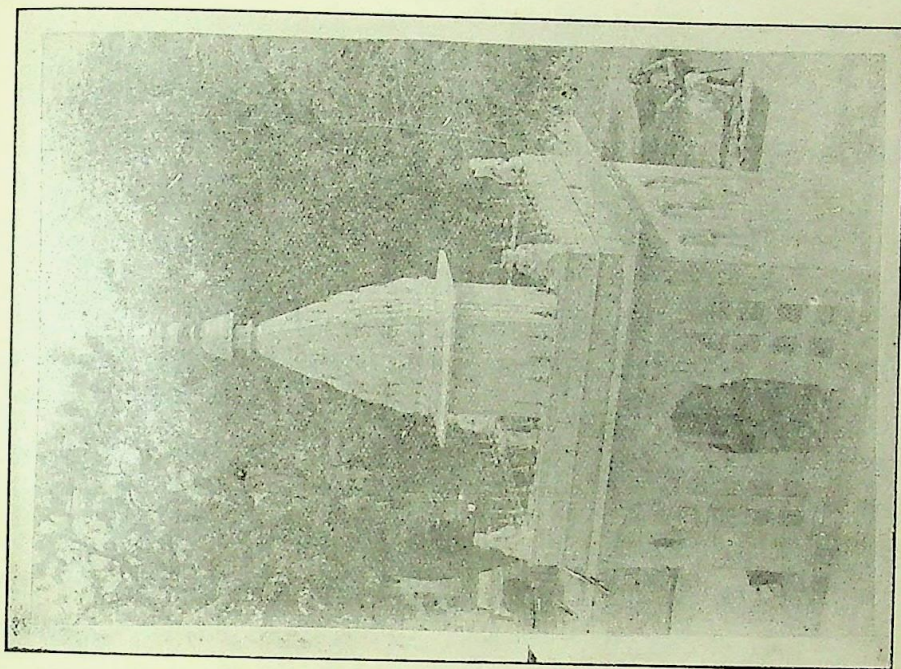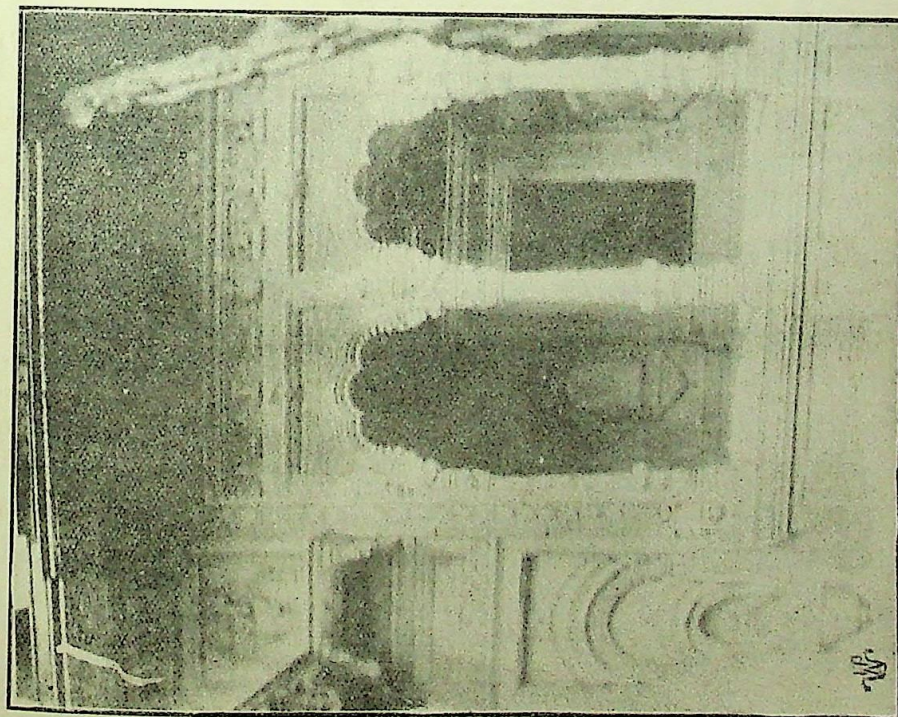
विन्देश्वरी प्रसाद के मन्दिर का एक भाग (मिर्ज़ापूर)।

आगरा ज़िले का एक देहाती मन्दिर।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद।

घर घर में—कुटिया कुटिया में—रख आवें और सब लोग उसी में मज़दूरी का प्रेमामृत पान करें।

है रीत आशकों की तन मन निसार करना।
रोना सितम उठाना और उनको प्यार करना॥

पूर्णसिंह।

बहरामजी एम० मलाबारी।

गत ग्यारहवीं जूलाई १९१२ को मिस्टर बहरामजी मेरवानजी मलाबारी का देहान्त, शिमले में, हृदय-गति के रुक जाने के कारण हो गया। जिन थोड़े से भारतीय सपूतों ने सामाजिक कुरीतियाँ दूर करने के लिए देश को अपना तन. मन, धन सभी कुछ अर्पण कर रक्खा है, और जो अपने इसी आत्म-त्याग के कारण उन्हीं के हाथों से, जिन की भलाई करने के लिए वे दत्त-चित्त होते हैं, नाना प्रकार के कष्टों और लाञ्छनों को सहते हुए भी अपने उद्देशों की पूर्ति में लगे ही रहते हैं—उनमें मिस्टर मलाबारी का आसन बहुत ऊँचा है। देश की विधवाओं की दुर्दशा देख कर उनके करुण-हृदय को बड़ा ही कष्ट हुआ। भारतीय स्त्रियों की दशा सुधारने के लिए जिस आत्म-त्याग और परिश्रम के साथ उन्हों ने काम किया उस पर विचार करने से मालूम पड़ता है कि उनके स्थान की पूर्ति शीघ्र ही होने वाली नहीं।

वे सुधारक तो थे ही, परन्तु वे लेखक भी बड़े ज़बर्दस्त थे। उनके हास्य-रस-पूर्ण समाज-सुधार-सम्बन्धी लेख जिसने पढ़े वही उन पर मुग्ध हो गया। अपनी लेखनी के बल से उन्हों ने नाम भी .खूब पैदा किया। भारतवर्ष ही के नहीं, पाश्चात्य देशों तक के बहुत से बड़े बड़े विद्वान् उनकी योग्यता पर मुग्ध हो कर उनके मित्र हो गये थे। आज ऐसे बड़े विद्वान् सुधारक के उठ जाने से किस देशहितैषी को दुख न होगा?

मलाबारी का जन्म, १८५३ में, बड़ोदा में हुआ था। उनके पिता धनजीभाई मेहता, बीस रुपये मासिक पर, बड़ोदे में नौकर थे। मलाबारी मुश्किल से छः सात वर्ष के रहे होंगे कि उनके पिता का शरीरान्त हो गया। खाने तक का ठिकाना न रहने के कारण उनकी माता भीखी बाई अपने एक दूर के सम्बन्धी मेरवानजी नानाभाई मलाबारी के यहाँ नानपुरा ग्राम में रहने लगी। मेरवानजी की स्त्री मर गई थी। उस के कोई पुत्र भी न था। इस लिए उस ने भीखी जी से अपना विवाह कर लिया और हमारे चरित-नायक को गोद ले लिया।

पाँच वर्ष की ही अवस्था से मलाबारी ने पाठशाला जाना आरम्भ कर दिया। पुरानी रीति के अनुसार वे गुजराती सीखने लगे। विद्यार्थी-अवस्था में वे बड़े ही चञ्चल थे। उन की शरारतों से गाँव भर के लोग तङ्ग रहते थे। खेल और तमाशे भी उन्हें बहुत पसन्द थे। आठ नौ वर्ष ही की अवस्था में वे ऐसे मधुरस्वर से गाना गाते थे कि लोग दङ्ग हो जाते थे। यद्यपि वे अपने गुरुओं से यहाँ तक डरते थे कि दूसरे लड़के को मार खाते देख उन को ज्वर आ जाता था, तथापि पाठशाला से बाहर उनकी शरारतें किसी प्रकार कम न हुईं। अन्त में मेरवानजी ने उन्हें एक बढ़ई के यहाँ काम सीखने के लिए भेज दिया। वहाँ भी वे कुछ न कर सके। वे फिर पाठशाला में भर्ती हुए और गुजराती और अँगरेज़ी पढ़ने लगे। उनकी शरारत यहाँ भी न छूटी। पाठशाला में एक बड़ी भारी शरारत करते हुए वे पकड़े गये। हेड-मास्टर ने उन्हें एक दर्जन बेंत की सज़ा दी। पहला बेंत पड़ते ही मलाबारी तिलमिला कर बेहोश हो गये। अध्यापक लोग पानी छिड़क कर उन्हें होश में लाये। होश में आते ही पहला काम जो मलाबारी ने किया वह यह था कि हेड-मास्टर पर झपटे और किताबें आदि जो कुछ हाथ में आया उस पर फेंक कर अपने घर की तरफ़ भागे। वे भागते जाते थे और मन में सोचते जाते थे कि घर पहुँचते ही

मैं अपनी माता से मास्टर की ये शिकायतें करूँगा। परन्तु वे घर पहुँचे तो देखा कि माता भीखी बाई अचेत पड़ी हैं। उन्हें हैज़ा हो गया था। मलाबारी अपनी सब बातें भूल गये। बैठ कर माता की सेवा-शुश्रूषा करने लगे। तीन रात और तीन दिन तक निरन्तर बालक मलाबारी अपनी माता की सेवा करता रहा। तो भी वे न बच सकीं।

माता के मरते ही मलाबारी में बड़ा भारी परिवर्तन हो गया। वे अभी तक चञ्चल बालक थे; परन्तु इस घटना के होते ही वे गम्भीर पुरुष हो गये। उन्हें अपनी माता की इतनी शीघ्र मृत्यु का बड़ा ही दुख हुआ। उनकी माता बड़ी ही शुद्ध-चरित्र और उदार-हृदया थीं। दान और दया की बान तो उनके हृदय में इतनी थी कि वे सदा अपनी प्रिय से प्रिय चीज़ भी देने और नीच से नीच जाति के व्यक्ति से सद्व्यवहार करने में कभी न चूकती थीं। कभी कभी उन्हें अपनी इन बातों के लिए पारसी-समाज में बहुत अनादर भी सहना पड़ता था। उन्हें दूसरे विवाह से दुख के सिवा कभी सुख न मिला। माता भीखी बाई के शुद्ध-चरित्र का प्रभाव पुत्र मलाबारी पर बहुत पड़ा। माता और पुत्र में स्नेह भी बहुत था। एक दूसरे को जी-जान से चाहता था। अपने जीवन में मलाबारी बहुधा अपनी माता को याद करके रो दिया करते थे।

माता की मृत्यु के समय मलाबारी केवल बारह वर्ष के थे। उन्हें उनका कोई सम्बन्धी पढ़ाने के लिए तैयार न हुआ। तब उन्होंने अपने ही बल पर पढ़ना निश्चय किया। वे सूरत पहुँचे और वहां के मिशन स्कूल में अँगरेज़ी पढ़ने लगे। पल्ले तो कुछ था ही नहीं, इस लिए वे लड़कों को पढ़ा कर अपने ख़र्च भर के लिए अर्थोपार्जन कर लिया करते थे। तीन वर्ष तक वे इसी पाठशाला में पढ़ते रहे। पाठशाला के मुख्याध्यापक मिस्टर डिक्सन उनकी प्रतिभा पर मुग्ध रहा करते थे। वे बहुधा कहा करते थे कि भविष्यत् में मलाबारी अवश्य बड़ा आदमी होगा। वे मलाबारी को बड़े प्रेम से पढ़ाते थे। मलाबारी ने भी उनसे पढ़ कर थोड़े ही काल में अँगरेज़ी की इतनी योग्यता प्राप्त कर ली कि शेक्सपियर, मिल्टन, टेनीसन आदि महा कवियों के ग्रन्थों को अच्छी तरह पढ़ने और समझने लगे। १८६८ में मलाबारी ने मेट्रिक की परीक्षा दी; परन्तु गणित में कमज़ोर होने के कारण वे उत्तीर्ण न हो सके। तत्पश्चात् वे बम्बई चले गये और वहाँ की एक पाठशाला में बीस रुपये मासिक पर अध्यापक हो गये। कुछ ही महीने बाद उन्हें उसी पाठशाला में साठ रुपये मासिक वेतन मिलने लगा। इसके अतिरिक्त वे सौ डेढ़ सौ रुपये महीना लड़कों को घर पर पढ़ा कर पैदा करने लगे। उन्हें अब धन-कष्ट न रहा। इस बीच में उन्होंने पढ़ना न छोड़ा था। वे गणित में बहुत कच्चे थे इसी लिए चार वर्ष तक निरन्तर अनुत्तीर्ण होते रहने के बाद, कहीं १८७१ में, वे मेट्रिक परीक्षा पास कर पाये।

मलाबारी के अब अच्छे दिन आये। बम्बई-प्रदेश के प्रसिद्ध पादड़ी डाक्टर विलसन से उनका परिचय हो गया। डाकृर विलसन गुजराती भाषा के अच्छे ज्ञाता समझे जाते थे। मलाबारी ने बहुत सी कवितायें गुजराती भाषा में रची थीं। वे जैसी की तैसी ही पड़ी थीं। एक दिन, किसी मित्र के कहने पर, वे उन्हें डाकृर विलसन को दिखाने ले गये। डाकृर साहब ने उनको बहुत पसन्द किया। उनका संग्रह, १८७५ में, "नीति-विनोद" नाम की पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुआ। गुजराती-साहित्य-संसार में इस पुस्तक की बहुत प्रशंसा हुई और मलाबारी का नाम प्रसिद्ध हो गया। इसके बाद उनका दूसरा ग्रन्थ "Indian Muse in English Garb" नाम का अँगरेज़ी में निकला। इस पुस्तक ने मलाबारी को और भी प्रसिद्ध कर दिया। महारानी विक्टोरिया, मिस फ्लारेन्स नाइटिंगेल, मेक्समूलर, टेनीसन आदि तक ने इस ग्रन्थ को पढ़ कर मलाबारी की योग्यता को सराहा।

१८७६ से वे समाचार-पत्रों के संसार में अवतीर्ण हुए। बम्बई के कुछ नवयुवकों ने मिल कर "इंडियन

स्पेक्टेटर" नाम का पत्र निकाला था। मलाबारी उस में लेख लिखने लगे। युवक-मण्डली उसे सँभाल न सकी। इससे मलाबारी ने उसे ख़रीद लिया। मलाबारी की लेखनी में तो शक्ति थी, परन्तु उनकी जेब में धन न था। इसलिए उन्हें इस पत्र के चलाने में बड़ी बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। आरम्भ में मुश्किल से उसके पचास साठ ग्राहक थे। मलाबारी ही को उसे अपने ही लिखे लेखों से भरना, उसके प्रूफ़ों का संशोधन करना और उसे स्थानीय ग्राहकों के यहाँ पहुँचाना भी पड़ता था। केवल इतना ही नहीं, उन्हें इस पत्र के चलाने के लिए अपनी धर्म-पत्नी के आभूषणों तक को बेचना पड़ा। वे इन सब विपत्तियों को धैर्य्य-पूर्वक सहते हुए अपना काम करते ही गये। अन्त में उनके कठिन परिश्रम और आत्म-त्याग का फल यह हुआ कि १८७९ से "इंडियन स्पेक्टेटर" की प्रसिद्धि आरम्भ हुई और थोड़े ही काल में भारत-वर्ष के मुख्य मुख्य पत्रों ही के नहीं किन्तु अमेरिका, फ्रान्स और इँगलैंड के भी नामी नामी पत्रों तक ने उसकी लेख-शैली, प्रौढ़-विचार और निर्भीकता की प्रशंसा की। भारत के तत्कालीन वायसराय लार्ड रिपन तक उसे बहुत अच्छा पत्र समझ कर सदा पढ़ा करते थे। अपने पत्र की इस उन्नति में मलाबारी को सुप्रसिद्ध अर्थ-शास्त्र-वेत्ता मिस्टर दीनशाह ईदुलजी वाचा से बहुत सहायता मिली। १८८३ में मलाबारी ने देश-भक्त मिस्टर दादा-भाई नैरोजी की सलाह से "Voice of India" नाम का एक मासिक पत्र निकाला; परन्तु वह बहुत दिन न चल सका। वह "स्पेक्टेटर" में मिला दिया गया।

मलाबारी इस बीच में मैक्स-मूलर के "हिबर्ट लेकचरों" का देश की भिन्न भिन्न भाषाओं में अनुवाद करने के लिए भारत के बड़े बड़े नगरों में चन्दा एकत्र करते फिरे। उन्होंने "स्पेक्टेटर" में कुछ ऐसे हास्य-पूर्ण लेख लिखे जिनको लोगों ने बड़े ही चाव से पढ़ा और वे "गुजरात और गुजराती" नाम से पुस्तक-रूप में प्रकाशित हुए। डाक्टर विलसन की मृत्यु पर उन्होंने "विलसन-विरह" नाम का गुजराती काव्य रचा, जिसके कारण गुज-राती-साहित्य-संसार में उन्हें एक बड़ा ही उच्च स्थान प्राप्त हुआ। १८८१ में उनका "सरोद-इत्तफ़ाक़" नाम का काव्य प्रकाशित हुआ। लोगों ने इस ग्रन्थ को भी बहुत पसन्द किया। यह "नीति-विनोद" और "विलसन-विरह" से भी अधिक बिका।

१८८३ से मलाबारी का ध्यान देश की विध-वाओं की दशा सुधारने की तरफ़ गया। विधवाओं के ऊपर होनेवाले अत्याचारों को देख कर मलाबारी सदा दुखी रहते थे। उन्होंने अपने पहले ग्रन्थ "नीति-विनोद" ही में उनके दुखों पर बहुत आँसू बहाये थे। उनका मत था कि किसी विधवा को उसकी इच्छा के विरुद्ध पुनर्विवाह के लिए मजबूर करना अनुचित है। परन्तु बाल-विधवाओं को, जिन्हें "पति" और "विवाह" के अर्थ भी नहीं मालूम, सारा जीवन वैधव्य में व्यतीत करने पर मजबूर करना उन पर बड़ा भारी अत्याचार करना है। बङ्गाल के सुप्रसिद्ध सुधारक पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्या-सागर ने बड़े ही उद्योग से विधवाओं के पक्ष में, विधवा-विवाह के क़ानूनन मान्य समझे जाने के लिए, एक क़ानून पास करा लिया था। मलाबारी भी तन, मन, धन से इस प्रकार के एक क़ानून के पास कराने की चेष्टा करने लगे कि बारह वर्ष से कम उम्र की किसी लड़की और सोलह वर्ष से कम उम्र के किसी लड़के का विवाह न हो। इस काम को हाथ में लेने पर लोगों ने उन्हें बहुत बुरा-भला कहा। पारसी होते हुए हिन्दू-जाति के सुधार-सम्बन्धी कामों में हस्तक्षेप करने के लिए उन्हें कुछ लोगों ने नाम चाहनेवाला कह कर बदनाम किया। बहुत लोग तो उनके काम में बाधा डालने से भी बाज़ न आये। परन्तु वे अपने काम में लगे ही रहे। अपनी लेखनी और सहायकों के बल से इस कुरीति पर बराबर कुठार चलाते ही गये। वे लाड रिपन से मिले और उन्हें भारतीय विधवाओं की दुर्दशा

का पूरा पूरा हाल सुनाया। पहले तो लार्ड रिपन हिचकचाये; परन्तु अन्त में वे मलाबारी के पक्ष में हो गये। मलाबारी ने यत्न करने में तो कुछ उठा न रक्खा; परन्तु लोगों के विरोध के कारण गवर्नमेंट बाल-विवाह रोकने के लिए कोई क़ानून न बना सकी। हाँ, कुछ दिनों बाद, १८८३ में, उनके प्रयत्न का फल यह अवश्य हुआ कि सहवास-सम्मति-सम्बन्धी क़ानून पास हो गया।

इस आन्दोलन के बाद मलाबारी ने देश के लिए दो काम बड़े महत्त्व के किये। एक तो उन्होंने सुविख्यात सुधारक अवसर-प्राप्त जज, श्रीयुत दयाराम गिडूमल की सहायता से "सेवा-सदन" नाम की एक संस्था स्थापित की। इसमें भारतीय स्त्रियों को अध्यापिका, दाई आदि का काम सिखाया जाता है। दूसरा, उन्होंने, शिमले के पास, धर्म्मपुर में, क्षय-रोग के रोगियों के लिए एक निवास-स्थान बनवाया।

इस बीच में भी उनकी लेखनी शिथिल न थी। विलायत से लौट कर, १८९३ में, उन्होंने अपनी विलायत-यात्रा पर "The Indian Eye on English Life" नाम का ग्रन्थ प्रकाशित किया। इस ग्रन्थ को भी लोगों ने बहुत पसन्द किया। "स्पेक्टेटर" तो निकलता ही था, उन्होंने अपने सम्पादकत्व में "East and West" नाम का एक मासिक पत्र निकाला, जो अब तक निकल रहा है।

मलाबारी बड़े ही निरभिमानी पुरुष थे। वे नीच ऊँच का बिकुल ख़याल न करते थे। वे सब से हँस कर बोलते थे। उनका स्वभाव बड़ा सरल था। छल-कपट तो वे जानते तक न थे। जिससे उनका एक बार भी परिचय हो जाता था उसे वे कभी न भूलते थे। ग़रीबों के तो वे पूरे मित्र थे। उनमें आत्म-बल भी बहुत था। अपने उद्देशों को पूरा करने के लिए उन्हें आर्थिक कष्ट और शारीरिक क्लेश तक सहना पड़ा, परन्तु वे अपने सिद्धान्त से गिरे कभी नहीं। वे नाम बिलकुल न चाहते थे। १८८७ में, महारानी विक्टोरिया की स्वर्ण-जुबली पर, उन्हें बम्बई के शरीफ़ का पद और "सर" की उपाधि मिलती थी, परन्तु उन्होंने उन दोनों में से एक को भी स्वीकार न किया। लार्ड कर्ज़न उन्हें क़ैसरे-हिन्द के स्वर्ण-पदक और लार्ड मिन्टो उन्हें "सर" की उपाधि देते थे, परन्तु उन्होंने धन्यवाद सहित उनके लेने से भी इनकार किया। बात यह थी कि वे काम करना जानते थे, नाम के भूखे न थे।

रमणभाई रेवतीराम।

भक्त की भावना।

(१)

"वह मेरा सर्वस्व है; मैं हूँ उसका दास"
और ज्ञान मुझको नहीं; बस, यह है विश्वास॥

(२)

आप उसे अर्पण किया मैंने अपना चित्त।
मेरे हर्ष-विषाद का है बस वही निमित्त॥

(३)

आजाता है सामने जब उसका मुख-चन्द।
होता उस आलोक से अकथनीय आनन्द॥

(४)

वह प्रकाश पाकर उमड़ पड़ता हृदय-समुद्र।
रोक न फिर सकती उसे सुख-दुख-सीमा * क्षुद्र॥

(५)

औरों को वह हो भले भीषण पावक पुञ्ज।
किन्तु मुझे तो है सदा शीतल करुणाकुञ्ज॥

(६)

आँख तुम्हारे हो अगर तो देखो तुम 'रूप'।
मैं केवल जानूँ यही कि है सुधा का कूप॥

(७)

नख से शिख तक मैं गया हूँ उसमें ही डूब।
रङ्ग वही हर अङ्ग † में चढ़ा हुआ है खूब॥

---

* सांसारिक सुखदुःख ही हृदयरूपी समुद्र के दोनों ओर की सीमा अथवा किनारे हैं।

† यहाँ अङ्ग से इन्द्रिय समझना।

(८)

तुम देखो जाकर उधर क्या क्या हैं गुण-दोष।
यहाँ अन्ध-आराधना में ही है सन्तोष॥

(९)

मेरे प्रिय के है नहीं नाम और गुण, रूप।
वह निर्गुण, निश्चेष्ट है मेरे ही अनुरूप॥

(१०)

व्यर्थ वाद आता नहीं, जानूँ सीधी बात।
वह मेरा है और मैं उसका हूँ विख्यात॥

(११)

जैसे ढल कर बिन्दु-जल चञ्चल-कमल-दल-स्थ।
मिल करके जल-राशि में हो जाता है स्वस्थ *॥

(१२)

फिर सत्ता उसकी कभी रहती नहीं स्वतन्त्र।
वैसे ही यह क्षुद्र, अति क्षुद्र हृदय परतन्त्र—

(१३)

उस प्रियतम से जा मिला होकर एकाकार।
यह उसमें है और वह इसका है आधार॥

(१४)

सूर्य-विभा को देख ज्यों तारे होते लीन।
या माया लख अलख † को होती संज्ञाहीन ‡॥

(१५)

या जुगनू की ज्योति ज्यों उषाहास्य § को देख।
हो जाती है लीन सी, रहे न इतर-विशेष॥

(१६)

त्यों मेरा जीवन मिला उस जीवन में यार।
नन्दनवन सा बन गया यह अशान्त संसार॥

(१७)

वह मेरा है और मैं उसका हूँ—यह सोच।
गद्गद् हो जाता हृदय, मिटता सब सङ्कोच॥

(१८)

तब यह छोटा सा हृदय बनता प्रेम-समुद्र।
फिर इसकी रहती नहीं सीमा इतनी क्षुद्र॥

(१९)

उस बहाव में प्रेम के बह जाता है भेद।
थाह न उसकी पा सकें शास्त्र और सब वेद॥

(२०)

प्रेम-तरङ्गों में पड़ा मन होता है मस्त।
संशय का सन्ताप तब होता स्वयं निरस्त॥

(२१)

हृत्तन्त्री * को छेड़, मन गावे, तज खटराग †।
"वह मेरा है और मैं उसका हूँ"—यह राग॥

रूपनारायण पाण्डेय।

संयुक्त-प्रान्तों की पत्थर की कारीगरी।

इतिहास।

पत्थर की सब से पुरानी बनी हुई चीज़ें तीर, हथौड़े, हथियारों की नोकें और चाक़ू आदि हैं। इनको पत्थर का देख कर यह सूचित होता है कि ये उस समय के हैं जब मानव-जाति ने लोहे के शस्त्र बनाना नहीं सीखा था। जङ्गली लोग तो अब भी पत्थर को हथियार बनाने के काम में लाते हैं। हमारे प्रान्तों में भी ये चीज़ें इलाहाबाद, मिर्ज़ापुर, बुलन्दशहर, बस्ती, बनारस और बुँदेलखण्ड में बहुत पाई गई हैं। मानव-जाति की सभ्यता के आरम्भ में ये चीज़ें सर्वत्र पत्थर ही की बनाई गई थीं। फर्गुसन साहब का मत है कि शस्त्र आदि पहले से भले ही बनते रहे हों, पर भारत में सन् ईसवी के पूर्व की तीसरी शताब्दी से पहले भवन आदि बनाने के काम में पत्थर न लाया जाता था। यहाँ लकड़ी के मकान बनते थे, जैसा कि बर्मा में अब तक होता है। पत्थर के मकानों का बनना महाराज अशोक के समय से ही प्रचलित हुआ है।

---

* स्वस्थ और अपने में स्थित। † ब्रह्म
‡ मूर्च्छित और नामहीन। § उषःकाल का विकास।

* हृदय की वीणा। † छःराग और झमेला।

इसमें सन्देह नहीं कि पत्थर के मकानों का नमूना लकड़ी ही के निर्मित भवनों से लिया गया है। पर यह बात भी ठीक और निश्चित है कि पत्थर का यह उपयोग अशोक के समय के शताब्दियों पूर्व से होता चला आया है। सारनाथ और कसिया के स्तूप इस बात के प्रमाण हैं। वे सन् ईसवी के पूर्व की तीसरी शताब्दी से भी पहले के हैं। उनकी बनावट और उनकी उच्च कोटि की कारीगरी से यह प्रकट होता है कि उस समय तक इस कला ने बहुत कुछ उन्नति करली थी। इतनी उन्नति दो, चार या पचास, साठ वर्ष में न होगई होगी। इसमें शताब्दियाँ लगी होंगी। किन्तु शोक है कि बौद्ध काल से पहले के कोई भी चिह्न हम लोगों को नहीं मिले। अतः हमारे इस विषय के इतिहास का आरम्भ वास्तव में बौद्ध काल ही से होता है। महाराज अशोक ने अपने समय में बहुत से स्तूप, चैत्य और विहार आदि बनवाये थे। उनके टूटे फूटे अंश अब तक पाये जाते हैं। उस समय लोगों को सादगी बहुत पसन्द थी। इसी से जो स्तूप आदि पाये गये हैं उन पर आज कल के से बेल-बूटे की भरमार नहीं है। जिन पर बेल बूटे हैं भी तो बहुत थोड़े हैं और बड़े ही भले मालूम होते हैं। इसी से मालूम होता है कि इस कला ने उस समय बहुत उन्नति की थी।

जैनियों के समय में यह बात न रही। उनको सादगी न भाती थी। देवगढ़, ज़िला झाँसी, में उस समय के बहुत से मन्दिर पाये जाते हैं। पत्थर पर बेल-बूटे, मूर्त्ति आदि की बहुलता ही इन मन्दिरों की विशेषता है। बौद्धों और जैनों के समय की वस्तुओं में भेद कम मिलता है। पर दो बातें हैं जिनसे हम जान सकते हैं कि अमुक चीज़ अमुक काल की हैः—

पहली यह है कि जैनियों के तीर्थङ्करों की मूर्तियों पर वस्त्र नहीं। वे नग्नावस्था में हैं। परन्तु जहाँ बुद्ध महाराज की मूर्तियाँ मिली हैं, कुछ न कुछ वस्त्र उन पर अवश्य बने हुए पाये गये हैं।

दूसरी बात कारीगरी की बहुलता है। बौद्ध काल में पत्थरों पर इतना काम न किया जाता था कि अधिक मालूम पड़े। जैन समय में इस के विपरीत हाल था।

उस समय के हिन्दुओं के मन्दिरों और मकानों आदि का पता बहुत कम चलता है। हाँ, गुप्त-वंश के राजाओं के समय के कुछ चिह्न अवश्य पाये जाते हैं:—

देवगढ़ में पत्थर का एक बहुत ही सुन्दर मन्दिर हिन्दुओं का बनाया हुआ है। यह सन् ईसवी की चौथी शताब्दी में बना था।

इसके बाद का कुछ भी पता नहीं चलता। कारण यह कि हिन्दुओं और जैनियों के जो मन्दिर थे वे सब मुसलमानों ने तोड़ फोड़ डाले। बहुतों को उन्होंने मसजिदें बना डाला। आश्चर्य तो यह है कि कुछ मन्दिर बच कैसे गये? हिन्दू और जैन समय के मन्दिरों में धार्मिक ही चित्र पत्थर पर अधिक खोदे जाते थे। उस समय की विशेषता यही थी। मनुष्यों और पशु-पक्षियों की आकृतियाँ भी कहीं कहीं खोदी जाती थीं।

इसके बाद मुसलमानों के तूफ़ान का समय आया। इनके समय की सब से पुरानी इमारत इन प्रान्तों में जौनपुर में है। वह एक मसजिद है। इसमें सन्देह नहीं कि आस पास के मन्दिरों को तोड़ कर ही उस के लिए पत्थर एकत्र किया गया होगा। इस मसजिद में सब से अच्छा काम भीतर मिहराबों पर है। यह सन् १४३८ ईसवी के लगभग की बनी हुई है। इसके और मुग़लों के समय के बीच के कोई भी चिह्न यहाँ नहीं मिलते।

मुग़ल बादशाह बाबर को पत्थर के काम से बड़ा प्रेम था। यह बात वह अपने आत्म-चरित में .ख़ुद लिख गया हैः—

"मुझे प्रतिदिन आगरे में अपने महल बनवाने के लिए वहाँ ही के ६८० शिल्पकारों को रखना पड़ता था। इसके सिवा आगरा, सीकरी, व्याना, धौलपुर, ग्वालियर और कोयल में १४९१ शिल्पकार मेरा काम करते थे"।

किन्तु खेद है कि उसके समय का एक भी मकान नहीं मिलता। मुग़लों के समय की जो इमारतें मिलती हैं वे अकबर के समय के पहले की नहीं।

अकबर के पहले जितने मुसलमान बादशाह होगये उनका उद्देश राज्य-स्थापना करने का न था। लूट-मार से जो कुछ मिला उसेही लेकर वे चलते बने और राज्य-प्रबन्ध किसी ग़ुलाम या सैनिक पर छोड़ते गये। बाबर भारतवर्ष में आकर थोड़े ही दिन जीवित रहा। हुमायूँ बेचारा विपत्ति ही में रहा। अकबर ही ने, जो मुग़लों में सब से अच्छा और शक्तिशाली सम्राट् हुआ, पहले पहल यहाँ पर राज्य स्थापित कर के बसना बिचारा। उसने भारत ही को अपनी मातृभूमि बनाया। आगरे का लाल पत्थर का क़िला उसी का बनवाया हुआ है। सिकन्दरे का पत्थर का काम और फ़तहपुर सीकरी के भवन आदि भी उसी के समय के बने हुए हैं।

भारत में मुसलमानों के आगमन से इस कला में भी एक बड़ा भारी परिवर्तन होगया। इन लोगों के मूर्तिपूजक न होने के कारण मनुष्य-मूर्तियों का बनाना बहुत कम हो गया। इन के धर्म-ग्रन्थों में लिखा है कि मनुष्य या पशु-पक्षी किसी की भी आकृति न बनानी चाहिए। इसी से जहाँ कहीं ऐसी आकृतियाँ खुदे हुए मन्दिर या भवन आदि मिले उन्होंने तोड़ डाले। महमूद आदि को तो इस बात पर बड़ा गर्व था कि वे "बुतपरस्त" न होकर "बुतशिकन" थे। इसी से उन्होंने हज़ारों मूर्तियाँ तोड़ डालीं और लाखों का अङ्ग-भङ्ग कर डाला। इस पर लोगों ने सोचा कि यदि हम इसी प्रकार का काम फिर करावेंगे तो ये फिर तोड़ डालेंगे। इसी से मनुष्य, पशु और पक्षियों की आकृतियों को छोड़ कर पत्थर पर बेल-बूटे, फूल-पत्ते, जाली आदि का काम होने लगा। तभी से मूर्ति-निर्माण-विद्या बहुत अवनत होगई। केवल देवताओं की मूर्तियाँ कहीं कहीं बनती थीं। उनके लिए नाप लिखे हुए थे। बस उसी की पाबन्दी होती थी। अपने दिमाग़ से कोई कारीगर काम न करता था। यदि ऐसा न होता तो सम्भव था कि आज कल भारत में भी इतनी अच्छी मूर्तियाँ बनती होतीं कि इटली की बनी हुई मूर्तियों को कोई भी न पूछता। इटली वालों को मुसलमानों को धन्यवाद देना चाहिए कि जिनके तास्सुब के कारण भारत में मूर्तियों का बनना एक प्रकार से बन्द सा होगया। नहीं तो शायद इटली इस बात में भारत की बराबरी न कर सकता; क्योंकि यहाँ का पत्थर वहाँ के पत्थर से अधिक अच्छा होता है और अब इस गिरी हुई दशा में भी यहाँ पर अच्छे मूर्तिकार हैं। यदि मुसलमान लोग मूर्तियों पर ऐसा अत्याचार न करते तो ऐसा कभी न होता कि मातृतुल्य पूजनीया महारानी विक्टोरिया की मूर्तियाँ इटली में बनतीं।

अकबर इतना मुतास्सब न था कि पत्थर पर खुदी हुई मनुष्यों अथवा पशु-पक्षियों की आकृतियों को न देख सकता। उसकी हिन्दू-रानियों के महलों में पुराने ढँग का, हिन्दुओं के समय का सा, काम है। आगरे के क़िले में बने हुए, अकबर की हिन्दू-बेगमों के महलों में अब तक पुरानी हिन्दू कारीगरी के कुछ न कुछ चिह्न पाये जाते हैं। वे मुसलमानी समय की कारीगरी से भिन्न हैं। अकबर के समय के बने हुए मकानों की सादगी बौद्ध काल की सादगी की याद दिलाती है। कटाव आदि अवश्य हैं; पर इतने नहीं कि कुछ भी स्थान न बचा हो। सुन्दर और मनोहर होते हुए भी उनसे एक प्रकार का मरदानापन झलकता है। शाहजहाँ और जहाँगीर के बनवाये हुए भवनों में इस बात का अभाव है। न उन पर इतना कम व्यय हुआ है कि वे सुन्दर या राजभवन सदृश न बने हों और न इतना अधिक रुपया बिगाड़ा ही गया है कि प्रजा को कष्ट पहुँचा हो। सुन्दरता और दृढ़ता में वे शाहजहाँ की बनाई हुई इमारतों से कम नहीं। न इनमें वह ज़नानापन या सुकुमारता पाई जाती है जो बाद की बनी हुई मुग़ल इमारतों में है। कारण यह

है कि अकबर को तो राज्य स्थापित करना था। जगह जगह लड़ाइयाँ लड़नी पड़ी थीं। उसके समय में ऐसी सुकुमारता कहाँ से आती। परन्तु उसके उत्तराधिकारियों को बना बनाया राज्य मिल गया। इसी से वे विलास-प्रिय होगये। ज्यों ज्यों विलास-प्रियता बढ़ती गई पुरुषत्व कम होता गया और सुकुमार वस्तुओं की आवश्यकता बढ़ने लगी। इसका प्रभाव इस कला पर भी पड़ा।

जहाँगीर तो सदा ही से विलास-प्रिय था। नूरजहाँ के अपूर्व सौन्दर्य्य ने उसे अपने वशीभूत कर लिया था। बेगमों के रत्न जड़े हुए आभूषण ही उसकी आँखों के सामने सदा रहते थे। उन जड़ाऊ भूषणों के आगे पत्थर पर खुदे हुए बेल-बूटे कैसे उसकी निगाह में जँच सकते थे? इसी से उसे यह इच्छा हुई कि जैसे ये जड़ाऊ भूषण हैं वैसे ही जड़ाऊ भवन भी होने चाहिए। अतएव इस कला में फिर एक नई बात पैदा हुई। अब तक तो पत्थर पर बेल-बूटे, मूर्तियाँ, जालियाँ आदि ही बनती थीं; अब बेल-बूटों में रङ्ग-बिरङ्गे पत्थर और रत्न भी जड़े जाने लगे। फिर इसी कला का नाम मुनब्बतकारी है। इस का आरम्भ जहाँगीर बादशाह के ही समय में हुआ। इसने पूरी पूरी उन्नति शाहजहाँ के समय में पाई। इसके उदाहरण आगरे में ताजगञ्ज, सम्मन बुर्ज और दीवाने ख़ास हैं। ये शाहजहाँ के बनाये हुए हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इनकी सुन्दरता अद्वितीय है और ऐसे सुन्दर मकान कहीं भी नहीं पाये जाते। किन्तु ख़र्च की अधिकता के कारण यह काम बहुत दिन तक न चल सका। शाहजहाँ के बाद ही यह बन्द सा होगया।

फिर आया औरङ्गज़ेब का समय। मन्दिरों और मूर्तियों के लिए तो मानों प्लेग आगई। उसके समय में जहाँ कहाँ मन्दिर थे प्रायः सभी तोड़ दिये गये और बहुतों की मसजिदें कर दी गईं। इस बादशाह के समय में इस कला ने कुछ भी उन्नति न की। जो मसजिदें उसके समय की हैं उनमें से अधिकांश यथार्थ में मन्दिर थे, जिन्हें उसने तोड़ फोड़ कर मसजिदें बना दीं। कदाचित् वह कोई नया राजभवन बनवाता और अपने समय की इस कारीगरी के कुछ चिह्न छोड़ जाता। परन्तु उसे मन्दिरों के तोड़ने और दक्षिण की चढ़ाई से फ़ुरसत ही न मिली।

उसके बाद बादशाही नाम मात्र को रह गई। सारे देश में गड़ बड़ मची रही। इससे कारीगरी को बड़ा धक्का पहुँचा। तथापि हिन्दुओं ने जहाँ तहाँ मन्दिर आदि बनवा कर इस कला को जीवित रक्खा।

इसकी वर्तमान अवस्था।

आज कल भी इसकी वही दशा है जो औरङ्गज़ेब के समय में थी। इस समय इस कला के संरक्षक अधिकतर हिन्दू ही हैं। चाहे गाँव में बनें, चाहे शहर में, जहाँ कहीं मन्दिर बनते हैं पत्थर का काम अवश्य होता है। मुसलमानों की इस समय की मसजिदें बहुधा चूने और ईंट से बनती हैं। मथुरा, काशी, मिर्ज़ापुर, आगरा आदि में अब भी बहुत अच्छा काम मन्दिरों में किया जाता है। पर यह मुनब्बतकारी का वैसा काम नहीं जैसा शाहजहाँ और जहाँगीर के समय में होता था। यह काम अकबर के समय के काम से मिलता जुलता है। मुनब्बतकारी का काम तो अब बिलकुल बन्द सा हो गया है। उसमें ख़र्च इतना पड़ता है कि हर मनुष्य उसे नहीं करा सकता। वर्तमान समय के बने हुए मन्दिरों में आगरे की एक गली में एक जैन-मन्दिर है, जिसमें अच्छी मुनब्बतकारी की गई है। अब तो यह काम केवल तश्तरियों, मेज़ों, काग़ज़ दाबने के पत्थरों, डिबियों, क़लमदानों आदि ही पर किया जाता है और इन्हीं चीज़ों की माँग भी बहुत है। जाली का काम भी होता है। अधिकतर मन्दिरों ही में यह काम पाया जाता है। आगरे में जाली के काम की डिबियाँ भी बनती हैं; उनकी माँग योरप में बहुत है।

इन कामों के लिए पत्थर खानों से आता है। ये खानें अधिकतर चुनार, मिर्ज़ापुर, करवी, ललित-

वृन्दावन के श्रीविहारीजी के मन्दिर की जाली।

दुर्गा जी का मन्दिर, काशी।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद।
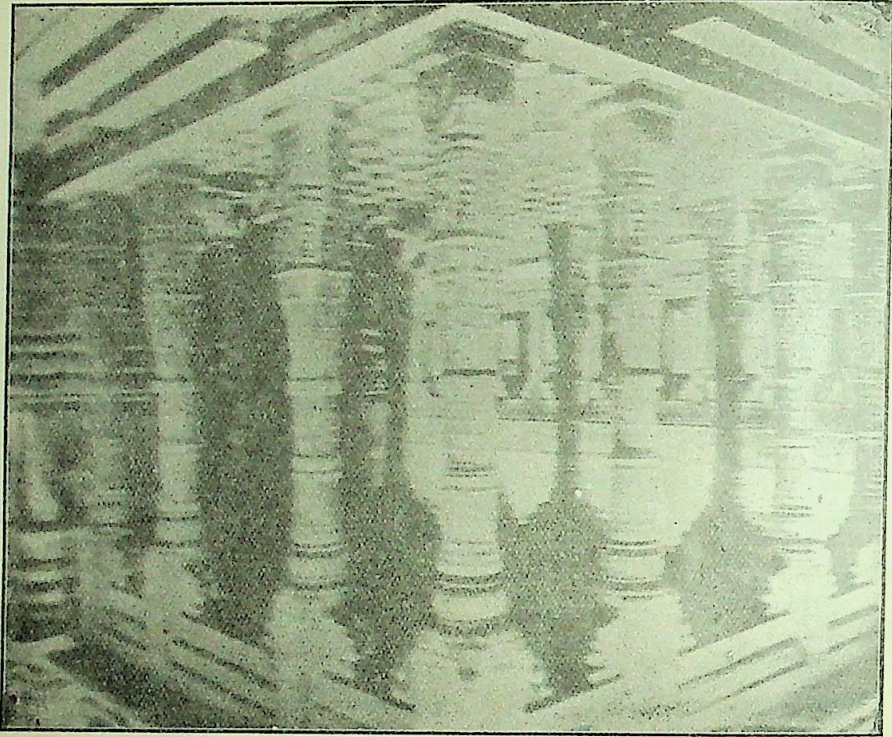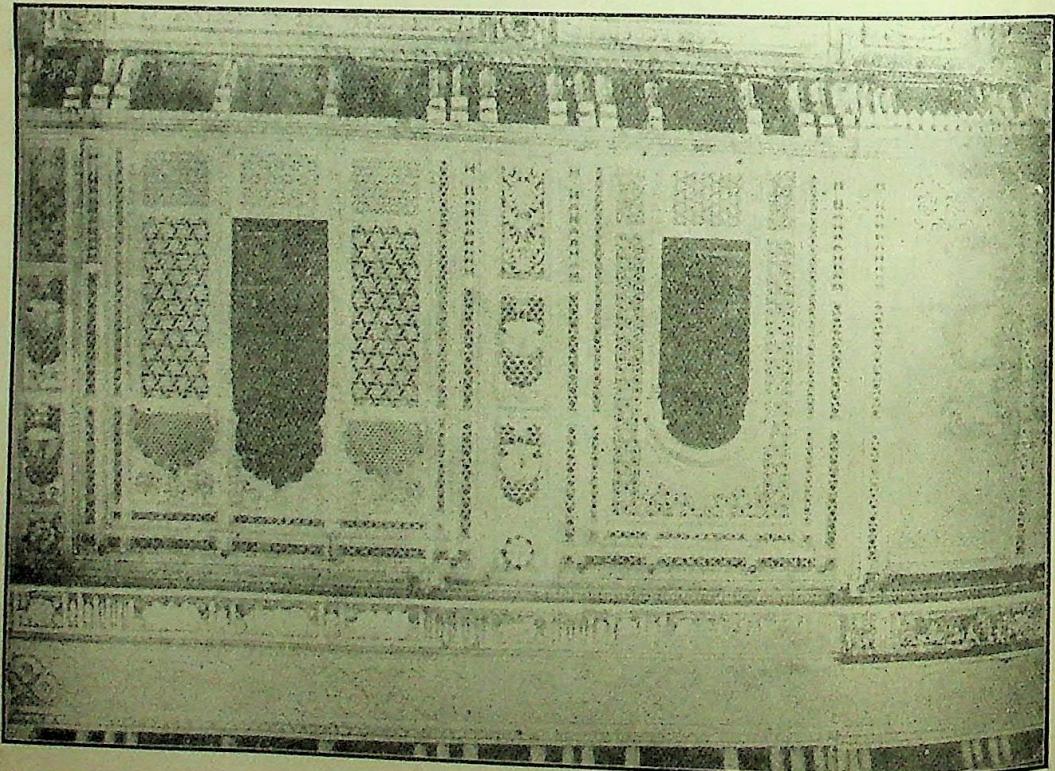
पुर, ग्वालियर, भरतपुर और फ़तहपुर सीकरी में हैं। चुनार में तो पत्थर की खानों का एक महाल ही अलग बना दिया गया है। उसका नाम स्टोन महाल है। उसके प्रबन्ध के लिए एक तहसीलदार रहता है। सरकार को इससे एक लाख रुपये साल की आमदनी होती है। यह पत्थर दो तरह का होता है—लाल और सफ़ेद। सफ़ेद के दाम लाल से अधिक होते हैं। पर सङ्गमरमर, जो आगरे के ताज और क़िले में अधिकता से लगाया गया है, मकराने से आता है। यह स्थान जोधपुर राज्य का है। अब भी यह पत्थर मन्दिरों आदि में अधिकता से काम में आता है और वहीं से मँगाया जाता है। यह मामूली लाल और श्वेत पत्थर से कहीं अधिक पुष्ट होता है और सुन्दरता का तो वर्णन करना ही क्या है। ताजगंज, समन बुर्ज़ और दीवाने ख़ास ही इसका वर्णन कर रहे हैं। इसकी दृढ़ता के विषय में एक उदाहरण देना अयुक्त न होगा। फ़तहपुर सीकरी की जाली और चुनार की दरगाह की जाली एकही समय की बनी हुई है। पर फ़तहपुर सीकरी की जाली अब भी ऐसी ज्ञात होती है जैसे कल की बनी हो और चुनार की दरगाह की जाली तो अभी से फटने और टूटने लगी है। कुछ काल में उसका नाम ही शेष रह जायगा। परन्तु इस सङ्गमरमर पर इतना कर लिया जाता है कि वह इटली से आये हुए सङ्गमरमर से भी मँहगा पड़ता है और लोग उसकी सुन्दरता और दृढ़ता पर मुग्ध रहते हुए भी उसे अधिक नहीं ख़रीद सकते।

मुनब्बतकारी में नीचे लिखे हुए पत्थर बहुधा काम आते हैं:—

सफ़ेद सङ्गमरमर, मकराने से
काला ,, राजपूताना से
पीला ,, जिसे अब्री भी कहते हैं, जेसलमेर से
ग्वालियर का रत्तक पत्थर, ग्वालियर से
ज़बरजद, खंवात से
शदिनाज, जबलपुर से
सुलेमानी पत्थर, केन नदी से
अक़ीक—बम्बई, खंवात और बाँदा से
तामड़ा पत्थर, जयपुर से
लाजवर्दी, बुलन्दशहर और लङ्का से
बादल पत्थर, सबलगढ़ से

सीप भी मुनब्बतकारी में काम आती है। आगरे में तश्तरियाँ आदि इससे भी जड़ी जाती हैं। इसके काम का सर्वोत्तम उदाहरण फ़तहपुर सीकरी में शेख़सलीम चिश्ती की क़ब्र पर है। किन्तु सीप का काम इतना सुकुमार और कमज़ोर होता है कि मन्दिरों और मकानों में उसका प्रयोग नहीं किया जाता। मूँगा, फ़ीरोज़ा, उजूबा भी मुनब्बतकारी में काम आते हैं। सुनहली पत्थर भी ताजगञ्ज में लगा हुआ है; पर अभी तक यह ज्ञात नहीं कि वह कहाँ से आया था।

आज कल पत्थर के काम करनेवाले अधिकतर हिन्दू ही हैं। इन लोगों के पास कोई बढ़िया यन्त्र नहीं; केवल कई प्रकार की टाँकियाँ होती हैं। जो कोई इस काम को सीखता है वह छोटेपन से ही किसी चतुर राज के पास बैठ कर उसको काम करते देखा करता है। इसी प्रकार जब वह कुछ समझने लगता है तब छोटी छोटी चीज़ें उसे बनाने को दी जाती हैं। अभ्यास करते करते वह पूरा कारीगर हो जाता है। इन लोगों में विद्या का बड़ा अभाव है। ये पुरानी लकीर के फ़क़ीर होते हैं। जिस प्रकार की जालियाँ और बेलें आदि ये बनाते आये हैं उसी प्रकार की बनाते हैं। इनमें स्वतन्त्र विचार इतना भी नहीं कि नई नई बेलें, जालियाँ, फूल, वृक्ष आदि बना सकें।

इस कला का भविष्य।

विद्या का अभाव एक बड़ा अभाव है। यदि पत्थर के कारीगर उन्नति न करेंगे तो उनका व्यवसाय बहुत दिन न चल सकेगा। एक दिन विदेश से बन कर यही चीज़ें आने लगेंगी। अतएव इस बात की आवश्यकता है कि हमारे शिक्षित नवयुवक इस काम की ओर ध्यान दें। जब तक हम लोगों में नौकरी करने की चाह कम न होगी उन्नति कठिन है।

आगरे में इस काम के लिए एक स्कूल खुल जाना चाहिए। उसमें एक स्वतन्त्र शाखा ऐसी होनी चाहिए जिसमें खुदाई के लिए नये नये प्रकार के नमूने निकाले जायँ और तैयार किये जायँ। उसमें नक़शा खींचना आदि सभी कुछ सिखाया जाय। हमको अपनी पुरानी मूर्ति-निर्माण-विद्या का फिर से पुनरुद्धार करना चाहिए। यह स्कूल, आर्ट-स्कूल के ढँग पर हो। सङ्गमरमर को सस्ता करने का भी प्रयत्न करना चाहिए। मैं जिस कालेज में पढ़ता था वहाँ की यह रीति है कि वहाँ से जितने विद्यार्थी बी० ए० आदि की परीक्षाओं में उत्तीर्ण होते हैं उनके नाम सफेद सङ्गमरमर की पटिया पर काले अक्षरों में खोद दिये जाते हैं। पुरानी पटिया भर गई थी; उस पर स्थान न रहा था। अतः नई पटिया मँगाकर दीवार पर जड़ी गई। पुरानी पटियाँ सब मकराने के पत्थर की थीं। पर यह नई पटिया, जो सस्ती समझ कर ली गई थी, इटली के पत्थर की थी। इसमें सन्देह नहीं उसमें और इसमें कौड़ी मोहर का अन्तर था; पर बात यह है कि रुपया पत्थर से ज़्यादा मँहगा है। यदि जोधपुर के महाराज उस पर से कुछ कर कम करदें तो उनकी आमदनी भी बढ़ जाय और इस कला की भी उन्नति हो।

न जाने क्यों हमारे धनी पुरुष अपने रहने के भवनों में पत्थर का काम बहुत नहीं कराते; पर मन्दिरों में अवश्य कराते हैं। रहने के भवन भी पत्थरों के काम के बनने लगें तो दृढ़ भी अधिक हों, सुन्दर भी अधिक हों, और इस कला की उन्नति भी हो। भोजनालय, पाकालय, स्नानभवन आदि पत्थर ही के बहुत अच्छे होते हैं। यह आवश्यक नहीं कि उन पर काम ही कराया जाय। सादे भी तो बहुत अच्छे होते हैं। यदि हम लोग इस ओर ध्यान दें तो पत्थर की बहुत सी काम की चीज़ें बन सकती हैं। सरकारी मकान अधिकतर ईंटों ही से बनाये जाते हैं। ईंटों की बहुलता और सस्तेपन के कारण ऐसा होता है। यदि उनमें पत्थर का भी प्रयोग किया जाय तो इस कला की बहुत कुछ उन्नति हो। हर्ष की बात है कि बम्बई में अपोलो बन्दर पर सम्राट् पञ्चम जार्ज के पदार्पण का स्मारक-भवन बनाया जानेवाला है। आशा है, यह भवन भारत की कारीगरी ही से विभूषित किया जायगा; और, दिल्ली में जो राजभवन बनाये जायँगे उनमें भी ऐसा ही होगा। यदि महाराज ग्वालियर और बीकानेर की दी हुई सम्राट् और सम्राज्ञी की मूर्तियाँ भारत ही में बनाई जायँ तो बहुत अच्छा हो।

योगेन्द्रपालसिंह।

काल की कुटिलता।

१

थे कल मुदित हम, आज हमको मोद पाना है नहीं;
इस ज़िन्दगी का भाइयो! कुछ भी ठिकाना है नहीं।
पा कर क्षणिक सुखभोग हैं हा! हम अभी फूले हुए;
घट जाय कैसे कौन सी घटना—इसे भूले हुए॥

२

है उदय से ही अस्त; जीवन से मरण प्रत्यक्ष है;
संयोग से समझो सदा दुःसह वियोग समक्ष है।
सुख-कौमुदी छिटकी अभी; दुख-मेघ वह अब घिर रहा—
यों नित्य सुख के सङ्ग ही दुख भी सदा ही फिर रहा॥

३

दिन बीतते थे सर्वदा आमोद से जिनके बड़े,
हैं आज एकाएक वे ही दुःख-सागर में पड़े।
हत-प्राण, नत-मस्तक किये, गत-सत्व सांसें ले रहे;
हा! किन्तु हम इस पर कभी क्या ध्यान भी हैं दे रहे?

४

सुख-सिन्धु में था खेलता, दुख-गर्त में क्यों कर गड़ा,
था हँस रहा, क्या हो गया जो वह बिलखता अब पड़ा!
इस तरह भङ्गुरता विषम अत्यन्त आती दृष्टि है;
सुख नाम को ही; सर्वथा दुख-पूर्ण सारी सृष्टि है॥

५

उत्साह से था हो रहा सुख-साज अति सुन्दर जहाँ,
देखो, अभी ही मच गया है दुःख का क्रन्दन वहाँ।
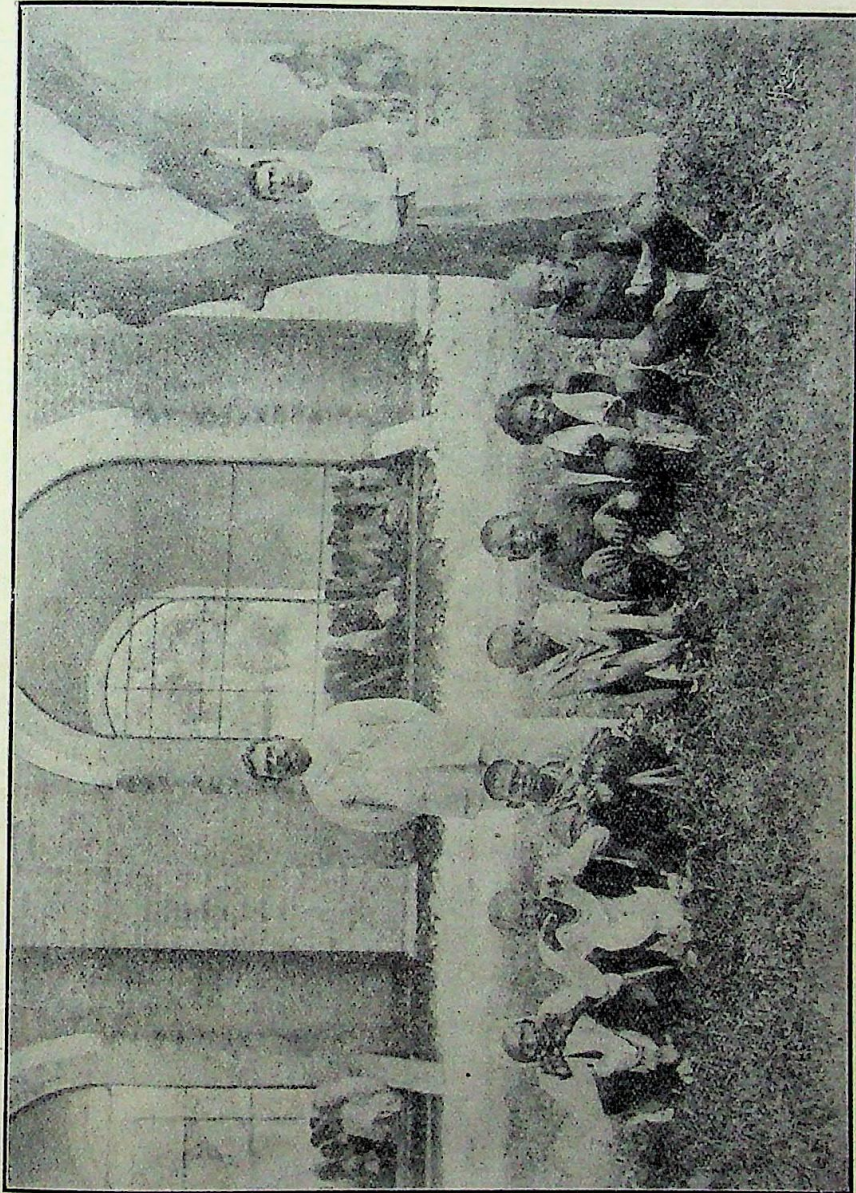
नैनी-कुष्ठाश्रम के पुरुष कुष्ठी।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद।

रहते किसी को ज्ञात परिवर्त्तन भला ये क्या कहीं ?
है काल की यह कुटिलता जानी कभी जाती नहीं ॥

पाण्डेय मुकुटधर शर्म्मा, विद्यार्थी ।

कोढ़ियों के प्रति हमारा कर्तव्य ।
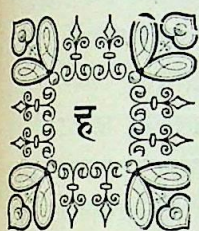
हमारे देश-भाइयों में, इस समय, ढाई लाख ऐसे जीव हैं जो कुष्ठरूपी असाध्य और भीषण रोग से ग्रस्त हो कर अनेक यातनायें भोग रहे हैं। उनके शरीर की गाँठ गाँठ में पीड़ा ने मानो घर कर लिया है। इस असह्य वेदना के साथ मन की उदासीनता और आत्म-ग्लानि से उनका जीवन उन्हीं को बोझ सा हो रहा है। किसी ओर से उन्हें कोई आशा नहीं दिखाई देती। दूसरों की कौन कहे उनके आत्मीय जन भी उन से घृणा करते हैं। वैद्यों के पास इनके लिए कोई दवा नहीं; और अन्य लोगों के हृदय में इन के लिए ज़रा भी दया नहीं। जिनके पास चार पैसे हैं वे किसी प्रकार घर के कोने में पड़े हुए मृत्यु की प्रतीक्षा किया करते हैं, और जो निर्धन हैं और नित की मज़दूरी से उदर पालते हैं वे रोग से जर्जर और असमर्थ हो जाने पर गली गली भिक्षा माँगने लगते हैं। अन्त में मृत्यु इनको इस महा संकट से मुक्त कर देती है। यह रोग स्पर्श-जन्य है। निर्धन, निस्सहाय रोगियों के इस तरह जहाँ तहाँ घूम कर भिक्षा माँगने से कहीं यह रोग सर्व-साधारण में न फैल जाय, इसलिए सरकार ने १८९२ में लेप्रोसी ऐक्ट नं ३ (Leprosy Act, No. 3) नाम का एक क़ानून पास किया था। उसके अनुसार वे खाने पीने की चीज़ें बनाने तथा बेचने से, जिस कुये से जनसाधारण काम लेते हों उसमें नहाने-धोने से, रेल के सिवा और गाड़ियों पर चढ़ने से तथा दूकान आदि करने से रोके गये। इन नियमों को उल्लङ्घन करनेवाला कोढ़ी दण्डनीय समझा जाता है।

पर, इस क़ानून का पूरा व्यवहार देखने में नहीं आता। प्रायः जहाँ तहाँ कोढ़ी लोग बाज़ार में, धर्मशालाओं में या घाटों पर घूमा करते हैं। वे अपने घावों को दिखला कर दुकानों पर चुटकी माँगा करते हैं। जब वे हाथ पैर के ठूँठे हो जाते हैं तब घावों पर लत्ते बाँध बाँध कर इधर उधर घिसलते फिरते हैं। सैकड़ों मील की यात्रा इसी प्रकार घिसल कर वे तै करते हैं।

अन्तिम मनुष्य-गणना के अनुसार इनकी संख्या २,५०,००० है। पर अनुमान किया जाता है कि इनकी वास्तविक संख्या इसकी दुगुनी होगी। प्रायः लोग अपमानित होने के भय से इस रोग को छिपाते हैं। इसका बड़ा बुरा फल होता है। इन के संसर्ग से और लोगों में तो यह रोग फैलता ही है; पर इससे भी अधिक भयङ्कर फल इनकी सन्तान को भोगना पड़ता है। अपने माता-पिता के साथ रह कर इनके बच्चे भी इस रोग से ग्रस्त हो जाते हैं। थोड़े ही दिनों में बच्चों का रुधिर बिगड़ जाता है। फिर उनके मुख पर वह कान्ति और हास्य तथा शरीर में वह फुरतीलापन बाक़ी नहीं रहता। अग्नि की ज्वाला में शुष्क तरु-लता की तरह इस रोग में वे अपने को आहुत कर देते हैं। बड़े बड़े डाकृरों का मत है कि यह रोग कुल-क्रम से नहीं फैलता, अर्थात् माता-पिता के दोष से बच्चों का स्वास्थ्य नहीं बिगड़ता। यदि थोड़ी ही अवस्था में बच्चे अपने मा-बाप से अलग कर दिये जायँ तो वे इस रोग से बिलकुल बच जायँ। सन् १८९०—९१ के लेप्रोसी कमिशन का भी यही मत था और देखने में भी आया है कि जो लड़के इस प्रकार अलग कर दिये गये वे स्वस्थ रहे और उनकी सन्तान भी नीरोग हुई।

ग़दर के पहले इस देश में कई स्थानों पर कुछ ऐसी सभायें थीं जो अशक्य कोढ़ियों के भोजन, आच्छादन और आश्रय का प्रबन्ध कर देती थीं। पर, कुछ दिनों बाद, ये सभायें इस काम को न सँभाल सकीं और उन्होंने कोढ़ियों की रक्षा का भार

एक ईसाई सभा के सिपुर्द कर दिया। उसने भारत के भिन्न भिन्न प्रान्तों में कोढ़ियों के लिए ५० आश्रम, उनके स्वस्थ बालकों के लिए २० भवन और कोढ़ियों के इलाज के लिए ३० रोगशालायें बनवा दी हैं। इस समय लग भग नौ सहस्र अनाथ कोढ़ी इस सभा के आश्रय में हैं। उनके भोजन, वस्त्र, औषधि और धार्मिक उपदेश का भी पूरा पूरा प्रबन्ध है। उनके ६०० अबोध बालक-बालिकाओं के लालन-पालन का भार भी मिशन ने अपने ऊपर लिया है। अपने मुखपत्र "Without the Camp" में बार बार मार्मिक लेख लिख लिख कर मिशन वाले इनके लिए चन्दा इकट्ठा करते हैं। बड़े बड़े उदार शिक्षित महापुरुष स्वेच्छा-सेवा करके मिशन को इस कार्य्य में सहायता देते हैं। सरकार ने भी मिशन की धन से यथासम्भव सहायता की है। देश के अनेक विद्वान् और राज-कर्मचारियों ने मिशन के कामों की बड़ी प्रशंसा की है।

कोढ़ियों ने भी चारों ओर से ठोकरें खाकर मिशनवालों को अपना मित्र समझ लिया है। कोढ़ियों का मिशन, साधारण पादरियों से स्वतन्त्र है। पर बहुधा इसके सञ्चालक ईसाई ही होते हैं। फल यह होता है कि जब वे हमारे कोढ़ी भाइयों को आश्रय देकर अपनाते हैं तब साथ साथ वे उन्हें अपना धर्म भी सिखलाते हैं। विदेशियों की दया और कृपा से हमारे कोढ़ियों की दशा कहाँ तक सुधरी है तथा उनके विचार और धर्म के परिवर्तन से जाति को कहाँ तक हानि-लाभ पहुँचा है, यह पाठक स्वयं विचार सकते हैं। पर, हाँ, भविष्यत् में भारतवर्ष के इतिहास लिखनेवालों को इस बात को लिखते हुए अवश्य थोड़ी देर के लिए चिन्ता में निमग्न हो जाना पड़ेगा कि दया का ढ़कोसला रचने वाली भारतीय जाति इतनी निर्दयी निकली कि विदेशियों को उसके नौ हज़ार कोढ़ियों की सेवा-शुश्रूषा करने के लिए आगे बढ़ना पड़ा; जिसका फल यह हुआ कि ९००० कोढ़ियों में से ३५०० स्त्री-पुरुष ईसा के अनुयायी होने का दम भरने लगे!

हमारे देशवासी कोढ़ियों को दूरही से देख कर नाक भौं सिकोड़ने लगते हैं। इनकी परछाईं पड़ते ही वे घृणा से थू थू कर के थूक उगलते हैं। कोई भी इन्हें पास नहीं आने देता। बहुतेरे तो इनसे यहाँ तक घृणा करते हैं कि इनकी चर्चा भी उन्हें अरोचक होती है। कोई पूर्व जन्म का फल कह कर और विधाता की लीला बतला कर उनसे अपना पिण्ड छुड़ा लेते हैं। कोढ़ियों की बात चलते ही धन की न्यूनता की भी दुहाई दी जाती है और समय और उत्साह का भी अभाव बताया जाता है। संक्षेपतः लोग कोढ़ियों का बड़ा तिरस्कार करते हैं। यह कितनी अमानुषिकता की बात है कि हमारे स्वदेशवासी ऐसे भयङ्कर रोग के चङ्गुल में पड़ कर हमारी आँखों के सामने दुःख से तड़पते दर दर की ठोकरें खाते फिरें और उनकी रक्षा के लिए यत्न करना तो दूर रहा हम उनके साथ सद्-व्यवहार भी न करें।

हाय! जिस भारतवर्ष में अनादि-काल से दया और धर्म के नाम पर आकाश और पाताल के कुलावे मिलाये जाते हों वहाँ के पतित और दुखियों के पालन और आश्वासन में ऐसी शिथिलता! इस सम्बन्ध में यह कहना बिलकुल अतिशयोक्ति नहीं कि प्रायः हमारी ममता मनुष्यों से अधिक पशुओं पर देखने में आती है। नाना प्रकार के पशुओं के पालन-पोषण में हमारा लाखों रुपया प्रति वर्ष खर्च हो जाता है; पर कोढ़ियों के लिए, जो हमारी ही तरह मनुष्य हैं, हमारी ही तरह बोल चाल सकते हैं और हमारी ही तरह बुरा भला विचार सकते हैं, हमारा हृदय मनुष्यत्व के सार्वभौमिक भाव से इतना भी नहीं पसीजता जितना विवेक-शून्य पशुओं के लिए। हमारी बुद्धि की बलिहारी है कि हम मनुष्य को पशु से भी निकृष्ट समझने लगे हैं।

धन और समय की क्या त्रुटि! धन तो आप से आप एकत्र हो जायगा। हमारे ये अभागे भाई धन के इच्छुक नहीं; प्रेम के भूखे हैं। विदेशियों ने प्रेम से इनका मन मोह लिया है। हमने तो घृणा करके भाइयों को अपने हाथ से खोदिया है। आओ पहले हम इन्हें

अपने हृदय में स्थान दें। कभी कभी घड़ी आध घड़ी इनके कल्याण की कामना में चित्त लगावें। इनकी दुर्दशा पर विचार करें। इनके प्रति प्रेम का भाव उत्पन्न होते ही हम इनके हित के पथ में अग्रसर हो जायँगे। ईश्वर हमारे हृदय में प्रेम की जोति का प्रकाश डाले।

"मागध"।

प्रेम।*

क्यों पीड़ा देने को विधि ने रचा प्रेमनिधि है निश्चल ?
इतना कोमल कर के फिर क्यों किया कण्टकित फुल्ल कमल ?
डूबे प्रथम अनलजल में तब मिलता प्रेमरत्न निर्मल।
कहीं मृत्यु-फल फलता उससे कहीं कलङ्क-लाभ केवल !
प्रेम दूर से ही सुन्दर है यथा चञ्चलालोक चपल।
दर्शन में जो अति अनुपम है स्पर्शन में है दीप्तानल ॥
जीवन-कानन में मरीचिका मोहमयी है महा प्रबल।
अहो ! यहाँ जो प्रेम चाहता वह चाहता उपल में जल ॥
आज प्रेम जो पान करेगा हाय ! जान कर सुधा सरल;
कल विरहानल में पावेगा उसे अश्रु-जल और गरल !

"मधुप"

हीरा और लाल की कहानी।†
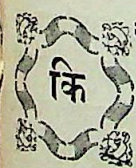
किसी नगर में एक ग़रीब घसियारा रहता था। वह रोज़ जङ्गल से घास काट कर लाता और शहर में एक दो आने को बेच कर अपना पेट भरता। एक दिन सुबहही उठ कर वह शहर के बाहर घास काटने गया। जब वह थोड़ी घास काट चुका तब उसे ख़याल आया कि वह गठड़ी बाँधने की रस्सी भूल आया है। ग़रीब घसियारे का मुँह मारे फ़िक्र के फ़ीका पड़ गया। उसकी दिन भर की मिहनत मिट्टी में मिली जाती थी। वह इस प्रकार सोच में बैठा था कि उसे कुछ दूर पर, धूप में, एक रस्सी सी चमकती दिखाई पड़ी। वह उसे देखने को अगाड़ी बढ़ा। पास जाने पर उसने देखा कि एक मरा हुआ साँप पड़ा है। उसे उस मरे साँप के मिलने से बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने सोचा कि रस्सी न सही इसीसे काम चल जायगा। उसने झट पट उसे उठा लिया। परन्तु यह क्या ! यह तो मरा हुआ साँप नहीं; यह तो एक बहुमूल्य माणिक (लाल) है। बेचारा मज़दूर पहले तो इस काया-पलट से चकराया और डरा; फिर कुछ हिम्मत की और उस माणिक को कस कर उसने अपनी पगड़ी के छोर में बाँध लिया। दिन छुपे तक वह घर लौटा। उसे उसके मूल्य की कुछ भी ख़बर न थी। उसने सोचा कि ऐसी सुन्दर चीज़ राजा को भेंट करने योग्य है। दूसरे दिन सुबह वह महलों में गया और उस माणिक को राजा की भेंट किया। राजा उस बहुमूल्य माणिक को पाकर बड़ा प्रसन्न हुआ और घसियारे को बहुत सा इनाम इकराम देकर विदा किया। घसियारे को इतना धन मिला कि मरते समय तक उसे घास काटने की आवश्यकता न पड़ी।

राजा माणिक को ले कर रनिवास में गये और उसे अपनी रानी को दिया। रानी हाथ में लेकर उसकी चमक दमक की प्रशंसा करने लगी। इतने ही में देखती क्या है कि हाथ में माणिक वानिक कुछ नहीं; उसकी जगह एक छोटा सा सुन्दर बच्चा है। रानी के होश हवास जाते रहे। ज़रा देर बाद उसने तबीयत को सम्हाला। रानी के कोई पुत्र न था। इसलिए उसेही पुत्र के समान वह प्यार करने लगी। वह बच्चा माणिक से प्राप्त हुआ था। इसलिए उसका नाम "लाल" रक्खा गया। लाल की अवस्था और सुन्दरता दिनों दिन बढ़ने लगी। उसके चेहरे पर राजसी झलक थी—ऐश्वर्य के सारे चिह्न दिखाई पड़ते थे। जब उसकी अवस्था आठ वर्ष की हुई,

---

* बँगला—"पलाशिर युद्ध" के एक गीत का भाव।

† अक्टूबर १९०७ के "माडर्न रिव्यू" में "शेख़चिल्ली" की अँगरेज़ी कहानी का अनुवाद।

उसके पिता ने उसे पाठशाला में भेजा। इस पाठशाला में केवल राजपुत्र और राज-कन्याओं को ही शिक्षा दी जाती थी। उसमें "हीरा" नाम की एक अति रूपवती राजकन्या भी पढ़ती थी। हीरा और लाल में शीघ्रही मित्रता हो गई। वे आपस में प्रेम करने लगे। बिना एक के देखे दूसरे को चैन न पड़ता था। इसी तरह कई वर्ष बीत गये और उनका बचपन का प्रेम अब सयानी में दृढ़ हो गया। लाल के पिता को इसकी ख़बर हुई। उस ने लाल की नाराज़गी की बिलकुल परवा न करके आज्ञा दी कि वह हीरा का साथ छोड़ दे और उससे कुछ सम्बन्ध न रक्खे। हीरा भी पढ़ लिख कर होशियार हो चुकी थी। उसका ब्याह एक बड़े राजा के साथ, जो उम्र में बहुत अधिक था, और जिसकी कमर झुक गई थी, बहुत शीघ्र होनेवाला था। जिस समय हीरा के ब्याह की ख़बर लाल को हुई, वह रंज के मारे पागल सा हो गया। दिन रात पलँग पर पड़ा रोया करता। एक दिन, रात के समय, चुप चाप महल से निकल कर उसने घोड़े पर काठी कसी और हीरा का पिता जिस नगर का राजा था उसका रास्ता लिया। नगर में पहुँचने पर लाल को मालूम हुआ कि उसी दिन हीरा की भाँवरें होने वाली हैं। हीरा बहुत से आदमियों के साथ, जो सुन्दर सुन्दर वस्त्र पहने थे, महल से निकली। आगे बाजे बजते जाते थे। बहुत सी मशालें साथ थीं। सारे बाज़ार सजाये गये थे। लोग तमाशा देखने को जमा थे। लाल भी तमाशा देखने को बाज़ार के मोड़ पर खड़ा हो गया। महल के पास जब सवारी पहुँची तब हीरा ने लाल को देख लिया। उसकी सारी चिन्ता जाती रही। उसने सोचा कि बस मेरा बचानेवाला आगया। लाल ने भी मौक़ा पाकर धीरे से हीरा के कान में कुछ कह दिया। जब सवारी एक ख़ास जगह पहुँची तब सब लोग आतिशबाज़ी देखने में लग गये। मौक़ा पातेही हीरा धीरे धीरे लाल के पास आगई। उसे कोई भी ताड़ न सका। उसने झट ज़नाना लिबास उतार डाला। लाल अपने से मरदाने कपड़े बग़ल में दबाये खड़ा था। उन्हें हीरा ने पहन लिया। कपड़े ऐसे ठीक बैठे कि कोई उसे पहचान नहीं सकता था कि वह स्त्री है। दोनों की सूरत एक सी थी; दोनों का क़द एक सा था; दोनों भाई भाई मालूम होते थे। इसके बाद हीरा और लाल दो घोड़ों पर बैठ कर शहर के बाहर आये। घोड़ों की बाग ढील दी। वे हवा से बातें करने लगे। घोड़ों की नालों से बार बार आग की चिनगारियाँ निकलती थीं। सारा जङ्गल उनकी टापों की आवाज़ से थर्रा गया। सूरज छिपने तक वे बराबर घोड़ों को उसी चाल से लेगये।

जब अँधियारा हो गया और आसमान में तारे दिखाई पड़ने लगे तब उन्होंने जाना कि शहर से बहुत दूर निकल आये; अब कोई उनका पीछा नहीं कर सकता। तब उतर कर सड़क के किनारे एक झोपड़ी में उन्होंने विश्राम किया। एक बुढ़िया उस झोपड़ी में रहती थी। उसने इन दोनों को आदरपूर्वक ठहराया। यह झोपड़ी दो बड़े विकट डाकुओं की थी। एक उस बुढ़िया का पति और दूसरा उसका बेटा था। वे अभी तक घर नहीं लौटे थे। इन दोनों प्रेमियों को कुछ भी ख़बर नहीं थी कि वे कैसे विषम-जाल में फँस गये हैं। हीरा बहुत थक गई थी; इस लिए लेट गई। बुढ़िया की नौकरनी आकर उसके हाथ पैर दबाने लगी। उसकी आँखों में नींद आती जाती थी। इतने ही में उसके पैरों पर एक बूँद पानी की टपकी। वह घबरा कर उठ बैठी और देखा कि नौकरनी रो रही है। हीरा ने उसके दुःख का कारण पूछा। वह और भी ज़्यादा ज़ोर से रोने लगी। उसने हीरा के कान में कहा कि "जिस घर में तुम आकर ठहरे हो वह बड़े निर्दयी डाकुओं का है। वे अभी लूटमार करने गये हैं। वहाँ से लौटते ही तुम दोनों को मार डालेंगे।" यह सुन कर हीरा झट खड़ी हो गई और लाल से सारा हाल कह सुनाया। उन दोनों ने शीघ्र ही चलने की तैयारी करदी और उस बुढ़िया से विदा माँगी। घोड़ों पर सवार होकर वे अँधेरे ही में चल दिये। उस बुढ़िया ने हज़ारों बातें

बना कर उन्हें रोकना चाहा। कभी कहती कि अँधेरे में चोट लग जायगी; रास्ता भूल जावगे। कभी कहती कि रात बहुत हो गई है; थोड़ी देर तो आराम करलो। कभी कहती कि रास्ता बड़ा भयङ्कर है; चोर डाकुओं का डर है। पर उन दोनों ने उसकी एक भी बात न सुनी। जब उसने देखा कि वे किसी तरह नहीं लौटते तब ज़ोर से चिल्लाती हुई दौड़ी—"दो चिड़ियाँ उड़ी जाती हैं—दो चिड़ियाँ उड़ी जाती हैं।" उसके पति और बेटे ने, जो रात का काम पूरा करके लौट रहे थे, उसकी आवाज़ सुनी और उसके इशारे को समझ गये। उन दोनों ने भी अपने घोड़े उन प्रेमियों के पीछे डाल दिये। लाल ने देखा कि दो मनुष्य उनका पीछा कर रहे हैं। झट कमर से निकाल एक तीर उसने छोड़ा। तीर डाकू के बेटे की छाती में लगा और वह मर कर गिर गया। यह देख कर डाकू घर लौट आया और लाल से बदला लेने की शपथ खाई। इस अर्से में लाल और हीरा एक सराय के पास पहुँचे और रात को वहाँ ठहरने का विचार किया। सुबह होते ही वे वहाँ से रवाना हुए। उन्होंने देखा कि एक बुड्ढा मनुष्य बाहर बैठा है। उसने इनसे कहा—"महाराज मैं भूखों मरता हूँ। यदि आप मुझे अपना साईस बना लें तो बड़ी दया करें।" लाल ने उसे नौकर रख लिया और ये तीनों वहाँ से रवाना हुए। जब ये एक सुनसान स्थान पर पहुँचे तब उस साईस ने पीछे एक हाथ तलवार का ज़ोर से लाल के मारा। लाल का सिर अलग हो गया। उसे मार कर वह हीरा के पास पहुँचा और उसे भी मारने को तलवार उठाई। उसने हाथ जोड़ प्रार्थना की—"मुझे मत मारो। मैं, जैसा मेरे वस्त्रों से विदित होता है, पुरुष नहीं हूँ, स्त्री हूँ। यदि तुम मुझे न मारोगे तो तुम्हारे साथ ब्याह कर लूँगी"। यह साईस और कोई नहीं, वही डाकू था। थोड़ी देर तक नहीं नहीं करने के बाद वह हीरा को न मारने पर राज़ी हो गया। दोनों घर की तरफ़ मुड़े। थोड़ी ही दूर ये चले होंगे कि हीरा ऊपर आसमान की तरफ़ देख कर ज़ोर से हँसने लगी। इस पर डाकू बहुत बिगड़ा और डपट कर बोला—"क्यों हँसता है! चुप!" हीरा ने आसमान की ओर उँगली उठाकर कहा—"देखो, कैसी सुन्दर पतङ्ग है"। ज्योंही डाकू ने ऊपर को मुँह उठाया, हीरा ने तलवार खींची और एक पल में डाकू का सिर खट से अलग कर दिया। उसने उसके मुँह पर थूका और घोड़े पर सवार होकर जहाँ उसके प्रेमी का मृतक शरीर पड़ा था, लौट आई। वहाँ पहुँच कर उसने लाल का सिर गोद में रक्खा और ज़ोर ज़ोर से रोने लगी। सब आने जानेवाले उसका रोना सुन कर उस पर तरस खाते थे। सौभाग्य से शिव और पार्वती भी उधर ही होकर निकले। पार्वती ने हीरा को इस प्रकार रोते देख शिव से कहा—"यह लड़की क्यों रो रही है?" शिव ने उत्तर दिया—"देवी, यदि तुम इस लड़की के रोने का कारण सुनोगी तो तुम्हारा हृदय दुःख से भर आवेगा। अतएव इसके बारे में कोई प्रश्न मत करो। हीरा के रोने ने पार्वती का हृदय चञ्चल कर दिया था। उन्होंने कहा—"जब तक तुम मुझे इसके दुःख का कारण न बतला दोगे और जब तक उसका निवारण न हो जायगा मैं एक क़दम अगाड़ी न बढ़ाऊँगी"। शिव ने लाचार होकर लाल के मरने की बात बतला दी और हीरा के पास जाकर लाल का सिर उसके शरीर पर रख अपने रक्त से उसे जोड़ दिया। उनके रक्त में अमृत था। इसलिए लाल एकदम जी उठा। हीरा के उस समय के आनन्द का कौन वर्णन कर सकता है! उसने ज़मीन पर लोट कर शिव भगवान् और पार्वती को साष्टङ्ग प्रणाम किया। जब उठी तो देवता अन्तर्धान हो गये।

हीरा और लाल घोड़ों पर चढ़ कर अगाड़ी बढ़े। कई दिन तक चलने पर वे एक बड़े नगर में आये और एक सराय में ठहरे। लाल हीरा को छोड़ कर बाज़ार में सौदा लेने गया। उसने एक बड़े बाज़ार में जाकर सामान ख़रीदा और दुकानदार को क़ीमत देकर कहा—"इन चीज़ों को अपनी

दूकान पर रक्खी रहने दो; हम लौट कर लेलेंगे"। इसी तरह वह दूकान दूकान सामान ख़रीदता फिरा। सब चीज़ें ख़रीद चुकने पर वह एक पान-वाली की दूकान पर आया। यह तमोलन जादूगरनी थी। लाल ने उसके पास जाकर पान बनाने को कहा। उसने कहा—"आइए हुज़ूर, जितने पान का हुक्म हो बना दूँ"। लाल को तो बेईमानी का बिलकुल सन्देह ही न था, वह पान बनवाने बैठ गया। उस जादूगरनी ने लाल को जादू के बल से बकरे के रूप में बदल लिया।

हीरा ने जब देखा कि लाल अभी तक नहीं लौटा तब वह ख़ुद उसे ढूँढने निकली। हीरा मर्दाने वेश में थी। जब वह उस बाज़ार में गई जहाँ लाल ने सौदा ख़रीदा था तब दूकानदार हीरा को लाल समझ कर उसका सामान देने लगे। उसने भी कह दिया कि लौटते समय सामान लेलूँगी। ज्यों ज्यों वह आगे बढ़ी प्रत्येक दूकानदार ने सामान देना चाहा। सबको उसने वही उत्तर दिया। जब वह उस जादूगरनी की दूकान पर पहुँची तब वह कुछ न बोली। हीरा झट असली बात को ताड़ गई कि लाल उसी के यहाँ मौजूद है। उसने पान बनाने को कहा। तब तमोलिन ने फिर वही बात कही—"आइए हुज़ूर, जितने पानों का हुक्म हो बनादूँ"। परन्तु हीरा यह कहती हुई चलदी कि "मैं उसकी तरह मूर्ख नहीं हूँ"। वह एक गली में होकर जा रही थी। उसने देखा कि एक बुढ़िया रोती जाती है और मिठाई बनाती जाती है। हीरा उसके पास गई और पूछा—"माँ, तुम मिठाई बनाते में रो क्यों रही हो?" स्त्री ने उत्तर दिया—"बेटा क्या पूछता है? यह बड़ी दुखभरी कहानी है। यहाँ के राजा के एक बेटी है, जिसके लिए हर रात को एक मनुष्य की बलि दी जाती है। आज मेरे लड़के की बारी है। मैं यह मिठाई उसी के लिए बना रही हूँ और उसी के लिए रो भी रही हूँ"। हीरा ने कहा—"माँ रोओ मत, तुम्हारे बेटे के बदले में आज उस भय-ङ्कर राजकुमारी के पास जाऊँगा। तुम मुझे मन भर के मिठाई खा लेने दो"।

बुढ़िया इस बात को सुन कर बड़ी प्रसन्न हुई और ख़ुशी से मिठाई हीरा के सामने रख दी। जब हीरा पेट भर के खाचुकी तब उठी और महलों को रवाना हुई। राज-कर्म्मचारियों ने उसे राज-कुमारी के कमरे तक पहुँचा दिया। हीरा मर्दानी पोशाक में होने से बिलकुल मर्द ही फब गई। राजकुमारी ने और और शिकारों की तरह उस पर भी प्रेम दिखलाना और दयापूर्वक बात चीत करना प्रारम्भ किया। जब हीरा कुछ नाश्ता कर चुकी तब एक पुजारी जी अन्दर आये। उन्होंने उन दोनों का हाथ जोड़ कर व्याह कर दिया। हीरा और राज-कुमारी एक ख़ास चौबारे में गये। वहाँ पहुँचतेही राजकुमारी का भाव एक दम बदल गया। अभी जो इतनी ग़रीब और दयालु दिखाई पड़ती थी वह एक क्षण में ही अत्यन्त कठोर होगई। उसके मुँह से झाग निकलने लगा। वह अपने बालों को नोचने लगी। उसको देखने से डर लगता था। उसकी आँखों से आग निकलती थी। वे जलते हुए कोयले के समान लाल हो रही थीं। वह ज़मीन पर लोट गई और क्रोध में आकर बर्राने लगी। धीरे धीरे उसका ग़ुस्सा घटा और उसे ग़श आ गया। जब वह इस प्रकार बेहोश पड़ी थी उसकी बाईं जाँघ से एक काला साँप निकला। साँप बड़ा ज़हरीला था। जब वह जाँघ से बाहर निकल आया तब वह फन फटकार कर फुफकारता हुआ हीरा की ओर लपका। उसकी लपलपाती जीभ देख कर हीरा को डर तो लगा, पर वह हतबुद्धि न हुई। जब वह साँप काटने को दौड़ा तब हीरा ने झट एक तेज़ धार की तलवार से उसका सिर अलग कर दिया। हीरा रात भर बेहोश राजकुमारी के पास ही रही। उसने भाँति भाँति की तरकीबों से राजकुमारी को होश कराया। इतने में राजा को ख़बर हुई कि उस साँप को; जिसने इतने दिनों से राजपुत्री को वश में कर रक्खा था, एक वीर कुमार
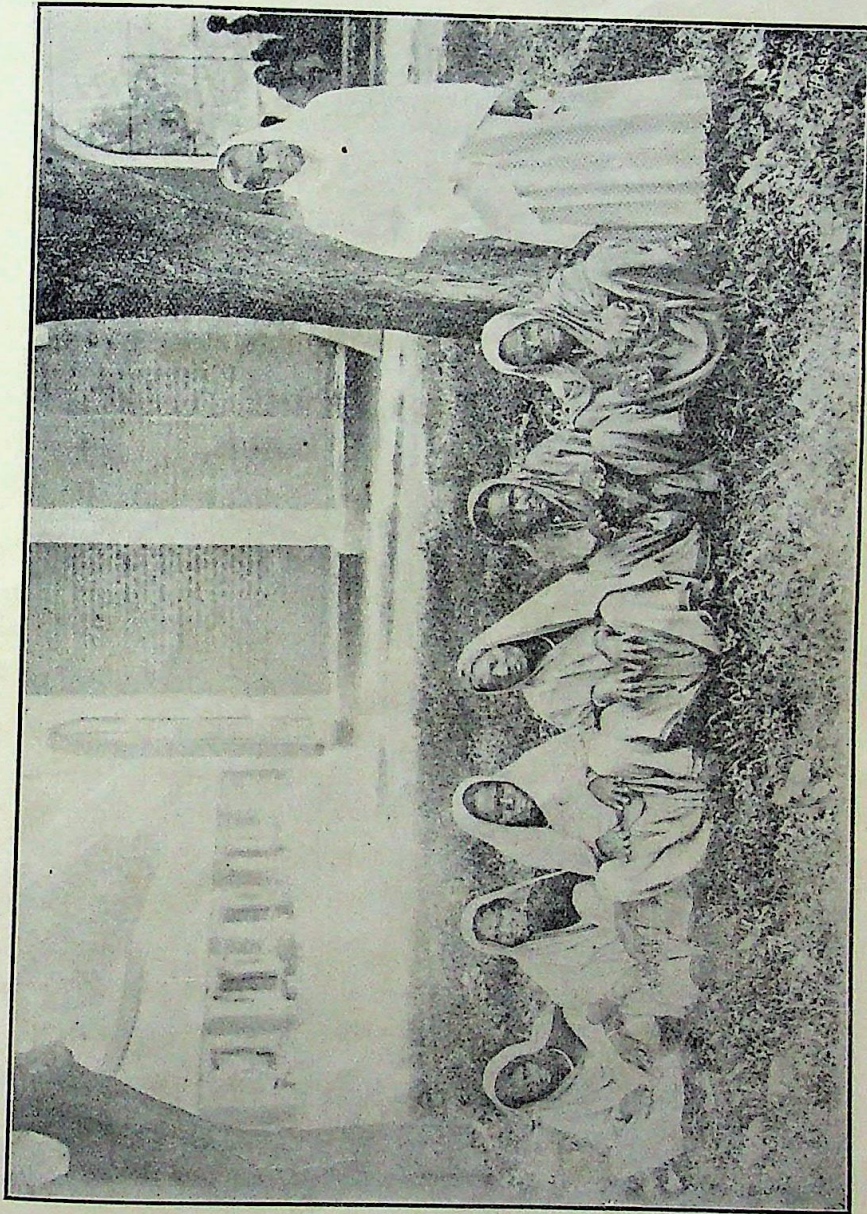
नैनी-कुष्ठाश्रम की कुष्ठरोगिणी स्त्रियाँ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद।

नैनी-कुष्ठाश्रम के कुष्ठी।

ने, जिसका नाम हीरा है, मार डाला। राजा इस पर बड़े ख़ुश हुए और हीरा को बुला कर पूछा—"बतला, तुझे क्या इनाम चाहिए?" हीरा ने कहा—"आध घंटे के लिए अपना राज्य मुझे दे दीजिए।" राजा ने झट अपना राजदण्ड उसके हवाले किया और मुकुट उतार कर हीरा को पहना दिया। सब कर्म्मचारियों को उसकी आज्ञा मानने का हुक्म हो गया।

जब हीरा गद्दी पर बैठ गई तब सबसे पहले उसने सारे नगर में यह ढिंढोरा पिटवाने की आज्ञा दी कि "नगरनिवासियों को विदित हो कि राजा ने ऐसी आज्ञा दी है कि नगर भर में जितने जानवर—पशु, पक्षी, गाय, बैल—हों, सब उनके सम्मुख मुलाहज़े के लिए बहुत शीघ्र उपस्थित किये जायँ"। सब लोग अपने अपने जानवर लेकर महल की ओर दौड़े। जब वे राजा के सामने इकट्ठे हुए और उनके नाम पढ़े गये तब मालूम हुआ कि वह तमोलन वहाँ मौजूद न थी। कर्मचारीगण तुरन्त उस के घर दौड़ाये गये और उसे बाँध कर ले आये। वे उसके बकरे को भी पकड़ लाये और राजा के सामने खड़ा किया। ज्योंही बकरे ने हीरा को देखा, वह उसकी ओर लपका और उसके आस पास कूदने लगा। हीरा ने ताड़ लिया कि यह ज़रूर लाल है और जादूगरनी से उसे बेचने को कहा। उसने उत्तर दिया—"ग़रीबपरवर, मैंने इस बकरे को काली की भेंट चढ़ाने को पाल रक्खा है और अब की पूर्णिमा को इसका बलिदान कर दूँगी। यह मेरी धर्मसम्बन्धी शपथ है। इसका उल्लङ्घन कर मैं बकरे को नहीं बेच सकती।" हीरा ने इस बात को सुन कर कहा—"इस जादूगरनी को बाँधो और इसको धीमी धीमी आग में जलाओ"। अफ़सरों ने उसे बाँध लिया और जलाने की जगह ले जाने लगे। हीरा ने उस बकरे को अपने पास रख लिया और मन्त्र पढ़ पढ़ कर उस पर जल मारने लगी। हीरा भी जादू जानती थी। पर किसी को कष्ट नहीं पहुँचाती थी। उसने लाल को मनुष्य के स्वरूप में फिर बदल दिया। सारे दरबार में उसने लाल को अपना पति माना। मर्दाने कपड़े उतार दिये और ज़नाने पहन कर ज़नानख़ाने में गई।

राजपुत्री यह जान कर बहुत चकित हुई कि हीरा असल में मर्द न थी। उसे कुछ हताश भी होना पड़ा, क्योंकि उसने अपने मन में हीरा को अपना पति बनाना चाहा था। पर शीघ्र ही उसका भी विवाह लाल के साथ हो गया। इससे उसकी चिन्ता जाती रही। इस प्रकार लाल अपनी दो पत्नियों के सङ्ग रह कर सुख से अपने दिन काटने लगा।

एक दिन राजपुत्री ने हीरा से पूछा—"प्यारी बहिन, यह तो कहो कि हमारे पति लाल कौन ज़ात हैं? हमें यह तो मालूम हो गया है कि राजा ने इन्हें गोद ले लिया है, पर मेरी समझ में इनकी उत्पत्ति में कुछ रहस्य जान पड़ता है। तुम पर उनका अधिक प्रेम है। तुम इस बारे में उनसे पूछना तो"। हीरा ने कहा—"हमें उनसे ऐसी बातें पूछने से क्या प्रयोजन? क्या हम उनके प्रेम से ही सुखी नहीं हैं? क्या हम केवल उनकी सूरत देख कर ही जीवित नहीं हैं? अब हमें और ज़्यादा क्या चाहिए?" राजपुत्री ने हीरा की बात न मानी और पति की ज़ात पूछने पर उतारू हो गई। उसने हीरा से यह वादा करा के छोड़ा कि वह लाल से उसकी ज़ात के बारे में पूछे। निदान हीरा ने लाल के पास जाकर पूछा—"प्रिय पति, कृपा कर हमें अपनी ज़ात बतला दो?" इस पर लाल को बड़ा दुख हुआ। उसने ठण्डी साँस भर कर कहा—"प्यारी हीरा, इस बात को मुझसे मत पूछो। तुम्हें इस पर पछताना पड़ेगा"। हीरा ने भी ज़िद की। लाल उसे गङ्गा के किनारे ले गया और कहा—"क्या तुम्हारी अब भी मेरी ज़ात जानने की इच्छा है?" हीरा ने कहा—"हाँ"। लाल घुटनों तक पानी के अन्दर गया और कहने लगा—"क्या अब भी तुम्हारा मेरी ज़ात जानने का पक्का इरादा है?" हीरा ने कहा—"हाँ महाराज"। लाल गरदन तक गहरे पानी में गया और कहने लगा—"क्या अब भी तुम्हारी वही इच्छा है? सोच लो; अब भी

समय है। बहुत ज़्यादा देर नहीं हुई है"। हीरा ने पहले की भाँति उत्तर दिया—"हाँ"। तब लाल और भी गहरे पानी में गया। अब उसके बाल मात्र पानी के ऊपर थे। सारी देह पानी में डूब चुकी थी। उसने फिर पानी में से कहा—"हीरा, क्या अब भी तू मेरी ज़ात जानने पर उतारू है? देख, मान ले, अब भी समय है, नहीं तो तू अपना जीवन नष्ट कर देगी"। लाल की आवाज़ पानी में से बड़ी ही विचित्र और अपरिचित सी सुनाई पड़ती थी। मालूम होता था कि वह दूसरे लोक में पहुँच चुका है। पर हीरा ने अपनी हठ अब भी न छोड़ी। उसने फिर भी वही उत्तर दिया—" हाँ, मैं जानना चाहती हूँ"। इन शब्दों के निकलते ही लाल के बाल भी नज़र से ग़ायब हो गये और एक पल में जिस जगह लाल खड़ा था वहाँ एक काला साँप तैरता दिखाई दिया। कुछ देर तक वह दीखता रहा, फिर वह भी ग़ायब हो गया। हीरा, लाल के आने की बाट देखती रही, पर लाल फिर न लौटा। जब उसे अपने भविष्य का ध्यान आया तब चीख़ मार कर ज़मीन पर गिर पड़ी। लोगों ने उठ कर उसे घर पहुँचाया। हीरा अपनी मूर्खता पर बहुत पछताई और अपने आप को कोसने लगी। उसने अपने जीवन के बाक़ी दिन योंही रात दिन रो रो कर काटे:—

"जैसी हो होतव्यता तैसी उपजै बुद्धि।
होनहार हिरदै बसै बिसरि जाय सब सुद्धि॥"

रामजीदास वैश्य।

सपूत और कपूत।

(सपूत)

(१)

चन्दन, चन्द, उशीर, हिमोपल, हिमरजनी भी और कपूर,
ये सब मिल कर भी न करेंगे, मानव-हृदय-ताप को दूर।
पर सपूत जिस कुल में होगा उस का समय आपही आप,
पलट जायगा, यश फैलेगा, मिट जावेगा सब सन्ताप॥

(२)

विमल-चित्त हो, दानशील हो, शूर वीर हो, सरल-विचार,
सत्य-वचन हो, प्रेमयुक्त हो, करे सभी से सम व्यवहार।
ज्ञानी, सहृदय, हो उपकारी, और गुणी हो अपना धर्म
कभी न छोड़े, देशभक्त हो, ये सब सत्पुत्रों के कर्म॥

(३)

देश-काल को ख़ूब देख कर करते हैं थोड़े में बात,
कैसे सभी सुखी हों इस में चिन्तित रहते हैं दिन रात।
मानामान समान समझ कर करते हैं कुछ अच्छे काम,
लक्षण यही सपूतों के जो नहीं चाहते अपना नाम॥

(४)

अतिशय क्लेश सहेंगे तोभी खल को हाथ न जोड़ेंगे;
मिलता हो त्रैलोक्य राज्य भी तोभी सत्य न छोड़ेंगे।
उच्च मनोरथ को कर नरवर उस में तत्पर रहते हैं;
कार्य सिद्ध होजाने पर ही उस को प्रकटित करते हैं॥

(५)

विद्याबल, भुज-बल से धन को एकत्रित करके मतिमान
ऐसे कामों को करते हैं जिन से सब को लाभ समान।
स्वार्थ समझते हैं परार्थ को, ऐसा उनका पावन धर्म,
जैसे हो, जब हो, कुछ भी हो, कर दिखलाते वे शुभकर्म॥

(६)

जननी-जन्मभूमि की भाषा से भूषित है जिनका आस्य
ऐसे सच्चे सत्पुत्रों का खल भी नहीं करेंगे हास्य।
सुधा-सनी सी, रत्न-कनी सी, विधुवदनी सी सदा सही,
हंसवाहिनी सी यह हिन्दी भली लगेगी किसे नहीं?

(७)

सुख में, दुख में भी, अच्छे नर एक भाव से रहते हैं;
करते वही विवेक बुद्धि से जो कुछ मुख से कहते हैं।
कभी कुपथ पर नहीं चलेंगे, मर कर वे मिटजावेंगे,
कठिन कार्य कैसाही हो पर तनिक नहीं घबरावेंगे॥

(८)

देख देख कर दीनों के दुख दुखी हृदय में होते हैं;
द्वीपान्तर की बातें सुन कर मनही मन रो देते हैं।
तोभी उत्साही रहते हैं; करते हैं जग का उपकार;
यथाशक्ति तन, मन, धन से, वे रहते हैं हर दम तैयार॥

(६)

पर के गुण-गौरव को सुन कर अतिप्रसन्न हो जाते हैं ;
अपने यश को अपने मुख से कभी नहीं फैलाते हैं।
शरणागत की रक्षा करते हैं, वे देश-काल-अनुसार,
ऐसे ही सत्पुरुषों द्वारा होता है कुछ देश-सुधार ॥

(कपूत)

(१)

आलस-रत, शोकातुर, लम्पट, कपटी और सदा बलहीन,
मानस मलिन, सदा निद्रातुर, लोभी और अकारणदीन।
ऐसे सुत से क्या फल होगा ? हे चतुरानन दे वरदान,
कभी कपूत किसी को मत दे, चाहे करदे निस्सन्तान ॥

(२)

पर से प्रेम, द्रोह अपने से, करते नित्य दुष्ट-गुणगान,
गुरुजन की निन्दा कर हँसते, अपने को कहते गुणवान।
काला अक्षर भैंस बराबर, पर तो भी रखते अभिमान,
क्रोधानल में जलते रहते—यही कपूतों की पहचान ॥

(३)

जिह्वा गिर जाने के भय से नहीं बोलते अपने बोल,
भ्रम में पड़ कर पर-भाषा को समझ रहे हो अति अनमोल।
अपने और पराये का तो पशु भी कर लेता है ज्ञान ;
हा ! तुम उस से भी बढ़ कर हो, जी में सोचो हे नादान ॥

(४)

ऐसा कौन देश है जिस ने निज भाषा का कर अपमान,
पर-भाषा का सेवक बन कर, फिर भी जग में हुआ महान।
शोक यही है जान बूझ कर, बने हुए हो व्यर्थ कपूत,
हाय ! तुम्हारे सिर पर से कब उतरेगा यह आलस-भूत ॥

(५)

हाय ! काँपने लगते हैं जब हिन्दी को तुम लिखते हो ;
कान बधिर हो जाते हैं जब हिन्दी-कविता सुनते हो।
आँखें तुरत फेर लेते हो हिन्दी-वर्ण देख नादान,
इसी तरह क्या उन्नत होगा हाय हमारा हिन्दुस्तान ॥

(६)

मैली धोती गृहिणी पहने, औरों को पहनाते हार,
घर में मूस चौकड़ी मारें बाहर दावत की भरमार।
कुरसी पर बाबू बन बैठे, नहीं देखते निज घर-द्वार,
फिर भी कैसे देश-सुधारक बनते हो कहिए सरकार !

(७)

विविध साम्प्रदायिक झगड़ों में लगे हुए हो तुम दिनरात ;
किस बिरते पर फिर ज्ञानी बन करते एक ब्रह्म की बात।
झूठ बोलने से न चूकते मानों नहीं पुण्य या पाप,
हिन्दी तक भी पढ़े नहीं तुम पण्डितमन्य धन्य हो आप ॥

(८)

जिनके ही शरीर से उपजे उनकी बात न सुनते हो,
भले बुरे पर ध्यान न देते, अपने मन की करते हो।
परभाषा-भूषण से भूषित हुए भूल कर अपनी चाल,
खान-पान सब बदल दिये, पर नहीं जानते घर का हाल ॥

(९)

आग भस्म कर सारे बन को तुरत शान्त हो जाती है,
रवि से तप्त जगत होने पर वर्षा ऋतु आजाती है।
पर समुद्र को बाड़वाग्नि ज्यों खौलाताही रहता है,
त्यों कपूत का पिता जन्म भर दुख सहताही रहता है ॥

रामचरित उपाध्याय।

कुछ धातुओं और शब्दों का इतिहास।

[लेखक—बाबू जगन्मोहन वर्म्मा]

संस्कृत भाषा अत्यन्त स्वाभाविक भाषा है। उसके सभी शब्द धातुज या यौगिक हैं। सबसे पहले संस्कृत-शब्दों के यौगिक अथवा धातुज होने का पता महर्षि शाकटायनाचार्य्य को लगा। निरुक्त में यास्काचार्य्य लिखते हैं :—"नामान्याख्यातजानीति शाकटायनो वैय्याकरणः नैरुक्तसमयश्च" अर्थात् वैय्याकरण और नैरुक्तक शाकटायनाचार्य का मत है कि संस्कृत-भाषा के सब नाम आख्यातज अथवा धातुज हैं। इसी बात का समर्थन महाभाष्य में भगवान् पतञ्जलि ने—"नाम च धातुजमाह निरुक्ते व्याकरणे शकटस्य च तोकम्" लिख कर किया है, जिसका अर्थ यह है कि शाकटायनाचार्य्य ने अपने व्याकरण

और निरुक्त में नाम को धातुज कहा है। इन शाकटायनाचार्य्य ने व्याकरण और निरुक्त पर बहुत से ग्रन्थ रचे थे, जिनमें कितनेही तो लोप हो गये। पर व्याकरण, ऋक्तन्त्र, धातुपाठ, उणादि आदि अब तक मिलते हैं।

भारतवर्ष के विद्वानों की यह चाल थी कि समय समय पर वे प्राचीन ग्रन्थों का सुधार या संस्करण किया करते थे और अत्यन्त भेद पड़नेही पर वे नवीन ग्रन्थों की रचना करते थे। स्वयं वेदों की संहिताओं का कई बार सङ्कलन हुआ है। और वास्तव में किसी जाति की उन्नति के लिए यही उपयुक्त भी है। यद्यपि ऐसा करना विद्या और विज्ञान के लिए लाभकारी अवश्य है, पर ऐतिहासिक विचारों के लिए हानिकारक है। ऐतिहासिक तथ्य ढूँढने वाला पीछे की मिली हुई बातों को देख कर चक्कर में आसकता है और ग्रन्थकर्ता के काल को सैकड़ों वर्ष पीछे घसीट सकता है। इसी से भारतवर्ष के ग्रन्थकारों के विषय में पाश्चात्य विद्वानों को भ्रम हुआ है, जो सर्वथा अनिवार्य्य है।

धातुपाठ में धातुओं का संग्रह है। इन धातुओं की यद्यपि गणना कर दी गई है पर इनकी संख्या वास्तव में कितनी है, इसका निश्चय आजतक नहीं हुआ। किसी ने २४९०, किसी ने १७५०, किसी ने कुछ, किसी ने कुछ मानी है। प्राचीन आचार्य्यों की इस विषय में यही शिक्षा रही है :—"धातुं ज्ञात्वा प्रत्ययं कल्पनीयं प्रत्ययं ज्ञात्वा धातुः कल्पनीयः"। अर्थात् यदि धातु का पता चल जाय तो प्रत्यय की कल्पना कर लेनी चाहिए, और यदि प्रत्यय का पता लग जाय तो धातु की कल्पना कर लेनी उचित है।

इन धातुओं को आर्य्यों ने कहाँ से लिया, इस विषय में प्राचीनों ने कोई मत नहीं प्रकट किया है। पर आधे से अधिक धातु अनुकरणजन्य हैं, जिससे अनुमान होता है कि आर्य्यों ने धातुओं को शब्दों के अनुकरण से लिया है। इन्हीं धातुओं से आर्य्य-भाषा निकली थी, जिससे समस्त भाषायें, जिनका सम्बन्ध आर्य्य-भाषा से है, निकलीं। आर्य्य लोग यद्यपि आदिम काल में सारस्वत प्रदेश में रहते थे, पर, पीछे से, जब उनकी संख्या बढ़ी तब कश्यप-सागर से श्रीगङ्गा-यमुना के किनारे तक फैल गये; इसी से इनकी प्रान्तिक भाषाओं में विभेद पड़ गया। स्वयं व्याकरण में प्राच्य, प्रतीच्य आदि देशों के प्रयोग-सम्बन्धी सूत्रों को देखने से इसका अनुमान होता है। धातुओं के अर्थों में भी क्रमशः अन्तर पड़ने लगा। शब्दों के अक्षरों में भी अभ्यास करते करते विपर्य्यय हो गया। कहीं किसी धातु का आख्यात रहा, कहीं उसके विकार का ही प्रयोग अवशेष रह गया। यास्काचार्य्यजी निरुक्त में 'शवति' धातु पर लिखते हैं—"शवतिः गतिकर्म्मा कम्बोजेषु विकार इत्यार्य्याणाम्" अर्थात् शवति (शव) धातु 'गति' अर्थक है। उसका प्रयोग कम्बोज में, जो पारस का एक प्रान्त विशेष है, होता है। पर आर्यों की भाषा में इस धातु से बने हुए केवल 'शव' शब्द का प्रयोग अवशेष रह गया है।

वर्तमान फ़ारसी भाषा में अरबी-शब्द अधिक मिल गये हैं। फिर भी शुद्ध फ़ारसी भाषा पुरानी फ़ारसी वा ज़न्द भाषा से निकली है। इस लिए उसका अधिक सम्बन्ध संस्कृत से है। यह शवति (शव) धातु, जिसका कम्बोज में प्रयोग होना यास्काचार्य्य ने लिखा है, फ़ारसी धातु (شدن) का मूल कारण है। इसका अर्थ यद्यपि होना भी है तथापि फ़ारसी के प्रसिद्ध कवि सादी ने, जो बारहवीं शताब्दी में हुए थे, इसका प्रयोग, अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ गुलिस्ताँ में, गति के अर्थ में किया है :—

شد غلامے کہ آب جو آرد
آبجو آمد و غلام ببرد

अर्थात् सेवक नदी का पानी लेने गया। नदी की बाढ़ आई और सेवक को बहा ले गई।

आज हम कुछ शब्दों का इतिहास लिखने का साहस, इसी आधार पर, करते हैं और आशा करते हैं कि वह विद्यानुरागियों के लिए रुचिकर होगा।

पत्=गिरना।

जब कोई पदार्थ ऊपर से गिरता है तब उसके गिरने से 'पट वा पत' इत्यादि के सदृश शब्द होता है। इस प्रकार पदार्थों के गिरने में बार बार शब्द होते देख आर्य्यों ने 'पत्'* धातु को गिरने के अर्थ में ग्रहण किया। जब उनको किसी पदार्थ के गिरने का सङ्केत करना होता था तब वे 'पत्' का प्रयोग करते थे। काल-भेद से इसके पतित, अपतत्, पपात आदि आख्यात-रूप कालान्तर में हो गये। फिर उपसर्गों द्वारा इसके अर्थों में विशेषता उत्पन्न हुई।

इसी पत् धातु से पत्र शब्द बना, जिसका अर्थ पत्ता है। पत्ता सूखने या टूटने पर पेड़ से गिरता है। इसी लिए आर्य्यों ने पत्ते को पत्र कहना प्रारम्भ किया। पीछे पत्र शब्द गिरने के भाव से अलग हो कर आकृति में लगाया गया और सब पदार्थ जो पतले, लम्बे और चौड़े होते थे 'पत्र' शब्द के वाच्य ठहराये गये। यहाँ तक कि भोजपत्र (भूर्जपत्र), जो एक वृक्ष की छाल है, पत्र शब्द से ग्रहण किया जाने लगा"। चिड़ियों के परों को पत्ते के आकार का देख-कर पत्र कहने लगे और बाण में पंख लगाने से उसे पतत्री कहना प्रारम्भ किया।

पूर्व-काल में जब लोगों ने बैठ कर खाना खाना प्रारम्भ किया तब वे उसे पत्ते पर रख कर खाते थे, अथवा वस्तुओं को ही पत्ते पर रखते थे। पीछे ज्यों ज्यों आवश्यकता बढ़ी, लोग बहुत से पत्तों को कुश से डोभ कर दोना, पत्तल आदि बनाने लगे। ऐसा करने में उनको कई पत्तों को तले ऊपर रख कर सीना पड़ता था। इसी लिए वे पत्तों की तह को भी पत्र कहने लगे। पीछे इसी पत्र से आद्यन्त विपर्य्यय द्वारा भाषा का 'परत' बना, जो तह के अर्थ में प्रयुक्त होता है। वे लोग उन पत्तों से बने हुए बर्तनों को पात्र कहते थे। बहुत पीछे जब उन लोगों ने मिट्टी आदि के पात्र बनाना प्रारम्भ किये तब उन्हें भी, तदाकार अथवा तत्प्रयोजन-साधक होने से, पात्र कहना प्रारम्भ किया। इस प्रकार होते होते पात्र शब्द बर्तन के अर्थ में रूढ़ हो गया।

पात्रों से वे लोग पदार्थों को ढाँक दिया करते थे। इससे पात्र शब्द पीछे से ढक्कन आदि आवरण-कारक वस्तुओं के लिए भी प्रयुक्त होने लगा। स्वयं संहिता में ('हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्'—'तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये') वह ढक्कन के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इन ढक्कनों से ढाँके हुए पदार्थों की रक्षा होती थी। इसी भाव को ले कर पीछे 'पात्र' के दो भिन्न वर्णों को पृथक् करके 'पा' और 'त्र' दो धातुओं की कल्पना की गई। ये दोनों ही 'रक्षा' के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं और इनसे कितने ही शब्द संस्कृत-भाषा के निकले हैं।

इसी पत् धातु से 'पतन' शब्द बनता है, जिसका अर्थ गिरना है। इस शब्द के 'त' के स्थान में कहते कहते 'र' हो गया और फिर कालान्तर में 'रकार' का स्वर भी दूर हो गया। इस प्रकार 'पतन' से 'पर्ण' शब्द बन गया और उसका वाच्य 'पत्ता' ठहरा, क्योंकि पत्ता सूखने या टूटने पर वृक्ष से गिरता है। पीछे 'पर्ण' शब्द ऊपर से गिरने के भाववाले पदार्थों के अर्थ में आया और सूर्य्य की किरणों को लोगों ने, ऊपर से नीचे अथवा आकाश से पृथिवी पर आते देख, 'सुपर्ण' कहना प्रारम्भ किया। केवल भले लगने अथवा लाभदायक होने के कारण, उसके लिए प्रयुक्त 'पर्ण' शब्द के आगे 'सु' उपसर्ग बढ़ा दिया। वेदों में 'सुपर्ण' शब्द सूर्य्य की किरणों के लिए प्रायः आया है। निघण्टु में कश्यप प्रजापति ने 'सुपर्ण' शब्द का पाठ 'रश्मिनाम' में किया है। लोगों ने चिड़ियों को ऊपर से नीचे उतरते देख उनको भी 'सुपर्ण' कहना प्रारम्भ किया। बहुत पीछे 'सुपर्ण' शब्द का अर्थ उड़नेवाला हो गया और 'पर्ण'* उड़ने के अर्थ में काम आने लगा।

* पत्, पथ्, पद्, पट् इत्यादि इसी के अनुकरण और समानार्थक हैं।

* इसी 'पर्ण' से फ़ारसी भाषा का परीदन (پریدن) धातु

सुपर्ण को लोगों ने आकाश में नित्य पक्षी के समान पूर्व से पश्चिम को उड़ कर जाते देखा और उसे भी सुपर्ण कहना प्रारम्भ किया। वेदों में कई जगह 'सुपर्ण' शब्द का प्रयोग सूर्य्य आदि के अर्थ में हुआ है।

चिड़ियों के उड़ने में प्रधान साधन उनके पर हैं। परों का आकार भी पत्तों का सा होता है। इसी लिए परों को भी पर्ण कहने की प्रथा चली। पत्ते पतझड़ के समय झड़ जाते हैं और पर भी कुरेज़ पर गिरते हैं। पतझड़ के पीछे फिर नये पत्ते निकलते हैं और थोड़े दिनों में कुल पेड़ पत्तों से ढक जाता है और कुरेज़ के बाद चिड़ियों का सारा बदन भी परों से ढक जाता है। इस तरह 'पर्ण' पीछे से एक स्वतन्त्र धातु बन गया और उसका व्यवहार आच्छादन करने के अर्थ में हो गया।

पत्ता या कोई और दूसरी चीज़ जब ऊपर से गिरती है तब वह एक पदार्थ से पृथक् हो कर दूसरे पदार्थ को प्राप्त होती है। इन दोनों भावों को ले कर 'पत्' से वर्ण-विकार द्वारा दो और धातु पद् और पट् की उत्पत्ति हुई, जिनमें पहले का अर्थ प्राप्त होना और दूसरे का अर्थ पृथक् होना है। ये दोनों धातु वास्तव में 'पत्' के रूपान्तर हैं।

इसी पत् † धातु से वर्णविकार और वर्णविपर्य्यय द्वारा पठ् और तप् दो और धातुओं की उत्पत्ति हुई, जिनमें पठ् का अर्थ पढ़ना और तप् का अर्थ गर्म होना है। आकाश से मेंह आदि के गिरने में पट पट या पठ पठ का तुमुल शब्द होता है। इसलिए पठ् धातु पहले शब्द करने के अर्थ में आया; पीछे पढ़ने और पुनः पुनः वाक्योच्चारण के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। सूर्य्य की किरण के साथ ही साथ गर्मी भी सूर्य्य से पृथिवी पर आती है। अतएव उसके लिए विपर्य्यय द्वारा पात की जगह ताप शब्द व्यवहृत होने लगा। फिर पीछे * 'तप्' का प्रयोग गर्मी पहुँचाने के अर्थ में भी होने लगा। इसी प्रकार 'पत्' से 'पथ्' धातु भी विकार द्वारा बना, जो गति आदि अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। इसी पथ् धातु से 'पथ' शब्द भी बना है, जिसका अर्थ राह है, क्योंकि राह ही पर चल कर लोग एक स्थान से दूसरे स्थान को प्राप्त होते हैं।

इसी प्रकार 'पत्' धातु से पत्, पथ्, पद्, पट्, पठ्, आदि के सदृश अनुकरण-रूप और भी कितने ही धातुओं और शब्दों की सृष्टि कालान्तर और अवस्थान्तर में हुई है।

पिट्सबर्ग के कारख़ाने।

(२)

वेस्टिंगहाउस एलेक्ट्रिक ऐंड मैन्युफ़ैक्चरिंग कम्पनी।

यह कम्पनी नगर से १२ मील की दूरी पर पूर्व में है। अमेरिका के बिजली के कारख़ानों में यह सर्वप्रधान है। सन् १८८५ में इसे जार्ज वेस्टिंगहाउस ने नगर के एक छोटे से मकान में स्थापित किया था। उस समय इसमें २०० मनुष्य काम करते थे। १८९५ में यह इस वर्तमान विशाल स्थान में उठ कर आया और आज ५५ एकड़ भूमि इसने व्याप्त कर रक्खी है। इसमें, इस समय, १५००० मनुष्य काम करते हैं, जिनमें क़रीब दो हज़ार के

निकला है जिस का अर्थ उड़ना है और जिससे फ़ारसी के परिन्दा, परदा आदि शब्द निकले हैं। स्वयं 'पत्' धातु के भी उड़ने के अर्थ में प्रयोग होने का पता 'पताका' शब्द से चलता है।

† इसी 'पत्' से फ़ारसी का फितादन (افتادن) भी निकला है, जिसका अर्थ गिरना है।

* सूर्य्य की गरमी को जगत् में व्याप्त देख तप् के 'त्' का लोप कर अप् बना, जिसका अर्थ व्याप्त होना है। अप् से वप् उत्पन्न हुआ है, क्योंकि बोने के समय बीज को खेत भर में पहुँचाना पड़ता है।

लड़कियाँ होंगी। प्रतिमास तीस लाख रुपया वेतन मज़दूरों को बाँटा जाता है। हर महीने ८०० गाड़ियां माल की तैयार होकर देश-देशान्तर में बिकने को जाती हैं। इस कारख़ाने का तमाम काम बिजली के द्वारा होता है, जिसके लिए १२००० घोड़े की ताक़त इञ्जिनघर में तैयार होकर रोज़ बिजली बनाने में ख़र्च होती है। इसके इञ्जिनघर के लिए ५०० टन कोयला रोज़ ख़र्च होता है।

इस कारख़ाने की शाखायें देश के प्रधान प्रधान नगरों में हैं। इसका लैम्प बनाने का कारख़ाना न्यूजेरसी में है। कनाड़ा, आस्ट्रिया, इँगलैंड, फ्रान्स, इटली, रशिया, जर्मनी और साउथ अमेरिका में भी इसकी शाखायें हैं। इन कारख़ानों में निम्नलिखित चीज़ें तैयार होती हैं:—बिजली की रेल-गाड़ियाँ, सब प्रकार के डाइनिमो और मोटर, आकाश की बिजली को पकड़नेवाले सब प्रकार के औज़ार (जिनके द्वारा बिजली से मकान को किसी प्रकार की हानि नहीं होने पाती) बिजली से जलनेवाले सब तरह के लैम्प, खानों में चलनेवाली ख़ास क़िस्म की रेल-गाड़ियाँ, सड़क में दौड़नेवाली ट्राम-गाड़ियाँ, बिजली से गरम किये जाने वाले चूल्हे आदि, बिजली के तरह तरह के पंखे और तार इत्यादि।

इस कम्पनी का काम अनेक विभागों में बँटा हुआ है। इनमें से मैं दो विभागों का विशेष वर्णन करूँगा, क्योंकि ये विभाग ऐसे हैं जिनसे मज़दूरों को अधिक लाभ होता है। एक तो रिलीफ डिपार्टमेन्ट (Relief Department) दूसरा शिक्षा-विभाग (Educational Department) रिलीफ विभाग का काम है कि कारख़ाने के उन काम करनेवालों को सहायता पहुँचावे जो कारख़ाने में काम करते समय या कारख़ाने के बाहर ज़ख़्मी हो गये हों अथवा किसी रोग के शिकार हो गये हों। इस विभाग से सम्बन्ध रखनेवाला एक बड़ा अस्पताल कारख़ाने में है। उसमें सब प्रकार की औषधियाँ और औज़ार हैं। कई डाक्टर रोगियों की देख-भाल के लिए नियुक्त हैं। इस विभाग का मेम्बर होने के लिए डेढ़ रुपया महीना देना पड़ता है। मेम्बर होने से बीमार होने या चोट लगने पर क़रीब बीस रुपये प्रति सप्ताह इस विभाग से ख़र्च को दिये जाते हैं, जिससे बीमार के सम्बन्धी भूखे न रहें। शिक्षा-विभाग में नामी नामी शिक्षक विद्युच्छास्त्र के ज्ञाता नियुक्त हैं। इसमें उन कर्मचारियों को बिजली की शिक्षा दी जाती है जो कारख़ाने में काम सीखने आते हैं। यहाँ प्रसिद्ध प्रसिद्ध विश्वविद्यालयों के ग्रेजुएट आते हैं और दो साल तक मज़दूरों के साथ काम करके तजरिबा हासिल करते हैं। सप्ताह में कुछ घंटों के लिए स्कूल जाना पड़ता है जहाँ अपने अपने काम का ब्योरा देना पड़ता है और कठिनाइयों को शिक्षक द्वारा हल करना पड़ता है। इस समय इस विभाग में क़रीब ५०० ग्रेजुएट हैं। इन्हें कारख़ाने के प्रायः सभी विभागों में काम करना पड़ता है। तब इसके बाद इसी कारख़ाने में इन्हें ऊँचे दरजे का काम मिलता है, अथवा बाहर की शाखाओं में ये भेज दिये जाते हैं, अथवा एजंट के रूप में माल बेचने पर ये नियुक्त होते हैं। इसी विभाग में आज कल इस नोट का लेखक भी काम कर रहा है। पिट्सबर्ग-विश्वविद्यालय के साथ रियायत की गई है कि यहाँ के विद्यार्थी, ग्रेजुएट होने के पूर्व ही, तीसरे वर्ग में काम सीखने के लिए ले लिये जाते हैं। विश्वविद्यालय ने यह नियम कर दिया है कि तीसरे वर्ष के इन्जीरिङ्ग के विद्यार्थी छः महीने कालेज में पढ़ें और बाक़ी छः महीने जाकर इन बड़े बड़े कारख़ानों में काम सीखें। इससे विद्यार्थियों को ग्रेजुएट होने के पूर्व ही अच्छा तजरिबा हो जाता है। इन विद्यार्थियों को क़रीब नौ आने फ़ी घंटा मज़दूरी मिलती है और दिन में पौने दस घंटे काम करना पड़ता है। इतवार को दिन भर की और शनिवार को आधे दिन की छुट्टी मिलती है। इस प्रकार प्रति विद्यार्थी को प्रति मास १२०) या १२५) रुपये मिल जाते हैं। संसार के और किसी भी देश में काम सीखने की मज़दूरी नहीं मिलती। इँगलैंड

में तो काम सीखनेवाले विद्यार्थी को अपनी तरफ़ से उलटा कुछ भेंट करना पड़ता है। यह अमेरिका ही है जहाँ के कारख़ानों के मालिक यह जानते हैं कि काम सीख कर ये विद्यार्थी कारख़ाने को अनेक प्रकार से लाभ पहुँचावेंगे। चूँकि मैं बिजली की विद्या सीखता हूँ, इसलिए मुझे कालेजवालों ने इस कारख़ाने में काम करने भेजा है। गत वर्ष दो बङ्गाली विद्यार्थियों को, जो रसायन-शास्त्र सीखते थे, इसी कालेज ने कारनेगी की प्रसिद्ध स्टील कम्पनी में काम करने भेजा था। उन में से एक तो इस वर्ष ग्रेजुएट हो गये हैं; दूसरे यथेष्ट धन पास न होने से इस वर्ष भी कालेज न जाकर काम करके धन कमा रहे हैं। इन्हें १८० रुपया प्रतिमास मिल जाता है। अगले साल कालेज जाकर ये मेरे साथ ग्रेजुएट होंगे। पिट्सबर्ग में पढ़ने का यही बड़ा सुभीता है। यहाँ इतना अधिक काम है और इतने कारख़ाने हैं कि मेहनती और स्वतन्त्रताप्रिय विद्यार्थी को काम की कमी नहीं रहती। मेरे साथ इन कारख़ानेवालों ने बड़ा ही अच्छा सलूक किया है। इन्हें मालूम है कि मैं डिग्री लेकर अगले साल देश को वापस जाऊँगा। इसलिए कारख़ाने में छः महीने ही रह सकता हूँ। ये मुझे हर हफ़्ते एक विभाग से दूसरे विभाग में भेज देते हैं, जिसमें मैं बिजली के सम्बन्ध में मुख्य मुख्य सभी बातों को सीखलूँ। दो महीने से मैं यहाँ हूँ। अब तक चार विभागों में मैं हो आया हूँ। अब अनुसन्धान-विभाग (Testing) में काम करता हूँ। इस विभाग में तरह तरह के बिजली के औज़ारों के दोषों का पता लगाना पड़ता है और यह देखना पड़ता है कि इनकी तरक़्क़ी कैसे हो सकती है। यह काम बड़ा ही मनोरञ्जक और शिक्षाप्रद है। अब मेरा इरादा बाक़ी समय तक यहीं रहने का है।

भारत के विद्यार्थियों को पिट्सबर्ग का बहुत कम हाल मालूम है। इसीलिए मैं यहाँ के कारख़ानों का हाल लिखता हूँ, जिससे भारत के स्वतन्त्रता-प्रिय और मेहनती विद्यार्थी यहाँ आवें और विद्योपार्जन भी करें और धन भी कमावें। साथही तजरिबा भी कारख़ानों के चलाने का हासिल करें, जिसकी देश में इस समय सब से अधिक आवश्यकता है। मैंने एक पत्र द्वारा विश्वविद्यालय के अध्यक्ष से पूछा था कि वे भारत से आनेवाले हिन्दू-विद्यार्थियों को कहाँ तक सहायता दे सकेंगे। उन्होंने उत्तर दिया कि प्रति विद्यार्थी के विषय में यह देख कर कि उसे कहाँ तक सहायता की ज़रूरत है सहायता दी जावेगी। इसलिए देश के युवक विद्यार्थियों से मेरी अपील है कि वे यहाँ आकर इस देश के उन गुणों को प्राप्त करें जिनसे यह बड़ा हुआ है और लौट कर अपने देश को भी बड़ा बनाने का प्रयत्न करें। पर जो विद्यार्थी यहाँ आवें वे पहले ८०० या १००० रुपया लेकर आवें। नहीं तो बड़ा कष्ट उठाना पड़ेगा। आने के पूर्व यदि मुझे लिखें तो मैं यथा-शक्ति सब प्रबन्ध कर दूँगा।

जगन्नाथ खन्ना
(पिट्सबर्ग, अमेरिका)

"पुराना जाता है, नया आता है"

पुराना जाता है और नया उसकी जगह क्यों आता है, इसका ठीक उत्तर चाहे जो हो, पर हम यह अवश्य कह सकते हैं कि जैसे पृथ्वी का घूमना एक प्राकृतिक नियम है, अथवा जैसे गुरुत्वाकर्षण के नियम के अनुसार ऊपर को फेंकी गई वस्तु नीचे गिर पड़ती है, वैसे ही प्राचीन का जाना और नवीन का आना भी एक प्राकृतिक नियम सा हो गया है। संसार के जुदे जुदे देशों के इतिहासों से यह प्राकृतिक नियम बहुत साफ़ साफ़ मालूम पड़ता है। इतिहास देखने से पता लगता है कि जो देश आज उन्नति के उच्च शिखर पर चढ़ा हुआ है वही कल अवनति के खड्ड में गिरा हुआ दिखलाई पड़ता है और कोई अन्य देश उन्नति के ऊँचे शिखर पर चढ़ा हुआ है। जो धर्म आज असंख्य मनुष्यों की

जल-विहार।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद।

आत्माओं को शान्ति देनेवाला है वही धर्म कल सिर्फ़ पोथियों में लिखा दिखलाई पड़ता है, और उसके स्थान पर हम किसी दूसरे ही धर्म का प्रचार देखते हैं। जो साहित्य और भाषा आज ज़िन्दा कहलाती है वही कल मुर्दा भाषा के नाम से पुकारी जाती है। किं बहुना, संसार की प्रायः सभी बातों में यह प्राकृतिक नियम दिखलाई पड़ता है। प्रकृति के इस नियम को, कुछ प्राचीन देशों के उदाहरण देकर, समझाने का हम यत्न करते हैं।

जो ईरान पहले संसार की दौड़ में सबके आगे बढ़ा हुआ अपनी विजयपताका फहरा रहा था वही ईरान आज मृत्युशय्या पर पड़ा हुआ अन्तिम श्वास ले रहा है। ईरान की न वह प्राचीन सभ्यता है, न वह विश्वविजयिनी शक्ति है और न वह धर्म ही है। ईरान के सूर्य्य-मन्दिर, अग्नि के उपासक, हरमुज्द के भक्त, दारा और कैखुसरो के वंशज, ज़िन्दभाषा, और पारसी-संस्थायें अब कहाँ हैं ? आज ईरान में सूर्य्य और अग्नि-मन्दिरों की जगह मसजिदें; हरमुज्द और ज़रतुष्ट की जगह अल्लाह तथा मुहम्मद; कैखुसरो आदि के सिंहासन पर दुर्रानी और तातारी सरदारों की सन्तान; ज़िन्द भाषा की जगह फ़ारसी और पारसीक सभ्यता के स्थान पर अरबी सभ्यता के चिह्न पाये जाते हैं।

इसी तरह ईजिप्ट में भी महान् परिवर्त्तन हुए हैं। ईजिप्ट की प्राचीन कौण्ट जाति, पिरामिड्स बनवाने वाले पुराने सम्राटों की सन्तान, मिश्र के पुराने धर्म और देवी-देवता सब काल के करालगाल में लोप होगये। उनके स्थान पर आज कल ईजिप्ट में अरब, सूडानी और हबशी बसते हैं और अँगरेज़ शासन करते हैं। मिस्र के पुराने धर्म, वहाँ की सामाजिक संस्था और राज्यप्रणाली का कोई चिह्न यहाँ नहीं। अरब, तुर्क, फ़रासीसी और अँगरेज़ लोगों की बदौलत सब का सब नष्ट होगया।

ग्रीस और रोम में भी कुछ कम परिवर्तन नहीं हुए। ये दोनों देश योरप में उस समय भी बहुत सभ्य दशा में थे जब योरप की दूसरी जातियाँ बिलकुल ही असभ्य और जङ्गली थीं। रोम और ग्रीस वाले उस समय भी शहरों में रहते थे, क़ानून बनाते थे, राज्यशासन की प्रणाली जानते थे और व्यापार-वाणिज्य भी करते थे, जब योरप की अन्य जातियाँ लड़ा भिड़ा करती थीं और इधर से उधर जङ्गलों में घूमा करती थीं। इन दोनों देशवालों ने प्राचीन समय में लग भग समस्त संसार को जीत कर अपने अधीन कर लिया था। किन्तु अन्त में ये दोनों देश भी काल के अनियमित चक्र में पड़ कर चकनाचूर होगये। जिस रोम और ग्रीस के नाम से किसी समय समस्त संसार काँपता था वही रोम और ग्रीस आजकल योरप में तीसरे दरजे की शक्तियाँ समझे जाते हैं। इन दोनों देशों की वर्तमान सभ्यता का प्राचीन सभ्यता से इस समय कुछ भी सम्बन्ध नहीं दिखलाई पड़ता। आज कल इन दोनों देशों में न प्राचीनों का सा साहस और वीरता है, न पुरानी सामाजिक और धार्मिक संस्थायें हैं, न पुराने त्यौहार तथा उत्सव हैं, न पुरानी राजनैतिक प्रथा है, न पुरानी भाषा है, न पुराना साम्राज्य है, और न पुराने सम्राटों का वंश है। ईसाई धर्म के प्रचार, अपने दुराचार, गौथों, वाण्डालों और तुर्कों के आक्रमण और राज्य ने इन दोनों देशों की प्राचीन सभ्यता का नाश करके नवीन सभ्यता की नीव डाली है।

भारतवर्ष में भी ठीक इसी तरह का परिवर्तन हो रहा है। वैदिक युग गया, पौराणिक युग आया। पौराणिक युग गया, तन्त्रों का प्रचार हुआ। तन्त्रों को मिटा कर बौद्ध और जैनियों ने ज़ोर पकड़ा। बौद्ध और जैन धर्म को हटा कर स्वामी शङ्कराचार्य ने नवीन हिन्दू-धर्म की बुनियाद डाली। यहाँ के पुराने रहने वालों को निकाल कर आर्यों ने अपना राज्य स्थापित किया; आर्यों का पराजय करके मुग़लों और पठानों ने अपना प्रभुत्व जमाया। अँगरेज़ों ने मुसलमानों को भी उन आर्यों के समकक्ष कर दिया, जिनको जीत कर मुसलमानों ने ग़ुलाम और काफ़िर कहा था। वेद की भाषा

को हटा कर संस्कृत-भाषा प्रचलित हुई। कुछ समय बाद संस्कृत मुर्दा भाषा मान ली गई और उसके स्थान पर प्राकृत का प्रचार हुआ। अब प्राकृत के स्थान पर हिन्दी, बँगला, गुजराती, पञ्जाबी आदि प्राकृत के अनेक भेद बोले और लिखे जाते हैं।

पञ्चभूतात्मक पञ्च प्राणवाले जीव जो इस चल और असार संसार में एक से न रहें तो कौन अचरज की बात है, जब बड़े बड़े अटल पहाड़, सैकड़ों कोस के मैदान और जङ्गल भी काल पाकर और के और होजाते हैं। महाकवि भवभूति ने इस प्राकृतिक परिवर्तन का चित्र, एक जगह, उत्तर-राम-चरित में, इस तरह खींचा है:—

> पुरा यत्र स्रोतः पुलिनमधुना तत्र सरितां
> विपर्यासं जातो घनविरलभावः क्षितिरुहाम्।
> बहोर्दृष्टं कालादपरमिव मन्ये वनमिदं
> निवेशः शैलानां तदिदमिति बुद्धिं द्रढयति॥

दण्डक-वन में जहाँ पहले सोते थे वहाँ नदियों के प्रवाह के कारण अब पुलिन बन गये। घने और बिरले जङ्गलों में उलट पलट हो गया। जहाँ घना जङ्गल था वहाँ अब कहीं दो एक पेड़ रह गये और जो बिलकुल पट मैदान था वह घने जङ्गल में बदल गया—इत्यादि।

अस्तु। सारांश यह कि प्राचीन को मिटा कर नवीन का प्रचार सृष्टि का एक अखण्ड नियम हो गया है। इस नियम का मूल कारण यह है कि लोगों में नई बात की चाह विशेष रहती है और इसी चाह के बढ़ने का नाम तरक्की और उन्नति है। योरप और अमेरिका इन दिनों उन्नति के छोर को पहुँच रहे हैं। इसी से इस समय वे सभ्यता के शिरोमणि और संसार के अग्रगण्य माने जाते हैं। हमारे हिन्दुस्तानी भाई परिवर्तन से चिढ़ते और पुराने लकीर के फ़क़ीर बने रहना ही धर्म समझते हैं। तब क्या आशा है कि ये भी कभी उन्नति करेंगे। बुद्धिमान् राजनीतिज्ञों का सिद्धान्त है कि दुनिया दिन दिन तरक्की कर रही है। समुद्र की लहर के समान उन्नति की भी तरल तरङ्गें जुदे जुदे समयों में जुदे जुदे देशों में आती जाती रहती हैं। इसमें सन्देह नहीं कि भारतवर्ष में ही सब से पहले तरक़्क़ी हुई। इसका कारण यह है कि देशों के समूह में हिन्दुस्तान सबसे पुराना है। इसीसे उन्नति, सभ्यता, तथा समाज-ग्रन्थन का बीज सबसे पहले यहीं बोया गया। मिस्र, यूनान और रोम आदि देश, जो प्राचीनता में भारत के टक्कर के हैं, सभी ने सभ्यता और उन्नति का अङ्कुर यहीं से ले लेकर अपनी अपनी भूमि में लगाया और उसको सींच सींच कर अति विशाल वृक्ष किया। वह वृक्ष यहाँ तक बढ़ा कि पृथ्वी के आधे हिस्से तक उसकी डालियाँ फैल गईं। रोम का राज्य किसी समय प्रायः समस्त योरप, अफ्रिका और एशिया में फैला हुआ था। ग्रीस और रोम की उस पुरानी उन्नति का लेशमात्र भी अब कहीं उन देशों में बाक़ी नहीं है। किन्तु विद्या, कला, सभ्यता, विज्ञान और भिन्न भिन्न प्रकार के दर्शनशास्त्रों में जो उन्नति भारत, यूनान तथा रोम ने की वह भाषान्तरित होकर अब तक बनी है। जिस बात का आविष्कार एक देश में होता है उसका बीज नष्ट नहीं होता। वह एक देश से दूसरे देश में ज़रूर पहुँच जाता है और वहाँ नया मालूम होने से लोग उसे बड़े चाव से ग्रहण करते हैं। पर यह स्मरण रहे कि जो उन्नति—सभ्यता तथा शिल्प-विज्ञान में—भारत तथा यूनान और रोम ने की थी वह बहुत ही अल्प थी। इस समय पहले से कई गुनी अधिक उन्नति योरप और अमरीका में देखी जाती है। तो यह सिद्ध हुआ कि दुनिया दिन दिन तरक़्क़ी कर रही है और इस तरक्क़ी की बुनियाद सदा नई बात की चाह है।

मतलब यह कि परिवर्त्तन, जिसके हमारे हिन्दू भाई अत्यन्त विरोधी हैं, इस अस्थिर जगत् का एक मुख्य धर्म या गुण है। नये लोग इस परिवर्तन से चिढ़ते नहीं, बल्कि इसे तरक्क़ी की एक सीढ़ी मानते हैं। हमारे अभाग्य से भारतवर्ष में परिवर्तन को लोग यहाँ तक बुरा समझते हैं कि दिन दिन अत्यन्त गिरी दशा को पहुँच कर भी हम परिवर्तन

की ओर मन नहीं किया चाहते। जैसी विद्या की तरक़्क़ी और शान्ति का समय इस बीसवीं शताब्दी में हमारे देश में हुआ है, वैसा किसी दूसरे देश में होता तो वह देश न जाने कितनी उन्नति कर डालता। परिवर्तनविमुखता के कारण से ही इस समय देश में विद्या-वृद्धि दाल में नमक की तरह मालूम होती है और जो धीमा क्रम यहाँ के लोगों में देखा जाता है उससे यही प्रतीत होता है कि भारत का भाग्योदय होना यदि असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य है। अस्तु, चाहे जो हो, जो हम अब हैं दस वर्ष पहले न थे; थोड़े दिन के बाद कुछ और के और हो जायँगे; क्योंकि यह संसार कभी एक सा नहीं रहा। एक बात, जो हमें भारत के भावी भाग्योदय की प्रबल आशा दिलाता है, यह है—

यूनानो मिस्र रोमा सब उठ गये जहाँ से।
बाक़ी है अब तलक भी नामोनिशां हमारा॥

जनार्दन भट्ट।

जुगनू।*

जब किसी साधारण विद्या-बुद्धि-बल वाले व्यक्ति का उल्लेख किया जाता है तब वक्ता या लेखक महाशय जुगनू का नाम लेते हैं। समझ में नहीं आता कि हम लोग जुगनू को क्यों इतना तुच्छ और उपहास का पात्र समझते हैं। शायद चन्द्र, सूर्य आदि बड़े बड़े प्रकाशों का संसार में होना ही जुगनू के इस अपमान का कारण है। अच्छा, जुगनू के थोड़ा हो या बहुत, कुछ प्रकाश है तो। लेकिन हममें? हम में तो कुछ भी नहीं है। इस अन्धकार में पृथ्वी पर जन्म लेकर अपने प्रकाश से मैंने किसे राह दिखलाई? मुझे देख कर किसने दुस्तर मैदान में, दुर्दिन में, विपत्ति में, अन्धकार में कहा "आओ भाई, चलो; वह देखो प्रकाश हो रहा है; उसी प्रकाश को देख कर रास्ता चलें"।

यह संसार घोर अन्धकारमय है। इसमें हाथ मारा नहीं सूझता। बिना प्रकाश के राह चलना बहुत ही कठिन है। जब सूर्य-चन्द्र रहते हैं तब हम लोग राह चलते हैं, नहीं तो नहीं चल सकते। ये छोटे छोटे तारागण भी आकाश में ऊपर उठ कर कुछ प्रकाश करते हैं, लेकिन दुर्दिन में वे भी नहीं देख पड़ते। चन्द्र-सूर्य भी सुदिन के साथी हैं। दुर्दिन में, कुसमय में, जब मेघ की घटा, बिजली की छटा—एक तो रात उस पर घोर वर्षा—होती है तब कोई नहीं देख पड़ता। मनुष्य-निर्मित यन्त्र की तरह वे भी कहते हैं "Hora non numero nisi serenas!" जुगनू, केवल तुम्हीं,—क्षुद्र, क्षुद्रकान्ति, सहज ही मारे जाने वाले, सर्वदा मरे हुए, तुम्हीं, उस अन्धकारमय दुर्दिन में, वर्षा की भीषण रात्रि में, दिखाई देते हो। सच पूछो तो तुम्हीं भयानक अन्धकार में साथ देते हो। मैं तुमको प्यार करता हूँ।

मैं तुमको प्यार करता हूँ। इसलिए कि तुममें थोड़ा—बहुत थोड़ा—प्रकाश है। तुम अन्धकार में हो, और भाई, मैं भी घोर अन्धकार में हूँ। क्या अन्धकार में सुख नहीं है? तुम तो सदा अन्धकार में ही घूमा करते हो, बताओ। सावन-भादों की अँधेरी रात में जगत् अन्धकार से ढँक जाता है—चन्द्र नहीं होता, तारे नहीं होते, आकाश की नीलिमा और पृथ्वी की दीपमाला—यहाँ तक कि खिले हुए फूलों की आभा और शोभा भी नहीं देख पड़ती—केवल अन्धकार, घोर अन्धकार रहता है। केवल अन्धकार रहता है और तुम रहते हो। बताओ, अन्धकार में सुख नहीं है? जब झड़ी लग जाती है, सनसनाती हुई हवा चलती है, बिजली कभी कभी चमक जाती है, लोग अपने अपने घर में घुस रहते हैं, तब लहलहे हरे भरे वृक्षों के श्यामल पत्तों पर तुम आनन्द से टहलते देख पड़ते हो। भला बताओ; अन्धकार में सुख नहीं है?

---

* बङ्किम बाबू के एक लेख का अनुवाद। रूपनारायण पाण्डेय।

मैं तो कहता हूँ कि है। नहीं तो किस साहस से तुम इस भयानक वर्षा के अन्धकार में, और मैं इस सामाजिक अन्धकार में, इस घोर दुर्दिन में, दोनों अपने थोड़े—बहुत थोड़े—प्रकाश से प्रकाश फैलाने की चेष्टा करते हैं। अन्धकार में रहना अवश्य आमोदजनक है। कोई न देखेगा—अन्धकार में तुम जलोगे और अन्धकार में मैं भी जलूँगा। मैं और तुम दोनों, एक नहीं—अनेक ज्वालाओं में जलेंगे।

जीवन का मतलब समझना अत्यन्त कठिन है; वह अत्यन्त गूढ़ है; अत्यन्त भयङ्कर है। क्षुद्र हो कर तुम क्यों जलते हो? क्षुद्र होकर मैं भी क्यों जलता हूँ? तुम क्या कभी यह सोचते हो? मैं तो सोचता हूँ। तुम अगर नहीं सोचते तो भाई तुम सुखी हो। मैं सोचता हूँ, मैं असुखी हूँ। तुम कीड़े हो—मैं भी कीड़ा हूँ, क्षुद्र से भी क्षुद्र कीड़े के बराबर हूँ। तुम सुखी हो,—लेकिन मैं किस पाप से असुखी हूँ? तुम क्या कभी सोचते हो कि "मैं (जुगनू) जगत् को प्रकाशित करने वाला सूर्य्य क्यों न हुआ? अथवा एक साथ आकाश और समुद्र को सनाथ और शोभित करनेवाला चन्द्र क्यों न हुआ? ग्रह, उपग्रह, धूमकेतु या छायापथ का एक अंश भी न हो कर जुगनू क्यों हुआ"? जिसने सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र आदि को रचा है उसी ने तुम को भी रचा है। जिसने सूर्य आदि को प्रकाश दिया है उसी ने तुम्हें भी प्रकाशित किया है। तब, उसने एक को छोटा और दूसरे को बड़ा क्यों बनाया? एक को बहुत प्रकाश, दूसरे को थोड़ा प्रकाश क्यों दिया? अन्धकार में चक्कर खा कर तुमने क्या कभी इन बातों को सोचा है?

तुम सोचो या न सोचो, मगर मैं सोचता हूँ। मैंने सोच कर स्थिर किया है कि विधाता ने तुमको और मुझको केवल अन्धकार में रहने के लिए ही भेजा है। प्रकाश एकही है। तुम्हारा और सूर्य का, दोनों का प्रकाश, उसी जगदीश्वर का दिया हुआ है। किन्तु तुम केवल बरसात की रात के लिए हो, और मैं भी केवल विपत्तिवर्षा की रात के लिए हूँ। आओ मिल कर रोवें।

वर्षा की रात के साथ मेरा और तुम्हारा नित्य सम्बन्ध क्यों है? प्रकाश-पूर्ण नक्षत्र-मण्डली-मण्डित वसन्त-ऋतु के अप्रकाश में मेरे और तुम्हारे लिए जगह क्यों नहीं? वसन्त तो चन्द्रमा के लिए, सुखी के लिए, निश्चिन्त के लिए है; और वर्षा तुम्हारे लिए, दुखी के लिए, मेरे लिए है। इसी लिए रोने को कहता था। लेकिन रोऊँगा नहीं, रोना व्यर्थ है। जिसने तुम्हारे और मेरे लिए इस संसार को अन्धकारमय बनाया है, रोकर उसे दोष न दूँगा। यदि उसकी इच्छा यही है कि अन्धकार के साथ मेरा और तुम्हारा नित्य-सम्बन्ध रहे तो आओ अन्धकार में रहना ही पसन्द करें। आओ, नवीन नील मेघमाला को देख कर इस अनन्त असंख्य जगत्पूर्ण भीषण विश्वमण्डल की कराल छाया का अनुभव करें; मेघ गर्जन को सुन कर सर्वसंहारकारी काल के अविराम गर्जन को स्मरण करें; और चञ्चला की चमक को काल का कुटिल कटाक्ष समझें। समझें कि यह संसार भयङ्कर है; क्षणिक है। तुम भी क्षणिक हो और मैं भी क्षणिक हूँ। मैं और तुम, दोनों, वर्षाकाल के लिए ही भेजे गये हैं। रोने की ज़रूरत नहीं है। आओ, चुपचाप, जलते जलते—अनेक ज्वालाओं में जलते जलते—सब सह लें।

नहीं तो, आओ मरें! तुम दीपक के चारों ओर चक्कर लगा कर जल मरो, और मैं आशारूपी प्रबल प्रोज्ज्वल और कभी न बुझनेवाले अग्निकुण्ड के चारों ओर घूम कर जल मरूँ। तुम्हारे दीपक में कौन मोहिनी है सो तो मैं नहीं जानता, लेकिन मेरे आशा के अग्निकुण्ड में अवश्य मोहिनी है। इस अग्निकुण्ड में कितनी ही बार मैं कूदा, कितनी ही बार जला, लेकिन मरा नहीं। यह मोहिनी क्या है, सो मैं जानता हूँ। बड़ी लालसा है कि प्रकाश प्राप्त कर संसार को प्रकाशित करूँ। लेकिन हाय! हम जुगनू हैं! हमारे प्रकाश से कुछ भी प्रकाशित न होगा। तुम इस वकुलकुञ्ज-किसलय-कृत अन्धकार में अपना क्षुद्र प्रकाश बुझा दो। और मैं? मैं भी जल

में हो, स्थल में हो, रोग में हो, दुःख में हो, कहीं न कहीं अपने क्षुद्रजीवन के प्रकाश को बुझाऊँगा।

मनुष्य—खद्योत।

विविध-विषय।

१-चीन में बौद्ध-भिक्षुओं के अद्भुत कार्य्य।

ईसवी सन् के कोई ढाई सौ वर्ष पहले चीन को भारत से बौद्धभिक्षु गये। डाक्टर ईटल ने अपनी बुद्धिज़्म नाम की पुस्तक में लिखा है कि अट्ठारह बौद्ध श्रमण पहले पहल चीन गये और वहाँ बौद्ध धर्म का उन्होंने उपदेश किया। उनके धार्मिक विचार सुन कर और उनका पाण्डित्य देख कर चीनवाले मुग्ध होगये और धीरे धीरे बौद्ध धर्म्म ग्रहण करने लगे। ये अठारहों साधु चीन जा कर फिर भारत नहीं लैाटे। चीनवालों ने उनका इतना आदर किया कि उनके मरने पर उनकी मूर्तियाँ बनवा कर मन्दिरों में रक्खीं। ये मूर्तियाँ बड़े बड़े मन्दिरों में अब तक पाई जाती हैं। देवताओं के समान उनकी भी पूजा होती है। ६५ ईसवी में चीन के राजेश्वर मिंगटी ने और भी कितने ही साधुओं को भारत से बुला कर अपने देश में रक्खा और उनसे बौद्ध धर्म्म की दीक्षा ली। बौद्ध साधुओं का आवागमन जैसे जैसे बढ़ता गया वैसे ही वैसे बौद्ध धर्म्म का प्रचार भी वहाँ बढ़ता गया। इन साधुओं ने बौद्ध-धर्म्म-सम्बन्धी तथा अन्य विषयों के भी सैकड़ों ग्रन्थ चीनी भाषा में लिख डाले। कितनों ही का अनुवाद भी चीनी में कर डाला। पूर्वोक्त ईटल साहब ने—हैंड बुक आब् चाइनीज़—में लिखा है कि धर्म्मरक्ष, मोक्षल, कुमारजीव, बुद्धभद्र, संघपाल, महाजनदेव, दिवाकर, शिक्षानन्द और अमोघ ने तो संस्कृत-श्लोकों को चीनी भाषा में शुद्धतापूर्वक लिखने के लिए उस भाषा में कितने ही चिह्नों की कल्पना करके चीनी-वर्णमाला का संशोधन तक कर दिया। इन पण्डितों ने चीनवालों को देवनागरी लिखना भी सिखाया। यन्त्र-मन्त्रों में वहाँ देवनागरी वर्णों का अब तक प्रयोग होता है।

२—वैदिक विश्वकोश।

गवर्नमेंट के प्रबन्ध से एक ऐतिहासिक पुस्तक-माला निकलती है। उसे तैयार कराती है गवर्नमेंट और प्रकाशित करती है मरे कम्पनी। कई पुस्तकें इस माला की निकल चुकी हैं। अबके जो पुस्तक निकलने वाली है उसका नाम है:—"Vedic Index of Names and Subjects"—अध्यापक मुग्धानलाचार्य्य और डाक्टर कीथ ने इसे तैयार किया है। वेदों में जितने संज्ञाशब्द और जिन जिन बातों का वर्णन है वे सब बातें इस सूची या कोश में, वर्ण-माला के क्रम से, लिखी गई हैं। वैदिक साहित्य की सारी ऐतिहासिक सामग्री का इसमें संग्रह रहेगा। पुस्तक शीघ्र ही प्रकाशित होने वाली है।

३—व्योमयान द्वारा तीन हज़ार मील की यात्रा।

व्योम-यान द्वारा छोटी मोटी यात्रायें तो बहुत दिनों से होती हैं; अब लोग हज़ारों मील की यात्रायें भी व्योमयान द्वारा ही तै करने का साहस करने लगे हैं। १९०१ में दो अमेरिका-निवासी महा-द्वीप अमेरिका को व्योम-यान द्वारा पार करने चले थे; परन्तु उनका यान एक निर्जन रेतीले जङ्गल में गिर पड़ा और आगे न जा सका। इस कारण उनका मनोरथ सिद्ध न हो सका। १९०३ में दो अन्य साहसी पुरुषों ने इस इतनी बड़ी यात्रा को पैंसठ दिनों में समाप्त करही डाला। फिर तो अन्य कितनेही लोगों ने इस काम को विशेष सफलतापूर्वक कर दिखाया। जो यात्रा १९०३ में पैंसठ दिन में तै की गई थी वही, १९०६ में, साढ़े पन्द्रह ही दिन में तै की जाने लगी। हाल में राजर्स नामक अमेरिका के एक व्योम-यानिक ने कोई चालीस मील फ़ी घंटे के हिसाब से उड़ कर बयासी घंटे में ३३५० मील का सफ़र किया है। वह दिन दूर नहीं जब मोटर-

गाड़ियां की तरह व्योम-यान भी सब कहीं उड़ते दिखाई देंगे।

४—मृत आत्माओं के लेख और चित्र।

हाल में लन्दन के डाक्टर जेम्स कोटीज़ ने "Photographing the Invisible"—नाम की एक पुस्तक प्रकाशित की है, जिसमें उन्होंने इस बात को सिद्ध किया है कि मृत मनुष्यों की आत्माओं का चित्र भी लिया जा सकता है और उनके द्वारा लिखे हुए लेख भी प्राप्त हो सकते हैं। पुस्तक में केवल तर्क-वितर्क ही से काम नहीं लिया गया, किन्तु इस प्रकार की घटनाओं के कितने ही उदाहरण भी दिये गये हैं। उदाहरण भी यों नहीं दिये, कितने ही माननीय पुरुषों की गवाही देकर दिये हैं। पुस्तक में एक अध्याय है, मृत पुरुषों की आत्माओं के चित्रों के विषय पर। उसमें दो प्रसिद्ध हिन्दू सज्जनों का भी साक्ष्य है। पहले सज्जन हैं मदरास प्रान्त के निवासी—"वेस्ट कोस्ट स्पेक्टेटर" नामक पत्र के सम्पादक श्रीयुत जी० सुब्बाराव जिन्होंने अपनी मृत पत्नी का चित्र शिकागो की एक समिति से अपने ही पसन्द किये हुए विलायती टाट के टुकड़े पर खिँचा हुआ प्राप्त किया। दूसरे साक्षी हैं "अमृत-बाज़ार-पत्रिका" के भूतपूर्व सम्पादक स्वर्गवासी श्रीयुत शिशिरकुमार घोष। उनको भी उसी समिति द्वारा अपने मृत-पुत्र का चित्र प्राप्त हुआ था।

५—"नागरी-प्रचारक" मासिक पत्र।

इस मासिक पत्र को लखनऊ से निकलते छः वर्ष से ऊपर हुआ। पहले इसका रूप-रङ्ग, आकार-प्रकार और था; अब कुछ और ही है। अब इसके प्रत्येक अङ्क में सरस्वती के आकार के २४ पृष्ठ रहते हैं। पर मूल्य केवल एक रुपया है। तिस पर भी असमर्थ विद्यार्थियों से आठही आना लिया जाता है! इसके सम्पादक अच्छे कवि और समालोचक जान पड़ते हैं। आपके नोट और समालोचनायें बहुत अच्छी होती हैं। आप अपनी राय निर्भीकता-पूर्वक प्रकट करते हैं। आपके नोटों और समालोचनाओं में तत्त्व रहता है। हम उन्हें आदर की दृष्टि से देखते हैं। इसी लिए आप के पत्र को हम मोल लेकर पढ़ते हैं। इसमें यदा कदा धार्मिक लेख भी निकलते हैं। उनसे भी लेखक की चिन्ताशीलता का परिचय मिलता है। हास्य-विनोद, कल्पित कथा और साहित्य-विषयक छोटे छोटे लेख भी इसमें पढ़ने योग्य प्रकाशित हुआ करते हैं। इन सब बातों को देखते एक रुपये में यह पत्र बहुत ही सस्ता क्या, मुफ़्त समझना चाहिए।

६—"इन्दु" मासिक पत्र।

यह मासिक पत्र दो ढाई वर्ष से काशी से निकल रहा है। बाबू अम्बिकाप्रसाद गुप्त इसके सम्पादक और प्रकाशक हैं। कुछ समय से इसने बड़ी उन्नति की है। अब इसके प्रत्येक अङ्क में छोटे आकार के सौ पृष्ठ रहते हैं। आरम्भ में एक आध चित्र भी रहता है। इसमें कहानियाँ और पुरातत्त्व-विषयक लेख कभी कभी बहुत अच्छे निकलते हैं। कवितायें भी इसकी बहुधा सरस होती हैं। पत्र लेने और पढ़ने योग्य है। वार्षिक मूल्य इसका ३॥) है।

७—पण्डित गणपति शर्म्मा का परलोकगमन।

आर्य्यसमाज के नामी वक्ता पण्डित गणपति शर्म्मा का शरीरान्त होगया। यह सुन कर बड़ा रंज हुआ। पण्डित जी चूरू (राजपूताना) के निवासी थे। संवत् १९३० में आप का जन्म हुआ था। ये ऐसे कुशाग्र-बुद्धि थे कि बहुत ही छोटी उम्र में व्याकरण और साहित्य में अच्छी गति प्राप्त कर ली थी। कई वर्ष तक काशी में रह कर इन्होंने न्याय और वेदान्त का अध्ययन किया। एक वर्ष ये नदिया में भी रहे। २२ वर्ष की उम्र में विद्याध्ययन समाप्त करके ये घर लौटे। तभी से ये आर्य्य-समाज के अनुयायी होकर उसकी उद्देश-सिद्धि के काम में लग गये। ये ऐसे अच्छे वक्ता थे कि हज़ारों मनुष्यों के जमाव में चार चार घंटे तक बड़ी ही ओजस्विनी और अस्खलित वक्तृता दे सकते थे। वेदान्त जैसे गहन विषय को भी ये इस तरह

समझाते थे कि अल्पज्ञ भी उसका तत्त्व समझ जाते थे। आपके व्याख्यान प्रायः ईश्वर, हरिभक्ति और वेदान्त आदि विषयों पर होते थे। इनके सदृश तार्किक आर्य्य-समाज में शायद ही एक आध और होगा। ये बड़े ही निस्पृह थे। अजमेर में इनके दर्शन करके इस नोट के लेखक ने अपने को कृतार्थ माना था। ज्वालापुर के महाविद्यालय ने पण्डित गणपति शर्म्माजी की यादगार में दस हज़ार रुपया लगा कर एक "गणपति-भवन" बनवाने का निश्चय किया है।

८—किन्डर-गार्टन-बक्स।

छोटे छोटे बच्चों को अब इस देश में भी कहीं कहीं किन्डर-गार्टन अर्थात् बालोद्यान-शिक्षा की प्रणाली से शिक्षा दी जाने लगी है। यह खेल का खेल और शिक्षा की शिक्षा है। इसी शिक्षा के लिए पण्डित देवीदत्त कन्याल (मौज़ा महरागाँव, डाकख़ाना मुवाली, ज़िला नैनीताल) ने दो बक्स तैयार किये हैं। प्रत्येक बक्स में लकड़ी के चौबीस चौबीस टुकड़े जुदा जुदा माप और आकार के हैं। एक बक्स के टुकड़े कुछ बड़े हैं, दूसरे के कुछ छोटे। बड़े का दाम एक रुपया और छोटे का बारह आना है। बक्स के साथ एक पुस्तक भी रहती है। उसका मूल्य डेढ़ आना है। इस पुस्तक में पूर्वोक्त लकड़ी के टुकड़ों को जोड़ कर वर्ण और अङ्क बनाने की प्रणाली लिखी हुई है। बक्स की लकड़ियों से हिन्दी, फ़ारसी और अँगरेज़ी की वर्णमाला और अङ्कों के आकार बड़ी आसानी से बन जाते हैं। कुछ शब्द भी छोटे छोटे बनाये जा सकते हैं। ड्राइंग की कई एक शकलें भी बन सकती हैं। कन्याल महाशय की कल्पना बहुत अच्छी है। छोटे बच्चों के लिए ये बक्स बहुत उपयोगी हैं। इनकी सहायता से बच्चे वर्णमाला और दस तक अङ्क सहज में सीख सकते हैं। टुकड़ों को उलट पुलट कर रखने में कभी कभी उनके जोड़ ठीक नहीं बैठते। इतना ही दोष इनमें है। पर इस दोष के कारण इनकी उपयोगिता रत्ती भर भी कम नहीं होती।

९—इलाहाबाद-विश्व-विद्यालय की परीक्षाओं के फल।

हिन्दुस्तान में इस समय पाँच विश्व-विद्यालय हैं—कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, इलाहाबाद और पञ्जाब। और, आशा है, अनतिविलम्ब और भी तीन विश्व-विद्यालयों की स्थापना होगी—अर्थात् मुस्लिम-विश्व-विद्यालय अलीगढ़ में, हिन्दू-विश्व-विद्यालय बनारस में, और ढाका-विश्व-विद्यालय आसाम प्रान्त में।

इलाहाबाद-विश्व-विद्यालय की जो परीक्षायें गत मार्च और अप्रेल में हुई थीं उनके फल का विवरण नीचे दिया जाता है:—

परीक्षा का नाम	छात्रों की संख्या		
	परीक्षित	उत्तीर्ण	प्रतिशत
(१) एम० ए०, प्रथम वर्ष	९७	३७	३८.१
(२) एम० ए०, द्वितीय वर्ष	४५	२५	५५.५
(३) एम०एससी०, प्रथम वर्ष	१७	१५	८८.२
(४) एम०एससी०, द्वितीय वर्ष	१०	८	८०.०
(५) एल०एल०बी०, प्रथम वर्ष	४७९	३०८	६४.३
(६) एल.एल.बी., द्वितीय वर्ष	२३९	१३३	५५.६५
(७) बी० एस० सी०	१४१	५५	३९.०
(८) बी० ए०	८९५	३६९	४१.२
(९) इंटरमेडिएट	१४४६	५७०	३६.८
(१०) मैट्रिक्यूलेशन	३४१५	१२५५	३६.७

इण्टरमेडिएट और मैट्रिक्यूलेशन की परीक्षाओं का फल सन्तोषजनक नहीं। जान पड़ता है कि इन परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने की योग्यता की मात्रा बहुत ही कड़ी कर दी गई है। इनमें से प्रत्येक में कम से कम ५० प्रति शत छात्र उत्तीर्ण होने चाहिए।

मैट्रिक्यूलेशन-परीक्षा के फल का प्रान्त-सम्बन्धी विवरण नीचे दिये नक़्शे से विदित होगाः—

प्रान्त का नाम	परीक्षाओं के लिए छात्र भेजने वाले हाई स्कूलों की संख्या	परीक्षित छात्रों की संख्या	उत्तीर्ण छात्रों की संख्या	उत्तीर्ण छात्रों की प्रति शत संख्या	प्रति शत संख्या के अनुसार प्रत्येक प्रान्त का स्थान
(१) संयुक्त प्रदेश	९०	१९१५	७३१	३८.१	तीसरा
(२) मध्य-प्रदेश	२७	६४०	२२६	३५.३	चौथा
(३) बरार	४	१३९	७२	५१.७	दूसरा
(४) राजपूताना	१४	२५४	८५	३३.४	पाँचवाँ
(५) मध्य-भारत	१८	१८८	११९	६३.५	पहला
(६) प्राइवेट उम्मेदवार	+	२८०	२२	७.८	छठा
टोटल	१५३	३४१५	१२५५	३६.७	

मैट्रिक्यूलेशन-परीक्षा में उत्तीर्ण छात्रों का जाति-विवरण।

१२५५ उत्तीर्ण छात्रों में से ४४० ब्राह्मण, २४६ कायस्थ, २३५ मुसल्मान, १११ वैश्य, ४० खत्री, ३५ ईसाई, ३१ क्षत्री, २३ राजपूत, १५ भार्गव, १२ जैनी, ९ पारसी, ५ जाट, ५ सुनार, ५ तम्बोली, ५ मराठा, ४ सिक्ख, ४ परभू, ३ विदुर या कृष्णपक्षी, २ वैद्य, २ लुहार, २ कुरमी, २ कलार, २ जुलाहा, २ ब्राह्मो, २ वैरागी, १ वैष्णव, १ पुष्कर, १ परमार्थिक, १ भाटिया, १ अगरवाला, १ सद्दोप, १ जायसवाल, १ नरूला, १ बढ़ई, १ कोरी, १ परवार, १ लखेर, १ गुरौ, १ यदुवंशी, १ मोहैला और १ कुरमी। यह जाति-विवरण दृढ़ रूप से सिद्ध करता है कि ब्राह्मणों, कायस्थों और मुसल्मानों को छोड़ कर इतर जातियों में उच्च श्रेणी की शिक्षा तो दूर रही, मध्यम श्रेणी की शिक्षा भी नहीं सी है। ४४० ब्राह्मण उत्तीर्ण हुए हैं, जिनमें से १५९ संयुक्त-प्रदेश के हैं, १४१ मध्य-प्रदेश के, ६२ मध्य-भारत के, ४७ बरार के, २७ राजपूताने के और ७ प्राइवेट उम्मेदवारों में से। संयुक्त-प्रदेश का विस्तार और उसकी जन-संख्या का विचार करने से मालूम होता है कि संयुक्त-प्रदेश की ब्राह्मण-जाति में मध्यम श्रेणी की शिक्षा का पूर्ण प्रचार नहीं है।

गणपतिलाल चौबे,
एजेंसी इंस्पेक्टर, स्कूल्स,
रायपुर, मध्यप्रदेश।

१०—तालपत्रों पर लिखी हुई बारह सौ वर्ष की पुरानी पुस्तकें।

नेपाल-नरेश के प्रधान मन्त्री आक्सफर्ड-विश्व-विद्यालय के डी० सी० एल० हैं। आपही के कृपा-कटाक्ष की बदौलत, १९०९ ईसवी में, संस्कृत के ६३०० दुर्लभ ग्रन्थ आक्सफर्ड के बाडलियन नामक पुस्तकागार को भेंट किये गये थे। अब ख़बर मिली है कि लार्ड कर्ज़न की सिफ़ारिश से आपने हज़ारों वर्ष के पुराने कितने ही ग्रन्थ, जिनमें अधिकांश तालपत्रों पर लिखे हुए हैं, आक्सफर्ड को मँगनी दिये हैं। ये ग्रन्थ ७० के लगभग हैं और नेपालियों की पीठ पर लाद कर विलायत पहुँचाये गये हैं। वहाँ इनके फोटो लिये जायँगे। फोटो आक्सफर्ड में रक्खे जायँगे और मूल ग्रन्थ लौटा दिये जायँगे।
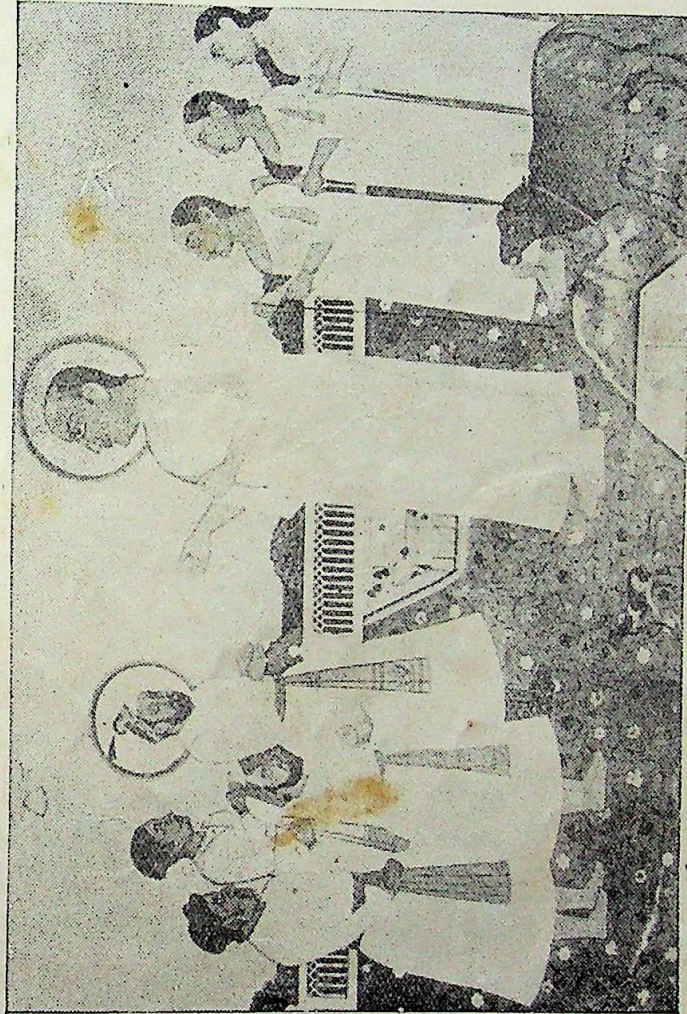
हीरविजय सूरि का अकबर को धर्म्मोपदेश।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद।

दलाई लामा। [टाइम्स ग्राव् इंडिया से लिया गया]

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद।

इनमें से कुछ ग्रन्थ ७०० ईसवी के लिखे हुए हैं। इतने पुराने हस्तलिखित ग्रन्थ भारत में अन्यत्र कहीं नहीं। अन्यत्र रह भी नहीं सकते। नेपाल ही का जल-वायु ऐसा है जो इतने काल तक इनकी रक्षा कर सकता है। ग्रन्थ भिन्न भिन्न विषयों के हैं और भिन्न भिन्न लिपियों में हैं। कुछ ग्रन्थ गुप्त-लिपि में हैं, कुछ नेवारी लिपि में, कुछ मैथिली लिपि में, कुछ बङ्गाली लिपि में और कुछ देवनागरी लिपि में। प्रत्येक पृष्ठ की लम्बाई दस से बीस इंच तक और चौड़ाई दो से चार इंच तक है। प्रति पुस्तक के ऊपर-नीचे दोनों तरफ़ एक एक पतली पटिया है। उनमें छेद हैं। छेदों के भीतर डोरे पड़े हैं। जिनसे पुस्तक के सब पृष्ठ बँधे हुए हैं। किसी किसी पुस्तक में तीन सौ से भी अधिक पृष्ठ हैं, इन बारह सौ वर्ष की पुरानी पुस्तकों को इनके ज्ञाता विद्वान् अनमोल बतलाते हैं।

११—नर्त्तकाचार्य्य पण्डित गिरिधारीलाल की अमरीका में चाह।

नर्त्तकाचार्य्यजी के विषय में हमारे पास यूनाइटेड स्टेटस् आव् अमेरिका से एक चिट्ठी आई है! वह ज्यों की त्यों नीचे उद्‌धृत की जाती है:—

315, Lake St.
Madison, Wis.,
U. S. A.
15-7-12

श्रीयुत द्विवेदी जी,

मुझे इस देश में आये तो कई मास हो चुके, पर इस साल की सरस्वती की प्रतियाँ देखने को गत मास तक न मिलीं। फरवरी मास की पत्रिका में पण्डित गणेशराम मिश्र नाम के एक महाशय ने नर्त्तकाचार्य्य पण्डित गिरिधारीलाल तिवारी की अद्‌भुत नृत्य-लीलाओं पर एक लेख लिखा है। लेख पढ़ने पर मुझे तो कुछ विशेष आश्चर्य्य न हुआ; क्योंकि मैंने इस प्रकार के विलक्षण पुरुषों की बाबत बहुत कुछ भारत ही में सुन रक्खा था। पर पण्डित जी की नाच-सम्बन्धीनी चतुराइयों को सुन कर अमेरिका वालों के होश उड़ते हैं। वे ऐसी बातों को सम्भव नहीं मानते। मेरे एक मित्र ने तो यहाँ तक कह दिया कि यह सब वृत्तान्त समाचार-पत्रवालों की गप्पों में से एक गप्प है। कई लोगों ने, जिन्हें मेरी बातों पर विश्वास आया है, मुझ से पण्डितजी को इस देश में आने के लिए पत्र लिखने का अनुरोध किया है। इनका कहना है कि इस देश में आकर पण्डित जी स्वदेश का मान बढ़ाने के साथ साथ थोड़े ही दिनों में लाखों रुपये के आदमी भी बन सकते हैं। मुझे पण्डित जी का पता मालूम नहीं। इसी कारण आपको क्लेश देता हूँ कि यद्यपि पण्डित जी को अपनी ख्याति तथा रुपया कमाने की इच्छा नहीं है तब भी स्वदेश के गौरव को इस देश-वासियों के हृदयों पर अङ्कित करने की इच्छा से आप कृपा करके उनसे यहाँ आने की प्रार्थना करें। मैंने अनेक स्वदेशवासी छात्रों से पण्डितजी के गौरव की चर्चा की। वे सब पण्डितजी को इस देश में देखने के इच्छुक हो रहे हैं।

स्वामी विवेकानन्द और रामतीर्थ इस देश में वेदान्त के दाने बोकर जो भारत वर्ष का उपकार कर गये हैं उसका अनुमान करना कठिन है। हम भारतीय छात्रों का जो इस देश के वासी कुछ आदर और सत्कार करते हैं वह इन्हीं दो महात्माओं की करतूत है। श्रीमती सत्यबाला देवी ने भी अपने मधुर गान की तान से इस देश में स्वदेश का मान स्थापित किया है। मेरे एक मित्र का कहना है कि न्यूयार्क में सत्यबाला देवी ने कुछ रोगियों को अपने गाने बजाने के असर से चंगा करके अमेरिका वालों को स्तम्भित कर दिया। हमारे ब्रह्मचर्य्य के नियम क्या कर सकते हैं, इसकी परीक्षा राममूर्त्तिजी दे रहे हैं। वे यद्यपि अब तक इस देश में नहीं आये हैं तथापि सैकड़ों अमेरिका-प्रवासी उनके नाम से परिचित हैं। अब पण्डित गिरिधारीलाल तिवारीजी की बारी है। अतः उनसे निवेदन है कि समुद्र पार करने से जात-पाँत भ्रष्ट हो जाने की परवा न करके इस देश में आकर हमारी प्राचीन मृत विद्या से संसार को परिचित करने की कृपा करें। यहाँ आने में पण्डितजी को कोई कष्ट न होगा। हम लोग आपका

हाथों हाथ स्वागत करेंगे और जिस प्रकार रहने की पण्डितजी इच्छा प्रकट करेंगे उसी प्रकार उन्हें यहाँ रक्खेंगे।

आपका—रघुबरदयाल गुप्त।

आशा है, पण्डित गिरिधारीलालजी, गुप्तजी के प्रणयानुरोध का पालन करने के सम्बन्ध में अवश्य विचार करेंगे और पत्र द्वारा अपना निश्चय सूचित करने की उदारता दिखावेंगे।

पुस्तक-परीक्षा।

१—**आत्मविद्या**। यह मासिक पत्रिका कोई डेढ़ वर्ष से निकलती है। श्रीगोकुलानन्दप्रसाद वर्म्मा इसके सम्पादक हैं। इस पत्रिका का सम्बन्ध थियासफ़िकल सोसायटी से है। अतएव यद्यपि इसमें अध्यात्म-विद्या-विषयक लेखों की ही अधिकता रहती है तथापि अन्य उपयोगी विषयों पर भी लेख और कवितायें रहती हैं। समालोचना, साहित्य-चर्चा, सम्पादकीय विचार आदि भी इसमें रहते हैं। ओरियन के कई हज़ार वर्ष पहले के जन्मों का चरित्र जो इसमें निकल रहा है वह एक अद्भुत वस्तु है। मूल्य इसका सिर्फ़ एक रुपया है। मिलने का पता :—मैनेजर, आत्मविद्या, भागलपुर।

❋

२—**तैली-समाचार**। यह मासिक पत्र कोई एक वर्ष से निकल रहा है। बाढ, ज़िला पटना, इसका प्रकाशन-स्थान है। बाबू कालीप्रसाददास इसके प्रकाशक हैं। आज तक हमने इस पत्र के दस अङ्क देखे हैं। देखे ही नहीं उन्हें पढ़ा भी है। पत्र एक-जातीय होकर भी सार्वजनिक है। इसके सम्पादक सुयोग्य और सुशिक्षित जान पड़ते हैं। विषय-निर्वाचन भी वे अच्छा करते हैं और लेखों की उपयोगिता पर भी ध्यान रखते हैं। भाषा सरल होती है। हिन्दी के कितने ही अन्यान्य पत्रों से यह पत्र अच्छा है। फिर भी इसका डेढ़ ही रुपया मूल्य है। ईश्वर करे इस पत्र की ख़ूब उन्नति हो।

३—**संस्कृत-रीडर, प्रथम भाग**। इन प्रान्तों के स्कूलों के छठे क्लास में पढ़ाने के लिए, क्वीन्स कालिजिएट स्कूल, बनारस, के पण्डित यज्ञनारायण उपाध्याय, बी० ए०, ने भाषा-शिक्षा-सम्बन्धी संशोधित नियमों के अनुसार इस पुस्तक की रचना की है। सब मिला कर इसमें १३ पाठ हैं। कुटुम्ब, खेत, घर, खाद्य पदार्थ, गली, स्कूल, रेलवे-स्टेशन आदि ऐसे ही विषयों पर इसमें पाठ हैं जिनसे छोटे छोटे बच्चे परिचित रहते हैं। प्रत्येक पाठ में पहले शब्दावली है, फिर वाक्यावली, फिर प्रश्नावली। अन्त में व्याकरण के भी कुछ नियम हैं। इसी तरह सारे पाठों का क्रम रक्खा गया है। प्रत्येक पाठ के अन्त में नये नये शब्दों और क्रियाओं के भी कुछ रूप हैं और संस्कृत से हिन्दी तथा हिन्दी से संस्कृत करने के लिए भी कुछ वाक्य हैं। पुस्तक सचित्र है और बच्चों के लिए अवश्य उपयोगी है। मूल्य इस ४८ पृष्ठ की पुस्तक का ६ आना है। इसमें जो चित्र हैं उनमें से कई एक साहबों और मेमों के हैं। उदाहरणार्थ, पहले ही चित्र में एक साहबी कुटुम्ब का समुदाय है। ये चित्र विदेशी न हो कर स्वदेशी होते तो अच्छा था। 'आसन' का अर्थ 'A mat' क्यों? कुरसी, तख़्त, कम्बल आदि क्या आसन नहीं? 'गवाक्षः' (खिड़की) का अर्थ 'गौखा'—'मुक्का' प्रान्तिक है; सर्वत्र प्रचलित नहीं'। "मामा माला को गिनता है"—शुद्ध नहीं। एक माला को कोई क्या गिनेगा। या तो 'माला' का बहुवचन लिखिए, या 'माला' की जगह—माला की मनकायें—लिखिए। 'गावः' बहुवचन है; उसका अर्थ-गायें-होना चाहिए, गाय-नहीं। 'हर' की जगह हल और 'गदहा' की जगह गधा लिखना शुद्ध था। 'गर्दभाः इष्टकां वहन्ति"—में इष्टका को बहुवचन में रखना था। "दासी किं करोति? खट्वायां किम् अस्ति"। यहाँ पहले वाक्य में 'किं' और दूसरे में 'किम्' क्यों? 'किं' ही क्यों नहीं? यह किम्-सम्बन्धी स्वातन्त्र्य इस पुस्तक में सभी कहीं है।

❋

४—**सुमति-विनोद**। पण्डित शिवप्रसाद पाण्डेय, काव्यतीर्थ की फुटकर कविताओं का यह संग्रह है। पृष्ठसंख्या ५० है। दाम चार आने। राज-स्कूल, बेतिया, के पते से काव्यतीर्थजी को लिखने से मिल सकता है। शृङ्गार, हास्य,

करुण, वीर, शान्त, वात्सल्य, भक्ति आदि सब रसों की कविता इसमें है। शृङ्गार-रस की अधिक है; और रसों की थोड़ी थोड़ी। इसके कोई कोई पद्य बहुत अच्छे हैं।

❋

५—कृष्णकथा वा कंस-विध्वंस। रचयिता—उलाव, ज़िला मुङ्गेर-निवासी, बाबू बनवारीलाल। पृष्ठ-संख्या १४२—मूल्य ६ आने। नाटक है। पाँच अङ्कों में विभक्त है। विषय नाम ही से सूचित है। रचना सुन्दर है। पद्य-भाग भी मनोहर है। अभिनय योग्य है। प्रणेता से प्राप्य।

❋

६—श्रीसनातन-धर्म्म-भजन-संग्रह। छोटे आकार के ११२ पृष्ठ। मूल्य साढ़े चार आने। संग्रहकर्त्ता, पण्डित मोहनलाल भारद्वाज मिश्र, कोटला, आगरा। यह—"वेद स्मृति, पुराण, नीति आदि के प्रमाण तथा उनके भावार्थ-सहित उपयोगी भजनों का प्रकरणवार संग्रह" है। भजन सामाजिक भी हैं और धार्म्मिक भी। सब समयानुकूल हैं।

❋

७—बीकानेर-नरेश का चित्र। बीकानेर के जनरल मरचेंट ऐंड कमीशन एजंट, श्रीयुत गोपालजीदास फ़क़ीरचन्द ने बीकानेर-नरेश महाराज गङ्गासिंहजी, जी० सी० आई० ई०, के० सी० एस० आई० के एक रङ्गीन चित्र की तीन कापियाँ और एक फ़ोटो भेजने की कृपा की है। रङ्गीन चित्र "आॅइल पेंटिंग" है और रविवर्म्मा-प्रेस का छपा हुआ है। चित्र बहुत अच्छा है। दाम एक चित्र का चार आना है। पूर्वोक्त कमीशन एजंट महाशय को लिखने से मिलता है।

❋

८—अबला-बल-दर्शन। "एक भारत—पुत्र" द्वारा सम्पादित और लाहोर के रामचन्द्र ब्रदर्स से प्राप्य। पृष्ठ-संख्या १४०। स्त्री-शिक्षा-सम्बन्धिनी पुस्तक है। पुस्तक के दो भाग हैं। पहले भाग में भारतीय स्त्रियों की प्राचीन और वर्तमान दशा का दिग्दर्शन तथा उन बातों का विचार है जिनके पालन से वे उन्नति कर सकती हैं। दूसरे भाग में पाँच कथात्मक जीवनचरित हैं, जिनमें स्त्री-जाति का महत्त्व दिखाया गया है। पुस्तक का विषय बहुत अच्छा है। पर भाषा संशोधनीय है। मूल्य आठ आना है। असमर्थ स्त्रियाँ केवल डाक-महसूल ही देकर इस पुस्तक को प्राप्त कर सकती हैं।

९—विचारपरिणाम। जेम्स ऐलन की एक पुस्तक—"As a man Thinketh" नाम की है। एक महाशय ने उसका अनुवाद उर्दू में किया है। उस उर्दू अनुवाद का यह हिन्दी अनुवाद है। इसके कर्ता मुंशी अमृतलाल, सुपुरिंटेंडेंट पुलिस, उदयपुर हैं। विषय और विचार इसके बहुत अच्छे हैं। परन्तु अनुवाद की भाषा अच्छी नहीं। ७० से ऊपर ग़लतियां तो सिर्फ़ छापे की हैं जिन्हें अनुवादक को ही शुद्ध करना पड़ा है। पृष्ठ-संख्या ६६ और दाम छः आने हैं।

❋

१०—वार्षिक वृत्तान्त। प्रयाग की आर्य्य-कन्या-पाठशाला का यह पञ्चम वार्षिक वृत्तान्त है। यह आर्य्य-समाज के उद्योग का फल है। इसमें इस समय डेढ़ सौ के लगभग लड़कियाँ शिक्षा पाती हैं। अब तक पाँचवीं श्रेणी तक की पढ़ाई इसमें होती थी। परन्तु अब इस साल से छठी श्रेणी भी खोल दी गई है। गवर्नमेंट और म्यूनिसिपैलिटी से सहायता भी मिलती है। चन्दे से भी कुछ रुपया मिल जाता है। मार्च ११ से फ़रवरी १२ तक इसे ३६२०॥) ॥ की आमदनी हुई। ख़र्च २७८३।–)॥। हुआ। इसमें चार पाँच अध्यापिकायें पढ़ाती हैं। परीक्षा देने और पास होनेवाली लड़कियों की संख्या देखने से मालूम होता है कि यह पाठ-शाला अच्छा काम कर रही है। लड़कियों को सीना-पिरोना भी सिखलाया जाता है। सर्व-साधारण का काम है कि धन से इसकी सहायता करके स्त्री-शिक्षा के प्रचार का पुण्य प्राप्त करें। सर जे० बम्फ़ील्ड फ़ुलर तक ने इस पाठशाला का निरीक्षण करके प्रसन्नता प्रकट की है। पर शिक्षा-विभाग के अधिकारियों के निरीक्षण का उल्लेख इस रिपोर्ट में नहीं; यह क्यों?

❋

११—वर्णविचार। देवनागरी-वर्णमाला में फ़ारसी, अरबी, तुर्की, अँगरेज़ी और तामील, तैलङ्गी आदि विदेशी भाषाओं के कुछ उच्चारणों को व्यक्त करने की शक्ति नहीं। कई विद्वानों ने इस बात को स्वीकार किया है। परलोकवासी कृष्णस्वामी आइयर ने तो इस अभाव की पूर्ति करने वाले को पुरस्कार भी देने की विज्ञापना की थी। प्रस्तुत **वर्ण-विचार** इसी अभाव को दूर करने के इरादे से लिखा गया

है। इसका दूसरा नाम है—सार्वभौमिक वर्णमाला की आलोचना पर प्रबन्ध। लीथो में छपी हुई यह ३४ पृष्ठ की पुस्तक है। समालोचकों की सम्मति के लिए ही यह प्रकाशित की गई है। इसके लेखक हैं—श्रीयुत अयोध्याप्रसाद वर्म्मा, २३।११ वाराणसी घोष की सेकण्ड लेन, जोड़ासाँकू, कलकत्ता। वर्म्मा महाशय ने बड़े परिश्रम, खोज और विचार से यह प्रबन्ध लिखा है। परन्तु आपने जो ऊपर-नीचे रेखाओं, बिन्दुओं तथा अन्य चिह्नों की कल्पना करके देवनागरी वर्णमाला की त्रुटियाँ दूर करने की चेष्टा की है उससे यह वर्णमाला बहुत जटिल हो जायगी। इससे सरलतर कोई युक्ति निकाली जाती तो अच्छा होता। सुनते हैं, द्राविड देश की भाषाओं के कई वर्णों में विशेषता है। पर एक को छोड़ कर और किसी विशेष-ध्वनि का विचार वर्म्मा महाशय ने इस निबन्ध में नहीं किया। तथापि आपकी अनेक कल्पनाओं में नवीनता है। वर्णमाला-रहस्य के विद्वानों को चाहिए कि आपके निबन्ध को पढ़ कर अपनी सम्मतियाँ प्रकट करने का कष्ट उठावें।

❋

१२—श्रीरामचरणाङ्क-माला। इसमें लाला भगवान-दीन जी के रचित ५२ पद्य हैं। पद्यों में रामचन्द्रजी के चरण-चिह्नों का वर्णन है। कविता सरल और सरस है। मूल्य डेढ़ आना। मिलने का पताः—मैनेजर, लक्ष्मी-प्रेस, गया।

चित्रपरिचय।

(१)
मन्दोदरी

राम-रावण का युद्ध छिड़ जाने पर रावण की महिषी मन्दोदरी के मन में बड़ी चिन्ता हुई। अपने पक्ष का निरन्तर पराजय होते देख कर मन्दोदरी का हृदय कपने लगा। वह बड़ी बुद्धिमती थी। रामचन्द्रजी के बल को वह अच्छी तरह जानती थी। अतएव उसको पूर्ण विश्वास था कि रामचन्द्रजी के सामने युद्ध में मनुष्य तो क्या देवता तक भी नहीं ठहर सकते। इसी कारण राम के साथ युद्ध करने के लिए जाते हुए अपने स्वामी को उसने अनेक प्रकार से समझा कर लौटाना चाहा और सीताजी को सादर लौटा देने के लिए खूब बल लगाया। पर जब रावण उसकी कुछ न सुन कर युद्ध-क्षेत्र में चला ही गया तब अपने स्वामी की जीत के लिए और अपने सौभाग्य की रक्षा के लिए मन्दोदरी को ईश्वराराधन के अतिरिक्त दूसरा अवलम्ब ही क्या था। देखिए, पूजा की विविध सामग्री लिये, पतिदेव की मङ्गलकामना करती हुई, पतिव्रता मन्दोदरी, देव-पूजन के लिए, कैसे भक्तिभाव से जा रही है। इस संख्या के रङ्गीन चित्र में यही भाव दरसाया गया है।

(२)
हीरविजय सूरि।

गत जून की सरस्वती में जैन महात्मा हीरविजय सूरि का जीवन-चरित प्रकाशित हुआ है। इस संख्या में उनका चित्र प्रकाशित किया जाता है। इस चित्र में यह भाव दिखाया गया है कि सूरि महोदय खड़े हुए अकबर को धर्म्मोपदेश कर रहे हैं। बीकानेर में जैनियों का एक पुस्तक-भाण्डार है। वहीं से प्राप्त हुए एक पुराने चित्र से इसका ब्लाक तैयार किया गया है।

(३)
दलाई लामा।

दलाई लामा डारजिलिंग से रवाना होकर तिब्बत लौट रहे हैं। तिब्बत में विद्रोह की आग भभक रही है। उसे दबाने के लिए चीन से सेना आ रही है। इस संख्या के निकलने के पहले ही लामा महोदय तिब्बत पहुँच जायँगे। उनके वहाँ पहुँचने पर विद्रोह कैसा रूप धारण करेगा, यह बात पाठकों को अख़बारों से मालूम ही हो जायगी। हम सिर्फ़ दर्शनीय दलाई लामा का चित्र पाठकों को इस संख्या में दिखाये देते हैं।

(४)
जल-विहार।

इस संख्या का यह चित्र एक विलायती चित्रकार की रचना है। आसमान में घनघटा छाई हुई है। शीतल समीर के झोंके मनोमुकुल को प्रमोदमग्न कर रहे हैं। समय बड़ा ही सुहावना है। यही देख पाश्चात्य देश की दो रमणियाँ नौकारूढ़ होकर नदी में जलविहार कर रही हैं।

Printed and Published by Apurva Krishna Bose at the Indian Press, Allahabad.
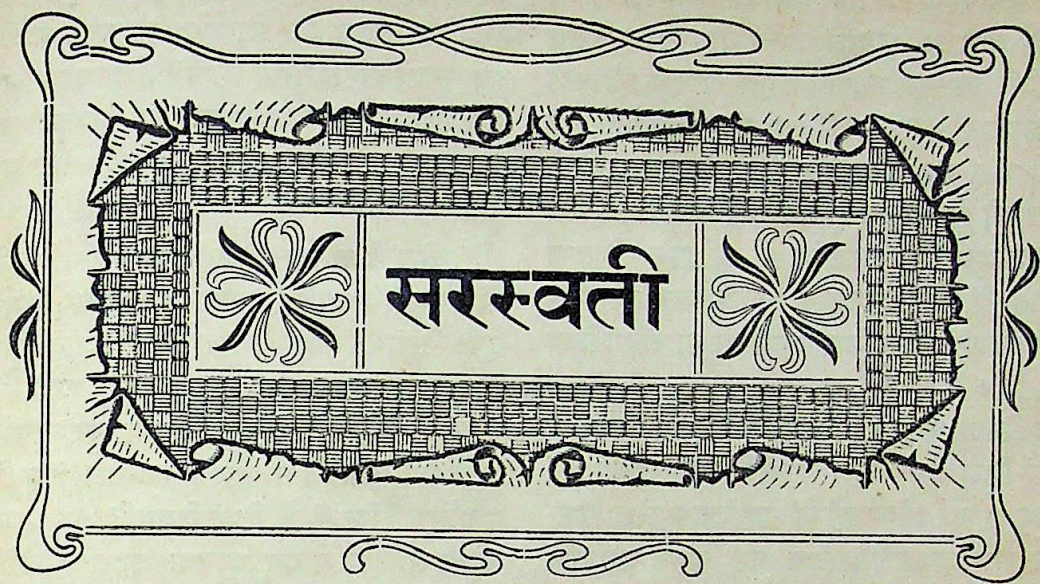
सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग १३] १ अक्टूबर, १९१२—आश्विन कृष्ण ५, १९६९। [संख्या १०

चीन में स्त्री-शिक्षा।

(लेखक—श्रीयुत सेन्ट निहालसिंह, लन्दन)

स्त्री-शिक्षा में जो उन्नति चीन ने गत दस वर्षों में की है उसका हाल थोड़े ही से भारतवासियों को मालूम होगा। चीन में कन्या-पाठशालाओं की जिस हिसाब से वृद्धि हो रही है और वहाँ की स्त्रियों में जिस तेज़ी से शिक्षा का प्रचार हो रहा है उसे देख आश्चर्य्य से चकित होना पड़ता है। दस वर्ष पहले चीन में सरकारी अथवा ग़ैर सरकारी शायद ही कोई कन्या-पाठशाला रही हो। हाँ, ईसाई पादड़ियों की ओर से कितनी ही कन्या-पाठशालायें अवश्य थीं, परन्तु वे भी चीन की आबादी के लिहाज़ से न होने के बराबर थीं। परन्तु अब प्रत्येक बड़े नगर में एक छोड़ कई कन्या-पाठशालायें स्थापित हो गई हैं और छोटे छोटे क़स्बों तक में कम से कम एक पाठशाला तो अवश्य ही है। प्रारम्भिक पाठशालाओं के अतिरिक्त स्त्रियों को उच्च शिक्षा देने के लिए भी विद्यालय स्थापित हो गये हैं और उन्हें दाई, अध्यापिका और डाक्टरी आदि के काम सिखाने का भी प्रबन्ध किया गया है। चीनियों ने परीक्षोत्तीर्ण स्त्री-छात्रों को ज्ञान की वृद्धि के लिए जापान, अमेरिका और योरप भेजना भी आरम्भ कर दिया है।

इस जागृति के कारण चीनी स्त्रियों में शिक्षा का प्रचार बड़ी ही तेज़ी से हो रहा है। चीन के कितने ही बड़े बड़े नगरों से स्त्रियों के लिए स्त्रियों ही द्वारा सम्पादित पत्र निकलने लगे हैं। कुछ वष पहले एक भी ऐसा पत्र न था। पर अब दिन पर दिन ऐसे पत्रों की उन्नति होती जाती है और इसी प्रकार के और भी नये नये पत्र जन्म लेते जाते हैं।

कुछ वर्ष पहले स्त्रियों का विदुषी होना कोई महत्त्व की बात न समझी जाती थी; परन्तु आज कल स्त्रियों का अशिक्षित रहना कलङ्क की बात समझी जाती है। चीन में कुमारी लड़कियाँ अपने बालों की लटों को गूँध कर पीठ पर लटका लेती हैं। बहुत सी विवाहिता स्त्रियाँ भी बालों को इसी तरह लटका कर पाठशालाओं में प्रवेश करने लगी हैं। शायद ही किसी धनवान् का घर ऐसा हो जिस में स्त्रियों को पढ़ाने के लिए अध्यापक या अध्यापिका नियत न हो।

कुछ स्त्रियाँ ऐसी भी हैं जिन्होंने अपनी सारी शक्ति स्त्री-शिक्षा का प्रचार करने में लगा रक्खी है। राजकुमार सू की बहिन का विवाह एक मङ्गोल राजकुमार के साथ हुआ है। जब वह अपने घर जाने लगी तब एक जापानी स्त्री को वह अपने साथ लेती गई। वहाँ पहुँच कर उसने एक कन्या-पाठशाला स्थापित की और जापानी स्त्री उसमें अध्यापिका नियत की गई। कुछ काल के उपरान्त वह अपनी ही पाठशाला के सत्तरह स्त्री-छात्रों सहित, पेकिन की कन्या-पाठशालाओं और वहाँ की शिक्षा-पद्धति का ढँग देखने के लिए वहाँ पहुँची। वहाँ से लौटते समय अपनी पाठशाला में चीनी साहित्य पढ़ाने के लिए वह पेकिन से एक उच्च शिक्षा पाई हुई चीनी स्त्री को अपने साथ लेती गई। राजकुमार की एक और बहिन है। उसने स्त्रियों को पाश्चात्य गणित और व्यायाम की शिक्षा देने के लिए पेकिन में एक पाठशाला खोल रक्खी है। उसमें लगभग अस्सी युवतियाँ शिक्षा पा रही हैं। राजकुमार सू की स्त्री ने भी अपने महल में एक पाठशाला स्थापित कर रक्खी है। उच्च कक्षा की कितनी ही और स्त्रियाँ भी, इसी प्रकार, अपने ख़र्च अथवा चन्दे से, कन्या-पाठशालायें चला रही हैं।

प्राचीन काल में, चीन में, स्त्री-शिक्षा।

प्राचीन काल में भी चीन में स्त्रियों की शिक्षा का प्रबन्ध था। उस समय लड़कियों को पढ़ने लिखने के अतिरिक्त सीना-पिरोना और गृहस्थ-धर्म्म भी सिखाया जाता था जिसमें वे अपने भावी पतियों को अच्छी सहायता दे सकें। प्राचीन काल में तो स्त्रीशिक्षा का प्रचार अवश्य था; परन्तु कुछ शताब्दियों से लोग उनकी शिक्षा की ओर बहुत कम ध्यान देने लगे थे।

चीन के इतिहास में कितनी ही विदुषी स्त्रियों के नाम पाये जाते हैं। अठारह सौ वर्ष पूर्व्व चीन में देवी टिसाओ नाम की एक विदुषी थी। लोग, आज कल, उसके नाम का बड़ा आदर करते हैं। कहा जाता है कि चीन में स्त्री-शिक्षा पर पहली पुस्तक उसी ने लिखी। इस पुस्तक का नाम "नू किसाई" अर्थात् "स्त्रियों के लिए नियम" है। आज तक चीनी साहित्य में यह पुस्तक बहुत अच्छी समझी जाती है। इसमें सात अध्याय हैं। पातिव्रत-धर्म्म, आत्म-संयम, चित्त की शुद्धता, व्यवहार-कुशलता, पति-प्रेम, सास और ससुर की आज्ञा का पालन और पति की भाई-बहनों से स्नेह आदि विषयों पर इसमें निबन्ध हैं। देवी टिसाओ का एक भाई था। वह भी बड़ा विद्वान् था। वह चीन के हन राजवंश का इतिहास लिख रहा था कि उसकी मृत्यु हो गई। देवी टिसाओ ने उस अपूर्ण इतिहास का शेष भाग लिख कर पूर्ण किया। उसके समकालीन लोग भी उसका बहुत आदर करते थे। मरने पर, उसकी अन्त्येष्टि-क्रिया बड़ी धूम धाम से की गई। उस समय, चीन में, मरणोपरान्त उपाधि मिलने की प्रथा थी। इसीलिए, मरतेही, सम्राट् ने उसे "महा-देवी" की उपाधि दी। इसी नाम से वह आज तक चीन में प्रसिद्ध है।

टिसाओ के बाद भी बहुत सी प्रसिद्ध स्त्रियाँ हुई हैं। सन् ५५६ ईसवी में, टिचांग-टिसी नाम की एक स्त्री थी। वह तत्कालीन सम्राट् की सब से छोटी रानी थी। उसके एक लड़का था। सम्राट् ने चाहा कि वह उस लड़के को अपना उत्तराधिकारी नियत करे; परन्तु टिचांग-टिसी ने उसे ऐसा करने से रोका। उसने उसे समझाया—"आप पुत्र-प्रेम में

न पड़ें। आप राजा हैं। यदि आप ऐसा करेंगे तो मैं अपने पुत्र को इस विशाल देश के राज-सिंहासन पर बैठे हुए देख प्रसन्न अवश्य हूँगी; परन्तु आप का ऐसा करना देश की रीति और नियमों का भङ्ग करना होगा। आप कदापि ऐसा काम न करें जिस से आपके कर्त्तव्य की च्युति हो"। यह स्त्री राज-नीति भी बहुत अच्छी जानती थी। बहुधा वह राज-नैतिक कार्य्यों में पति का साथ भी देती थी।

सम्राट् टाइ टिसेंग ईसा की सातवीं शताब्दी में था। उसकी महारानी टिचेंग सुनची बड़ी धार्मिक थी। उसकी धार्म्मिकता की चर्चा तो आज तक होती है। चीन में मृत पूर्व्वजों की पूजा बड़ी धूम धाम से होती है। उसे पुरुष ही करते हैं। स्त्रियाँ उसमें शामिल न होने पाती थीं। १०३३ में, चीन की एक महारानी ने, जो उस समय सम्राट् के नाबालिग़ होने के कारण साम्राज्य की संरक्षिका थी, स्त्रियों को इस पूजा से दूर रखने की प्रथा का बड़ा विरोध किया। चीन में पुच्छल तारे निकलने पर यही पूजा सम्राट् को करनी पड़ती थी। उसी समय एक पुच्छल तारा भी निकला। इस पर महा-रानी ने सम्राट् की ओर से स्वयं पूजा करने का आग्रह किया और उसका आग्रह सफल भी हुआ।

ये स्त्रियाँ अवश्य विदुषी रही होंगी; नहीं तो ये कदापि ऐसे काम न कर सकतीं। विदुषी रही हों या न रही हों, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उनके समकालीन लोग उनका बहुत आदर करते थे। इसी से आज भी चीन में उनके नाम बड़े भक्तिभाव से लिये जाते हैं। प्राचीन काल में, चीन में, स्त्रियों की प्रतिष्ठा वैसे भी बहुत होती थी। मातृ-पक्षही से वंश चलता था। चीन में, आज भी, बहुत सी देवियों की पूजा होती है। "कुआन ईन" इन सब में मुख्य समझी जाती है। दक्षिणी चीन में उसकी विशेष पूजा होती है। देवियों की पूजा का प्रचार इस बात का सूचक है कि चीन में स्त्रियों का बहुत आदर होता था।

मध्य-काल में, चीन में, एक भी प्रसिद्ध स्त्री नहीं हुई। मालूम पड़ता है कि सत्तरहवीं, अठारहवीं, और उन्नीसवीं शताब्दी में स्त्री-शिक्षा की ओर चीनियों ने बहुत ही कम ध्यान दिया। उच्च श्रेणी की स्त्रियाँ अवश्य कुछ लिखना पढ़ना सीख लेती थीं, परन्तु उनका मानसिक विकास निम्न श्रेणी वाली स्त्रियों से अधिक न होता था। लड़कियों को माता-पिता, सास-ससुर, पति-पुत्र की आज्ञा का पालन करना सिखाया जाता था। पुरुष ही स्त्रियों के धन के मालिक समझे जाते थे। स्त्रियों को अपने उदर-पोषण के लिए पुरुष ही के अधीन रहना पड़ता था। बाल्यकाल में वे पिता के, युवावस्था में पति के और वैधव्यदशा में पुत्र के अधीन रहती थीं। निम्न श्रेणी की स्त्रियाँ अपने परिश्रम द्वारा कुछ कमाती भी थीं। वे अपने घर पर, और बहुधा खेतों में भी, काम करती थीं। उन्हें घर के काम और मज़दूरी करना सिखाया जाता था। मध्यम और उच्च श्रेणियों की स्त्रियों का काम अपने पति और उसके माता-पिता को प्रसन्न रखने के सिवा और कुछ न था। हर एक लड़की का ब्याह होना आवश्यक समझा जाता था। इसी लिए धनवानों की स्त्रियाँ, पुरुषों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए, अपने अङ्गों को सँवारने और उन्हें अधिक सुन्दर बनाने के उपाय सोचा करती थीं। इसी को वे अपने जीवन का मुख्य उद्देश समझती थीं। उन्हें सुन्दरता बढ़ाने और दूसरों के साथ वार्तालाप करने के चित्ताकर्षक ढंग सिखाये जाते थे।

पुरुषों को ख़ुश करने ही के लिए स्त्रियों ने पैर छोटे करने की प्रथा सीखी। बाल्य-काल में हड्डियाँ नरम होती हैं। उसी समय लड़कियों के पैर इस ढंग और इतने ज़ोर से बाँध दिये जाते थे कि अँगूठे को छोड़ कर शेष चारों उँगलियाँ नीचे मुड़ जाती थीं। ऐंड़ी भी पैर के भीतर घुसती जाती थी। अँगूठा केवल नोक की तरह निकला रहता था इस प्रकार पैर तोड़ने मोड़ने से बालिका को बहुत पीड़ा होती; वह महीनों चीख़ती चिल्लाती; परन्तु

"सुन्दरता" बढ़ाने के लिए उसे इन सब कष्टों को सहनाही पड़ता। पैर का रूप भी बड़ा बेढँगा हो जाता था। चलना फिरना तो दूर रहा, बड़ी मुश्किल से गिरते पड़ते थोड़ा बहुत इधर उधर वह खिसक सकती। कुछ दिनों तक—कभी कभी महीनों और वर्षों तक—वह दर्द से रोने और चिल्लाने अथवा पैरों पर दवा लगाने और पट्टी बाँधने के सिवा और कुछ न कर सकती थी। अन्त में, अच्छी हो जाने पर, वह हाथों और घुटनों के बल खिसकती या पालकी या किसी और सवारी पर इधर उधर निकलती थी। धनवान् स्त्रियों की यह दुर्गति न होती थी; किन्तु वे स्त्रियाँ भी जिन्हें घर और गृहस्थी का काम करना पड़ता था, इस कुत्सित प्रथा का शिकार होती थीं; इस प्रथा के कारण उन्हें दर्द तो सहना पड़ता ही था, परन्तु इस प्रकार पङ्गुल बना दिये जाने पर वे कोई शारीरिक परिश्रम न कर सकती थीं। इसी लिए उनका स्वास्थ्य शीघ्र ही बिगड़ जाता था। यह प्रथा चीन देश की स्त्रियों की उन्नति की बड़ी बाधक हुई।

ईसाई पादड़ियों की कन्या-पाठशालायें

१८४४ में, कुमारी ऐल्डरसे नाम की एक ईसाई-धर्मप्रचारिका ने निंगपो नगर में चीनी लड़कियों के लिए एक पाठशाला खोली। उस समय लोगों का ख़याल था कि स्त्रियाँ बुद्धि-हीन होती हैं; वे पशुओं से किसी तरह अच्छी नहीं। अतएव उन्हें तो केवल घर के कामों की शिक्षा देनी चाहिए। कुमारी एल्डरसे को लोगों के इस अज्ञान और पक्षपात से घोर संग्राम करना पड़ा। बड़ी मुश्किल से उसने अपनी पाठशाला में चालीस लड़कियाँ बटोर पाईं। इन लड़कियों को किताब, काग़ज़, क़लम आदि के सिवा कुछ छात्र-वृत्ति भी इस लिए देनी पड़ती थी कि वे पाठशाला में आती रहें। उन्हें सीना-पिरोना, हिसाब, लिखना और पढ़ना सिखाया जाता था। कुछ दिनों में पाठशाला चल निकली। तब थोड़ी थोड़ी फ़ीस ली जाने लगी।

स्त्री-शिक्षा के प्रचारकों को, चीन में, पहले कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा होगा, इस बात का पता एक घटना से अच्छी तरह लग सकता है। एक ईसाई-धर्म्म-प्रचारक ने एक चीनी के पास जा कर प्रार्थना की कि अपनी लड़की को पाठशाला में पढ़ने के लिए भेज दिया कीजिए। चीनी ने पास ही बँधे हुए एक घोड़े की ओर सङ्केत करके कहा—"क्या तुम उस पशु को पढ़ा सकते हो?" पादरी ने उत्तर दिया—"पशु को पढ़ाना सम्भव नहीं"। तब चीनी ताना देता हुआ बोला—"यदि तुम समझदार घोड़े को नहीं पढ़ा सकते तो स्त्री को क्या पढ़ा सकोगे"! चीनी माता-पिता लड़की को पढ़ाना व्यर्थ समझते थे। वे उसका कम उम्र में ब्याह कर देते थे। ब्याह होते ही वह पति की जायदाद हो जाती थी। अपने माता-पिता से उसका इसके सिवा और कोई सम्बन्ध न रह जाता कि वह कभी कभी उनसे भेंट करने आती और फिर शीघ्र ही अपने पति के घर लौट जाती। इसी लिए चीनी माता-पिताओं के हृदयों में यह विचार उत्पन्न हो गया कि लड़की पराये घर की है और उसकी शिक्षा का प्रबन्ध करना धन और समय को नष्ट करना है। एक लेखक ने तो यहाँ तक लिखा है कि चीनी माता-पिताओं का ख़याल है कि "लड़कियों को पढ़ाना किसी अन्य आदमी के कुत्ते के गले में सोने की माला डालना है। जब कुत्ते का मालिक सीटी बजा कर अपने कुत्ते को बुला लेगा तब बहुमूल्य माला से भी हाथ धोना पड़ेगा"!

गत पचास वर्षों में पादड़ियों ने चीन में कई पाठशालायें स्थापित कीं; परन्तु धन और अध्यापकों की कमी के कारण वे लोग इस काम को इतना न बढ़ा सके जितना कि वे चाहते थे। चीनी भाषा बड़ी ही कठिन है। उसकी वर्ण-माला ही बड़ी विकट है। विदेशियों का उसे इतना सीख लेना कि वे लड़कों को पढ़ा सकें, आसान नहीं। पादड़ियों ने चीनी स्त्रियों से इस विषय में सहायता चाही। पहले तो उन्हें पढ़ी लिखी चीनी स्त्रियाँ मिली ही

नहीं, और जो एक दो मिलीं भी, वे पुराने ढंग से ही पढ़ाना जानती थीं। वह ढंग आधुनिक शिक्षा-प्रणाली के बिलकुल विरुद्ध था। लाचार होकर उन्होंने अपनी पाठशालाओं की लड़कियों ही को अध्यापिका का काम सिखाना आरम्भ किया। उन्हें इस काम में पहले बड़ी बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा; परन्तु अन्त में उन्हें सफलता प्राप्त हुई।

कठिनाइयाँ तो बहुत झेलनी पड़ीं; परन्तु विदेशियों ने बहुत सी चीनी लड़कियों को भी शिक्षा अच्छी दी। उनमें से कितनी ही प्रसिद्ध देश-भक्त, लेखक और डाकृर हैं। डाकृर मेरी स्टोन, डाकृर ईदाखान, (यद्यपि इनके नाम अँगरेज़ी ढंग के हैं, परन्तु ये दोनों चीनी हैं), डाकृर हीकिंग ईंग, डाकृर ली बी कू और डाकृर ज़ाह फोह आदि चीन में प्रसिद्ध स्त्री-डाकृर हैं। इन सबने पादड़ियों की सहायता से अमेरिका में डाकृरी की शिक्षा पाई है।

क्यूकिंग नगर में डाकृर मेरी स्टोन का डेनफोर्थ मेमोरियल हासपिटल (Denforth Memorial Hospital) नाम का एक बड़ा भारी औषधालय है। वह शल्य-चिकित्सा में बड़ी दक्ष है। ढाई तीन हज़ार से अधिक रोगी प्रति मास उसकी चिकित्सा में रहते हैं। दाइयों की शिक्षा के लिए उसने एक विद्यालय भी खोल रक्खा है। उसमें वह स्वयं ही शिक्षा देती है। अपने छात्रों को पढ़ाने के लिए उसने कई अँगरेज़ी पुस्तकों का चीनी भाषा में अनुवाद भी किया है। उसकी पढ़ाई हुई दाइयाँ अपने काम में चतुर निकलती हैं। अन्य औषधालयों में उसकी पढ़ाई हुई दाइयों की सदा ज़रूरत रहती है। वह पढ़ती भी बहुत है। उसने चिकित्सा-शास्त्र के कितने ही ग्रन्थ सर्व-साधारण की जानकारी बढ़ाने के लिए बड़ी ही सरल भाषा में लिखे हैं। अध्ययन-शील होते हुए भी वह रोगी नहीं रहती। वह बड़ी हँसमुख है। वह सदा प्रसन्न-चित्त रहती है और बड़ी ही मीठी बात-चीत करती है।

पादड़ियों की खोली हुई पाठशालाओं से एक काम और भी अच्छा हुआ है। पादड़ी पैर बाँधने की प्रथा के घोर विरोधी हैं। जो लड़कियाँ इनकी पाठशालाओं में पढ़ती हैं वे पैर नहीं बाँधने पातीं। इस में सन्देह नहीं कि पाठशाला छोड़ने पर कुछ लड़कियाँ अपने पैर बँधवा लेती हैं, परन्तु अधिकांश लड़कियों ने पाठशाला छोड़ कर अपने पैरों को बाँधना तो दूर रहा, अपनी सखियों और अन्य परिचित स्त्रियों के कान में ऐसा मन्त्र फूँका है कि उन तक के पैरों के बन्धन टूट गये हैं।

स्त्री-शिक्षा के लिए चीनवालों की चेष्टा।

१८९८ में, चीनी व्यापारियों और अधिकारियों ने मिल कर शंघाई में एक कन्या-पाठशाला स्थापित की। यह पहली पाठशाला थी जो चीनियों की ओर से स्थापित हुई। इसका काम चन्दे से चलता था। पुरुषों ने तो केवल उसके लिए धन का प्रबन्ध कर दिया, शेष सब काम स्त्रियों ने किया। शंघाई में रहने वाली चीनी स्त्रियाँ पाश्चात्य महिलाओं से मिलीं; उनसे पाठशाला के विषय में सलाहें लीं; और उन्हीं के परामर्श के अनुसार काम किया। पहले ही दिन उच्च वंश की सोलह लड़कियों ने पाठशाला में प्रवेश किया। दुर्भाग्य से भूत-पूर्व महारानी टिसी हसी के हृदय में यह बात पैठ गई कि यह पाठशाला माञ्चू राजवंश को हानि पहुँचाने के लिए स्थापित की गई है। अतः उनकी आज्ञा से यह पाठशाला; दो वर्ष तक चलने के बाद, बन्द कर दी गई।

परन्तु स्त्री-शिक्षा पर लोगों की श्रद्धा बढ़ती ही गई। चीनियों ने महारानी के क्रोध की कुछ पर्वाह न करके बड़े बड़े नगरों में कन्या-पाठशालायें स्थापित करना आरम्भ कर दिया। १९०२ तक, शंघाई में चीनियों की ओर से फिर दो पाठशालायें स्थापित हो गईं। १९०३ में एक, १९०४ में एक, १९०५ में चार और १९०६ में भी चार पाठशालायें और स्थापित हुईं। इस प्रकार १९०७ के आरम्भ में

अकेले शंघाई नगर में चीनियों की ओर से बारह कन्या-पाठशालायें हो गईं, जिनमें आठ सौ से अधिक लड़कियाँ पढ़ती थीं। इन पाठशालाओं में पढ़ने, लिखने के अतिरिक्त शिल्प-कला और औषध-शास्त्र की भी कुछ शिक्षा दी जाती थी। इन सब में व्यायाम करना परमावश्यक समझा जाता था। पाँच पाठशालायें ऐसी थीं जिनमें पढ़नेवाली कन्यायें पैर बाँधने की प्रथा त्यागने पर मजबूर की जाती थीं।

सरकारी कन्या-पाठशालायें।

१९०० तक चीन की सरकार ने स्त्री-शिक्षा के लिए कुछ भी न किया। तत्पश्चात् वह इस शिक्षा के पक्षपातियों को कुछ सहायता देने लगी। कुछ प्रान्तों के शिक्षित शासकों ने भी अपने अपने प्रान्तों में कन्या-पाठशालायें स्थापित कीं और स्त्री-शिक्षा का प्रचार करना आरम्भ किया।

बाक्सर-विप्लव के बाद चीन की महारानी पाश्चात्य जातियों का बल अच्छी तरह समझ गई। यह देख कर कि पाश्चात्य रङ्ग में रँगे होने के कारण छोटा सा जापान दीर्घाकार चीन को सहज ही में पछाड़ सकता है, महारानी ने देश में सुधार और शिक्षा-प्रचार करने का निश्चय किया। स्त्री-शिक्षा की ओर भी उसका ध्यान गया। उसने दो लाख रुपये से राजधानी पेकिन में कितनी ही कन्या-पाठशालायें स्थापित कर दीं। वह स्त्री-शिक्षा का इतना पक्ष लेने लगी कि एक बौद्ध लामा के मठ तक में उसने एक पाठशाला खोल दी। १९०५ में, फूचू नगर में स्त्रियों को अध्यापिका का काम सिखाने के लिए एक विद्यालय खोला गया। १९०६ में टेंगचौ और उसके आस पास के नगरों में भी कन्या-पाठशालायें स्थापित हो गईं। उसी वर्ष महारानी ने कुछ विद्वानों को विदेशों की शिक्षा-प्रणाली देखने के लिए भेजा। इन विद्वानों ने लौट कर शिक्षा-विभाग में अन्य बहुत से सुधार किये। १९०७ में चांगशा के सरकारी विद्यालय के अध्यापकी शिक्षा और प्रारम्भिक विभागों में दो सौ स्त्रियाँ अँगरेज़ी, गणित, चीनी भाषा और गृह-प्रबन्ध-शास्त्र पढ़ती थीं। उसी वर्ष चिली प्रान्त में १२१ कन्या-पाठशालायें थीं, जिनमें कोई तीन हज़ार लड़कियाँ थीं। १९०८ में, सज़ी चुआन में, ४९ सरकारी और गैर-सरकारी पाठशालायें थीं, जिनमें १८९७ युवतियां पढ़ती थीं। उस वर्ष इसी प्रान्त में २९७ ऐसी प्रारम्भिक पाठशालायें थीं, जिनमें लड़के और लड़कियाँ साथ साथ पढ़ती थीं। अकेले केन्टन में २५ कन्या-पाठशालायें थीं। १९०८ में, शिक्षा-विभाग के मन्त्री ने देश भर में कन्या-पाठशालायें स्थापित करने का प्रस्ताव महारानी के सामने पेश किया। महारानी ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और यह भी आज्ञा दे दी कि बड़ी बड़ी पाठशालाओं में विदेशी अध्यापिकायें भी नौकर रक्खी जायँ। लड़कों और लड़कियों के लिए शिक्षा अनिवार्य्य कर दी गई। सरकारी पाठशालाओं में पढ़ाने के लिए पुस्तकें भी निर्धारित कर दी गईं। १९०९ में, सरकार की ओर से नानकिङ्ग नगर में नौ कन्या-पाठशालायें स्थापित हुईं। इन नौ पाठशालाओं में, उन लड़कियों के अतिरिक्त जो पादड़ियों और गैर-सरकारी पाठशालाओं में पढ़ती थीं, नगर की ७५२ लड़कियाँ शिक्षा पाती थीं। उसी वर्ष नानकिङ्ग नगर में तेरह सरकारी कन्या-पाठशालायें स्थापित की गईं।

चीन में स्त्री-शिक्षा की तीन श्रेणियाँ हैं। सात से लेकर दस वर्ष की आयु तक लड़कियाँ प्रथम श्रेणी में पढ़ती हैं। वे इन चार वर्षों में नैतिक शिक्षा के अतिरिक चीनी भाषा, प्रारम्भिक गणित, सीना-पिरोना, सङ्गीत आदि सीखती हैं। दूसरी श्रेणी में भी चार वर्ष तक पढ़ना पड़ता है। उन बातों के अतिरिक्त जो पहले सिखाई जा चुकी हैं इस श्रेणी में चीनी इतिहास और साहित्य, जापानी और अँगरेज़ी भाषा, बीज-गणित, मनो-विज्ञान-शास्त्र और व्यायाम की शिक्षा दी जाती है। तीसरी श्रेणी में अध्यापिका बनने और बच्चों के लालन-पालन

करने की शिक्षा दी जाती है। प्रत्येक ज़िले में इस श्रेणी का एक विद्यालय है। इस में भी चार वर्ष की पढ़ाई होती है। इसमें अध्यापिका का काम, विज्ञान-शास्त्र, चित्र बनाना, गृह-प्रबन्ध, सीना-पिरोना, मेहनत के काम और सङ्गीत आदि की शिक्षा होती है। इस प्रकार की सरकारी पाठशालाओं में छात्रों से फ़ीस नहीं ली जाती। सर्व-साधारण भी सरकार से आज्ञा लेकर इस प्रकार की पाठशालायें खोल सकते हैं। इन पाठशालाओं से उत्तीर्ण हो कर निकलने पर प्रत्येक छात्र को तीन वर्ष तक किसी पाठशाला में पढ़ाने का काम करना पड़ता है।

सरकारी पाठशालाओं में पढ़ने वाली लड़कियाँ भड़कीले कपड़े नहीं पहन सकतीं। सादे सूती कपड़े पहन कर उन्हें पाठशाला में जाना पड़ता है।

सरकारी पाठशालाओं की इमारतें नई बनवाई गई हैं। उनमें लकड़ी के सामान और उन चीज़ों की, जिनकी आधुनिक शिक्षा के देने में आवश्यकता पड़ती है, कमी नहीं। इन पाठशालाओं के शिक्षकों और शिक्षिकाओं को पादड़ियों की पाठशालाओं से कहीं अधिक वेतन मिलता है। फूचौ नगर में स्त्रियों का एक नार्मल-स्कूल है। उसके शिक्षकों और शिक्षिकाओं को ३० रुपये से ले कर १२० रुपये मासिक तक वेतन मिलता है। अधिक वेतन, योग्य स्त्री और पुरुषों को सरकारी पाठशालाओं में नौकरी करने के लिए, उत्साहित करता है। यद्यपि सरकारी पाठशालाओं में ये सब सुभीते हैं, तो भी योग्य अध्यापिकाओं की कमी के कारण, स्त्री-शिक्षा में, जैसी चाहिए वैसी, उन्नति नहीं हुई। पहले जापानी स्त्रियाँ पढ़ाने के लिए नौकर रक्खी गई थीं; परन्तु वे चीनी भाषा या तो जानती ही न थीं, या जानती भी थीं तो बहुत थोड़ी। इस लिए वे ठीक ठीक न पढ़ा सकती थीं। तत्पश्चात् पाठशालाओं में पढ़नेवाली लड़कियों को इस बात के लिए उत्साहित किया गया कि वे पढ़ कर, पाठशाला छोड़ने पर, अन्य कोई धन्धा न करके अध्यापिका ही का काम करें। इसी लिए टींटसिन प्रान्त के सूबेदार ने एक राजाज्ञा प्रकाशित की कि सरकारी पाठशालाओं में अध्यापिका का काम सीखने वाली प्रत्येक लड़की को सरकार की ओर से तीस रुपये मासिक छात्र-वृत्ति मिलेगी और शिक्षा-काल समाप्त होते ही उसे अध्यापिका का पद दिया जायगा। विदेशी स्त्रियाँ तो अध्यापिका का काम करने के लिए बहुत सी मिल जातीं; परन्तु सरकार ने उन्हें इस लिए नौकर न रक्खा कि वे सरकारी नौकर की हैसियत में भी अपने धार्म्मिक विचारों के प्रचार को रोकने के लिए तैयार न थीं। जो विदेशी स्त्री या पुरुष सरकारी पाठशाला में काम करता है उसे अपनी पाठशाला के नियमों से बद्ध होना पड़ता है। उसे मुक़द्दमेबाज़ी और विदेशी राजनैतिक आन्दोलनों से दूर रहना पड़ता है। साथ ही पाठशाला के अध्यक्ष की आज्ञा का पालन भी उसे करना पड़ता है।

इतना होने पर भी, चीन में, अभी हज़ार में केवल एक ही स्त्री शिक्षित है। परन्तु जिस गति से स्त्री-शिक्षा में उन्नति हो रही है उसे देख कर कहना पड़ता है कि, जापान की तरह, कुछ ही वर्षों में, चीन की स्त्रियों में भी अविद्या का नाश हो जायगा।

याच्ञा।

दया भी करोगे ? दया-धाम हो,
रमो चित्त में आप तो राम हो।
हमें शक्ति दो, भुक्ति दो या न दो,
विभो ! भक्ति दो, मुक्ति दो या न दो ॥१॥
गुणातीत हो, या निराकार हो
हमारे लिए तो तुम्हीं सार हो।
सभी ठौर हो सृष्टि में जो हरे !
पुनः दृष्टि से हो कहो, क्यों परे ? ॥२॥
तजो शून्यता और साकार हो,
पुनः रूप में भाव-विस्तार हो।
बनें चर्म के चक्षु भी धन्य ये,
तुम्हें छोड़ देखें किसे अन्य ये ॥३॥

कई जन्म का हाय ! विश्लेष है,
कहो, क्या अभी और भी शेष है ?
नहीं किन्तु चिन्ता कि न्यारे रहें ;
तुम्हारा सदा ध्यान धारे रहें ॥४॥
व्यथा हो न जो भूमि को भार की
नहीं है हमें भीति संसार की ।
तुम्हारे जगद्राज्य में भीति क्या ?
हमारे लिए है नई नीति क्या ? ॥५॥
तुम्हारा जगद्राज्य जीता रहे,
सदा प्रेम-पीयूष पीता रहे ।
बढ़े शान्ति ज्यों चन्द्रमा की कला,
सभी के भले में हमारा भला ॥६॥
हमें ध्यान दो, ज्ञान दो या न दो,
गिरा-गान दो, मान दो या न दो ।
तुम्हारे गुण-ग्राम गाया करें ;
इसी भाँति विश्राम पाया करें ॥७॥
नहीं लालसा है विभो ! वित्त की,
हमें चेतना चाहिए चित्त की ।
भले ही न दो एक भी सम्पदा,
रहे आत्म-विश्वास पूरा सदा ॥८॥
नहीं मांगते हीर या हेम दो,
दिया विश्व तो विश्व का प्रेम दो ।
सहें दुःख आपत्तियों से घिरे,
रहें किन्तु दुर्वृत्तियों से फिरे ॥९॥
न छूटें भले ही कभी बन्ध से,
फिरें मोह के मार्ग में अन्ध से ।
न भूलें तुम्हारी निराली छटा,
घिरी ही रहे नित्य काली घटा ॥१०॥
रहें सर्वदा दुःख में, सोच क्या ?
तुम्हारा दिया दुःख, सङ्कोच क्या ?
नहीं मृत्यु से किन्तु जी में डरें ;
तुम्हें देखते देखते ही मरें ॥११॥
भिखारी खड़े हैं, ज़रा ध्यान दो,
न दो और तो दृष्टि का दान दो ।
मरें या जियें भाग्य को लेख लें,
तुम्हारी अपाङ्ग-प्रभा देख लें ॥१२॥

मैथिलीशरण गुप्त ।

भाषा-शिक्षा ।

भाषा की प्रकृति ।

भाव की उत्पत्ति और चित्त के ऊपर विश्व का कार्य ।

जगत् में जितने पदार्थ हैं वे सब मनुष्य के चित्त के ऊपर कार्य करके एक प्रकार के भाव और चिन्ता को उत्पन्न करते हैं । ये पदार्थसमूह ही मनुष्य की चिन्ता के विषय हैं । जब मनुष्य को प्राकृतिक जगत् की नानाविध श्राव्य और दृश्य वस्तुओं का संस्पर्श होता है, उनके साथ संयोग होता है, तब वह जलसम्बन्धी, स्थलसम्बन्धी और आकाशसम्बन्धी विभिन्न प्रकार के पदार्थों के विषय में चिन्ता करता है । इसी प्रकार समस्त स्थूल विश्व मनुष्य के भावराज्य के अधीन हो जाता है । इसी प्रकार मनुष्यसमाज, राष्ट्र, वैषयिक प्रतिष्ठान आदि मनुष्यविषयक जितने पदार्थ हैं, वे सब एक प्रकार की चिन्ता को उत्पन्न करते हैं । इनके साथ संयोग होते ही मन में एक प्रकार का भाव उदय हो जाता है । मानवीय और प्राकृतिक दोनों प्रकार के जगत् में जितने प्रकार की बातें या घटनायें हैं उन सब को छोड़ कर मनुष्य और कुछ चिन्ता कर ही नहीं सकता । मनुष्य का चित्त इन्हीं बातों या घटनाओं के द्वारा आन्दोलित हो कर इन्हीं के द्वारा पूर्ण हो जाता है । यही बातें भाव और धारणा के कारण हैं और यही भाव और धारणा के विषय हैं ।

भाव की प्रकृति और पदार्थ में गुण का आरोप ।

यह तो सिद्ध हो चुका कि विश्व के विविध पदार्थ ही भाव और धारणा के विषय हैं । जिस समय ये पदार्थ चित्त पर आघात करते हैं उस समय मनुष्य के सामने इनकी प्रकृति और स्वरूप प्रतीयमान होने लगता है । तात्पर्य यह है कि विश्व के विविध पदार्थों के द्वारा चित्त पर आघात पहुँचते ही मनुष्य उन पदार्थों की प्रकृति और स्वरूप के विषय में ज्ञान

प्राप्त करने लगता है; वह उनसे परिचित हो जाता है। जब किसी विषय की चिन्ता की जाती है, या पृथ्वी का कोई पदार्थ जब मनोराज्य के अन्तर्गत हो जाता है, तब उन पदार्थों के गुण और धर्म मालूम हो जाते हैं। तभी ये लक्षणविशिष्ट हो कर सीमाबद्ध और निर्दिष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार गुण और धर्म का परिचय पाकर पदार्थों में विशेषता उत्पन्न करना भाव और चिन्ता का काम है। परिचय प्राप्त करना, स्वरूप का ज्ञान होना, धर्म का प्रकाश और गुण का आरोप—ये सब काम भाव और चिन्ता के प्राण हैं। जब मनुष्य वृक्ष, पर्वत आदि जड़ पदार्थों के विषय में चिन्ता करता है तब उसको इनकी स्थिति, परिमाण, प्रयोजनीयता आदि बातों का ज्ञान हो जाता है। अन्यान्य वृक्षादि के साथ तुलना करके, या अपने ही साथ सम्बन्ध स्थापन करके, या संसार के अन्यान्य पदार्थों के साथ संयोग-विधान करके मनुष्य इन पदार्थों को विशिष्टलक्षणाक्रान्त कर डालता है। इसी प्रकार चिन्ता के द्वारा समाज के नाना प्रकार के कार्यकलाप के सम्बन्ध में इनकी परस्पर तुलना हो जाती है और सम्बन्ध स्थिर हो जाता है। इसका फल यह होता है कि समाज के नाना प्रकार के पदार्थों का परिचय स्थिर और निर्दिष्ट हो जाता है। मनुष्य की कोई भावना या चिन्ता ऐसी नहीं है जिसके द्वारा किसी न किसी विषय के गुण और धर्म प्रकाशित न हों। तुलना न करके, सम्बन्ध स्थापन न करके, लक्षण का निर्णय न करके, और धर्मविशिष्ट न करके कोई धारणाकार्य सिद्ध नहीं हो सकता। भाव और चिन्ता की प्रकृति ही ऐसी होती है कि इनका विषयीभूत मानवीय और प्राकृतिक विश्वसंयोग, तुलना आदि के द्वारा विभिन्न लक्षणाक्रान्त और गुणविशिष्ट हो जाता है।

भाव का क्रमिक विकाश।

भिन्न भिन्न मनुष्यों की चिन्ताप्रणाली और ज्ञानवृद्धि की परम्परा आदि की आलोचना करके देखा जाय तो मालूम होगा कि मनुष्य की चिन्तापद्धति के कुछ साधारण नियम हो हैं।

१—एक बार एक से अधिक विषय में भाव की उत्पत्ति असम्भव है।

एक समय में दो वस्तुयें चित्त के ऊपर काम नहीं कर सकतीं। इस लिए, मनुष्य एकही बार में संसार के समस्त पदार्थों को चिन्ता के अधीन नहीं कर सकता। कोई मनुष्य संसार के सारे पदार्थों को एक ही बार नहीं सोच सकता; एक साथ, एक ही प्रयत्न से, सब पदार्थों के परिचय की प्राप्ति और गुणों का निर्णय नहीं कर सकता। उसको विषयों के विभाग करके एक एक का लक्षण निर्देश करना पड़ता है। इसी लिए चिन्तापद्धति में क्रम और पूर्वापरता रहती है।

२—अवस्था के अनुसार भाव-वैचित्र्य पैदा होता है।

चिन्ता के विषयीभूत पदार्थों में कुछ ऐसी विशेषता और पार्थक्य है कि मनुष्य की भिन्न भिन्न अवस्थाओं में ही उनका कार्य होसकता है। मनुष्य भिन्न भिन्न अवस्थाओं में भिन्न भिन्न जाति के पदार्थों की चिन्ता कर सकता है। सभी अवस्थाओं में किसी पदार्थ की सब प्रकार की धारणा होना असम्भव है। इस लिए भाव का क्रमिक विकाश वयोवृद्धि और धारणा-शक्ति के विकाश के ऊपर अवलम्बित है।

३—परिचित भाव के सहारे पर ही नवीन भाव की स्थिति होती है।

पुराने भावों और धारणाओं की नींव का सहारा विना लिए, प्रतिष्ठित—सुपरिचित—चिन्ता की सहायता विना लिए, मनुष्य नई धारणा या नया भाव ग्रहण नहीं कर सकता। परिचित पदार्थों के द्वारा चित्त के ऊपर जो जो कार्य होते हैं और उनके परिणाम से पृथ्वी के स्वरूपसम्बन्ध में, पदार्थों के गुण और धर्म के सम्बन्ध में जो ज्ञान पैदा होता है, वही चिन्ता कार्यसमूह और ज्ञान के साथ तुलना करके, उनका व्यवहार करके और उनके साथ संयोग पैदा करके, अपरिचित नवीन पदार्थों का ज्ञान पैदा होता है। इसी नवीन पदार्थ के द्वारा चित्त के ऊपर जो कार्य होता है उसकी प्रकृति

निर्दिष्ट हो जाती है, ग्रौर नवीन लक्षणों तथा गुणों का परिचय प्राप्त हो जाता है। इसी कारण मनुष्य पहलेही अपरिचित पदार्थों एवं दूर भविष्यत् तथा दूर भूत काल के विषय में चिन्ता नहीं कर सकता। अपरिचित को स्वाधीन करने की पद्धति में क्रम ग्रौर पूर्वापरता का होना आवश्यक है।

४—किसी पदार्थ के सम्बन्ध में एक ही बार एक से अधिक भाव की उत्पत्ति असम्भव है।

मनुष्य, पहलेही, चिन्ता के विषयीभूत पदार्थों के सब प्रकार के गुण ग्रौर धर्म नहीं जान सकता। एक साथ, या एक ही अवस्था में, वह, पदार्थों के साथ पदार्थों की तुलना करके, या संयोग पैदा करके, पदार्थों के साथ अपना सम्बन्ध पैदा करके, उनके सब प्रकार के धर्मों ग्रौर लक्षणों का निर्देश नहीं कर सकता। इस गुणारोप में ग्रौर धर्मप्रकाश में क्रम ग्रौर पौर्वापर्य है। पदार्थों के गुणों ग्रौर धर्मों का ज्ञान एक वार में ही नहीं होता, क्रम क्रम से होता है। जिस प्रकार मनुष्य एक समय में एक से अधिक पदार्थ की चिन्ता नहीं कर सकता, उसी प्रकार वह किसी एक ही अवस्था में सब प्रकार के विषयों का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। दूर, भूत, ग्रौर भविष्यत् काल आदि के अपरिचित पदार्थ पहले ही पहल मनुष्य के चित्त के ऊपर कार्य करके परिचित, लक्षणाक्रान्त, धर्मसंयुक्त ग्रौर विशेष रूप से निर्दिष्ट नहीं हो सकते। इसी प्रकार मनुष्य किसी पदार्थ के एक से अधिक गुण एक ही बार में, एक ही साथ, नहीं जान सकता। सब प्रकार के गुणों को कोई एक ही अवस्था में हृदयङ्गम नहीं कर सकता। किसी मनुष्य को पहले ही स्थूल, सूक्ष्म, जटिल आदि विचित्र लक्षणों की धारणा नहीं हो सकती। वयोवृद्धि ग्रौर चिन्ताशक्ति के विकाश के साथ साथ भाव ग्रौर चिन्ता की संख्या बढ़ा करती है। इनमें क्रमशः जटिलता ग्रौर सूक्ष्मता आकर वैचित्र्य उत्पन्न हो जाता है।

५—भाव क्रमशः प्रणालीबद्ध ग्रौर शृङ्खलीकृत होता है।

पहले धारणासमूह में शृङ्खला या सामञ्जस्य नहीं होता। आरम्भ में धारणाओं का रूप अधिक स्पष्ट नहीं होता। पहली अवस्था में पदार्थ के भिन्न भिन्न गुण अलग अलग प्रतीत होते हैं। तुलना के द्वारा इनमें योग ग्रौर सम्बन्ध धीरे धीरे पैदा होते हैं। इस उपाय से गुण की विचित्रता ग्रौर जटिलता में प्रणाली ग्रौर नियम का आविष्कार होता है ग्रौर लक्षण ग्रौर धर्म शृङ्खला में होकर भावों को बाँध लेते हैं।

भाव ग्रौर भाषा।

साधारणता से ग्रहण किये गये भाव के प्रकाशित करने के इशारों का नाम भाषा है।

जब मनुष्य अपने मन के भाव को समाज में किसी व्यक्ति पर प्रकट करना चाहता है तब उसको कुछ इङ्गितों—इशारों—का सहारा लेना पड़ता है। जो इङ्गित, जो चेष्टायें, जो इशारे व्यवहार में लाये जाकर समाज में मनुष्य के भावों को प्रकट करते हैं ग्रौर आपस में सबके चिन्ताकार्यों में सहायता देते हैं उन्हीं इङ्गितों—इशारों—के द्वारा भाषा का संगठन होता है। यदि पृथ्वी पर एक मनुष्य के सिवा ग्रौर कोई मनुष्य न होता, यदि समाज या समुदाय का नाम भी न होता, तो फिर पृथ्वी की जितनी चीज़ें हैं वे उसके चित्त के ऊपर कार्य करके, विश्व के सम्बन्ध में जैसा चिन्तन कराती उनके प्रकाशित होने का कोई कारण न रहता। ऐसा होने पर भाषा-सृष्टि का कुछ प्रयोजन ही न रहता, फिर भाषा की सृष्टि होती ही नहीं। किन्तु मनुष्य का संगठन ही ऐसा है कि उसको समाज की आवश्यकता है। संसार में जितने प्रकार के मानवीय ग्रौर प्राकृतिक पदार्थ हैं उनकी प्रकृति ग्रौर धर्म के सम्बन्ध में एक मनुष्य जो कुछ ज्ञान प्राप्त करता है उसको दूसरे मनुष्य पर प्रकट करके उस विषय में वह उसके मन के भाव को जानना चाहता है। इस लिए भाव ग्रौर धारणा के आदान-

प्रदान के साधन की आवश्यकता है। इसी कारण, इसी सुभीते के लिए, तदुपयोगी इङ्गितसमूहों और भाषा की सृष्टि हुई है। इन्हीं इङ्गितों में, इन्हीं इशारों में, मनुष्य ने ध्वनि और वचनों के विषय में बहुत कुछ उन्नति करली है। वाचनिक इङ्गितों (ज़बानी इशारों) और बातचीत को ही प्रधानतया भाषा कहते हैं।

भाषा उपाय मात्र है। उसका लक्ष्य भाव का प्रकट करना है।

यद्यपि भाषा या इङ्गितों—इशारों—के बिना आपस में मनोभावों का प्रकट करना असम्भव है तथापि भाषा उपाय मात्र है, साधन मात्र है। उनका कुछ अर्थ है इसी लिए वाक्यों का प्रयोजन है। वृक्ष, पर्वत, समाज, राष्ट्र आदि जितने पदार्थ हैं उनके द्वारा चित्त पर आन्दोलन होने से, उनके गुणनिर्णय, लक्षणनिर्देश, प्रकृति-परिचय और स्वरूपज्ञान होते ही इङ्गितों—इशारों—का सहारा लेकर, वाक्यों की सहायता ग्रहण करके, भाषा के व्यवहार से उनको प्रकट करना पड़ता है। अतएव भाव ही भाषा का प्राण है। इस कारण भाषा की प्रकृति, उत्पत्ति, और क्रमिक विकाश भाव की प्रकृति, उत्पत्ति, क्रमिक विकाश के ही अनुरूप होती है। भाषा सब विषयों में, सब तरह से, भाव का ही अनुसरण है। भाषा बिलकुल भावानुगामिनी ही होती है।

भाषा का इतिहास भाव के इतिहास के अनुरूप होता है।

यही कारण है कि भाव और धारणा के कारण और विषयसमूह, भाषा में, बात चीत के द्वारा या इशारों से ध्वनि की सहायता से प्रकाशित होते हैं।

मानवीय और प्राकृतिक जगत् की विभिन्न घटनायें ही भाषा के विषय हैं।

प्राकृतिक जगत् और मानवीय जगत् की सभी बातें, सभी घटनायें ही मनुष्य की भाषा के विषय हैं। जिस समय मनुष्य कोई इशारा करता है या कोई बात कहता है उस समय इस जगत् के विविध पदार्थ उसके कथन या इशारों के विषयीभूत हो जाते हैं। इनको छोड़ देने से मनुष्य की भाषा या वाचनिक कार्य सिद्ध नहीं हो सकते। विश्व के द्वारा मनुष्य के चित्त के ऊपर जो कार्य होता है वही भाषा का विषय और कारण है। मनुष्य की बातचीत और इङ्गितसमूह इसी विश्व की विविध घटनाओं से पूर्ण रहते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि जिस प्रकार भाव मानव और प्रकृति-विषयक है उसी प्रकार भाषा भी मानव और प्रकृति-विषयक है।

किसी पदार्थ के सम्बन्ध में वक्तव्य प्रकट करने के लिए भाषा की प्रकृति और लक्षण।

जिस प्रकार भाव की प्रकृति पदार्थ के गुण का आरोप करती है उसी प्रकार भाषा की प्रकृति भी समाज के पदार्थों के गुणों को प्रकट करती है। मनुष्य बात चीत करके, इङ्गित करके, मनुष्यों के सामने पदार्थों की तुलना करता है, उनका संयोग सिद्ध करता है और नाना प्रकार के उपायों से उनका धर्म प्रकट करता है। पदार्थों की प्रकृति और परिचय मनुष्यों की भाषा के ही द्वारा समाज में प्रकाशित होते हैं। मनुष्य जब कोई बात कहता है तभी वह किसी पदार्थ के एक धर्म को प्रकाशित करता है। मनुष्य की ऐसी कोई बात चीत नहीं हो सकती जिसके द्वारा वह किसी वस्तु या व्यक्ति के सम्बन्ध में विशेषण व्यवहार करके उसको विशिष्ट, वर्णित या निर्दिष्ट न करे।

शब्दयोजना के द्वारा वाक्यरचना।

मनुष्य किसी एक ही ध्वनि की सहायता से, एक ही पद या शब्द का व्यवहार करके अपने चित्त के ऊपर किसी पदार्थ का कार्य, अथवा किसी वस्तु या व्यक्ति के गुण का निर्णय या परिचय का प्रकाश नहीं कर सकता। किसी वस्तु का अच्छी तरह से परिचय प्रदान करने या स्वरूप के वर्णन करने और यथार्थ भाव से गुणों या लक्षणों को प्रकट करने के लिए एक पूरे वाक्य का प्रयोग करना पड़ता है। इस वाक्य के दो अङ्ग हैं। १—विश्व के जिस पदार्थ के द्वारा भाव का उद्रेक हो। २—जिस पदार्थ के

सम्बन्ध में गुणारोप आवश्यक है। विषय के सम्बन्ध में जो कुछ कहना पड़ता है वह विषयवाचक ध्वनि या शब्द कहाता है। यही वाक्य का पहला अङ्ग है और उसी पदार्थ के आघात के द्वारा मनुष्य का चित्त जिस प्रकार आन्दोलित होता है और उस आन्दोलित के फल से उसके सम्बन्ध में जो गुण का आरोप किया जाता है तथा उसके परिचय में जो कुछ कहा जाता है वही वक्तव्यवाचक ध्वनि या शब्द कहाता है। यह वाक्य का दूसरा अङ्ग है। केवल एक ही ध्वनि के प्रयोग से न तो किसी पदार्थ के साथ गुण का संयोग किया जा सकता है, न किसी पदार्थ के साथ तुलनासाधन या संयोगविधान किया जा सकता है, और न अपने साथ सम्बन्ध स्थिर किया जा जा सकता है। इसलिए तुलनासाधन और गुणारोप तथा भाव की प्रकृति के अनुरूप शब्दयोजना, पद-संयोग और वाक्य-रचना ही भाषा का लक्षण और प्रकृति है। जिस प्रकार किसी विषय के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त किये विना, पदार्थ के साथ उसके धर्म का संयोग किये विना चिन्ता का कार्य नहीं होता, उसी प्रकार शब्दयोजना के द्वारा वाक्यरचना विना किये कोई भाषा सिद्ध नहीं होती। पदविशिष्ट वाक्य ही भाषा का मुख्य उपादान है। केवल शब्द के व्यवहार करने से ही भाषा नहीं बन सकती, कारण यह कि भाषा केवल कुछ शब्दों की ही समष्टि नहीं है। जहाँ वाक्यों की अधिकता अथवा एक भी वाक्य का प्रयोग नहीं वहाँ भाषा का अस्तित्व ही नहीं।

भाषा का क्रमिक विकाश।

भाव भाषा के ही भीतर होकर प्रकट होता है, इसलिए भाव के क्रमविकाश के अनुसार ही भाषा का क्रमविकाश होता है। अलग अलग मनुष्यों की भावप्रकाश की प्रणाली और अलग अलग मनुष्य-समुदाय की भाषा की परिपुष्टि के पारम्पर्य और समालोचना करने से भाषा के विकाश-सम्बन्ध में कुछ साधारण नियम बनाने पड़ते हैं। देखा जाता है कि चिन्तापद्धति में जैसा क्रम और जैसा पारम्पर्य है वैसा ही क्रम और पारम्पर्य भाषा के इतिहास का भी है।

१—एक बार में एक से अधिक विषयों में वाक्यरचना असम्भव है।

मनुष्य एक ही समय में दो वस्तुओं या व्यक्तियों के सम्बन्ध में वाक्यरचना करके उनके विषय में अपना मनोभाव प्रकाशित नहीं कर सकता। वह एक बार में एक से अधिक वाक्यों की रचना करने में असमर्थ है। इसलिए उसको पूर्वापर विचार कर या किसी पर्याय या क्रम का सहारा लेकर पदार्थों के गुण प्रकाशित करने पड़ते हैं।

२—अवस्था के अनुसार वाक्यों में विचित्रता उत्पन्न होती है।

मनुष्य की भाषा एक ही अवस्था में सब प्रकार के भावों को प्रकट नहीं कर सकती। जैसे जैसे मनुष्य की अवस्था अधिक होती जाती है और जैसे जैसे मनुष्य का ज्ञान बढ़ता जाता है वैसेही वैसे उसके वाक्यों में विविध विषयों के वर्णन करने की शक्ति या योग्यता पैदा होती जाती है। मनुष्य अपनी प्रथम अवस्था में ही सारे पदार्थों के सम्बन्ध में, या किसी एक पदार्थ के सब तरह के गुणों के सम्बन्ध में पूरा वर्णन नहीं कर सकता। वह भिन्न भिन्न अवस्था में भिन्न भिन्न श्रेणी के वाक्यों की रचना करके विश्व के भिन्न भिन्न विभागों के सम्बन्ध में अपना वक्तव्य प्रकाशित करता है।

३—परिचित वाक्यों के आधार पर ही नवीन वाक्यों की रचना होती है।

जिन शब्दयोजनाओं के द्वारा मनुष्य वाक्यों का प्रयोग करके अपने मनोभावों को प्रकाशित करता है उन्हीं परिचित वाक्यसमूहों और उसी पुरानी भाषा के सहारे नये वाक्यों की रचना होती है। मामूली तौर से जिस भाषा का व्यवहार होता रहता है वही नवीन भाषा की सृष्टि का उपादान कारण है। इसी प्रकार मनुष्य की भाषा क्रमशः परिचित पदार्थसमूहों का वर्णन करते करते अपरिचित, दूरस्थ और नवीन पदार्थों की परिचायक हो जाती है।

४—किसी विषय में एक बारही बहुत से वाक्यों की रचना असम्भव है ।

मनुष्य किसी पदार्थ के सम्बन्ध में एक साथ, एक ही प्रयत्न से, बहुत प्रकार के वाक्यों की रचना नहीं कर सकता। जिस प्रकार मनुष्य की वाक्य-रचना पहले ही पृथ्वी के सारे पदार्थों के विषय में नहीं हो सकती, जिस प्रकार उसकी वाक्य-परम्परा एकही उम्र में सर्वभावव्यञ्जक तथा सर्वपदार्थज्ञापक नहीं हो सकती, एवं जिस प्रकार उसके वाक्यसमूह पहले ही अपरिचित, नवीन और अज्ञात-पदार्थ-विषयक नहीं हो सकते, उसी प्रकार उसके वाक्यसमूह किसी पदार्थ के विषय में पहले ही बहुविध नहीं हो सकते। क्रमशः वयोवृद्धि और बुद्धि के विकाश के साथ साथ जैसे जैसे उसकी धारणा और विचारशक्ति का विकाश होता जाता है वैसे ही वैसे उस की भाषा सूक्ष्म और जटिल हो कर वैचित्र्य को प्राप्त होती जाती है। भाषा पहले सरल और सहज होती है। उसमें जटिलता क्रमशः धीरे धीरे आती है।

५—वाक्य क्रमशः प्रणाली-बद्ध हो कर साहित्य में परिणत हो जाते हैं।

मनुष्य पहले ही ख़ूब शृङ्खलाबद्ध—सिलसिलेवार—बात नहीं कह सकता। बचपन में मनुष्य के वाक्य बड़े अटपटे होते हैं। उनमें किसी प्रकार की प्रणाली या शृङ्खला नहीं होती। पहली अवस्था में वाक्य परस्पर विरोधी और सम्बन्धहीन होते हैं। उनका अस्तित्व अलग अलग होता है। सामञ्जस्य और शृङ्खला उनमें धीरे धीरे आती है। फिर तो अन्त में वे ऐसे सुसम्बद्ध और प्रणालीबद्ध हो जाते हैं कि उन्हीं से प्रबन्ध और साहित्य की सृष्टि होने लगती है।

वाक्य क्रमशः विविध पदार्थविषयक और विविध भावव्यञ्जक होते हैं। वाक्यों में विविध पदार्थों के वर्णन तथा विविध भावों के प्रकट करने की शक्ति शनैः शनैः आती है। इसी उपाय से उनकी संख्या क्रमशः बढ़ जाती है। संख्यावृद्धि के साथ साथ वे विभिन्न श्रेणियों के अन्तर्गत जटिलता को प्राप्त होते हैं। वाक्यों में इस प्रकार की संख्यावृद्धि और जटिलता से ही भाषा की श्रीवृद्धि और सृष्टि होती है। इस लिए मनुष्य भाषा के भीतर प्रविष्ट हो कर क्रमशः वक्तव्य विषयों की संख्या बढ़ा देता है। वक्तव्य समूहों की विचित्रता और उत्कर्षता ही भाषा के सौष्ठव और उत्कर्ष के कारण हैं।

भाषा-शिक्षा की प्रणाली।

क्षुद्र और सरल वाक्यों की रचना से आरम्भ करके क्रमशः प्रणालीबद्ध वाक्यों की रचना होती है।

भाषाशिक्षा की प्रणाली के अवलम्बन करने के लिए कई बातों पर लक्ष्य रखने की आवश्यकता होती है। वे बातें ये हैं:—भाषा और भाव का सम्बन्ध, भाषा की उत्पत्ति, भाषा की प्रकृति और भाषा के क्रमिक विकाश का नियम। चाहे कोई भाषा क्यों न हो, उसके सीखने वाले को वक्तव्य और भावों की ओर विशेष ध्यान रखना होगा। इस कारण वाक्यरचना और पदयोजना को ही एक मात्र उपादान भाव से ग्रहण करना होगा। वाक्यरचना में निपुणता प्राप्त होने पर ही भाषा पर अधिकार जम सकता है, वह स्वायत्त हो सकती है, नहीं तो नहीं। इस लिए कोश में से पढ़ पढ़ कर शब्द कण्ठस्थ करने या व्याकरण के नियमों के घोखने की शुरू में कुछ भी आवश्यकता नहीं है। बहुत से शब्दों को जान लेने, या उच्चारण करने में कठिन, संयुक्ताक्षर शब्दों के अर्थ जान लेने ही से कोई भाषा में व्युत्पन्न नहीं हो सकता। क्योंकि केवल कठिन कठिन शब्दों के द्वारा ही भाषा कठिन नहीं हो सकती। वास्तव में भाव की कठिनता से ही भाषा में कठिनता पैदा होती है। सरल भाव के प्रकाशित करने के लिए कठिन शब्दों का प्रयोग करने पर भी, बहुत बार ऐसा देखा गया है कि, भाषा में कठिनता नहीं आती। किन्तु कठिन भाव के प्रकाशित करने के लिए चाहे जैसे सरल और असंयुक्ताक्षर शब्दों का प्रयोग

कीजिए पर भाषा में अवश्य कठिनता रहेगी। इस लिए पहले ही से कठिन या यों ही बहुत से शब्द सीखने में न लग कर शिक्षार्थी को अपने भावों के प्रकाशित करने के योग्य वाक्यों की रचना सीखनी आरम्भ करनी चाहिए। जिस प्रकार वयोवृद्धि के साथ साथ भाव कठिन और जटिल होते जाते हैं उसी प्रकार उसे कठिन और जटिल वाक्यों की सहायता मिलती जाती है। वह फिर क्रमशः भिन्न भिन्न, परस्पर बिखरे हुए, वाक्यों को छोड़ कर शृङ्खलीकृत, सुसम्बद्ध और ऐक्यविशिष्ट वाक्यों का व्यवहार करने लगता है।

मातृ-भाषा-शिक्षा की प्रणाली।

मातृभाषा सीखने वाले शिक्षार्थी को पहले अपने मनोभावों के प्रकाशित करने के लिए उसी वाक्यरचनाप्रणाली का प्रयोग करना चाहिए जिसको वह रात दिन व्यवहार में लाता है। इसके सम्बन्ध में कुछ साधारण नियम देखे जाते हैं। वे ये हैं:—

१—विश्व के सारे पदार्थों के विषय में वाक्यरचना।

सारा ज्ञेय विश्व मनुष्य की मनोवृत्ति के विकाश का कारण है। इसलिए क्या प्राकृतिक, क्या मानवीय, दोनों प्रकार के जगत् ही मनुष्य के वाक्य-प्रयोगों के क्षेत्र हैं। इस कारण उसकी वाक्यरचना किसी एक पदार्थ या एक वस्तु में ही आबद्ध नहीं रहती, किन्तु वह सब पदार्थों एवं जगत् की सर्वविध घटनाओं के वाक्यों का प्रयोग करने लगती है। इससे जहाँ एक ओर उसकी भाषा में वैचित्र्य और जटिलता पैदा होती है वहाँ दूसरी ओर विश्व के सजीव और निर्जीव पदार्थों के सम्बन्ध में ज्ञान बढ़ाने में सहायता मिलती है। इसका फल यह होता है कि शिक्षार्थी केवल भाषा ही नहीं सीख जाता, किन्तु भाषा के साथ साथ भाव और धारणा, सृष्टि एवं ज्ञान के विकाशोपयोगी विविध विद्याओं की शिक्षा प्राप्त कर लेता है। इस लिए भाषा-शिक्षा के समय यदि अन्यान्य विद्यालब्ध ज्ञान के प्रयोग का प्रबन्ध हो तो सकल विद्याओं में परस्पर सहायता-विधायक सम्बन्ध स्थिर होजाता है। इससे समय की भी बचत होती है, परिश्रम भी कम पड़ता है, और भाषा-शिक्षा तो ठीक ठीक होती ही जाती है, किन्तु अन्यान्य विद्या-विषयक ज्ञान की जड़ भी मज़बूत हो जाती है।

२—भिन्न भिन्न अवस्थाओं में भिन्न भिन्न पदार्थविषयक वाक्यरचना होती है और उसकी रचना-प्रणाली भी विभिन्न प्रकार की होती है।

आयु के तारतम्यानुसार ही वाक्य-रचना-प्रयोग का क्षेत्र एवं वाक्य-रचना-प्रणाली का तारतम्य होता है। शिक्षार्थी के लिए तो यह सारा जगत् ही ज्ञेय है; पर इस सबको वह एक ही अवस्था में नहीं जान सकता। इस लिए शिक्षार्थी को अपने परिचित पदार्थों एवं प्रयोजनीय विषयों में ही वाक्य-रचना-प्रणाली को आबद्ध रखना पड़ता है। ज्ञेय पदार्थों में विभाग और विश्लेषण सिद्ध करके सुबोध्य अंशों को ही वाक्य-रचना का विषय बनाना होगा। इसी उपाय से क्रमशः संसार के सारे पदार्थ शिक्षार्थी की भाषा के अधीन हो जायँगे।

३—अभ्यस्त वाक्यों की सहायता लेकर नवीन वाक्यरचना।

किसी पदार्थ के वर्णन करने में शिक्षार्थी ने जिन अनेक वाक्यों की रचना की है उन्हीं वाक्यों की सहायता से उसको नये वाक्यों की रचना सीखनी होगी। जिस विषय में किसी ने कभी कुछ भी आलोचना नहीं की, उसके विषय में कभी एक भी वाक्य का प्रयोग नहीं किया, या पूर्वपरिचित एवं आलोचित विषयों के साथ जिस विषय का कुछ भी सम्बन्ध नहीं, ऐसे विषयों के सम्बन्ध में नवीन वाक्य-रचना करने की चेष्टा उचित नहीं। पहले अभ्यास के सहारे या आधार पर ही नवीन वाक्यों की रचना करनी होगी। इसलिए वाक्य से वाक्यान्तर में जाते समय भाव से भावान्तर में जाने की स्वाभाविकता और सुविधा-असुविधा का भी ध्यान विचारपूर्वक रखना होगा।

४—पहले सहज और सरल वाक्यों की रचना करनी चाहिए।

शिक्षार्थी को किसी विषय में एक बार ही बहुत से वाक्यों की रचना नहीं करनी होगी। पहली अवस्था में वाक्यों में ऐसी सरलता रखनी होगी जिसमें जटिलता का नाम तक न हो। पहली अवस्था में वाक्य वैचित्र्यपूर्ण और सूक्ष्मभावबोधक न होकर स्थूलगुणवाचक और सहज भावबोधक होने चाहिएँ।

५—पहले असम्बद्ध अलग अलग वाक्यों की रचना होती है।

पहले असम्बद्ध और अलग अलग वाक्यों की रचना होती है, पर उन्नति के साथ साथ विचित्र भाव प्रकाशित करने के योग्य विचित्र वाक्यों की रचना-शिक्षा प्राप्त करनी होगी। पदार्थ के सम्बन्ध में क्रमशः सूक्ष्म और विस्तृत भाव की वाक्यरचना करनी होगी। इस उपाय से वाक्य-समावेश की रीति, लिपिचातुर्य और रचना-कौशल सीखते सीखते प्रबन्धादि तथा उच्च साहित्य की रचना सीखनी होगी।

कोश और व्याकरण।

इस प्रकार वाक्य-रचना के द्वारा भाषा की प्रणाली को स्वाधीन कर लेने पर, शब्दसम्पत्ति को बढ़ाने और उच्च साहित्य को पढ़ने के लिए, कोश की सहायता से प्रचलित शब्दों का परिचय प्राप्त करना होगा और देखे हुए साहित्य में से शब्दों को लेकर उनका प्रयोग सीखना होगा।

इस उपाय से बात कह कर या प्रबन्ध लिखकर भाषा के प्रयोग करने में नैपुण्य और अभिज्ञता हो जाने पर भाषा की भीतरी युक्तियों को विश्लेषण करके देखना होगा। भाषा के व्यवहार का अभ्यास करके और भाषा के प्रयोग को देख कर, युक्ति से, उसकी वाक्य-रचना-प्रणाली की आलोचना तथा उसके नियम और व्याकरणसम्बन्धी प्रथा का आविष्कार करना होगा। व्याकरण भाषा का न्यायशास्त्र है। इसके आविष्कार का विषय प्रयोग के विषय से अलग है। भाषा-शिक्षा के लिए इसका कुछ प्रयोजन नहीं। न्यायशास्त्र का एक अङ्ग होने से इस विषय की स्वतन्त्र आलोचना करनी सङ्गत होगी।

(असमाप्त)

अनुवादक, पण्डित रामजीलाल शर्मा।

मुक्ति-फ़ौज के अधिष्ठाता जनरल बूथ।

जनरल बूथ संसार के उन महान् पुरुषों में से थे जिन्हें उन्नीसवीं शताब्दी ने जन्म दिया। वर्त्तमान समय में, जब कि संसार में चारों ओर पदार्थ-विज्ञान की महिमा के गीत गाये जा रहे हैं और लोग भौतिक उन्नति के मैदान में क़दम बढ़ाये जाना ही अपना कर्त्तव्य समझते हैं, जनरल बूथ ने, अपने बुद्धि-बल से नहीं—क्योंकि उनकी बुद्धि में कोई विशेषता न थी—किन्तु अपने सुदृढ़ चरित्र-बल से, मुक्ति-फौज नाम की संसार-व्यापिनी धार्मिक संस्था को जन्म दे, तथा उसे अच्छी तरह से चला कर ऐसा महान् काम किया जिससे उन के चरित की महत्ता अच्छी तरह सिद्ध होती है। उन्हें अपने इस काम में बड़ी बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, कटुवचन और गालियाँ सुननी पड़ीं और उनके सहकारियों को जुर्माना देना और जेल तक जाना पड़ा; परन्तु वे अपने उद्देश से कभी न टले। अपने साथियों सहित—और ख़ूबी तो यह थी कि उनके साथी भी उन्हीं के सदृश दृढ़ मिले—वे अपना काम करते ही गये; और, अन्त में, फल यह हुआ कि सारी कठिनाइयों ने उन के आगे सर झुका दिया। जो उनका पहले अपमान करते थे वही उनका आदर करने लगे और जो उन्हें तङ्ग करते थे वही उनकी सहायता करने लगे। बड़े बड़े राजा-महाराजाओं तक ने उनका सम्मान किया और दीन-हीन लोगों के हृदय के तो वे स्वयं ही राजा बन गये।

बूथ महाशय का जन्म, १८२९ में, नाटिंघम नगर में, हुआ था। उनके पिता एक गिरजाघर में काम करते थे। उनके पिता का सम्बन्ध था तो गिरजाघर

से, परन्तु वे परलोक बनाने से इस लोक का बनाना अधिक अच्छा समझते थे। इसीलिए वे व्यापार द्वारा धन एकत्र करने की चिन्ता में अधिक रहते थे। वे थे तो विशेष शिक्षित नहीं, परन्तु हिसाब किताब रखना बहुत अच्छा जानते थे। पिता का यह गुण पुत्र को भी प्राप्त हुआ। जनरल बूथ भी बड़े ही हिसाबदाँ निकले। अन्य गुण उन्हें अपनी माता से मिले। उनकी माता बड़ी ही सुशीला और धार्मिक स्त्री थीं। माता और पुत्र में प्रेम भी बहुत था। एक दूसरे को देख कर जीते थे। उनका हृदय बड़ाही उदार था। वे दीन-हीन लोगों के दुख न देख सकती थीं। उनका विश्वास था कि कोई मनुष्य, चाहे कितना ही पतित क्यों न हो, सद्-व्यवहार से वह अच्छा बनाया जा सकता है। उन्होंने यह विचार बचपन ही में बूथ के हृदय में कूट कूट कर भर दिया था। माता की इस शिक्षा का फल यह हुआ कि पुत्र ने बड़े होने पर मुक्ति-फौज द्वारा पतितों का उद्धार करके इस विचार की सत्यता अच्छी तरह सिद्ध करदी।

बूथ का लड़कपन ग़रीबी में कटा। एक छोटी सी पाठशाला में थोड़ा बहुत पढ़ लिख कर, १८५० में, वे भी पादड़ी हो गये। १८६१ में, उन्होंने अपने इस पद को त्याग दिया। इस बीच में वे अपना व्याह कर चुके थे और उनके चार सन्तानें भी हो गई थीं। वे सपत्नीक नगर नगर धर्म्मोपदेश देते फिरे। अन्त में, १८६४ में, वे लन्दन लौट आये। वहाँ उन्होंने एक धर्म्म-सभा स्थापित की। इस सभा का कई बार नामकरण-संस्कार हुआ। अन्तिम नाम के पहले उसका नाम था "क्रिश्चियन मिशन" (Christian Mission) मज़दूर और अन्य निम्न श्रेणी के लोग ही उसके सदस्य थे। बूथ इन्हीं लोगों की सहायता से निम्न श्रेणी के लोगों में धर्म्मोपदेश देते थे। १८७८ में, इस सभा ने अपना अन्तिम, अर्थात् वर्त्तमान रूप, धारण किया। उसका नाम रक्खा गया—"मुक्ति-फौज" (Salvation Army) और उसके नेता बने "जनरल" बूथ।

पहले लोगों ने "मुक्ति-फ़ौज" का बड़ा ही प्रबल विरोध किया। इस फ़ौज के "सैनिकों" का नया ढङ्ग और नया रङ्ग देख कर लोग भयभीत से हो गये। जहाँ ये "सैनिक" गा गा कर धर्म्मोपदेश करना चाहते वहाँ लोग इतना ऊधम मचाते और इन्हें इतना तङ्ग करते कि लाचार होकर इन लोगों को वहाँ से खिसक जाना पड़ता। लड़के इन्हें राह चलते चिढ़ाते, लोग इनकी पोशाक़ की हँसी उड़ाते, और गली-गली, घर-घर, में इनके से बाजे बजा बजा और गा गा कर इनके उपदेश देने के ढंग का मखौल उड़ाते। कोई इन्हें पागल कहता, कोई मूर्ख। कोई इन्हें ढोंगी बतलाता, कोई ठग। केवल इतनाही नहीं, लोगों ने भी एक फ़ौज तैयार की जिसका नाम रक्खाः—"Skeleton Army" (ठटरी फ़ौज) इसका उद्देश "मुक्ति फ़ौज" को तोड़ देना था। बहुत दिनों तक ऐसी ही अवस्था रही। अन्त में, लोग इनकी दृढ़ता और सुजनता के क़ायल हो गये। बड़े बड़े वैज्ञानिकों और राज-पुरुषों तक ने इनके कामों को सराहा। धर्म्म-संस्थाओं के नेता भी आगे बढ़े। उन्होंने "मुक्ति फ़ौज" की प्रशंसा करना आरम्भ कर दिया। स्वर्गीय सम्राट् एडवर्ड, महारानी एलेक्ज़ेंड्रा, जापान के भूत-पूर्व सम्राट्, संयुक्त-राज्य अमेरिका के प्रेसीडेन्ट आदि बड़े बड़े पुरुषों ने जनरल बूथ और उनके कामों की जी खोल कर प्रशंसा की।

मुक्ति-फ़ौज का काम इँगलैन्ड में ही परिमित न रहा। वह शीघ्र ही संसार-व्यापी हो गया। १८८० में, संयुक्त-राज्य अमेरिका में, और, १८८१ में, आस्ट्रेलिया में, उसकी शाखायें स्थापित हो गईं। थोड़े ही दिनों में योरप के अन्य राज्यों में भी मुक्ति-फ़ौज के अड्डे बन गये। १९११ के सितम्बर मास तक मुक्ति-फ़ौज का प्रचार संसार के भिन्न भिन्न ५९ देशों में हो गया और उसकी पुस्तकें लगभग ३४ भाषाओं में छप गईं। इस समय उस की शाखायें ८५८२ स्थानों में हैं, परन्तु उसका केन्द्र लन्दन ही में हैं। केवल ब्रिटिश द्वीपों में ही उसके लग भग सवा लाख "सैनिक" और दो करोड़ की सम्पत्ति है।

उसकी ओर से "All the World" नाम का एक मासिक पत्र भी निकलता है, जिसमें सब शाखाओं का हाल प्रकाशित होता रहता है।

हमारे देश में भी मुक्ति-फ़ौज के कितने ही अड्डे हैं। यहाँ इसका काम बड़ी धूम धाम से चल रहा है। यहाँ इस फ़ौज के लगभग ढाई हज़ार तो केवल अफ़सर ही हैं। अन्य काम करने वालों की संख्या लाखों तक पहुँची है। हिन्दी, उर्दू, मराठी, गुजराती, बँगला, गुरमुखी, तामील, तिलेगू आदि कितनी ही भारतीय भाषाओं में उसकी पुस्तकें छप चुकी हैं। फ़ौज की ओर से कितनी ही प्रारम्भिक पाठशालायें खुल चुकी हैं, जिनमें दस हज़ार से अधिक बच्चे शिक्षा पाते हैं। गाँवों में छोटी छोटी बैंकें खोली गई हैं; और, इस प्रकार किसानों से मेल बढ़ाया गया है। मुक्ति-फ़ौज के कितने ही सैनिक देहातों में रहने और वहाँ दुकानदारी करने लगे हैं। भारत की औद्योगिक उन्नति की तरफ़ भी इस फ़ौज का ध्यान है। सैकड़ों करघे जुलाहों को कम मूल्य पर दिये गये हैं और कपड़ा बुनना सिखलाने के लिए कितनी ही पाठशालायें भी खोली गई हैं। क़ैदियों और अन्य जरायम-पेशा जातियों के सुधार में इस फ़ौज को अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। दुर्भिक्ष के समय भी मुक्ति-फ़ौज वालों ने बुभुक्षित लोगों को भोजन तथा सस्ते भाव पर अन्न देकर बड़ा काम किया है। ये लोग देशी वेश ही में रहते हैं। इसी से ये इतना काम भी कर सके हैं।

१८९० में जनरल बूथ ने "In Darkest England and the Way Out" नाम की पुस्तक प्रकाशित की। इस पुस्तक में उन्होंने पतित लोगों की अवस्था सुधारने के कितने ही उपाय बतलाये। लोग उनका काम तो देख ही चुके थे, उनके प्रस्तावों को पढ़ते ही धड़ाधड़ चन्दा दे चले। थोड़े ही दिनों में पन्द्रह लाख रुपये मिल गये। काम आरम्भ हो गया। स्थान स्थान पर आश्रय-हीन लोगों के लिए सेवाश्रम खोल दिये गये। मुक्ति-फ़ौज द्वारा सुधारे गये पतित लोगों के निवास के लिए भी प्रबन्ध किया गया। समुद्र के किनारे और अन्य ग़ैर-आबाद स्थानों में वे बसा दिये गये। आश्रय-हीन और पतित लोगों में मुक्ति-फ़ौज ने जो काम किया उसका अनुमान इस बात से भली भाँति किया जा सकता है कि अकेले १९०९ में, ६४२५ आदमियों ने फ़ौज की शरण ली और २५५९ स्त्रियों और लड़कियों ने सेवाश्रम में स्थान पाया। शरण में रहने वाले लोगों को धर्म्म और सदाचरण की शिक्षा दी जाती है और उनसे फ़ौज-द्वारा सञ्चालित कारख़ानों में काम लिया जाता है।

जनरल बूथ शायद ही इतने बड़े काम को अकेले कर सकते यदि उन्हें अपने ही ऐसे दृढ़-विश्वासी और निरन्तर परिश्रम करने वाले सच्चे हृदय के साथी न मिलते। उनकी धर्म्मपत्नी केथराइन बूथ ने भी इस काम में उनका साथ दिया। कहा तो यहाँ तक जाता है कि यदि देवी केथराइन आरम्भ में दरिद्रता का सामना करती हुई अपने पति की सहायता न करतीं तो आज संसार में मुक्ति-फ़ौज का अस्तित्व ही न होता। इसमें सन्देह नहीं कि श्रीमती केथराइन अन्त समय तक मुक्ति-फ़ौज का काम बड़े उत्साह से करती रहीं। वे इस आन्दोलन की एक स्तम्भ समझी जाती थीं। १८९० में उनका देहान्त हुआ। उससे मुक्ति-फ़ौज के काम को बड़ी भारी क्षति पहुँची। अभी बूथ इस धक्के से सँभलने भी न पाये थे कि उनके ऊपर और भी कुटुम्बसम्बन्धिनी विपत्तियाँ टूट पड़ीं। उनकी एक लड़की रेल से कट गई। उनका दूसरा पुत्र उनसे लड़ कर अमेरिका पहुँचा और वहाँ उसने अपने पिता के ढंग का एक नया दल बनाया। इन सब पारिवारिक दुःखों को बूथ बड़े साहस से सहन करते और निरन्तर अपना काम करते रहे।

जनरल बूथ बड़ी ही सादगी से रहते थे। वे आहार और विहार की उचित सीमा का बहुत ख़याल रखते थे। वे निरामिष-भोजी थे। शराब और तम्बाकू भी वे न पीते थे। हाँ, चाय अवश्य पीते थे। उनके जितने काम थे सब नियत समय पर

होते थे। नियम-पूर्वक रहने के कारण ही उनका शरीर सुदृढ़ था और वे अस्सी वर्ष की अवस्था में भी मोटर-गाड़ी द्वारा हज़ारों मील की यात्रा करने में कष्ट बोध न करते थे।

८३ वर्ष की उम्र में, गत २० अगस्त १९१२ को, ४७ घन्टे अचेत रहने के पश्चात्, इस महात्मा का देहान्त हो गया। इँगलेंड भर में शोक छा गया और छोटे-बड़े सब प्रकार के आदमियों ने इस जातीय शोक में साथ दिया। सम्राट् जार्ज और अन्य बादशाहों ने मुक्ति-फ़ौज से उसकी इस क्षति पर, अपनी समवेदना प्रकट की।

जनरल बूथ के बड़े बेटे, ब्रामवेल बूथ, अब पिता की गद्दी पर बैठ कर मुक्ति-फ़ौज का काम चला रहे हैं। वही अब इस फ़ौज के प्रधान नायक हैं।

अमेरिका की चर्चा।

(१)

शरद-ऋतु।

वाह रे जाड़े, कितना कड़ाकेदार पड़ रहा है—थर्मामिटर का पारा शून्य से पाँच डिगरी नीचे चला आया है। इतनी सर्दी में मनुष्य की तो हिम्मत बाहर निकलने की पड़ती ही नहीं; पशु-पक्षियों की कौन कहे। पर संसार का काम कहीं रुक सकता है। गाड़ियों में जुते हुए घोड़े, कम्बल और कम्बल के ऊपर बर्फ़ से ढके, सड़क पर दिखाई पड़ रहे हैं। मनुष्य भी मज़दूरी से बँधे हुए अपने अपने काम पर जा रहे हैं। मैदान में जाने से मालूम होता है, मानो किसी मरु-भूमि में आये हों। जाड़े और जाड़े के पुत्र बर्फ़ ने सब दरख़्तों की पत्तियों का संहार कर दिया है। वे सूखे ठूँठ से हो रहे हैं। पृथिवी बर्फ़ से ढकी हुई है। यह बर्फ़ कैसी है जैसे रुई के फाहे और बालू के ज़र्रे—दूध की तरह सफ़ेद और साफ़। सबेरे सबेरे इतने मज़दूर कर क्या रहे हैं? इन्हीं बर्फ़ के ज़र्रों को ट्राम-गाड़ी की पटरी और उसके दोनों ओर की पत्थर वाली पगडंडियों से हटा रहे हैं। दूर दूर तक फैली हुई बर्फ़ की उज्ज्वलता नेत्रों पर अद्भुत रोब जमा रही है। ऐसे कड़े जाड़े के समय सूर्य-देव की सुन्दर किरणों को देख कर बालक और बालिकायें कैसी प्रसन्न हो रही हैं। वे घर की अँगीठियों की सुखदायिनी आँच को छोड़ कर, सड़क पर, बर्फ़ के साथ परस्पर कलोलें कर रहे हैं। बर्फ़ के गेंद बना बनाकर एक दूसरे को मारते हैं। कोई कोई ढालू स्थान के ऊपर से अपनी बे-पहिये की स्लाइड़-गाड़ी पर बैठे लुढ़क रहे हैं और कितनेही पुलीस की मुमानियत की परवा न कर पत्थर की पगडन्डियों (Footpath) पर फिसल रहे हैं। फिसलने से वे काँच के सदृश चिकनी हो गई हैं। पगडन्डियों के इस चिकनेपन के कारण कितनेही रास्ता चलनेवाले बुड्ढे गिर कर हाँथ पाँव या किसी और अङ्ग को तोड़ बैठते हैं। मैं भी कई बार पहले गिरने से बचा। पर अब तो इन चिकने मार्गों पर फिसलना मैंने भी सीख लिया है। सबसे अधिक काम अमेरिका वाले इस भयानक शरद-ऋतु में ही करते हैं। गरमी तो इनके लिए विश्राम का मौसम है। गरमी में अधिकांश लोग समुद्र-तट पर चले जाते हैं, अथवा देहात की हवा खाते हैं। जाड़ा ही इनके काम करने का मौसम है।

(२)

अमेरिका का विद्यार्थि-जीवन।

कालेज और स्कूल, पाठशाला और मदरसे—विद्या के सभी स्थान—जातीय जीवन की धौंकनी के समान हैं, जो जाति में जान डालते हैं। ये ऐसी मशीनें हैं जिनमें से जाति-सदृश इमारत के लिए मज़बूत और ख़ूबसूरत खम्भे ढलते हैं, जो भविष्यत् में इमारत को क़ायम रक्खेंगे। यदि ये खम्भे कमज़ोर हुए तो मकान के गिराने का कारण होंगे।

यदि बदसूरत हुए तो इमारत कुरूपा हो जायगी। इसलिए मशीनें बहुत अच्छी होनी चाहिए। मशीनों के तैयार करने में समय लगता है। इसलिए धैर्य्य के साथ काम होना चाहिए। अमेरिका में विद्याध्ययन का समय जीवन की सब अवस्थाओं से विशेष आनन्दमय किया जाता है। विद्यार्थी बड़े आनन्द के साथ अपने पाठ को कालेज ही में तैयार कर लेता है। यहाँ पुस्तकाध्ययन विद्या का एक अङ्ग मात्र है। यहाँ के कालेजों में मानसिक, शारीरिक सभी प्रकार की उन्नतियों की ओर ध्यान दिया जाता है। प्रायः रोज़ ही एक न एक सभा हुआ करती है। कल अमुक विद्वान् का व्याख्यान था; आज अमुक बोल रहा है; कल के लिए किसी और ही विद्वान् को शारीरिक उन्नति पर बोलने का नेवता दे दिया गया है। विद्यार्थियों का जोश "फुटबाल" के मैदान में देखने में आता है। विद्यार्थियों की कितनी ही सभायें हैं। एक सभा के सब सभासद-विद्यार्थी एक साथ रह कर भाई चारे का भाव पैदा करते हैं। एक शाम को एक सभा में मेरा नेवता था। भोजन के उपरान्त प्रथम तो ख़ूब गप्पें हुईं; देश-देशान्तर के भिन्न भिन्न विषयों पर ख़ूब बातें हुईं। फिर पियानो पर धावा हुआ। देशभक्ति और मज़ाक से भरे हुए ख़ूब गीत हुए। यह न मालूम होता था कि इन होनहार अमेरिका के विद्यार्थियों को किसी बात की फ़िक्र है।

इस देश के विद्यार्थियों में धोखे और असत्य से घृणा, और सत्य और स्वाभाविक बातों से प्रेम आदि गुण होते हैं। वे फ़िज़ूल बातों को पसन्द नहीं करते। वे जो कुछ कहते हैं—थोड़े से शब्दों में और स्वाभाविक रीति से कहते हैं। वे सदा प्रसन्न-चित्त रहते हैं। उनका प्रत्येक शब्द मज़ाक और हँसी से भरा होता है। उदास आदमी उनकी घृणा का पात्र है। वे दूसरे के दोषों को भी मज़ाक में उड़ा कर भुला देते हैं। वे खेल और शारीरिक व्यायाम को बहुत पसन्द करते हैं। देश-भक्ति उनका धर्म है।

स्वतन्त्रता, न्यायपरता, और सत्यता की भूमि अमेरिका, ! मैं तुझे प्यार करता हूँ। वीरों की जन्मभूमि ! विद्या की खान ! धन का निवास-स्थान ! देश भक्ति-का ख़ज़ाना ! मैं तुझे प्यार करता हूँ।

परन्तु भारत-भूमि ! मैं तुझे और भी अधिक प्यार करता हूँ—, क्योंकि तू मेरी जन्म-भूमि है। तू मेरे पूर्वज विद्वान् ऋषियों की बूढ़ी माता है। तू वीर देशभक्तों की प्यारी वस्तु है। तू असभ्यों को सभ्य बनानेवाली है। तू धर्म की मूर्ति है। मैं तुझे सब से अधिक प्यार करता हूँ। क्योंकि तुझे अपने बच्चों के प्यार की इस समय ज़रूरत है। संसार तेरे धर्म और तेरी सभ्यता की प्राप्ति का प्रार्थी है; क्योंकि तू ही संसार में वर्तमान अशान्ति को हटा कर शान्ति स्थापित कर सकती है!

जगन्नाथ खन्ना
(पिट्सबर्ग, अमेरिका)

व्योम-यान द्वारा मुसाफ़िरी।

अब व्योम-यान द्वारा मुसाफ़िरी भी होने लगी। निश्चित समय पर, जहाज़ों की तरह, जर्मनी के कुछ बड़े बड़े नगरों में व्योम-यान यात्रियों को लेकर एक स्थान से दूसरे स्थान तक उड़ने लगे हैं। रेल और जहाज़ की यात्रा की तरह इस यात्रा के लिए भी टिकट ख़रीदने पड़ते हैं। ये टिकट योरप और अमेरिका के सब बड़े बड़े नगरों में बिकते हैं।

पहले हवा का रुख़ देखा जाता है। व्योम-यान के कर्म्म-चारी हवा में एक ग़ुब्बारा उड़ाते हैं और उसकी गति को, उँचाई नापने के यन्त्र-द्वारा देख कर, वायु-वेग और उसके रुख़ का पता लगाते हैं। हवा की गति का ज्ञान महत्त्व-शून्य नहीं। व्योम-यान के दफ़्र के दरवाज़े पर एक तख़्ती लटकी रहती है, जिसमें ऋतुसम्बन्धिनी बातों के सिवा वायु-

सम्बन्धिनी बातों का भी उल्लेख रहता है। उससे पता चलता है कि कितनी उँचाई पर वायु का वेग कितना और किस ओर है, और तूफ़ान अथवा ओलों के गिरने की सम्भावना है या नहीं। कोई भी व्योम-यान तब तक उड़ने नहीं पाता जब तक ग़ुब्बारे द्वारा वायु की गति का पता लगाने वाले इस बात का निश्चय न करदें कि समय अच्छा है, वायु-गति व्योम-यान की यात्रा के मुवाफ़िक़ है और आँधी-पानी की सम्भावना नहीं। बहुधा व्योम-यान के उड़ने के निश्चित समय में, वायु-गति के बदल जाने अथवा दुर्दिन हो जाने के कारण, फेरफार भी करना पड़ता है। दफ़्तर के बाहर कितने ही चित्र लटके रहते हैं जिनमें व्योम-यानों के किसी झील, नदी अथवा पहाड़ पर उड़ने का दृश्य अङ्कित रहता है। वहाँ पर एक कर्म्म-चारी मौजूद रहता है। यात्रियों के यात्रा-सम्बन्धी प्रश्नों के उत्तर देना ही उसका काम है।

व्योम-यान के यात्री अपने साथ अधिक असबाब नहीं रखते। प्रत्येक यात्री अपने साथ हलका बेग, ओवरकोट, तसवीर खींचने का केमेरा आदि थोड़ी सी छोटी मोटी चीज़ें मुफ़ ले जा सकता है। अधिक असबाब होने से किराया बहुत देना पड़ता है। अधिक कपड़े साथ रखने की भी इजाज़त नहीं। दो हज़ार फीट ऊपर अवश्य कुछ सर्दी मालूम पड़ती है, परन्तु इतनी अधिक नहीं कि साधारण कपड़ों के रहते विशेष कष्ट हो। हवा की कमी नहीं होती; उसका प्रवाह किसी मुख्य दिशा की ओर नहीं होता। सौ फीट ऊपर ही सूर्य्य की प्रखरता लोगों की आँखों को चैंधिया देती है। इसी लिए यात्री लोग चौड़े किनारे की टोपियाँ लगाते हैं, जिससे नेत्रों की रक्षा होती रहे।

प्रातःकाल, सूर्योदय के पूर्व ही, व्योम-यान यात्रा की तैयारी करता है। उसका गोदाम बिजली के प्रकाश से चमक उठता है। उन हौज़ों और नलों में पानी भरा जाता है जो उड़ते समय अपने बोझ से यान का बोझ साधते हैं। इस बात की अच्छी तरह परीक्षा कर ली जाती है कि इन हौज़ों और नलों में कोई नुक़्स तो नहीं। फिर चमड़े के नलों द्वारा लोहे के पीपों में बन्द गेस व्योम-यान के इञ्जिन में पहुँचाया जाता है। उसमें गेस के पहुँचते ही घोर नाद होना आरम्भ होता है। यन्त्रकार लोग यन्त्रों की परीक्षा करते हैं। इतने में सूर्योदय हो जाता है। कप्तान आता है और मुसाफ़िर लोग भी एक एक करके आने लगते हैं। व्योम-यान का एक दरवाज़ा खुलता है और उसमें से एक छोटी सीढ़ी नीचे भूमि पर लटका दी जाती है। लोग उसी पर चढ़ कर व्योम-यान के भीतर पहुँचते हैं। यात्रियों की संख्या चौबीस से अधिक नहीं होती। उनके भोजनादि के प्रबन्ध के लिए एक बावर्ची भी व्योम-यान पर रहता है।

अब आदमियों का एक दल और आता है। व्योम-यान को गोदाम से बाहर ले जाकर उस स्थान पर पहुँचाना जहाँ से वह उड़ता है, इन लोगों का काम है। यात्री अपने मित्रों और स्नेहियों से बिदा होते हैं। सीटी बजती है। तमाशबीन पीछे हट जाते हैं। नीचे लटकी हुई सीढ़ी लपेट कर ऊपर उठा ली जाती है। आये हुए दल के लोग व्योम-यान के अगले हिस्से के चारों तरफ़ फैल जाते हैं और उनमें से हर एक नीचे लटकी हुई रस्सियों में से एक एक को थाम लेता है। फिर सीटी बजती है। गोदाम के बड़े बड़े फाटक ज़ोर से खड़खड़ाते हुए खुल पड़ते हैं और आगे का रास्ता बिलकुल साफ़ हो जाता है। तीसरी दफ़े सीटी होती है। व्योम-यान चलने लगता है। वह इतना धीरे सरकता है कि गोदाम की दीवारों की शहतीरों के देखे बिना यह नहीं मालूम होता कि वह चल रहा है या खड़ा है। रस्सियों को पकड़ने वाले आदमी ही अपना सारा बल लगा कर छः सौ मन भारी व्योम-यान को आगे खींचते हैं। व्योम-यान सीधा आगे बढ़ता है। वह इधर उधर गोदाम की दीवारों की ओर नहीं झुकता। उसके नीचे छोटे छोटे पहिये लगे रहते हैं जो पटरियों पर चलते हैं।

गोदाम से लेकर उस स्थान तक, जहाँ से वह उड़ता है, पटरियाँ बिछी रहती हैं। पटरियों और पहियों के कारण वह सहज ही में घसीटा जाता है इधर उधर झुकता नहीं।

अब व्योम-यान गोदाम से बाहर उस स्थान में पहुँच जाता है जहाँ से उसे उड़ना है। उसके यन्त्र आदि फिर देखे जाते हैं। यन्त्र चलने पर घोर नाद आरम्भ होता है। लोग रस्सियों को छोड़ कर दूर हट जाते हैं। तब अन्तिम सीटी होती है। धीरे धीरे व्योम-यान भूमि से उठता है। थोड़ी देर तक उसकी चाल बड़ी धीमी रहती है, परन्तु, फिर, उसकी तेज़ गति को देख कर आश्चर्य्य होता है। साधारणतः वह ४० मील फी घन्टे के हिसाब से उड़ता है।

उड़ते हुए व्योम-यान के भीतर का दृश्य चलते हुए जहाज़ के कमरे के दृश्य से भिन्न नहीं। साज़ सामान सब वैसा ही होता है। वायु भी वैसी ही स्वच्छ, शुद्ध और सुखदायक मालूम होती है। जहाज़ से जहाँ तक दृष्टि पहुँचती है जल ही जल नज़र आता है। व्योम-यान से भी नीचे पृथ्वी, समुद्र के सदृश, जान पड़ती है। मैदानों में उड़ते समय व्योम-यान बिलकुल हिलता डुलता नहीं मालूम पड़ता। पहाड़ों के निकट, अथवा उन्हें पार करते समय, अवश्य उसमें थरथराहट उत्पन्न हो जाती है। झीलों और अन्य बड़े बड़े जलाशयों का दृश्य बड़ा ही मनोहर होता है। ऐसे अवसर पर तूफ़ान चलने और उससे व्योम-यान के पथ में अन्तर पड़जाने का भय रहता है। इसलिए समुद्र अथवा झील पार करते समय व्योम-यान के कर्म्मचारी ख़ूब चौकन्ने रहते हैं। पहाड़ और समुद्र आदि के ऊपर से गुज़रते समय व्योम-यान की गति मन्द कर दी जाती है। खुले मैदान में पहुँचते ही फिर उसकी गति बढ़ा दी जाती है।

यात्रियों के लिए भोजन का प्रबन्ध तो रहता ही है। भोजन का समय होते ही बावर्ची सब यात्रियों के सामने छोटी छोटी मेज़ें बिछा देता है। उन पर सुफ़ेद कपड़ा बिछा रहता है और चाँदी के पात्र रक्खे रहते हैं। बावर्ची उन पर भोजन रख देता है। आपस में बात चीत करते हुए यात्री भोजन करते हैं। भोजन समाप्त होने के बाद बावर्ची सब चीज़ों को हटा कर उचित स्थानों पर रख देता है। लोग मनोरञ्जन का भी सामान कर लेते हैं। कुछ आदमी ताश खेलने लगते हैं और कुछ बात चीत करके अपना जी बहलाते हैं। ऐसे मन-चले आदमियों की भी कमी नहीं होती जो व्योम-यान के एक भाग में लगे हुए बे-तार के तार के यन्त्र की खड़खड़ाहट सुनते हुए मद्य की बोतलें ख़ाली करते चले जाते हैं।

अब वह नगर दिखाई पड़ने लगता है जिसमें व्योम-यान को उतरना है। थोड़ी देर बाद वह उस नगर के ऊपर चक्कर मारने लगता है। इस समय का दृश्य बड़ा ही हृदयाकर्षक होता है। नगर के बाज़ारों और गलियों की चहल पहल देखते ही बन पड़ती है। नगर नक़्शे की तरह मालूम पड़ता है। कोई भी गाड़ी या ठेला दृष्टि से नहीं बचता। पैदल चलने वाले भी व्योम-यान वालों की नज़र से नहीं छिपे रहते। नगर के बाग़ और बाग़ीचे भी, चाहे वे कितने ही गुप्त स्थान पर हों, ऊपर से ख़ूब दिखाई पड़ते हैं। नीचे की कोई भी चीज़, जो आकाश से देखी जासकती है, नज़र से छिपी नहीं रहती। इसी कारण पारस्परिक राष्ट्रीय नियमों के अनुसार व्योम-यानों का क़िलों पर से उड़ना मना है।

अब व्योम-यान धीरे धीरे अपने अड्डे पर उतरना आरम्भ करता है। इस समय उसमें झोंके से आते हैं। लोग गिरने से बचने के लिए खम्भों और कुर्सियों को पकड़ लेते हैं। रस्सियाँ पकड़ने के लिए लोग नीचे एकत्र होने लगते हैं। व्योम-यान का पानी नीचे गिर जाता है। उसकी गति बन्द हो जाती है और वह उतरने लगता है। रस्सियाँ नीचे लटका दी जाती हैं। लोग उन्हें पकड़ कर उस ओर खींचते हैं जिस ओर हवा चलती होती है। बड़ी युक्ति से व्योम-यान पहियों और पटरियों पर उतार लिया जाता है। अब उसका सब पानी

नीचे गिरा दिया जाता है और वह पहियों, पटरियों और रस्सी खींचने वालों की सहायता से गोदाम में पहुँचता है। यात्रियों के मित्र उनका स्वागत करने के लिए वहाँ खड़े रहते हैं। सीढ़ी लगाई जाती है और यात्री उतर आते हैं।

मानव-चरित्र का वैज्ञानिक विचार।

प्राचीन काल में हमारे ऋषियों ने विज्ञान, दर्शन, शिल्प-विद्या, कालाकौशल आदि में विलक्षण उन्नति की थी। जिन गूढ़ विषयों का उन्होंने परदा खोल दिया था उनकी बात सुनने से आज कल के विज्ञानवेत्ता भी दाँतों तले उँगुली दबाते हैं। उनके विविध ग्रन्थों के पढ़ने से इस बात का पूरा पूरा प्रमाण मिल जाता है। उनके पास आज कल की तरह सूक्ष्म यन्त्र तो न थे; पर उनकी बुद्धि और उनका धर्म्म-भाव इतना सूक्ष्म था कि उन्हीं के द्वारा वे सूक्ष्म से सूक्ष्मतर यन्त्र का भी काम अच्छी तरह कर सकते थे।

आज कल के नवीन शिक्षित जन इस बात का प्रश्न कर सकते हैं कि बिना सूक्ष्म यन्त्रों के वे कैसे सूक्ष्म विषयों का अनुसन्धान कर सकते थे। उनके नवीन विचारों के सामने हमारे ऋषियों की बातें मानों गजेंड़ियों की उक्तियों के समान हैं। किन्तु हे नवीन शिक्षित समुदाय! यदि आप ऐसा समझते हों तो निश्चय जानिए, बिना समझे बूझे आप उन महात्माओं की व्यर्थ निन्दा कर रहे हैं। बिना सूक्ष्म यन्त्रों के भी सूक्ष्म विषयों का अनुसन्धान किया जा सकता है। इसका प्रमाण सुनिए:—

आपने लिवेरियर का नाम शायद सुना होगा। यदि न सुना हो तो अब सुन लीजिए। वह फ्रांस का रहनेवाला था और गणितशास्त्र का बहुत बड़ा पण्डित था। उसने ज्योतिषशास्त्र भी अच्छी तरह पढ़ा था। किन्तु दरिद्र के घर जन्म लेने के कारण उसके पास एक भी यन्त्र न था। सारे यन्त्रों का मूल यन्त्र उसके पास थी उसकी सूक्ष्म बुद्धि। उसकी बुद्धि ही उसके लिए अणुवीक्षण (Microscope) तथा दूर-वीक्षण (Telescope) यन्त्रों का काम किया करती थी। * उसने हिसाब लगाते लगाते देखा कि दूसरे ग्रहों की अपेक्षा राहु का भ्रमण-मार्ग कुछ भिन्न प्रकार का है। इससे उसे सन्देह हुआ कि शायद † राहु (Uranus) के पास कोई दूसरा ग्रह भी होगा, जो उसको आकर्षण-शक्ति के द्वारा अपनी ओर खींचा करता है।

उस ग्रह को जानने के लिए उसका चित्त बहुत व्याकुल हुआ। दिन दिन भर वह उसी ग्रह को जानने के लिए हिसाब लगाया करता। जब उसकी साधना पूरी हो गई तब उसने अमेरिका, जर्मनी, तथा और और देशों के पण्डितों से दूरवीक्षण यन्त्र के द्वारा उस ग्रह को देखने के लिए प्रार्थना की। उन्होंने देखा कि वास्तव में राहु* (Uranus) के पास एक ऐसा ही ग्रह है। तब से उस ग्रह का नाम केतु (Neptune) रक्खा गया। इस से भली भाँति मालूम होता है कि बिना सूक्ष्म यन्त्रों के भी सूक्ष्म पदार्थों का अनुसन्धान किया जा सकता है। हमारे ऋषियों ने इसी केतु को अपनी बुद्धि और साधना के द्वारा हज़ारों वर्ष पहले जान लिया था।

---

* See Ball's Story of the Heavens, pp. 326-330. " * * * * We picture the great astronomer buried in profound meditation for many months; his eyes are bent not on the stars, but on his calculations; no telescope is in his hand; the human intellect is the instrument he alone uses * * * ""

† See Babu Srisa Chandra Vasu's "The Daily Practice of the Hindus," p. 5, line 11.

* See Babu Srisa Chandra Vasu's "The Daily Practice of the Hindus," p. 5, lines 11 and 12.

† See Professor P. C. Ray's "History of Hindu Chemistry," p. 1 " * * * The atomic theory as propounded by him has many points in common with that of the Greek philosopher Democretus" and also compare this with Roscoe and Schorlemmar, Vol I, p. 96.

इसी प्रकार कणाद का सिद्धान्त है कि सारे मूल पदार्थ (Elements) छोटे छोटे अणुओं (Atoms) तथा परमाणुओं (Molecules) में बँटे हुए हैं। वह आज कल के Dalton's Atomic Theory से बहुत सादृश्य रखता है। इस से भी यही प्रमाणित होता है कि Dalton's Atomic Theory हमारे ऋषियों के लिए कोई नई बात न थी। उन्होंने उसे हज़ारों वर्ष पहले जान लिया था। इसी प्रकार और भी कितनेही उदाहरण दिये जा सकते हैं।

आजकल यूरप तथा अमेरिका में बड़े बड़े वैज्ञानिक पुरुष उत्पन्न हो रहे हैं। उन लोगों का सिद्धान्त है कि आधुनिक रसायन शास्त्र चार खम्भों पर खड़ा है। यथा:—

१—Indestructibility of matter—अर्थात् जड़ पदार्थों का नाश न होना—उनकी स्थिति का क़ायम रहना।

२ Periodic Laws—अर्थात् सारे मूल पदार्थों में भेद रहने पर भी उनमें समता का होना।

३ Dulong & Pettits' Law—अर्थात् सारे मूल पदार्थों की आणविक उष्णता (Atomic heat) का हर हालत में एकही रहना।

४ Valency—अर्थात् एक मूल पदार्थ से दूसरे मूल पदार्थ की विशेष प्रीति।

इन्हीं चार सिद्धान्तों पर सारी रासायनिक विद्या की भीत खड़ी हुई है। इन सिद्धान्तों से हमारे चरित्र तथा प्रकृति से क्या सम्बन्ध है, इसका हाल सुनने लायक़ है।

१. Indestructibility of Matter.
अर्थात् जड़ पदार्थों का नाश न होना।

इसे साबित करने के लिए मैं एक बात आपसे कहता हूँ। उसीसे आपको मालूम हो जायगा कि संसार में किसी भी जड़ पदार्थ का नाश नहीं होता। मोमबत्ती को देखिए। वह जल कर धुआँ हो जाती है। उसका नामोनिशान तक बाक़ी नहीं रहता। किन्तु क्या वास्तव में वह नष्ट हो जाती है? नहीं, वह नष्ट नहीं होती, वह केवल अपना रूप बदल देती है। इसका प्रमाण सुनिए:—

एक बोतल लीजिए। उसके बीच में एक मोमबत्ती खड़ी कर दीजिए। मोमबत्ती के मुँह के पास बिजली के दो तार लगा दीजिए। फिर बोतल के मुँह को अच्छी तरह बन्द कर दीजिए। अब बोतल के भीतर बाहरी हवा किसी तरह नहीं जा सकती। किन्तु इस बात को अवश्य स्मरण रखिएगा कि बोतल के भीतर कुछ हवा अवश्य ही बन्द है। अब मोमबत्ती और बिजली के दोनों तार समेत उस बोतल को तौलिए। उसका वज़न लिख रखिए। तब तड़ित्-प्रवाह के द्वारा उस बत्ती को जला दीजिए। कुछ देर तक बत्ती बराबर जलती रहेगी। जब बोतल की हवा चुक जायगी तब वह बत्ती आपसे आप बुझ जायगी। जब बत्ती बुझ जाय तब सारी बोतल को फिर से तौलिए। आप देखिएगा कि उसका वज़न उतनाही है जितना कि पहले था। इससे क्या मालूम होता है? इससे केवल यही मालूम होता है कि यद्यपि मोमबत्ती का कुछ अंश जल कर आप की नज़रों से ग़ायब हो गया तथापि उस अंश का नाश नहीं हुआ। वह किसी दूसरी अवस्था में परिणत हो गया।

इसी प्रकार प्राण-वायु के निकल जाने पर हम लोगों का पाञ्चभौतिक शरीर भी अपने पाँचों भूतों अथवा तत्वों में परिणत हो जाता है। मर जाने पर हमारा शरीर भी, जो जड़ पदार्थ है, नष्ट नहीं होता। वह भी दूसरी अवस्था में परिणत हो जाता है। अकसर लोग कहा करते हैं कि हमारा पाञ्चभौतिक शरीर नष्ट हो जाता है। नहीं, वह नष्ट नहीं होता। किन्तु पहली अवस्था को छोड़ कर दूसरी अवस्था में हो जाता है।

हमारे ऋषियों का कथन है कि हमारा आत्मा भी अविनश्वर है। उसका नाश नहीं होता। उसका रूपान्तर ही हो जाता है। भगवान् श्रीकृष्णजी ने

भी आत्मा की अविनश्वरता के विषय में श्रीमद्-भगवद्गीता में लिखा है :—

"नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥

२. Periodic Laws.

सारे मूल पदार्थों में भेद रहने पर भी उनमें समता का क़ायम रहना।

इस बात को विज्ञान-वेत्ता इस रीति से सिद्ध करते हैं :—
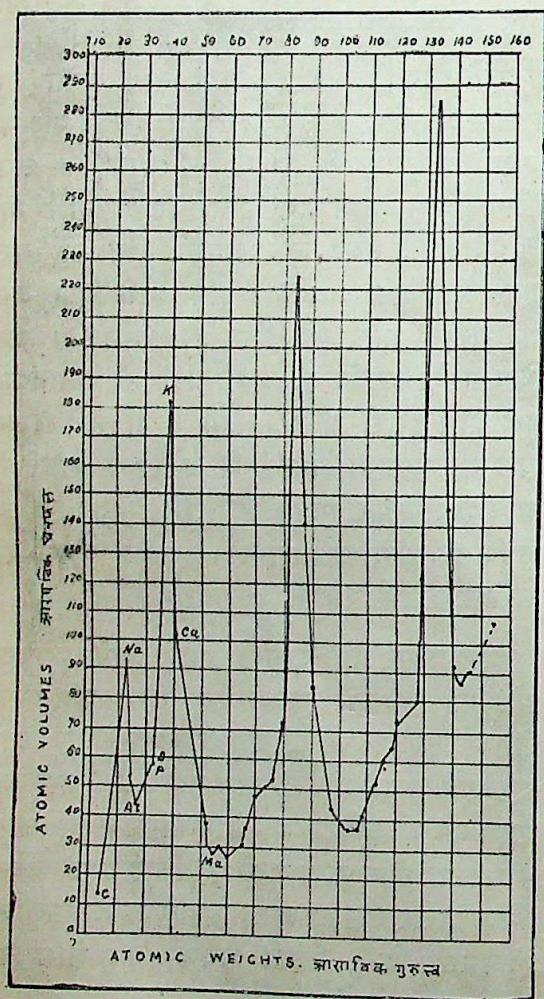
वे दो लकीरें बनाते हैं। इसका चित्र ऊपर देखिए। एक खड़ी दूसरी आड़ी। एक को आणविक घनफल (Atomic Volume) और दूसरी को आणविक गुरुत्व (Atomic Weight) मानते हैं। ये लकीरें परस्पर समकोण बनाती हैं। इन लकीरों को वे कई छोटे छोटे बराबर बराबर भागों में बाँट देते हैं। प्रत्येक मूल पदार्थ का आणविक गुरुत्व (At. Wt.) और आणविक घनफल (At. Vol.) अलग अलग होता है। वे इसी घनफल और गुरुत्व के द्वारा प्रत्येक मूल पदार्थ को एक एक चिह्न के द्वारा प्रकट करते हैं।

इसी प्रकार दूसरे मूल पदार्थों को भी माप कर एक एक चिह्न के द्वारा वे प्रकट करते हैं। बहुत से चिह्न एकत्र होजाने पर वे उन सब को मिला देते हैं। मिल जाने पर समतासूचक कई वक्र-रेखायें बन जाती हैं। ये वक्र-रेखायें आपस में बराबर तो नहीं होतीं, पर देखने में एक ही तरह की होती हैं। इससे यही सिद्ध होता है कि सारे मूल पदार्थ भिन्न भिन्न होने पर भी समता क़ायम रखने की कोशिश करते हैं—अर्थात् सारे मूल पदार्थों के आणविक गुरुत्व तथा आणविक घनफल भिन्न भिन्न होने पर भी वे हमेशा उस वक्र-रेखा को उचित रीति से बनाने में एक दूसरे को सहायता देते हैं।

इसी तरह संसार में जितने प्रकार के मनुष्य हैं सब की प्रकृति भिन्न भिन्न प्रकार की हैं। यहाँ भी भेद रहने पर हम समता पाते हैं। अब आप यह प्रश्न कर सकते हैं कि समता कहाँ और किसमें है? देखिए, आप लोग संसार के भिन्न भिन्न कार्यों में व्याप्त रहते हैं। कोई किसी काम में लगे हैं कोई किसी में। सब का काम अलग, चिन्ता अलग, भावना अलग और कार्य्य-प्रणाली भी अलग ही है। हम लोगों की प्रकृति में इतनी विभिन्नता होने पर भी उसमें समता है। हम लोगों में से चाहे कोई कैसाही काम क्यों न कर रहा हो, पर हम सब आँख बन्द किये हुए उसी मार्ग की ओर दौड़ रहे हैं जिधर जाने से हमको सुख और शान्ति प्राप्त हो सकती है। यह सुख-प्राप्ति की इच्छा सबमें मौजूद है। हमको चाहे सुख मिले चाहे न मिले; पर हमारे सारे कामों का मुख्य उद्देश सुख-प्राप्ति ही है। मनुष्यों की प्रकृति में विभिन्नता रहने पर भी यहाँ

समता दिखाई पड़ती है। इसलिए हम दृढ़तापूर्वक कह सकते हैं कि मनुष्य की प्रकृति के साथ Periodic Laws का बहुत घना सम्बन्ध है।

३—Dulong & Pettits' Law.

सारे मूल पदार्थों की आणविक उष्णता का हर हालत में एकसा रहना।

विज्ञान-वेत्ताओं ने संसार में जितने मूल पदार्थों का आविष्कार किया है उन सब का आणविक गुरुत्व तथा आणविक घनफल अलग अलग देखा है। किन्तु उनके आणविक गुरुत्व तथा घनफल कितने ही भिन्न भिन्न क्यों न हों उनकी आणविक उष्णता हर हालत में बराबर ही रहती है।

अब हमें यह दिखलाना है कि Dulong & Pettits' Law से, और मनुष्य की प्रकृति से, क्या सम्बन्ध है। इस बात को प्रमाणित करने के पहले हमें इस बात को मान लेना चाहिए कि जैसे मूल पदार्थों में आणविक उष्णता नाम का एक गुण है वैसे ही मनुष्य के हृदय में भी दुःख नामक एक आवेग है। संसार के सारे जीव-जन्तु सुख-प्राप्ति के लिए तरह तरह के काम करते हैं। उनको करने में उन्हें सुख भी मिलता है और दुःख भी। अज्ञानी पुरुष यह समझते हैं कि इस सुख-दुःख-पूर्ण संसार में किसी को सुख कम, दुःख अधिक, और किसी को दुःख कम, सुख अधिक मिलता है। किन्तु ऐसा कहना भूल है। इस विचित्र माया-जाल में फँस कर सबके भाग्य में दुःख का बोझ बराबर ही रहता है। कितना ही कोई इस दुःख से छुटकारा पाने की कोशिश करे, तो भी ठीक आणविक उष्णता की तरह उसका दुःख हमेशा उसी के साथ रहा करता है। इससे यही कहा जा सकता है कि संसार के सारे मनुष्य समान-दुखी हैं। किसी का दुःख कम या अधिक नहीं है। अब इसका उदाहरण सुनिए:—

एक आदमी के पास अनन्त धन है। उसे खाने, पीने, पहनने, रहने का कुछ भी दुःख नहीं। किन्तु शायद उसके लड़का नहीं। इस शोक से उसका चित्त इतना दुखी रहता है कि उसके पास कुबेर की धन-संपत्ति रहने पर भी वह सुखी नहीं। उसका चित्त हमेशा उस दुःख की ओर लगा रहता है। उसे दिन में सुख नहीं, रात में शान्ति नहीं, खाने में चैन नहीं, और अच्छा कपड़ा पहनने में भी आनन्द नहीं। उसका चित्त सदा ही व्याकुल रहा करता है। इसी प्रकार, एक दरिद्र है। उसके पास खाने को नहीं है। किन्तु शायद उसकी स्त्री बड़ी पतिव्रता और लड़का भी बहुत सुशील है। इससे सारे दिन मिहनत मज़दूरी करके जब वह घर लौटता है तब उसे खाने को चाहे सूखी रोटी ही क्यों न मिले, किन्तु अपनी स्त्री से प्रेमालाप करने तथा पुत्र के मधुर वचनों को सुनने से उसका चित्त आनन्द से भर जाता है। उसी समय जब उसका छोटा बच्चा—बापू, धोती नहीं है—कह कर उसके पास आता है तब उसका सारा सुख स्वप्न हो जाता है। उसके हृदय पर अँधेरा छा जाता है! अब यदि इस दरिद्र और धनी के सुख-दुःख का मिलान करें तो आप को मालूम पड़ेगा कि दोनों के दुःख का परिमाण बराबर ही है।

इन बातों से सिद्ध होता है कि साधारण अवस्था में जड़ पदार्थों में आणविक उष्णता और मनुष्यों में दुःख का बोझ बराबर ही रहता है। किन्तु इतने ही से सारी बात पूरी नहीं होती। इस साधारण अवस्था के परे एक विशेष अवस्था भी है। उस अवस्था की भी बात सुनिए:—

विज्ञान-वेत्ता कहते हैं कि यों तो सारे मूल पदार्थों की आणविक उष्णता बराबर रहती है, किन्तु यदि वे पदार्थ धीरे धीरे ठंडे किये जायँ तो उनकी उष्णता बराबर कम होती जायगी। अन्त में वे पदार्थ उस अवस्था को प्राप्त होंगे जब उनमें उष्णता बिलकुल ही न रह जायगी। उस अवस्था को वैज्ञानिक भाषा में "Absolute Zero Temperature" कहते हैं। इसका यह अर्थ है कि उस अवस्था में उस पदार्थ में गरमी कुछ भी नहीं रह जाती। उस समय

पदार्थों में किसी तरह का रूप-रङ्ग भी नहीं रह जाता। उनमें नियमित काम करने की शक्ति तक नहीं रह जाती। यदि इस अवस्था के कई भिन्न पदार्थ एक साथ रख दिये जायँ तो कोई यह नहीं कह सकता कि कौन क्या है। इस अवस्था को हमारी दार्शनिक भाषा में मुक्ति या निर्वाण कहने में विशेष अत्युक्ति न होगी। कहने का तात्पर्य्य यह है कि उस अवस्था को पहुँच कर उन पदार्थों ने मानों मुक्ति-लाभ कर ली है।

इसी प्रकार मनुष्य भी इस सुख-दुःख-पूर्ण संसार में रहते हुए भी अपने प्रयत्न से माया-जाल को काट कर निकल सकता है, अर्थात् वह भी मुक्ति-लाभ कर सकता है। इसका उपाय सुनिए। इस उपाय के बताने के पहले यह कह देना आवश्यक है कि मनुष्य का इस माया-जाल से क्या सम्बन्ध है। इस माया-जाल से हम लोगों का सम्बन्ध दूध और पानी का सा है। पानी में दूध को डाल देने से वह दूध भी पानी के सदृश हो जाता है। उस समय यह पता नहीं लगता कि कौन पानी है और कौन दूध। मनुष्य-जाति दूध है और माया-जाल पानी। इस पानीरूपी माया-जाल में जब दूध-रूपी मनुष्य छोड़ दिया जाता है तब वह उससे इतना मिल जाता है मानो वह अपने अस्तित्व तक को भूल जाता है। यह तो मनुष्यों की साधारण अवस्था है। इसके परे एक विशेष अवस्था भी है। वह अवस्था मुक्ति-लाभ की है। वह कैसे प्राप्त होती है सो भी सुनिए :—

संसार का स्वाभाविक नियम है कि यदि पानी में दूध मिला दिया जाय तो दोनों आपस में मिल जाते हैं। किन्तु यदि उस दूध से मक्खन निकाल कर पानी में छोड़ दें तो वह किसी तरह पानी से नहीं मिल सकता।

इसलिए ज्ञानी पुरुषों को उचित है कि अपने दूध-रूपी अस्तित्व को ज्ञान-रूपी मथनी द्वारा अच्छी तरह मथ कर मक्खन बना डालें। तब उसे पानी-रूपी माया-जाल में छोड़ दें तो मजाल नहीं कि वह पानी से एकदिल हो जाय। जब आदमी इस मक्खन की अवस्था को पहुँच जाता है तब मुक्त हो जाता है। उस समय उसमें सुख-दुःख अनुभव करने की शक्ति नहीं रह जाती। देखिए Dulong and Pettits' Law कैसे पग पग पर मनुष्य की प्रकृति से मेल रखता है।

४—Valency—एक मूल पदार्थ से दूसरे मूल पदार्थ की विशेष प्रीति।

जितने प्रकार के मूल पदार्थ आविष्कार किये गये हैं उनमें प्रायः सभी यौगिक क्रिया (Chemical action) के द्वारा एक दूसरे के साथ अच्छी तरह मिल जाते हैं। मिल कर वे एक नई चीज़ उत्पन्न कर देते हैं। अम्लजान (Oxygen) और उद्जान (Hydrogen) दो भिन्न प्रकार के बाष्प हैं। जब ये दोनों यौगिक क्रिया के द्वारा किसी ख़ास परिमाण में एक दूसरे से मिलते हैं तब इनके मेल से पानी या भाप बनता है। इसी प्रकार जब अम्लजान (Oxygen), उद्जान (Hydrogen) और गन्धक (Sulphur) यौगिक क्रिया के द्वारा किसी ख़ास परिमाण में एक दूसरे से मिलाये जाते हैं तब इनके मेल से गन्धक का तेज़ाब (Sulphuric acid) बन जाता है।

इससे यह साफ़ मालूम होता है कि यों तो भिन्न भिन्न प्रकृति वाले मूल पदार्थ यौगिक क्रिया के द्वारा एक दूसरे से मिलाये जा सकते हैं। किन्तु किसी पदार्थ को किसी दूसरे पदार्थ से विशेष प्रीति रहा करती है। जब ऐसे दो पदार्थ यौगिक क्रिया के द्वारा पास पास लाये जाते हैं तब वे तुरन्त एक दूसरे से मिल जाते हैं। इसी प्रकार चाँदी का खार तीन चीज़ों से मिल कर बनता है। इन तीनों को च, छ और ज से प्रकट किया है।

क ख	+	च छ ज	=	ख च	+	क छ ज
१		२		३		४
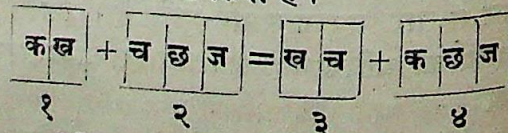
अब देखिए नमक का वह अंश जो ख से दिखाया गया है और चाँदी के खार का वह अंश जो च से

दिखाया गया है—इन दोनों में बड़ी प्रीति है। इस लिए ज्योंही नं० १ और २ यौगिक क्रिया के द्वारा पास पास लाये गये त्यों ही ये दोनों चीज़ें आपस में मिल गईं और बाक़ी चीज़ें एक दूसरे से मिल गईं। चित्र नं० ३ और ४ को देखिए तो इसका पता लग जायगा। अब आदमियों की परीक्षा कीजिए :—

कल्पना कीजिए कि गोपाल और राम दो बड़े प्यारे मित्र हैं। इसके सिवा, गोपाल और राम प्रत्येक के अलग अलग चार चार मित्र हैं। अब इन दसों में आपस में जान-पहचान और मित्रता है। जब इनमें से कोई किसी से मिलता है तब वह उससे मित्र-भाव से बातचीत करता है। किन्तु जब गोपाल और राम से किसी जगह भेंट हो जाती है तब चाहे दोनों अपने अपने मित्रों के साथ ही क्यों न हों, किन्तु तो भी उन मित्रों को छोड़ कर वे आपस में मिल जाने की कोशिश करते हैं और अन्त में मिल भी जाते हैं। उनके दूसरे मित्र दूसरे रास्ते चले जाते हैं। इससे यही सिद्ध होता है कि यद्यपि संसार के सारे मनुष्य एक दूसरे से मिल जाने के योग्य हैं तथापि उनमें उतनी अधिक प्रीति या आकर्षण नहीं हो सकता जितना कि ख़ास ख़ास मनुष्यों में होता है। इससे मालूम होता है कि Valency का माहात्म्य भी मनुष्य की प्रकृति से बहुत निकट सम्बन्ध रखता है।

हे मनुष्य-जाति! आपको अँगरेज़ी भाषा Highest of creation, उर्दू भाषा अशर्फुल मख़लूक़ात और हिन्दी सर्व-श्रेष्ठ जीव क्यों कहती है—यह हमारी समझ में नहीं आता। आपकी प्रकृति तथा चरित्र में हमें तो कोई नई बात नहीं दिखाई देती। सारी बातें आपने छोटे छोटे निर्जीव जड़ पदार्थों से ही सीखी हैं—उन जड़ पदार्थों से सीखी हैं जिनसे आप, जड़ समझ कर, घृणा करते हैं और जिन्हें अपने से निकृष्ट समझते हैं। पर आप उन जड़ पदार्थों से किसी भी अंश में बढ़े चढ़े नहीं। आप भी एक जड़ पदार्थ ही हैं। प्यारे मित्र! आप किस भूल भुलैया में पड़े हैं! ज़रा अपने अस्तित्व को जानने की चेष्टा कीजिए।

श्रीनारायणचन्द्र चट्टोपाध्याय।

अभिलाषा।

प्यारे प्रेम प्रवीन, जन्म-जन्मान्तर में भी
रीझ रहे यह बनी, रहो तुम अन्तर में भी।
इष्टदेव हो तुम्हीं हृदयमन्दिर के भीतर;
ध्यान धरूँ मैं सदा तुम्हारा हर्षित होकर ॥१॥
जो मैं होऊँ वृक्ष, लता बन कर तुम मिलना;
पाकर प्रेमप्रमोद गोद में खुल कर खिलना।
जो मैं होऊँ फूल कुञ्ज में सरस सुगन्धित,
तो बन कर मकरन्द सदा रहना अन्तःस्थित ॥२॥
जो मैं होऊँ कर्मभोग से काला विषधर,
तो प्राणाधिक, महामूल्य मणि होना सिर पर।
जो मैं होऊँ कठिन पहाड़ी पत्थर मर कर,
तो तुम होना विमल सुशीतल झरना सुन्दर ॥३॥
जो मैं होऊँ स्वच्छ सरोवर मीठे जल का,
तो तुम रखना रूप प्रफुल्लित अमल कमल का।
नीलाकाश अनन्त बीच जो मैं मिल जाऊँ,
निष्कलङ्क नव इन्दु-रूप में तुमको पाऊँ ॥४॥
जो मैं होऊँ अति-गभीर सागर तो प्रियवर,
मुझमें रहना मञ्जु मनोहर मोती बन कर।
किसी रूप में, कहीं रहूँ, मत होना न्यारे;
हर हालत में तुम्हें चाहता हूँ मैं प्यारे ॥५॥

रूपनारायण पाण्डेय।

पूर्व का पुराना विमान और पश्चिम का नया आकाश-यान।

धुनिक वैज्ञानिक आविष्कारों और उद्भावनाओं के द्वारा धरणीतल में विज्ञान का युगान्तर उपस्थित हो रहा है। पाश्चात्य पण्डित अद्भुत विज्ञान-बल से जो अलौकिक व्यापार संघटित कर रहे हैं उनको देखने से महर्षि विश्वामित्र की नूतन सृष्टि को अलीक कल्पना कहने का साहस किसी को नहीं हो सकता।

पाश्चात्य विज्ञान का प्रखर रश्मि-जाल जैसे हमारे ऊपर विकीर्ण होता है, वैसे ही भारत की विलुप्त रत्नराजि नवीन प्रकाश से प्रकाशित हो उठती है। पाश्चात्य नवीन विज्ञान, प्राच्य ज्ञान-राज्य में प्रज्वलित दीप का काम कर रहा है। अधोगति के गभीर गह्वर में निपतित हुए भारत की ज्ञान-रत्न-प्रभा अज्ञान-घनान्धकार में विलीन अवश्य हो गई है; परन्तु पाश्चात्य विज्ञान के प्रकाश से उसका तिमिरावरण दूर हो रहा है, और वह अपनी प्रभा को फिर भी दिगन्तरों में फैलाने का सुअवसर पा रही है।

ऊपर हमने महर्षि विश्वामित्र की नूतन सृष्टि का उल्लेख किया है। उसकी सीमा तक पहुँचने के लिए पाश्चात्य विज्ञान को अभी बहुत शताब्दियों की प्रतीक्षा करनी होगी। अस्तु, विश्वामित्र की सृष्टि के विषय में कुछ न कह कर, हम यहाँ पर आधुनिक विज्ञान के समतलवर्ती एक और ही प्राच्य आविष्कारक की कीर्ति-गाथा वर्णन करते हैं। प्राच्यों में मयदानव के समकक्ष आविष्करण-शक्ति और किसी में न थी। पुराणों में लिखा है कि वह अद्वितीय कारीगर था। परन्तु वह अद्वितीय यन्त्र-शिल्पी भी था, इस की ख़बर बहुत कम लोगों को है। उसके यन्त्र का परिचय दिलाने के लिए ही हमने उपस्थित प्रसङ्ग की अवतारणा की है। सुप्रसिद्ध ग्रन्थ कथा-सरित्सागर से हम विशेषतः इस विवरण का सङ्कलन करते हैं।

कथा-सरित्सागर में मय यन्त्र-शिल्प का प्रथम आविष्कारकारक माना गया है। इस ग्रन्थ के सूर्यप्रभलम्बक के प्रथम तरङ्ग में राजा चन्द्रप्रभ के पुत्र सूर्यप्रभ की यन्त्र-विद्या-शिक्षा मय द्वारा ही निष्पादित हुई थी। लिखा है—

"एवं मयेनाभिहितो राजा चन्द्रप्रभोऽब्रवीत्।
धन्याःस्मः पुण्यवानेष यथेच्छं नीयतामिति॥ ३३॥
ततस्तमामन्त्र्य नृपं तदनुज्ञातमाशु तम्।
सूर्यप्रभं स सामात्यं पातालं नीतवान् मयः॥ ३४॥
तत्रोपदिष्टवांस्तस्मै स तपांसि तथा यथा।
राजपुत्रः स सामात्यो विद्याः शीघ्रमसाधयत्॥ ३५॥
विमानसाधनं तस्मै तथैवोपदिदेश सः।
येन भूतासनं नाम स विमानमुपार्ज्जयत्॥ ३६॥
तद्विमानाऽधिरूढं तं सिद्धविद्यं समन्त्रिकम्।
सूर्यप्रभं स पातालान्मयः स्वपुरमानयत्॥ ३७॥"

कथा-सरित्सागर में मय का जो संक्षिप्त इतिहास है उससे विदित होता है कि वह पहले अनार्यजाति के किसी सम्प्रदाय में था। अनन्तर अनार्यों का परित्याग करके आर्य-सम्प्रदाय में आया और आर्यों से उत्साहित होकर उसने इन्द्र की सभा का निर्माण किया। इसी से अनार्य लोग आर्यपक्षावलम्बी मय के ऊपर अत्यन्त कुपित हुए। उनके भय से मय विन्ध्याचल पर, भूगर्भ में, दुर्भेद्य विचित्र-चातुरी-पूर्ण एक पुरी बना कर रहने लगा। मालूम होता है, वही पुरी पाताल नाम से परिचित हुई है। मय-सम्बन्धी पूर्वोक्त इतिहास यहाँ पर उद्धृत किया जाता है :—

अस्ति त्रिजगति ख्यातो मयो नाम महासुरः।
आसुरं भावमुत्सृज्य शौरिं स शरणं श्रितः॥ १२॥
तेन दत्ताऽभयश्चक्रे स च वज्रभृतः सभाम्।
दैत्यैश्च देवपक्षोऽयमिति तं प्रति चुक्रुधुः॥ १३॥
तद्भयात्तेन विन्ध्याद्रौ मायाविवर-मन्दिरम्।
अगम्यमसुरेन्द्राणां बह्वाश्चर्यमयं कृतम्॥ १४॥

कथा-सरित्सागर, मदनमञ्चुकालम्बक, तृतीय तरङ्ग।

कथा-सरित्सागर के पूर्वोक्त लम्बक में जहाँ मय-कन्या सोमप्रभा ने कलिङ्गसेना को स्वनिर्मित काष्ठमयी यन्त्रपुत्तलिका दिखलाई है, वहाँ ही हम मय की प्रथम यन्त्र-शिल्प-पारदर्शिता का साश्चर्य परिचय पाते हैं। वह कौतूहलजनक वर्णन इस प्रकार है :—

इत्युक्त्वाऽदर्शयत्तस्याः प्रोद्घाट्य बहुकौतुकाः।
सोमप्रभा काष्ठमयाः स्वमायायन्त्र-पुत्रिकाः॥ १८॥
कीलिकाऽऽहतिमात्रेण काचिद् गत्वा विहायसा।
तदाज्ञया पुष्पमालामादाय द्रुतमाययौ॥ १९॥

काचित् तथैव पानीयमानिनाय यदृच्छया ।
काचिन्ननर्त काचिच्च कथालापमथाकरोत् ॥ २० ॥

अर्थात् सोमप्रभा ने, इतनी बात कह कर, काष्ठ-निर्मित यन्त्र-पुत्तलिका बाहर निकाल उनसे अनेक भाँति के कौतुक दिखाने लगी। कोई पुतली कील के आघात मात्र से ही आकाश में जाकर उसकी आज्ञा के अनुसार पुष्पमाला ले आई। कोई अपनी इच्छा से पानी ले आई। कोई नाचने लगी। कोई कथा-वार्ता कहने लगी।

इसके बाद का वर्णन और भी आश्चर्य-जनक है :—

ततः सोमप्रभाऽवादीद् राजन्नेतान्यनेकधा ।
मायायन्त्रादि शिल्पानि पित्रा सृष्टानि मे पुरा ॥ ४२ ॥
यथा चेदं जगद्-यन्त्रं पञ्चभूतात्मकं तथा ।
यन्त्राण्येतानि सर्वाणि श्रृणु तानि पृथक् पृथक् ॥ ४३ ॥
पृथ्वी प्रधानं यन्त्रं यद् द्वारादि पिदधाति तत् ।
पिहितं तेन शक्नोति न चोद्घाटयितुं परः ॥ ४४ ॥
आकारस्तोययन्त्रोत्थः सजीव इव दृश्यते ।
तेजोमयन्तु यद्यन्त्रं तज्ज्वालाः परिमुञ्चति ॥ ४५ ॥
वातयन्त्रञ्च कुरुते चेष्टा गत्यागमादिकाः ।
व्यक्तीकरोति चालापं यन्त्रमाकाशसम्भवम् ॥ ४६ ॥
मया चैतान्यवाप्तानि तातात्किन्त्वमृतस्य वत् (?)
रक्षकं चक्रयन्त्रं तत् तातो जानाति नापरः" ॥ ४७ ॥

कथा-सरित्सागर, मदनमञ्चुकालम्बक, तृतीय तरङ्ग।

अर्थात् सोमप्रभा कलिङ्गसेना के पिता कलिङ्ग-दत्त राजा से बोलीः—राजन्! ये सब बहुविध कौशल-रचित यन्त्रशिल्प मेरे पिता ने बहुत समय पहलेही निर्माण किये हैं। यह जगद्रूप प्राकृतिक यन्त्र जैसे पञ्चभूतात्मक है वैसे ही यह यन्त्र भी पाञ्चभौतिक गुणों से युक्त है। जो यन्त्र पृथ्वीतत्त्व-प्रधान है, वह दरवाज़ा वगैरहः बन्द करता है; इसके बन्द किये हुए दरवाज़े कोई दूसरा नहीं खोल सकता। जल-यन्त्र से निर्मित आकार सचेतन की भाँति दिखाई देता है। तेजोमय जो यन्त्र है वह अग्निज्वाला बरसाता है। वायुयन्त्र गमनागमन क्रिया करता है। आकाश-यन्त्र वचन को अभिव्यक्त करता है। मैंने ये सब पिता से प्राप्त किये हैं, परन्तु अमृत का आधार जो चक्रयन्त्र है उसे पिता के सिवा दूसरा नहीं जानता।

इस जगह "जलयन्त्र" मूर्तियुक्त फ़वारे की कल ही प्रतीत होती है। "तेजोमय" यन्त्र आधुनिक गैस और इलेक्ट्रिक लाइट (Gas and Electric light) की कल के अनुरूप रहा होगा है। "वातयंत्र" प्रचलित साइकल और मोटरकार के सिवा और कुछ नहीं। "आकाशयन्त्र" से फोनोग्राफ के सदृश कल का बोध होता है। शेषोक्त चक्रयन्त्र कैसा था, इसका हाल मालूम नहीं। तथापि वह कोई चक्रविशिष्ट कल (Wheeled Machine) अनुमित होती है॥

कथा-सरित्-सागर में विमान-यन्त्र अर्थात् व्योम-यान का विस्तृत वर्णन है। उसके बहुल प्रचार का भी उल्लेख है। इससे यह बात स्पष्ट प्रतीत होती है कि उस समय जन-साधारण भी इस प्रमोद से वञ्चित न थे। इस विषय में लिखा है :—

गत्वा तं यन्त्रतक्षाणं वद प्राणधरं महत्।
व्योमगामि विमानं नः प्रस्थानायोपकल्पय ॥ २२३ ॥

कथा-सरित्सागर, रत्नप्रभालम्बक, नवम तरङ्ग।

अर्थात्—प्राणधर! जाकर उस यन्त्र-शिल्पी से कहना कि हमारे पर्यटन के लिए एक बड़ा सा आकाशगामी व्योम-यान तैयार करो।

निर्दिष्ट वर्णन से जाना जाता है कि "विमान-यन्त्र" कोई ऐन्द्रजालिक कल न थी। किन्तु उसमें उच्च श्रेणी की कारीगरी थी और सचमुच ही वह व्योमगामी विमान था।

यह विमान-यन्त्र किस तरह चलाया जाता था और कितनी तेज़ी से दौड़ता था, यह भी सुन लीजिए :—

वातयन्त्रविमानञ्च तन्ममास्तीह मङ्क्षु यंत्।
योजनाष्टशतीं याति सकृत् प्रहतकीलिकम् ॥३८॥
आरुह्य स्वकृते ह्यस्मिन् वातयन्त्रविमानके।
द्रुतं ततो गतोऽभूवं योजनानां शतद्वयम् ॥४४॥

इससे हम जान सकते हैं कि विमान-यन्त्र हवा के ज़ोर से ही चलता था। इसी से उसका नाम वात-

यन्त्र-विमान पड़ा। इस समय बैलून-यन्त्र (Balloon) जिस तरह गर्म हवा अथवा लघुबाष्प (Heated air or Light gas) से पूरित होकर उड़ता है, उसी तरह वातयन्त्र भी उड़ता था। यह बात निर्विवाद है। स्क्रू वगैरः घुमा कर जैसे कलें चलाई जाती हैं उसी तरह विमानयन्त्र कीलक घुमा कर, चलाया जाता था। एक बार कल के घुमाने से विमानयान की गति का वेग दो सौ योजन से आठ सौ योजन तक होता था। वेग-क्रम के सम्बन्ध में और भी प्रमाण मिलते हैं। यथाः—

प्रेरितेन पुनस्तेन विमानेन ख-गामिना।
ततोऽपि योजनशतद्वयमन्यद्गामहम् ॥४५॥

कथा-सरित्सागर, रत्नप्रभालम्बक, नवम तरङ्ग।

अर्थात् एक बार और चाभी दे कर उस आकाशगामी विमान से दो सौ योजन और भी मैं चला गया।

विमान की लम्बाई-चौड़ाई एक मनुष्य से ले कर हज़ार मनुष्यों तक के बैठने योग्य होती थी। जैसेः—

व्यजिज्ञपच्च सुमहद्विमानं कृतमस्ति मे।
यन्मानुषसहस्राणि वहत्यद्यावहेलया ॥२२८॥

क० स० सा०, र० प्र० ल०, ६ तरङ्ग।

अर्थात् यन्त्र-शिल्पी ने राजा से विज्ञप्ति की कि मेरे पास विस्तृत विमान प्रस्तुत है। वह सहज ही में एक हज़ार मनुष्यों को ले जा सकता है।

विमान-यन्त्र के उड़ने की बात हम लिख चुके। अब उड़ कर अभीष्ट स्थान पर उतरने का प्रमाण सुनिएः—

तत्राम्बरा दर्शाङ्कितमवतीर्णं वर-विमान-वहनं तम्।
सानुचरं नववध्वा युक्तं दृष्ट्वा विसिस्मिये जनता ॥२४२॥

एक हज़ार आदमियों को लेकर निःशङ्क आकाश से उतरते हुए उस विमान को देख कर लोगों को बड़ा विस्मय हुआ।

अर्थात् इस से स्पष्ट मालूम होता है कि विमान की सवारी जन साधारण में प्रचलित थी। उसको किसी प्रकार आपत्ति की शङ्का न थी।

वायु-यान आज कल के एरशिप ही के सदृश होता था।

सूर्यप्रभ ने मय से विमान-यन्त्र बनाना अच्छी तरह सीख लिया और विमान पर सवार हो कर दिग्विजयार्थ चीन तक बेरुकावट चला गया। यह विवरण भी कथा-सरित्सागर में हैः—

एतस्य परिपन्थीहि कार्येऽस्मिन् खेचरेश्वरः।
विद्यते श्रुतिशर्म्माख्यः सोऽपि शक्रेण निर्मितः ४३१॥
सिद्धिविद्याप्रभावस्तु सहास्माभिर्विजित्य तम्।
एष विद्याधराधीश—चक्रवर्तित्वमाप्स्यति ॥३२॥
सोऽथ सूर्यप्रभो विद्या—प्रभावात्सचिवैः सह।
नाना देशान् विमानेन सदा बभ्राम लीलया ॥४०॥
अन्येद्युश्च विमानेन सह सूर्यप्रभो ययुः।
चन्द्रप्रभाद्याः सर्वे ते चीनदेशं स पौरवाः ॥१७२॥

विशेष उद्योग और चेष्टा करने पर भी पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने अपने आकाशयान की पूर्ण सिद्धता नहीं कर पाई। परन्तु पुराने भारतीय शिल्पियों ने इस विषय में चरम सिद्धि प्राप्त कर ली थी। इसमें कुछ भी अतिशयोक्ति नहीं।

यहाँ पर हम प्राच्य-यन्त्रविद्या की पराकाष्ठा का कुछ उल्लेख करते हैं। नरवाहनदत्त ने राजकन्या कर्पूरिका से विवाह करना चाहा। उसकी खोज में कर्पूरसम्भव नगर का पता लगाते लगाते वह समुद्र के किनारे एक आश्चर्यमय स्थान में जा पहुँचा। वह स्थान एक समृद्धि-सम्पन्न शहर था। उस शहर के सम्पूर्ण निवासी काष्ठयन्त्र से निर्मित थे। परन्तु उनका व्यवहार सजीव मनुष्यों का जैसा देखकर वह अत्यन्त विस्मित हुआ। बाज़ार में जाकर उसने देखा तो सभी सौदागर और ग्राहक काठ ही के हैं और क्रय-विक्रय कर रहे हैं। केवल उनके बोलने से ही यह मालूम होता है कि वे निर्जीव हैं; अन्यथा उनका निर्जीवपन किसी प्रकार प्रकट नहीं होता। हाथी घोड़े भी सभी काठ के हैं; शहर के द्वार पाल भी वैसे ही हैं। जड़ इन्द्रियों में जिस प्रकार एक चेतन अधिष्ठाता है उसी प्रकार उन यन्त्र-मूर्तियों में भी

शिष्टाचारसम्पन्न एक चेतन पुरुष रत्न-सिंहासन पर बैठा हुआ नरवाहनदत्त को दीख पड़ा।

यह पुरुष काञ्ची पुरी का रहने वाला था। मय-शास्त्र का पारदर्शी था। किसी कारण राजकोप से त्रस्त हो कर विमान द्वारा उक्त स्थान में जा रहा था। उस निर्जन स्थान में अपना मन बहलाने के लिए काठ के मनुष्य निर्माण करके उनके बीच वह राजोचित ठाठ से रहता था। वह अपना "राज्यधर" नाम सार्थक कर रहा था। नरवाहनदत्त का उसने अद्भुत आतिथ्य किया। बात की बात में सब तरह की सामग्री वहाँ आगई। भोजनोपरान्त सब जगह साफ़ कर दी गई। यह सब कुछ हो तो गया; परन्तु कोई प्राणी यह सब काम करने वाला न दिखाई दिया। इसका वर्णन, जैसा कि कथा-सरित्सागर में लिखा हुआ है, सुनिए:—

प्रविश्य तत्र विपणी-मार्गेण च ददर्श सः।
काष्ठयन्त्रमयं सर्वं चेष्टमानं सजीववत् ॥ १० ॥
वणिग्विलासिनीपौरजनं जनितविस्मयम्।
विज्ञायमानं निर्जीव इति वाग्विरहात्परम् ॥ ११ ॥
क्रमाच्च गोमुखसखः सोऽन्तिकं राजवेश्मनः।
प्राप तादृशमेवात्र हस्त्यश्वादिविलोकयन् ॥ १२ ॥
विवेश चास्य सौवर्णपुरमस्तकशोभिनः।
अभ्यन्तरं स सचिवः साश्चर्यो राजसद्मनः ॥ १३ ॥
तत्र यन्त्रप्रतीहारवारनारीपरिश्रितम्।
जडानां स्पन्दने हेतुं तेषां चेतननामकम् ॥ १४ ॥
इन्द्रियाणामिवात्मानमधिष्ठातृतया स्थितम्।
रत्नसिंहासनाऽऽसीनं भव्यं पुरुषमैक्षत ॥ १५ ॥
× × × × ×
भार्या परिच्छदो वा मे चिन्तितस्तु न तिष्ठति।
तेन यन्त्रमयोऽत्रायं जनः सर्वः कृतो मया ॥ ५८ ॥
इतीहागत्य तत्रापि देवैकाकी करोम्यहम्।
राज्ञो लीलायितं राज्यधरो नाम विधेर्वशात् ॥ ५९ ॥
तद् देव! निर्मितेऽमुष्मिन् भवन्तोऽद्य पुरे दिनम्।
विश्राम्यन्तु यथाशक्ति परिचर्यापरे मयि ॥ ६० ॥
× × × × ×
बुभुजे तत्र चाहारान् ध्यानतोपस्थितान् शुभान्।
तेन राज्यधरेणाग्रे स्थितेन स समन्त्रिकः ॥ ६३ ॥
ततः केनाऽप्यदृष्टेन प्रमृष्टाहारभूमिकः।
अनुताम्बूलभोगं स तस्थौ पीतासवः सुखम् ॥ ६४ ॥

जिस कौशल से राज्यधर ने यन्त्रकाष्ठपुत्तलिका निर्माण की थीं उसी कौशल के उन्नत प्रयोग द्वारा उसने और भी सब अलौकिक काम किये थे। उसे हम वैद्युतिक यन्त्र की क्रिया कह सकते हैं। वैद्युतिक उपाय से, बिना मनुष्य की सहायता के ही, भोजन परोसे जा सकते हैं, थालियाँ उठाई जा सकती हैं, पान खिलाये जा सकते हैं और शराब पिलाई जा सकती है। पुस्तकों की छपाई, सिलाई, जिल्दबन्दी आदि भी बिजली की कलों से होती है। इन बातों को प्रायः सभी जानते हैं। सुतरां राज्यधर के कौशल में ऐसी कोई बात नहीं जो असम्भाव्य हो।

राज्यधर को हमने मयशास्त्र का पारदर्शी कहा है। राज्यधर का भाई प्राणधर भी विचक्षण शिल्पी था। ये दोनों भाई शिल्पशास्त्र के पारगामी थे:—

तस्य राष्ट्रे नृपस्यावां तक्षाणौ भ्रातरावुभौ।
मयप्रणीतदार्वादिमायायन्त्रविचक्षणौ ॥ २२ ॥

कथा-सरित्सागर, रत्नप्रभालम्बक, नवम तरङ्ग।

युधिष्ठिर की महासभा के निर्माण से मय के अद्भुत कौशल का और भी एक प्रमाण मिलता है। मय दानव के आदेशानुसार उसके आठ हज़ार गगनचर आयुधधारी सेवक और राक्षस इस रमणीय महासभा का रक्षण करते थे; एवं आवश्यकतानुसार उठाकर उसे अन्यत्र भी ले जाते थे। यह बात महाभारत में लिखी हुई है।

वर्तमान समय में ईंटों के बने मकानों के स्थानान्तरित करने के समाचार सुन कर मनुष्य विस्मित होते हैं। मय भी Hydraulic Machine की भाँति किसी यन्त्र से मकानों को स्थानान्तरित कर देता होगा।

ऊपर के प्रमाणों से हम मय को ही यन्त्रशास्त्र का प्रधान प्रवर्तक कह सकते हैं—हम इसे प्राच्य संसार का एडीसन् (Edison) कह सकते हैं।

उपसंहार में हम इस यन्त्र-विद्या के प्रादुर्भाव-काल के सम्बन्ध में एक कथा का उल्लेख करते हैं। मयकन्या सोमप्रभा के द्वारा की गई बुद्ध की पूजा के सम्बन्ध में लिखा है :—

ततो यन्त्रमयं यत्नं गृहीत्वा प्राहिणोत्तदा ।
सोमप्रभा स्वप्रयोगाद् बुद्धार्चानयनाय सा ॥३८॥
स यन्त्रो नभसा गत्वा दूरमध्वानमाययौ ।
आदाय मुक्तासद्दलहेमाम्बुरुहसञ्चयम् ॥३९॥
तेनाऽभिपूज्य सुगतान् भासयामास तत्र सा ।
सोमप्रभा सनिलयान् सर्वाश्चर्यप्रदायिनी ॥४०॥

कथा-सरित्सागर, मदनमञ्चुकालम्बक, तृतीय तरङ्ग ।

इससे प्रमाणित है कि बौद्ध युग में यन्त्र-विद्या का विशेष रूप से अनुशीलन होता था। डाकृर प्रफुल्लचन्द्र राय ने सिद्ध किया है कि बौद्ध काल में ही हिन्दू-रसायन-शास्त्र की उत्पत्ति हुई थी। उस काल में यन्त्रविद्या की भी वृद्धि होना सर्वथा सम्भव है।*

विद्यार्थी माँगीलाल शर्म्मा ।

कृष्ण-कीर्तन ।

(१)

कुण्डलमण्डितश्रवणयुग पीतवसन जगदीश ।
वासं कुरु सह राधया मम हृदये गोपीश ॥

× × × ×

सोहत कुण्डल कान में पीतवसन जगदीश !
वास करहु राधा-सहित मेरे हिय गोपीश ॥

(२)

नन्दतनय तव सन्निधौ प्रार्थयामि हृदयेन ।
श्रवणे कुरु मम निर्मले वेणोर्मृदुनिनदेन ॥

× × × ×

विनवों हिय सों नन्दसुत तुम सों यह परि पाय ।
कान करहु मेरे विमल मुरली-तान सुनाय ॥

(३)

कृष्णोरसि मुक्तावली धवलतरा प्रतिभाति ।
नीलगिरौ मन्दाकिनी विमला यथा प्रयाति ॥

× × × ×

सोहत है हरि के हिये निर्मल मोतीहार ।
नीलसैल पर जिमि लसत विमल गङ्ग की धार ॥

(४)

पीतवसनमतिसुन्दरं हरेर्मदनकदनस्य ।
भाति यथा सौदामिनी मध्ये नीलघनस्य ॥

× × × ×

मदन-मानहर-कृष्ण-पट पीत मनोज्ञ सुहाय ।
जैसे नीले मेघ में सौदामिनि-समुदाय ॥

(५)

किं पिबन्ति मम पदरसं मुनयोमृतं विहाय ।
ज्ञातुमिदं बालो हरिः स्वपदं मुखे निनाय ॥

× × × ×

कत मम चरनोदक पियत मुनिजन अमृत विहाय ।
यह जानन को बाल हरि मुख मेलत निज पाय ॥

(६)

अरे कृष्ण दधिभाजने किमिह क्षिपसि करञ्च ।
वारयामि पतितं जननि पिपीलिका-निकरञ्च ॥

× × × ×

मोहन डारत हाथ कत तू दधि-मटकी माँहि ।
जननि परीं चिउँटी बहुत काढ़तु हों मैं ताहि ॥

(७)

कण्टकितं कठिनं वनं मृदुल-चरण युगलेन ।
मैव याहि माधव विजित-विकच-विमल-कमलेन ॥

× × × ×

जीत्यो निर्मल कमल को तुव कोमल युग-पाय ।
वन कठोर कांटे बहुत माधव तहँ जनि जाय ॥

(८)

मुरलि त्वं कृष्णाधरं पिब दयितेव सदैव ।
वंशजाहमिति कुरु मदं छिद्रितापि न मुधैव ॥

× × × ×

री मुरली हरि को अधर पीती रह दिनरात ।
छिद्रित ह्वै पै मद न करु—"हूँ वंशज विख्यात" ॥

(९)

कृष्ण कलेवरमेव तव कृष्णं ताः प्रवदन्ति ।
अतिकृष्णं तव मानसं कृष्ण या न जानन्ति ॥

* "प्रवासी" में प्रकाशित एक बँगला लेख का भावार्थ ।

× × × ×

"तुव तन हीं कारो" वही—कहतीं तिया अजान।
अति कारो तुव हीय कर कृष्ण न जिनको ज्ञान ॥

अक्षयवट मिश्र।

देवास का परमार-राजवंश (ज्येष्ठ शाखा)।

देवास के राजा उस प्राचीन परमार-राजवंश की सन्तान हैं जिसमें विक्रमादित्य और भोज जैसे क्षात्र-कुलचूड़ामणि नरेश उत्पन्न हुए। गत दो सहस्र वर्षों में इस परमार-वंश में ऐसे ऐसे वीरपुङ्गवों ने जन्म लिया जिनके नाम आज भी बड़े अभिमान के साथ स्मरण किये जाते हैं। परमारकुल-तिलक विक्रमादित्य न केवल मालवा ही के राजा थे, किन्तु उनका राज्य समग्र उत्तर भारत में, सिन्धु-देश से लगा कर वङ्गदेश तक, फैला हुआ था। सीदीयन (शक) लोगों को भारत से मार भगाने के कारण विक्रमादित्य को "शकारि" भी कहते हैं। विक्रम-संवत् उनके अतुल सामर्थ्य का उज्ज्वल प्रमाण है। वे संस्कृत के अच्छे पण्डित और परम विद्यानुरागी थे।

उनके बाद सन् ईसवी की आठवीं शताब्दी में राजा भोज हुए। उनके सिंहासनारूढ़ होने के पूर्व, सिन्धु और सतलज के बीच का देश परमार-वंश के हाथों से निकल गया था। परन्तु इस कमी की पूर्ति उन्होंने अपने राज्य की सीमा विन्ध्याचल के दक्षिण तक बढ़ा कर की। राजा भोज भी बड़े विद्या-प्रेमी और न्यायशील राजा थे। उनकी राजधानी धारानगरी (धार) थी।

महाराज भोज के बाद आपस की लड़ाइयों के कारण परमार-कुल (परमार का अपभ्रंश "पवार" है) की शनैः शनैः अवनति होती गई। लगभग चार सौ वर्षों के भीतर ही तमाम विजित देश, एक एक के, राज्य से निकल गये। केवल मालवा ही रह गया। इसी बीच में, इस वंश में, एक बड़ा प्रतापी राजा हुआ। उसने मालवा पर कुछ दिन राज्य करके अपनी शेष आयु अपनी कुल-देवी भगवती कालिका की आराधना में व्यतीत की। इस धर्म्मनिष्ठ और शान्तिप्रिय राजा का नाम जगदेव था।

आपस की लड़ाइयाँ दिन पर दिन बढ़ती ही गईं। यहाँ तक कि सन् ईसवी की तेरहवीं शताब्दी में मालवा भी इस वंश के हाथ से निकल गया। चौदहवीं शताब्दी में परमार-कुल की भिन्न भिन्न शाखायें मालवा परित्याग करके भारत के अन्य भागों में अपना अपना भाग्य आज़माने के लिए चली गईं। विक्रमादित्य और भोज के वंश की ज्येष्ठ शाखा अर्वाचीन मेवाड़ में जाकर विजोलिया में रहने लगी। उसके समर-कौशल से प्रसन्न हो कर चित्तोड़ के महाराना ने इस वंश के राजा को मुख्य सरदार और भूमिया बना लिया। इन पवारों के वंशज आज भी बिजोलिया रियासत के शासक और उदयपुराधिपति के १६ मुख्य सरदारों में से हैं।

सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ में बिजोलिया के राजकुल में भी विरोध उत्पन्न हो गया। उस समय के राजा के दो रानियाँ थीं। उनसे चार पुत्र हुए। पहली से एक और दूसरी से तीन थे। पहली रानी का इकलौता पुत्र शम्भूसिंह सबसे ज्येष्ठ था। परन्तु राजा का उस पर कोप था और दूसरों पर प्रेम। इस कारण राज-कुटुम्ब और दरबार में नित नये षड्यन्त्र रचे जाने लगे। शम्भूसिंह का वहाँ रहना कठिन हो गया। विवश होकर, और अपने पिता और छोटे भाइयों से वैर करना अनुचित तथा निन्द्य समझ कर, शम्भूसिंह अपनी पैतृक सम्पत्ति को अन्तिम प्रणाम करके महाराष्ट्र देश में चले गये। वहाँ अहमदनगर के निकट सुखबाड़ी नाम का एक गाँव बसा कर वहीं रहने लगे। अब भी यह गाँव अहमदनगर से १४ मील की दूरी पर बसा हुआ है। पर उसका पूर्व-नाम बिगड़ कर "सूपा" हो गया है। इस समय (अर्थात् सन् १६१५ ईसवी के लगभग) अहमदनगर का

इसलामी राज्य बहुत गिरी दशा में था। बहुत से साहसी पुरुष अपने अपने राज्य की स्थापना की धुन में लगे थे। परमार राजा शम्भूसिंह ने भी अपने लिए एक राज्य की नींव डाली, जिसमें अहमद-नगर और पूना नाम के आधुनिक ज़िलों की भूमि थी। इधर शिवा जी ने भी दक्षिण में हिन्दू-साम्राज्य की नींव डाली। सन् १६६० ईसवी तक शिवा जी की सेना ने शम्भूसिंह के राज्य पर तीन हमले किये। पहले दो हमलों में शम्भूसिंह की जीत रही, परन्तु तीसरे में उनकी भारी हार हुई। तो भी उन्होंने शिवा जी की शरण नहीं ली। इस पराजय के थोड़े ही दिनों बाद दलवी नाम के एक पड़ोसी मराठे सरदार ने विश्वासघात करके उनको मार डाला।

शम्भुसिंह का इकलौता पुत्र कृष्णाजीराव नाबालिग़ था। इस लिए उसकी विधवा माता के ऊपर राज्य की रक्षा और पुत्र की शिक्षा का भार पड़ा। इस राजनीतिनिपुण स्त्री ने शिवा जी के वैभव को दिन-दूना रात-चौगुना बढ़ते देख कर उनकी शरण लेना ही उचित समझा। इस लिए उसने अपने १६ वर्ष के होनहार इकलौते पुत्र कृष्णाजी को शिवाजी के दरबार में भेज दिया। शिवाजी उस पर बहुत प्रसन्न हुए और उसके पिता के सब गाँव जागीर में दे कर उसे अपना सरदार बना लिया। यह घटना सन् १६८० ईसवी में शिवाजी के देवलोक होने के थोड़े ही दिन पहले हुई थी। शिवाजी के बाद मुग़ल-बादशाह औरङ्ग़ज़ेब और मरहठों में बहुत दिनों तक लड़ाइयाँ होती रहीं। उनमें कृष्णाजीराव पवार के जेष्ठ पुत्र बुबाजी ने अपने दो कनिष्ठ भाई, रायाजी और केरूजी, की सहायता से बड़ी शूरता दिखाई और मुग़ल-सेना को अहमदनगर ज़िले में प्रवेश करने से रोक दिया। बुबाजी की वीरता पर प्रसन्न होकर मरहठों के राजा राजाराम छत्रपति ने उनको "सप्त-सहस्र-सेना पति" की सामरिक उपाधि से विभूषित किया। बुबाजी के दो पुत्र थेः—काल्लूजी और सम्भाजी।

काल्लूजी के समय में उसकी प्रजा बहुत सुखी रही। काल्लूजी के ४ पुत्र थे। बड़ा पुत्र कृष्णाजी, काल्लूजी के बाद सूपा की गद्दी पर बैठा। शाहू महाराज ने, सन् १७३८ ईसवी में, पहले बाजीराव के साथ तुकोजी राव पँवार और उनके चचेरे भाई ऊदाजी राव को उत्तरी भारत की चढ़ाई पर भेजा। इस चढ़ाई में राणोजीराव सेन्धिया और मल्हार-राव हुलकर भी सम्मिलित थे। मरहटों ने मालवा जीत लिया। इस युद्ध में तुकोजीराव पँवार और उनकी सेना ने बड़ी वीरता दिखाई। इस लिए छत्रपति शाहू महाराज और उनके प्रधान सचिव पेशवा ने तुकोजीराव का बड़ा सम्मान किया। १७३९ में विजित मालवा उन चारों मरहटे सरदारों में बाँट दिया गया, जिन्हों ने इस चढ़ाई में प्रचण्ड पराक्रम दिखाया था। देवास और धार, अन्य परगनों सहित, तुकोजीराव पँवार और उदाजी-राव पँवार को मिले। गवालियर रानोजीराव सेन्धिया को मिला और इन्दौर मल्हारराव हुलकर को। इस चढ़ाई में तुकोजीराव का उनके छोटे भाई जीवाजीराव ने अच्छा साथ दिया था। इस लिए उन्हों ने देवास स्वयं लेकर धार अपने भाई को दिया। इस प्रकार प्रायः चार सौ वर्ष बाद विक्रमादित्य और भोज की सन्तानों का मालवा में पुनरागमन हुआ।

तुकोजीराव को शाहू महाराज से "प्रतिनिधि" की पदवी मिली। इस तरफ़ वे सूबेदार के नाम से विख्यात हुए। उन्होंने राजस्थान पर आक्रमण करके बहुतेरे राजपूत राजाओं से कर लिया और उन्हें अपने अधीन किया। १७५१ में राजस्थान पर चढ़ाई करते समय एक बार वे अजमेर में ठहरे। उस समय अकस्मात् ज़ोर से आँधी आई। जिस डेरे में वे थे उसका एक खम्भा उखड़ कर उनके माथे पर गिरा। उसी की चोट से उनका देहान्त होगया। उन के कोई पुत्र न था; इस लिए उनके बाद उनके भतीजे प्रथम कृष्णाजीराव गद्दी पर बैठे। कृष्णाजीराव ने भी अपने राज्य की अच्छी वृद्धि की। बारह वर्ष तक

वे मथुरा में रहे और गवालियर के प्रसिद्ध महादजी सेन्धिया के देहली-सम्बन्धी दाँव-पेंच में वे शामिल रहे। सन् १७८९ ईसवी में दक्षिण को जाते समय बरहानपुर में उन की मृत्यु हुई।

उन के भी कोई पुत्र न था। इस लिए उन के जेष्ठ भ्राता, सूपा के राजा के पुत्र, द्वितीय तुकोजी उनकी गद्दी पर बैठे। उन के शासनकाल में माननीय ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ, सन् १८१८ ईसवी की सन्धि हुई, जिस के कारण तुकोजीराव के छोटे चचेरे भाई देवास-राज्य की कनिष्ठ शाखा के प्रथम शासक हुए। सन् १८२८ ई० में द्वितीय तुकोजीराव का देहान्त हुआ। उन के बाद उनके पुत्र रुक्माङ्गदराव को राज्याभिषेक हुआ। १८५७ के बलवे में वे ब्रिटिश गवर्नमेन्ट के पूरे सहायक रहे। उनका विवाह श्रीमान् बड़ौदा-नरेश महाराज प्रथम सयाजीराव की दो राजपुत्रियों के साथ हुआ था। उन्होंने सूपा के जेष्ठ पँवारकुल के राजपुत्र को गोद लिया। १८६० में उनका देहान्त हुआ। उनके पश्चात् उनके दत्तक पुत्र द्वितीय कृष्णाजीराव गद्दी पर बैठे। जबतक वे नाबालिग़ रहे उन की माता महारानी यमुना बाई राजकाज देखती रहीं। महाराज कृष्णाजीराव का विवाह गवालियर के महाराज जयाजीराव सेन्धिया की राजपुत्री से हुआ था।

१८९९ में कृष्णाजीराव का शरीरान्त हुआ। तदनन्तर उनके ज्येष्ठ भ्राता श्रीमान् आनन्दराव पँवार नाना साहब, महाराज विश्वासराव बहादुर के ज्येष्ठ राजपुत्र, ता० ४ अप्रेल १९०० ईसवी को राजगद्दी पर बैठे। उनका पूरा नाम श्रीमान् महाराज, सप्त-सहस्र-सेनापति, प्रतिनिधि, सर श्री तृतीय तुकोजीराव पँवार, बापू साहब, महाराज बहादुर, के० सी० एस० आई० है।

महाराजा तृतीय तुकोजीराव का जन्म १ जनवरी सन् १८८८ ईसवी को हुआ था। आप इन्दौर के राजकुमार-कालेज (डेली कालेज) में, १८९९ में, भरती हुए। वहाँ की शिक्षा १९०३ में समाप्त करके अजमेर के मेव-कालेज में आप शिक्षा ग्रहण करने लगे। १९०५ में आप मेव-कालेज की परीक्षा में बड़ी योग्यता के साथ उत्तीर्ण हुए। तत्पश्चात् आप कुछ काल तक राज्यप्रबन्ध की शिक्षा पाते रहे।

शिक्षा में कोई त्रुटि न रह जाय, इस अभिप्राय से आपने तीन मास से अधिक तक भारत, ब्रह्मा और लङ्का में देशाटन किया। सन् १९०८ ईसवी में भारत-सरकार की ओर से आपको राज्यशासन-सम्बन्धी पूर्ण अधिकार प्राप्त हुए।

अभी आपको राज्य करते केवल चार ही वर्ष हुए हैं, परन्तु इतने ही थोड़े दिनों में राज्य में बहुत कुछ सुधार हुआ है और प्रजा पहले से अधिक सुखी है। आपके सुशासन से भारत-सरकार भी बड़ी प्रसन्न है। गत देहली-दरबार में श्रीमान् सम्राट् पञ्चम जार्ज ने आपको के० सी० एस० आई० की उच्च उपाधि से विभूषित किया। आपकी नाबालग़ी में राज्य पर बहुत ऋण था। परन्तु आपके सुप्रबन्ध से थोड़ेही दिनों में सब ऋण पट गया। भूमि का लगान यथाविधि निश्चित हो जाने से किसानों को बड़ा सुख हुआ है। शिक्षा पर आपकी अधिक रुचि है। राज्य में नये नये विद्यालय खुलते जाते हैं। आपको मकान बनवाने का भी शौक़ है। "श्रीआनन्द-भवन" और "एडवर्ड-स्मारक महराब" आपही की आज्ञा से बनी है। लग भग सभी महकमों में आपने सुधार किया है। आप इन्दौर के "डेली कालेज" नामक मध्यभारतीय राजकुमार-विद्यालय की प्रबन्ध-कारिणी सभा के ६। ७ वर्ष से सदस्य हैं। आप "क्षत्रिय-मरहटा-शिक्षण-परिषद्" के दो वर्ष तक प्रधान रह चुके हैं। आपका विवाह कोलापुर-नरेश श्रीमान् महाराज सर शाहू क्षत्रपति की पुत्री के साथ, सन् १९०८ ईसवी में, हुआ। ४ अप्रेल १९१० ईसवी को आपके उत्तराधिकारी युवराज विक्रमसिंह-राव नाना साहब का जन्म हुआ। लग भग सौ वर्ष के अनन्तर देवास-राज्य को औरस उत्तराधिकारी मिला। इस लिए बड़ी ख़ुशी मनाई गई।

आपके प्रधान सचिव भी बड़े स्वामिभक्त और प्रजा के हितेच्छु हैं। देवास-राज्य (जेष्ठ शाखा) का

क्षेत्रफल ४४६ वर्ग मील, मनुष्य-संख्या ७४२५८ और आमदनी ५३/४ लाख है।

देवास के नरेशों को १५ तोपों की सलामी है। ये प्रत्यक्ष सन्धि-राजा (Treaty Chiefs) और श्रीमान् वाइसराय की वापसी मुलाक़ात के अधिकारी हैं। इस राज्य से भारत-सरकार या किसी अन्य एतद्देशीय राजा को कर नहीं दिया जाता।

शङ्करराव कोठारी।

जापान पर बौद्ध धर्म का प्रभाव।

यद्यपि वर्तमान समय में हम बौद्ध धर्म के चिह्नों को स्पष्ट रूप से नहीं देखते, तथापि उसका जो प्रभाव हमारी शिक्षा, दीक्षा और सामाजिक उन्नति पर पड़ा है वह अकथनीय है। हमारे इतिहास में बौद्ध धर्म के प्रभाव की कमी नहीं। शिल्पकलाओं में हमारा नाम करने वाला बौद्ध धर्म ही है। अशोक के समान धार्मिक सम्राट् बुद्ध महाराज के उपदेश का ही परिणाम है। भारत के गुहामन्दिर और मूर्तियाँ बौद्ध धर्म्म की ही करामात हैं। यूरप के परोपकारी भाव की प्रशंसा करने वालों को यह सुन कर आश्चर्य होगा कि वहाँ पहले पहल चौदहवीं शताब्दी में, फ्रान्स में, केवल आदमियों के लिए अस्पताल खुले थे; किन्तु हमारे यहाँ मनुष्यों के लिए तो चिकित्सालय बहुत पहले से थे ही, किन्तु जीवजन्तुओं और कीड़े मकोड़ों के लिए भी, बौद्ध धर्म के प्रभाव से, ईसा से तीन सौ वर्ष पहले शफ़ाख़ाने खुल चुके थे। ये जन्तुओं के अस्पताल गुजरात में चीनी यात्री फाहीन को पाँचवीं शताब्दी में और हिवेनसांग को सातवीं शताब्दी में भी ख़ूब उन्नत दशा में मिले थे। सड़कों के दोनों तरफ़ पेड़ लगाना, कुयें खुदवाना, लम्बी लम्बी नहरें निकालना, रास्ते में धर्म्म-शालायें बनाना—ये सब बातें बौद्ध धर्म ही की शिक्षा का फल-स्वरूप थीं। उसी के प्रभाव से हमारे यहाँ प्रजा-तन्त्र-राज्य और प्रणालीबद्ध साम्राज्य भी बड़ी उन्नत दशा को पहुँचा था। जिस राजनीति के नक़ारे यूरुप और अमेरिका में अब बजने लगे हैं वह भी हमारे यहाँ तेईस सौ वर्ष पहले निर्माण हो चुकी थी। ये तो अवान्तर बातें हुईं। यहाँ पर हम केवल यही दिखाना चाहते हैं कि जापान के लिए बौद्ध धर्म ने क्या क्या किया और उसका वहाँ वालों पर कितना प्रभाव पड़ा। यह सब हम स्वयं अपने मुँह से नहीं कहेंगे। जुलाई और अगस्त की "जापान मैगेज़ीन" में नागाइन नाम के एक जापानी सज्जन ने एक निबन्ध इस विषय पर अँगरेज़ी में लिखा है। उसी का भावार्थ यहाँ दिया जाता है।

इसमें सन्देह नहीं कि बौद्ध धर्म जापान में भारतवर्ष से चीन और कोरीया द्वारा आया। किन्तु कब और कैसे आया, इस विषय में कुछ मत-भेद है। जापानी इतिहासकारों का कथन है कि सन् ५३२ ईसवी में, कोरिया के अन्तर्गत हकुशै राज्य के राजा ने जापान के सम्राट् किम्मेई को बौद्ध भगवान् की एक मूर्त्ति और कुछ बौद्ध-धर्म्म-सम्बन्धी हस्तलिखित पुस्तकें भेंट में भेजीं। उस मूर्ति के साथ यह उपदेश भी जापान आया कि जो कोई बौद्ध धर्म का स्वागत करेगा वह चिरकाल तक सुख भोगेगा और उसकी कोई भी प्रार्थना निष्फल न जायगी। जापान के सम्राट् की बौद्ध धर्म्म पर श्रद्धा होगई। उस का इस उपदेश पर विश्वास भी जम गया। उसकी प्रबल इच्छा हुई कि वह बुद्ध भगवान् की शरण में जाय। किन्तु लकीर के फ़क़ीर—परिवर्तन के दुश्मन—जापानी मन्त्रियों ने मिकाडो को डराया कि अपना पुराना धर्म—शिन्तो, पितृपूजा—छोड़ने से देवता रुष्ट हो कर हमें शाप देंगे। अपना पुराना धर्म्म बदलना श्रेय नहीं। अतएव मिकाडो किम्मेई ने उस मूर्ति को सोगा-नो-इनामे नाम के एक जापानी भद्र पुरुष को देदी। उस जापानी ने अपने मकान को एक बौद्ध मन्दिर के रूप में परिणत कर दिया। इसी बीच जापान में एक व्याधि फैली। लोगों ने कहा कि यह नवीन बौद्ध मन्दिर का ही फल है। अतएव

वह मन्दिर तुड़वा दिया गया। किन्तु मन्दिर के टूटते ही एक और भयानक महामारी फैली। इसका कारण बौद्ध मन्दिर का तोड़ा जाना माना गया। कुछ लोगों का विचार है कि जापानी इससे भी पहले बौद्ध धर्म्म से परिचित थे। इस सिद्धान्त की पुष्टि में वे लोग कहते हैं कि जापान का चीन और कोरिया से बहुत प्राचीन काल से सम्बन्ध चला आता है। अतएव यह सम्भव और स्वाभाविक भी है कि बौद्धधर्म्म का प्रचार जापान में इससे भी पहले हो गया हो। परन्तु जापान में बौद्धधर्म्म के प्रचार के विषय में अब तक ५३२ ईसवी से पहले का कोई ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं। जापान के इतिहास में उल्लिखित है कि शोतो कूतैशी नाम का राजकुमार, जो सम्राज्ञी सुइको का मुख्तार था, बड़ी उच्च कक्षा का बौद्ध महात्मा था। उसका समय सन् ५९३ से ६२१ ईसवी तक है। यह भी लिखा है कि उस समय बौद्ध धर्म्म का प्रभाव बहुत बढ़गया था और वह प्रायः जापान का जातीय धर्म होगया था। जो बौद्ध धर्म जापान में फैला उसको हम महायान * कहेंगे, क्योंकि उसमें आडम्बर और मूर्तिपूजा इत्यादि का समावेश था। किन्तु मुक्ति का साधन ज्ञान, चित्तशुद्धि और आत्मीय पूर्णत्व ही माना जाता था। मुक्ति से उनका अभिप्राय पाप से मुक्त होना न था, किन्तु वासनाओं को दमन करना था। उनका जीवनोद्देश निर्वाण की प्राप्ति था। निर्वाण से उनका आशय उस शून्य दशा से था जिस में कोई भी वासना नहीं रह जाती। लौकिक जीवन को वे वासना, राग-द्वेष और अज्ञान का फल बताते थे। इस बात की खोज वे न करते थे कि कोई सृष्टिकर्ता या ईश्वर है या नहीं। स्वावलम्बन उन का मुख्य सिद्धान्त था, जिसके बल से वासना को दमन करते हुए वे निर्वाण को प्राप्त होना चाहते थे।

मिकाडो शिरकावा (सन् १०७४—१०७६ ईसवी) बौद्ध धर्म का बड़ा कट्टर अनुयायी था। उसने कई बौद्ध मन्दिर बनवाये, जिनमें से ये बहुत विख्यात हैं—सेईशोजी, होशोजी, सोन्नशोजी, इनशोजी। कई बड़े बड़े ज़मींदार भी बड़े भक्तिभाव से मन्दिर बनवाने लगे। बौद्ध पुजारी धर्म की पताका फहराने लगे। बड़े बड़े त्योहार बौद्ध धर्म की आड़ पर और उसके नाम पर मनाये जाने लगे। नाटकों के अभिनयों और वक्तृताओं द्वारा धर्म्म का प्रचार बढ़ने लगा।

जापानियों को बौद्ध धर्म्म की पुस्तकें चीनी भाषा में प्राप्त हुई थीं। अतएव चीनी भाषा सीखने के उसी प्रकार जापानी लिप्सु होगये जिस प्रकार आज कल हमारे बान्धव अपनी मातृ-भाषा को छोड़ कर विदेशी भाषाओं की ओर लपकते हैं। भेद इतनाही है कि जापानी धर्म्म और ज्ञान के लिए चीनी भाषा सीखते थे, और हम लोग पेट भरने के लिए विदेशी भाषा पढ़ते हैं। आज पृथ्वी पर चाय के सबसे बड़े पियक्कड़ जापानी हैं (हाँ, काशमीरी भी दिन में कई बार और चार पाँच प्रकार की उबलती हुई गरम चाय पीते हैं)। जापानियों में चाय का पीना शिष्टाचार और जातीय धर्म का एक मुख्य अङ्ग है। यह चाय पीने की प्रथा भी इसी समय से चीन से आये हुए बौद्ध धर्म्म के कारण फैली। जापानियों के शिष्टाचार में भी परिवर्तन होगया। जैसा परिवर्तन आज कल हम में पाश्चात्य शिक्षा के कारण दिखाई देता है वैसाही उन में भी होगया था।

टोकू गावा के समय में बौद्धधर्म्म ने राजकीय रूप धारण कर लिया। तब से वह सच मुच ही एक बड़ी प्रभावशाली शक्ति के रूप में परिणत होगया।

नेगाइ महाशय का कथन है कि जापान पर बौद्ध धर्म्म का प्रभाव चीन और भारतवर्ष से भी बढ़ कर पड़ा। जापान में बौद्ध धर्म्म ने बड़े बड़े राजनीतिज्ञ और नेता उत्पन्न किये।

* महाराज कनिष्क के समय से यह आडम्बरमूर्ति पूजायुक्त महायान (बड़े पथवाला) धर्म्म, जिसमें सब के लिए जगह थी, प्रचलित हुआ। इससे पहले वाला शुद्ध बौद्ध धर्म हीनयान कहलाता था। इसमें मूर्ति-पूजा और आडम्बर इत्यादि कुछ सम्मिलित न था। लेखक।

बौद्ध धर्म का सबसे अधिक प्रभाव जापान की ललित कलाओं पर देखने में आता है। पत्थर और धात के काम पर तो मानों भारतीय-बौद्ध-कला-कौशल की मोहर ही लगी है। जापान में लकड़ी पर मोटा काम पहले भी होता था; किन्तु लकड़ी, पत्थर और ताँबे इत्यादि पर मूर्त्ति-निर्माण करने की प्रथा बौद्ध धर्म के प्रचार के साथ ही आविष्कृत हुई। इतिहास में लिखा है कि सम्राट् वितात्सु का राजदूत कोरिया से अपने साथ ५८४ ईसवी में बुद्ध देव की एक पत्थर की मूर्ति लाया था। इसके बाद फिर कई बार मूर्तियों के कई नमूने जापान में आये। उनको देख कर जापान के शिल्पकार बौद्ध-धर्म्म-सम्बन्धिनी मूर्तियाँ बनाने लगे। तत्पश्चात् वे अपने पुराने जातीय धर्म शिन्तो से सम्बन्ध रखने वाली मूर्तियाँ और जानवरों के चित्र भी बनाने लगे। बौद्ध-मन्दिरों की सजावट और सौन्दर्य के लिए भी दीवारों पर चित्राङ्कण होने लगा। मन्दिरों में काम आने वाले पात्र भी शिल्प की दृष्टि से बड़े सुन्दर और चित्रमय बनाये जाने लगे। जिस जापानी शिल्पकला की आज सारा संसार प्रशंसा करता है, वह बौद्ध धर्म के प्रभाव से ही उन्नत हुई है। चिकन का काम भी बौद्ध धर्म के ही साथ जापान में आया। पहले पहल सम्राज्ञी सुइको के समय में चिकन के काम से एक रेशम के परदे पर बुद्धदेव का चित्र बिना गया था। तब से चिकन का काम जापान में चल पड़ा और अब वह जिस उत्कृष्ट दशा को पहुँच गया उसे सभी जानते हैं। चित्रविद्या पर भी इस धर्म्म का बड़ा असर हुआ। दर्शन-शास्त्र और साहित्य के अध्ययन का उत्साह जापानियों को चीन से मिला। सरकार की ओर से जापानी विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने के लिए चीन भेजे जाने लगे। कुछ काल के पश्चात् नवीन विचारों के सम्पादन और विद्या ग्रहण करने के लिए विद्यार्थियों का चीन जाना बंद हो गया। तब बौद्ध धर्म ही जापान का एक मात्र विद्या-विषयक अवलम्बन रह गया। इस धर्म ने जापान में बहुत कुछ विद्या-प्रचार किया। जब जापान घरेलू लड़ाई में लिप्त था तब सरकार ने शिक्षा प्रचार करना छोड़ दिया था। उस अवसर पर सरस्वती ने बौद्धमठों ही में शरण पाई। ये मठ विद्या के केन्द्र बन गये। बौद्ध मन्दिरों के विद्वान् पुजारी इस निबिड़ अन्धकार के समय मानो विद्या के प्रज्वलित द्वीप थे। अस्तु। नवीन शिक्षा-प्रणाली और नवीन युग के आरम्भ होने तक जापान की शिक्षा बौद्ध पुजारी और परिव्राजकों ही के हाथों में थी।

बौद्ध धर्म्म ने जापानियों को सुशील और उदार-बुद्धि बना दिया। पुराने जापानी धर्म, शिन्तो, के देवताओं ने भी बौद्ध मन्दिरों में स्थान पाया। इस प्रकार मत-भेद के कारण जो द्वेष और वैमनस्य बहुधा हुआ करते थे वे जड़ से उखड़ गये। जापानी चाहे किसी मत का अनुयायी हो, उससे उसकी जातीयता और स्वदेशानुराग में कोई अन्तर नहीं पड़ता।

जापानियों में प्राकृतिक सौन्दर्य से जो असीम अनुराग पाया जाता है वह भी बौद्ध धर्म का ही फल है। सौन्दर्य-प्रेम जापानियों की रग रग में भरा हुआ है। उनकी रहन-सहन सौन्दर्यमय है। आचरण सुन्दर, शिल्प सुन्दर और साहित्य सुन्दर। सभी सौन्दर्यमय। इस सौन्दर्य-प्रेम का सञ्चार क्रमशः इस प्रकार हुआः—विख्यात बौद्ध मन्दिर बड़े रमणीय और सुन्दर स्थानों में बने। इन मन्दिरों को जानेवाले यात्रियों को अति मनोहर स्थानों से होते हुए जाना होता है। मन्दिरों को परिवेष्टित किये हुए सौन्दर्यमय जगत् कब उपासना के लिए जाने वाले यात्रियों पर अपना लाभदायक प्रभाव—सुन्दरता—प्रेम का जादू—डाले बिना रह सकता है? और तुर्रा यह कि जापान में पहाड़ों पर मन्दिर उस समय बनने लगे थे जब यूरप में लोग पहाड़ों से डरते थे। वे समझते थे कि पहाड़ और खाड़ियों में भूत-प्रेत, दैत्य, दानव इत्यादि निवास करते हैं। इधर जापानियों का ग्रामीण जीवन से प्रेम बढ़ा और उधर यूरप के पढ़े लिखे 'सभ्य' लोग ग्रामीण जीवन से दूर भागने लगे। ग्रामीण जीवन मूढ़ता

का श्रद्धा समझा जाने लगा। जापानियों का काव्य-साहित्य ग्रामीण-जीवन की महिमा और सौन्दर्य की शोभा के गुण-गान से आप्लावित हो चला। जङ्गली पशु-पक्षियों से प्रेम और छोटे छोटे कीड़ों पर भी लम्बी लम्बी कवितायें रची जाने लगीं। इस समय तो ग़रीब से भी ग़रीब जापानी की यही इच्छा रहती है कि, चाहे कितना ही छोटा क्यों न हो, पर घर के पास एक बाग़ीचा अवश्य होना चाहिए। बाग़ीचे की .ख़ूबी यह है कि उस पर प्रकृति के स्वाभाविक सौन्दर्य की मोहर में मनुष्य के हाथों की बू न हो।

खान-पान, रहन-सहन और रीति-रस्म पर भी बौद्ध धर्म का प्रभाव पड़ा। जापानी मांस-भक्षी थे और आज भी मांस-भक्षी हैं। बौद्ध धर्म मांस-भक्षण का निषेध करता है। जापानियों पर इसका इतना अवश्य असर हुआ कि वे लोग किसी आत्मीय की मृत्यु पर मांस नहीं खाते। कुछ लोगों ने तो बिलकुल छोड़ भी दिया है। जीवजन्तु-रक्षिणी सभायें भी स्थापित हैं। जापानी बड़े कर्म्मशील और दुनियादार होते हैं। जिस बात को वे आर्थिक और शारीरिक दृष्टि से उपयोगी समझते हैं उसे वे अपना लेते हैं। पाश्चात्य जातियों से संसर्ग होने से, अपने शारीरिक बल को बढ़ाने के लिए ही, वे मांसाहारी हो गये हैं।

मनुष्य के मृत शरीर को जला देने की प्रथा सब से पहले हिन्दुओं ने ही चलाई थी। जहाँ जहाँ भारतीय बौद्ध धर्म्म गया वहाँ वहाँ यह प्रथा भी पहुँची। जापानियों ने अब इस प्रथा को भली भाँति स्वीकार कर लिया है और वे मुरदों को जलाने लगे हैं।

ज्येष्ठ पुत्र के सयाने होने पर बाप घर का भार पुत्र के सर पर रख कर आप अपना अधिक समय ईश्वर-भजन में लगाता है। यह एक प्रकार का वानप्रस्थ धर्म है। यह रिवाज साधारण लोगों से राजघराने में भी पहुँचा है। उम्र ढलने पर सभी सम्राट् तथा अमीर-उमरा राजकाज और रियासत का काम लड़के को सौंप कर वानप्रस्थ-वृत्ति स्वीकार कर लेते हैं। बुद्ध भगवान् ने कहा भी है :— "मनुष्य को अपना सारा जीवन दुनियादारी में ही नहीं बिताना चाहिए"—अर्थात् गृहस्थ के पश्चात् वानप्रस्थ-आश्रम में प्रवेश करना उचित है।

हाँ, वासना-दमन के उपदेश और वैराग्य-वृत्ति के आदर्श ने जापानी समाज को कुछ हानि अवश्य पहुँचाई। अच्छे अच्छे विद्वान् जापानियों के दिमाग़ में यह ख़याल समा गया कि बुद्ध भगवान् चाहते थे कि मनुष्य सांसारिक बन्धनों को तोड़ कर माँ-बाप, स्त्री-पुत्र इत्यादि की माया-ममता छोड़, विरक्त हो जाय और निर्वाण-साधन के लिए योग और यात्रा इत्यादि धार्मिक ढकोसलों में लग जाय। अतएव कुछ समय तक सत्पुरुषों का यह मानो मुख्य धर्म ही हो गया था कि दण्ड-कमण्डलु ले कर तीर्थ-यात्रा करते फिरें। जिससे अनेक लाभ हुए उससे यदि एक हानि भी हो गई तो चिन्ता नहीं।

मुकुन्दीलाल।

गृह-स्मरण।

अनुजवर, नहीं है चित्त मेरा ठिकाने,
स्थिर हृदय न होता, आज, हा क्यों, न जाने।
रह रह सुधि आती गेह की भ्रान्ति-युक्त ;
निमिष भर न मेरा बीतता शान्ति-युक्त ॥१॥

अहह ! उठ रहे हैं भाव ये भीतिकारी ;
विविध विषम चिन्ता दे रही दुःख भारी।
पल पल अति पीड़ा पा रहा मैं घनिष्ट,
कुशल कर हरे ! तू हो न कोई अनिष्ट ॥२॥

अशकुन बहु होते, कांपते प्राण मेरे,
विकट कटक जी को भीति के आज घेरे।
अनुज, कुशल तो है गेह में सर्व भांती ?
धड़क यह रही है व्यर्थ ही हाय छाती ॥३॥

स्वगृह-गमन को हैं प्राण मेरे अधीर,
उड़ कर घर जाता, मैं हुआ क्यों न कीर ?
परवश पर मेरा हो गया है शरीर ;
कब उड़ सकता है पञ्जराबद्ध कीर ? ॥४॥

भवन-गमन की कीं युक्तियाँ जो अनेक,
सफल न उन में से हो सकी हाय एक ।
मन कुछ न समाता क्या करूँ मैं उपाय,
विषम विषमयी है दासता हाय ! हाय ! ॥५॥
स्वगृह-कुशलता का शीघ्र ही वृत्त देना,
अनुनय यह मेरा हे सखे ! मान लेना ।
पल पल मुझको है बीतता कल्प जैसा,
स्वगृह-जनित होता प्रेम है मित्र ऐसा ! ॥६॥
पाने को निज गेह की कुशलता-वार्त्ता सुशान्तिप्रदा
कैसे अस्थिर-चित्त हाय ! रहते, देखो, प्रवासी सदा ।
ऐसा ही अनुराग-युक्त घर का होता दृढ़ाकर्षण;
हे भाई ! घर शान्ति का सदन है, स्वर्गीय सौख्यासन*॥७॥

लोचनप्रसाद ।

स्वामी दयानन्द सरस्वती का वेद-भाष्य और अध्यापक मैक्समूलर ।

लाहोर के देव-धर्म्म के प्रवर्तक और आर्य्य-समाज में परस्पर ३६ का सम्बन्ध है । इनकी आपस में कभी नहीं बनती । एक न एक छेड़ छाड़ चली ही जाती है । देव-समाज से एक मासिक पुस्तक अँगरेज़ी में निकलती है । उसका नाम है:—"विज्ञान-मूलक धर्म्म" । उसके जुलाई १९१२ के अङ्क में सम्पादक ने कुछ पत्र-व्यवहार प्रकाशित किया है । ये पत्र देवसमाज के प्रतिष्ठाता अग्निहोत्रीजी और परलोकवासी अध्यापक मैक्समूलर के हैं । पत्र १२ वर्ष के पुराने हैं । उन्हें इतने दिन बाद प्रकाशित करने का अभिप्राय क्या है; सो बताने की ज़रूरत नहीं । अभिप्राय कुछ भी हो, यदि मैक्स-मूलर के पत्रों में भूल नहीं, तो उनसे उनके लेखक की राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती और सायन तथा महीधर के वेदभाष्यों के विषय में, सर्व-साधारण को अच्छी तरह मालूम हो सकती है । इसी से इस पत्र-व्यवहार का मतलब हिन्दी में नीचे दिया जाता है ।

देव-धर्म-मिशन का दफ़्तर,
लाहोर, १४ जनवरी १८९९

अध्यापक मैक्स मूलर की सेवा में,
७, नोरहम गार्डन्स,
आक्सफ़ड, इँगलैंड ।

प्रिय महाशय,

फ़ीरोज़पुर, पञ्जाब, से "आर्य्य-गज़ट" नाम का एक उर्दू-पत्र आर्य्य-समाज की तरफ़ से निकलता है । आप जानते होंगे कि आर्य्य-समाज उस धर्म्म-संस्था का नाम है जिसके प्रवर्त्तक पण्डित दयानन्द थे और जो उन्हीं के विचारों और शिक्षाओं का प्रचार करती है । हाल ही में "आर्य्य-गज़ट" में एक लेख निकला है, जिसका लेखक कहता है कि स्वार्थी लोगों ने, समय समय पर, हिन्दूधर्म्म-पुस्तकों में मनमाना मिश्रण किया है । वह यह दोष आप पर भी आरोपण करता है । वह कहता है कि आप ने भी वेदों में कितने ही स्वरचित मन्त्र मिला दिये हैं । वह वेद के किसी ऐसे नये संस्करण का नाम नहीं बतलाता है जिसमें आपके रचे हुए मन्त्रों का सन्निवेश हुआ हो; परन्तु उसने आप के रचे हुए एक वेद-मन्त्र को उदधृत किया है । वह ज्यों का त्यों नीचे दिया जाता है :—

मत्स्य—सूक्तम् ।

लक्ष-नामा मत्स्यो देवता, गायत्री-छन्दः, मोक्षमूलर ऋषिः ।
लक्ष नामानमद्भुतमहामत्स्या पुरू-प्रियं सखायोऽभिप्रगायन ॥१॥
सुमक्षितःसमुद्र आसु रक्षितो नदीषु च सनः सनुष्ट आगमत ॥२॥
मत्स्यःपूर्वेभि ऋषिभिरीड्यो नूतदेवता सलक्ष्मीमेह वक्षति ॥३॥
इदं समेत पश्यत रोहिन्मांसमुपेशसां परे रजतं न शोभते ॥४॥
पक्षादिः राजवीतया स्वादिष्टया सुपिक्तो स तस्यो धारयः ॥५॥
आदिचारं, सुसंदशं इह सधस्थ उश्मसि नृभ्यो नारिभ्यो अथवे ॥६॥

---

* अपने पराधीन प्रवासी मित्र के पत्र के आधार पर लिखित

लेखक ।

आप इस देश और अन्य देशों में भी बहुत प्रसिद्ध हैं। आप संस्कृत के बड़े भारी विद्वान समझे जाते हैं। मालूम पड़ता है कि उक्त लेख के लेखक ने आप के विषय में जो कुछ लिखा है वह जान बूझ कर सत्य के ऊपर पर्दा डालने और आप को बदनाम करने के लिए लिखा है। वह चाहता है कि लोग आप को स्वार्थी और प्रवञ्चक समझें और आप के द्वारा की गई वेदों की टीका पर पण्डित दयानन्द के उस वेदभाष्य के मुक़ाबले में, जिसमें प्रत्येक वेद-मन्त्र ख़ूब ही तोड़ा-मोड़ा गया है और जिसमें मन्त्रों के मनमाने अर्थ किये गये हैं, लोग कुछ भी विश्वास न करें। *

उस लेख को एक दूसरे पत्र ने भी उद्धृत किया है। इससे मालूम पड़ता है कि लोग उसे पढ़ कर बहुत बहक जायँगे। क्या आप कृपा करके इस विषय में कुछ लिखेंगे? आप का जो उत्तर आवेगा वह सत्य के पक्ष के समर्थनार्थ हमारे मिशन के पत्र में उद्धृत कर दिया जायगा।

आप का
एस० एन० अग्निहोत्री,
अधिष्ठाता, देव-समाज।
और
प्रवर्तक-देव-धर्म्म-मिशन।

पुनश्च

जब यह पत्र लिखा जा चुका था तब मालूम हुआ कि इसी विषय का एक लेख लाहोर की "आर्य्य-पत्रिका" में भी निकला है। मैं उक्त पत्रिका की उस प्रति को अन्य काग़ज़ों के साथ भेजता हूँ। जिन दो पाराग्राफ़ों में आपका ज़िक्र है उन पर मैंने निशान लगा दिया है।

* * * *

इस पत्र का जो उत्तर आया वह भी नीचे उद्धृत किया जाता है:—

आक्सफोड,
७ फरवरी, १८९१।

प्रिय महाशय,

मैं आपका बड़ा ही कृतज्ञ हूँ जो आपने आर्य्य-गज़ट के कुछ अंश और "आर्य्य-पत्रिका" की एक कापी भेजने की कृपा की। आप के भेजे हुए काग़ज़ बड़े ही मनोरञ्जक हैं। परन्तु शायद ही उन पर किसी ने गम्भीरता-पूर्वक विचार किया हो। आप को मालूम होगा कि हाल ही में स्वीडन के प्रधान नगर स्टाकहाल्म में पूर्वीय भाषाओं के विद्वानों का एक सम्मेलन हुआ था। एक दिन वहाँ के बादशाह ने हम लोगों को भोज दिया। उसमें यह निश्चित हुआ कि हम में से हर आदमी एक एक प्रकार के भोज्य पदार्थ पर अपनी अपनी पूर्वी भाषा में कविता रच कर वहाँ पढ़े। मेरे ऊपर "सालमन, सास रायल" (Salmon, Sauce Royale) नाम के भोज्य पदार्थ पर वैदिक संस्कृत में कविता रचने और उसका गुण गाने का भार रक्खा गया। "सालमन" को स्वीडिश भाषा में "लक्ष" भी कहते हैं। अतएव मुझे इसी नाम का प्रयोग संस्कृत में करना पड़ा।

मुझे डर था कि शायद मेरी रचना वैदिक व्याकरण के अनुसार न हुई हो और मैंने स्वर-सम्बन्धी भूलें भी की हों। परन्तु मुझे इस बात की ज़रा भी आशा न थी कि मुझ पर वैदिक मन्त्रों के गढ़ने का दोषारोपण किया जायगा। मुझे सायन और महीधर के वेद-भाष्यों पर भी अन्ध-विश्वास नहीं। सायन-कृत वेद-भाष्य का एक नया संस्करण मैंने अभी प्रकाशित किया है। मैं सायन की विद्वत्ता का अवश्य क़ायल हूँ; परन्तु मैं उनकी सम्मति और

* "Now to us it seems a clear misrepresentation and fabrication of facts, made with a view to mislead the people into the belief that Professor Max Muller, who is so famous here, as well as in other countries, as an authority on Sanskrit literature, is a dishonest and interested man and his authority about the Vedas should no longer be believed against that of Pundit Dayanand (who has simply twisted and tortured every text of the Vedas while giving his false meanings and interpretations.)"

निष्कर्षों से सहमत नहीं, दयानन्द सरस्वती से सहमत होना तो दूर की बात है।

भवदीय

मैक्समूलर।

पुनश्च

मैंने देव-धर्म्म-मिशन की पुस्तकों को बड़ी रुचि से पढ़ा।

* * * *

इस के अनन्तर अध्यापक मैक्समूलर का एक पत्र और भी आया। वह भी नीचे उद्धृत किया जाता है:—

७—नारहम गारडेन्स,
आक्सफर्ड, २४ फरवरी, १८९१

श्रीमान् महाशय जी!

आप ने जो काग़ज़-पत्र भेजे उन के लिए मैं आप को हृदय से धन्यवाद देता हूँ। दयानन्द सरस्वती के विषय का लेख पढ़ कर मेरे वे सन्देह पुष्ट हो गये जो मेरे चित्त में उनके सम्बन्ध में थे। मैं अभी तक समझता था कि धार्म्मिक विषयों में वे बड़े ही कट्टर, या उससे भी कुछ अधिक, थे। अतएव वे अपने ऋग्वेद-भाष्य के उत्तरदाता नहीं। परन्तु मुझे यह जानकर बड़ाही दुःख हुआ कि वे अपने धार्म्मिक जोश की आड़ में कोई चाल भी चलते थे। * तथापि मैं यह माने बिना नहीं रह सकता कि उनमें कुछ अच्छी बातें भी थीं, और अन्य सुधारकों की तरह वे भी अपने अनुयायियों और ख़ुशामदियों द्वारा गुमराह कर दिये गये थे।

बड़े ही दुःख की बात है कि उनके किये गये ऋग्वेद और यजुर्वेद के भाष्यों पर इतना अधिक धन व्यय किया गया। ये दोनों भाष्य उनकी बहकी हुई बुद्धि की निपुणता के नमूने और सौगात हैं। मुझे इस बात पर आश्चर्य्य नहीं जो केशवचन्द्र सेन, दयानन्द सरस्वती से सहमत नहीं हो सके।

आपका,

मैक्समूलर।

* "I am sorry to hear that there was method in his madness."

पुनश्च

मुझे इस बात के कहने की आवश्यकता नहीं कि आप के देव-धर्म्म-मिशन के सिद्धान्तों से मेरी पूर्ण सहानुभूति है।

महाकवि फ़िरदौसी।

रदौसी फ़ारसी का महाकवि था। उसका असली नाम अबुल क़ासिम मंसूर था। ९४१ ईसवी के लगभग उसका जन्म हुआ था। उसकी जन्म-भूमि फ़ारस के तूस प्रान्त में शादाब नाम का गाँव है। उसके पिता का नाम मौलाना अहमद था। उसके पूर्वज तूस के पुराने निवासी थे। कुछ ज़मींदारी भी इन लोगों के पास थी।

फ़िरदौसी फ़ारसी और अरबी दोनों भाषाओं का पण्डित था। फारसी-साहित्य का वह बहुत बड़ा ज्ञाता था। ईसा की सातवीं शताब्दी तक फ़ारस का टूटा फूटा इतिहास केवल कहानियों और गीतों में ही पाया जाता था। नौशेरवाँ ने उसे लेखबद्ध कराया। ९७७ ईसवी के लगभग दक़ीक़ी नाम के एक शायर ने उस इतिहास का संशोधन और परिवर्त्तन आरम्भ किया। परन्तु इसके थोड़ेही समय के उपरान्त एक नौकर ने उसे मार डाला। उस समय फ़िरदौसी की उम्र ३३ वर्ष की थी। फ़िरदौसी ने इस काम को करना चाहा और अपने एक मित्र के द्वारा दक़ीक़ी का लेख और इतिहास-सामग्री शाही दरबार से प्राप्त की। राज्य उस समय महमूद ग़ज़नवी का था। उसे भी साहित्य से प्रेम था। उसने सात बड़े बड़े शायरों को इस काम के लिए अपने यहाँ रक्खा। इनमें फ़िरदौसी भी था। एक दफ़े महमूद पूर्वोक्त शायरों के साथ बैठा था। उस समय उसने फ़िरदौसी की काव्यनिपुणता की परीक्षा करनी चाही और उसे आज्ञा दी कि कुछ कहो। फ़िरदौसी ने तत्काल ही

सुलतान महमूद के प्यारे सेवक अयाज़ की प्रशंसा में यह पद्य कहा :—

مست ست بُتا چشم تو و تیر بدست
بس کس که زتیرچشم مست تو بخست
گر پوشد عارضت زره عذرش هست
کز تیر بترسد همه کس خاصه زمست

अक्षरान्तर—

मस्तस्त बुता चश्मे तो व तीर बदस्त ।
बस कस कि ज़ितीरे चश्मे मस्त तो बख़स्त ॥
गर पोशद आरज़त ज़िरह उज़रश हस्त ।
कज़ तीर बतरसद हमा कस ख़ासः ज़िमस्त ॥

हे प्रिय, तेरी आँख मस्त है और तीर तेरे हाथ में है। बहुत आदमी तेरी मस्त आँख के तीर से गिर गये हैं। यदि तू अपने कपोलों पर ज़िरह पहन ले तो उसे भी झिझक मालूम हो; क्योंकि तेरे तीर से सब लोग डरते हैं, ख़ास कर मस्त तीर से।

यह पद्य सुलतान को बहुत पसन्द आया। अतएव उसने कहा कि तुमने हमारी सभा को फ़िरदौस अर्थात् स्वर्ग बना दिया। उसी दिन से उसने मंसूर का नाम फ़िरदौसी रक्खा।

मंसूर के आश्रित अन्य शायर उससे ईर्ष्या रखते थे। एक बार उनमें से तीन शायर एक बाग़ में बैठे हुए मद्यपान कर रहे थे। फ़िरदौसी भी वहाँ पहुँचा। उसे वहाँ से हटाने की इच्छा से उन्होंने कहा कि हम अपने साथ सब को नहीं बैठने देंगे। जो अपने गुणों से हमारे समाज में बैठने की योग्यता दिखावे वही हमारी पानगोष्ठी में शामिल हो सकता है। हम तीनों एक पद्य का एक एक चरण कहते हैं। यदि आप उसका चैाथा चरण कह दें तो आप ख़ुशी से हमारे साथ बैठ सकते हैं। फ़िरदौसी ने इस आह्वान को सहर्ष स्वीकार किया। इस पर उन शायरों में से एक एक ने एक एक चरण इस प्रकार कहा :—

(۱) عنصري - چوں عارض تو ماه نه باشد روشن
(۲) فرخي - مانند رخت گل نه بود در گلشن
(۳) عسجدي - مژگانت گذرهمي کند در جوشن

फ़ारसी में रोशन, गुलशन और जोशन की जोड़ का और कोई शब्द न था। इसीसे यह बन्दिश की गई थी। मगर फ़िरदौसी ने वैसा एक और शब्द ढूँढ़ लिया। वह झट बोल उठा :—

(۴) فردوسي - مانند سنان گیو در جنگ پشن

अक्षरान्तर—

(१) उनसरी—चूं आरिज़े तो माह न बाशद रोशन
(२) फ़रुख़ी—मानिंद रुख़त गुल न बुवद दर गुलशन
(३) उसजदी—मिज़गानत गुज़र हमी कुनद दर जोशन
(४) फ़िरदौसी—मानिंद सिनाने गेव दर जंगे पशन

भावार्थ—

(१) तेरे कपोलों की सी दमक चाँद में भी नहीं है
(२) तेरे मुँह के सदृश बाग़ में फूल नहीं हैं
(३) तेरी पलकें जोशन को भेद जाती हैं
(४) जैसे गेव नाम के योद्धे का भाला पुशन

फ़िरदौसी की आशुकविता सुन कर उन लोगों को उसे अपनी गोष्ठी में शामिल करना पड़ा।

महमूद ने फ़िरदौसी को सब शायरों से योग्यतर देख कर उसे ही फ़ारस का इतिहास लिखने के लिए नियत किया। उसने अपने मन्त्री हसन मैमंदी को आज्ञा दी कि फ़ी हज़ार शेरों के लिए फ़िरदौसी को एक हज़ार अशरफियाँ दीजायँ। फ़िरदौसी ने शाहनामा बनाया और उसमें महमूद की उसने बड़ी प्रशंसा की।

तूस में पानी की कमी थी। इस कारण फ़िरदौसी वहाँ की एक नदी में बंद बाँध कर इस कमी को दूर करना चाहता था। इसके लिए बहुत रुपया दरकार था। शाहनामे के पुरस्कार से वह अपनी इच्छा पूर्ण करना चाहता था। इससे वह अपने निर्वाह मात्र के लिए कुछ ले लिया करता था। बाक़ी रुपया उसका महमूद के ख़ज़ाने में ही जमा रहता था।

हसन मैमंदी फ़िरदौसी से नाराज़ रहता था। वह फ़िरदौसी के हर काम में बाधा डालता था। उसके कारण फ़िरदौसी को जीवन-पर्य्यन्त संकट झेलना पड़ा।

फ़िरदौसी ने शाहनामे में से इसफंदयार और रुस्तम की कथा बहुत अच्छी लिखी। वह शाहनामा लिखही रहा था कि इस कथा-सम्बन्धिनी कविता को किसी ने फख़रुद्दौला नाम के एक अमीर के पास पहुँचाई। उसे देख कर वह बहुत प्रसन्न हुआ। उसने एक प्रशंसा-पत्र के साथ हज़ार अशरफियाँ फ़िरदौसी को इनाम में भेजीं। हसन मैमंदी ने सुलतान को इसकी ख़बर दी और फ़िरदौसी के खिलाफ़ उसे उभाड़ा। महमूद फ़िरदौसी से नाराज़ हो गया। फ़िरदौसी राज-सेवा से अलग किये जाने से तो बच गया; पर बहुत दिनों तक उसे अनेक कष्ट भोगने पड़े। दुर्भाग्य से उसी समय फ़िरदौसी का एकलौता लड़का भी मर गया।

तीन वर्ष में बड़े परिश्रम से फ़िरदौसी ने शाहनामे को समाप्त किया। अयाज़ के हाथ उसने उसे महमूद के पास भेजा। महमूद ने हसन मैमंदी के बहकाने से मोहरों की जगह साठ हज़ार रुपये अयाज़ के साथ फ़िरदौसी को भेजे। जब अयाज़ फ़िरदौसी के मकान पर पहुँचा तब वह हम्माम में नहा रहा था। सोने की जगह चाँदी देख कर फ़िर-दौसी क्रोध से जल उठा। उसने कहा कि रुपये के लोभ से मैंने शाहनामा नहीं लिखा। यह कह कर उसने बीस हज़ार रुपया अयाज़ को विदाई में दे डाले। बीस हज़ार हम्माम वाले को स्नान कराने का पुरस्कार दे दिया और बाक़ी बीस हज़ार एक प्याला शरबत पी कर उसकी क़ीमत दे डाली।

अयाज़ ने लौट कर महमूद से सारा हाल कह सुनाया। महमूद बहुत नाराज़ हुआ। दूसरे दिन फ़िरदौसी को हाथी के पैर से कुचला डालने की उसने प्रतिज्ञा की। इसकी ख़बर फ़िरदौसी को लग गई। इससे दूसरे दिन प्रातःकाल ही जाकर उसने महमूद से क्षमा माँगी। महमूद ने क्षमा कर दिया। उसका क्रोध जाता रहा। पर फ़िरदौसी का क्रोध नहीं गया। घर पहुँच कर उसने एक हज़ार सतरों में जो महमूद की प्रशंसा लिखी थी उसे फाड़ कर जला दिया। यह कर के उसने महमूद की निन्दा लिखी। उसे उसने बेतरह विषाक्त बनाया। उसे एक लिफ़ाफ़े में बंद करके उसने अयाज़ को दिया और उससे प्रार्थना की कि बीस दिन बाद इसे महमूद को देना। तदनन्तर वह उस मसजिद में गया जहाँ महमूद नमाज़ पढ़ने आता था। वहाँ महमूद के नमाज़ पढ़ने की जगह दीवार पर उसने एक शेर लिखा। उसका मतलब था कि सुलतान महमूद का दरबार तटहीन समुद्र के सदृश है। उसमें डुबकी लगाने से मुझे कुछ नहीं मिला तो यह मेरा दुर्भाग्य है; उसका दोष नहीं। यह लिख कर फ़िरदौसी ग़ज़नी से निकल खड़ा हुआ। बग़दाद पहुँच कर वहाँ के ख़लीफ़ा को प्रसन्न करने के लिए उसने यूसुफ़ ज़ुलेख़ा की कहानी लिखी।

बीस दिन पूरे होने पर अयाज़ ने फ़िरदौसी का पत्र सुलतान महमूद को दिया। अपनी निन्दा पढ़ कर महमूद का ख़ून उबल उठा। फ़िरदौसी के पकड़ने के लिए चारों तरफ़ सिपाही दौड़ाये गये। जब बग़दाद में उसका पता मिला तब महमूद ने ख़लीफ़ा को लिखा कि फ़िरदौसी को ग़ज़नी भेज दो। इस पर फ़िरदौसी कोहिस्तान चला गया। वहाँ के हाक़िम नसीर लेक ने उसका बड़ा सत्कार किया। फ़िरदौसी महमूद की निन्दा से पूर्ण और भी कविता लिखना चाहता था, पर नसीर लेक ने वैसा करने से उसे रोका। नसीर ने ख़ुदही मदमूद को एक पत्र लिखा। उसमें फ़िरदौसी को क्षमा प्रदान करने की उसने प्रार्थना की। नसीर लेक के पत्र का महमूद पर बड़ा असर हुआ। सारे बखेड़े की जड़ हसन मैमंदी को समझ कर महमूद ने उसे मरवा डाला और फ़िर-दौसी को साठ हज़ार अशरफियाँ देना स्वीकार किया।

इस बीच में स्वास्थ्य ख़राब होजाने के कारण फ़िरदौसी तूस लौट गया। वहाँ उसने एक लड़के को गाते सुना—

اگر شاہ را شاہ بودے پسر
بسر بر نہادے مرا تاج زر

अक्षरान्तर—

अगर शाह रा शाह बूदे पिदर ।
बसर बर निहादे मरा ताजे ज़र ॥

अर्थात्—अगर सुलतान बादशाह से पैदा होता तो मेरे सर पर वह सोने का ताज रखता। यह पद्य फ़िरदौसी ने महमूद की निन्दा में कहा था। इसके सुनने से फ़िरदौसी को मालूम होगया कि मेरे दुख से सब दुखी हैं। घर जाते ही वह बीमार होगया और बेचारा अन्त को मरही गया।

फ़िरदौसी ने अग्नि-उपासकों की बहुत प्रशंसा की थी। इस कारण उसे काफ़िर समझ कर तूस के शेख़ ने उसके शव को समाधिस्थ करते समय नमाज़ पढ़ना स्वीकार न किया। परन्तु उसी रात को स्वप्न में उसने फ़िरदौसी को स्वर्ग में देखा। तब उसने नमाज़ सहर्ष पढ़ी।

जो निन्दा फ़िरदौसी ने महमूद की की थी वह शाहनामे की भूमिका में जोड़ी गई है। वह उसका एक अंश हो गई है।

जिस दिन फ़िरदौसी मरा उसी दिन महमूद की भेजी हुई साठ हज़ार अशर्फ़ियाँ तूस पहुँचीं। उन्हें फ़िरदौसी के कुटुम्ब की एक स्त्री ने लेकर वह बाँध बनवाया जिसके बँधाने की फ़िरदौसी को इतनी फ़िक्र थी।

फ़िरदौसी फ़ारसी का महाकवि होगया। उस का शाहनामा महाकाव्य है। उसका बड़ा आदर है। वह फ़ारसी का महाभारत है। उसमें फ़ारस के बादशाहों का चरित है। उसके कारण फ़िरदौसी अमर हो गया है। उसकी कविता बड़ी ही भावपूर्ण और ललित है। खेद है, ऐसे महाकवि को जीते जी सदा दुःखही दुःख सहने पड़े। विद्वानों और महा-कवियों की प्रायः यही दशा होती है।

भगवानदास गुप्त।

आत्मा।
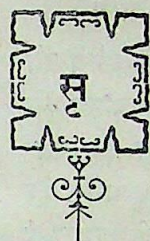
ष्टि के आदि से ही मनुष्यों को कार्य-कारण का ज्ञान प्राप्त करने की उत्कण्ठा हुई जान पड़ती है। यह उत्कण्ठा आज कल के लोगों की इच्छाओं से विचित्र प्रकार की थी। उसकी प्रेरणा से कितने ही मनुष्य अपना सारा आयुष्य कार्य-कारण की खोज में लगा देते थे।

आज कल का पाश्चात्य विज्ञान स्थूल पदार्थों की खोज में ही लगा हुआ है। इस लिए उसके सभी साधन स्थूल हैं। एक नियम यह है कि जो पदार्थ काटने, तौलने या स्थूल साधनों द्वारा सिद्ध न हो सके उसका अस्तित्व स्वीकार नहीं किया जा सकता। परन्तु इन नियमों पर चल कर प्राकृतिक पदार्थों की ही सिद्धि हो सकती है।

संसार के पदार्थ दो बड़े भागों में विभक्त हैं:— (१) जड़ और (२) चेतन। पाश्चात्य विज्ञान ने अभी तक अपना सब सामर्थ्य प्राकृतिक अथवा पार्थिव पदार्थों की खोज में ही लगाया है। चेतन पदार्थ इन नियमों से अज्ञेय है। इसलिए पाश्चात्य शास्त्र-वेत्ता आत्मा-परमात्मा को न अभी तक सिद्ध कर सके हैं और न उनको कोई पदार्थ ही मानते हैं।

थोड़े ही दिन हुए कि पाश्चात्य डाकृर और पादरी लोग मेस्मेरिज़्म की सत्यता में सन्दिहान थे। जितने प्रयोग किये जाते थे उनको वे करने वाले की चालाकी बतलाते थे। पर, आज, वही लोग शस्त्र-प्रयोग करने में उसी मेस्मेरिज़्म का उपयोग करते हैं। कारण यह है कि पाश्चात्य पदार्थ-विज्ञान अभी बाल्यावस्था में है। प्रतिदिन नवीन शोध होते जाते हैं। अभी तक आक्सिजेन और हायड्रोजेन ही पानी के तत्त्व ज्ञात हुए थे। अब ओज़ोन भी एक नया तत्त्व ज्ञात हुआ है। इसी प्रकार, सम्भव है कि जिन साधनों द्वारा आत्मा-परमात्मा की सिद्धि होना सम्भव है, भविष्यत् में, वे साधन भी पाश्चात्य विज्ञान-

वेत्ताओं को ज्ञात हो जायँ और जो पदार्थ आज कल "सब ज्ञानों का सङ्गठन" कहा जाता है वह भविष्यत् में एक स्वतन्त्र पदार्थ सिद्ध हो जाय।

सत्य सर्वदा एक है। जब तक उस सत्य की खोज पूरी नहीं होती तब तक प्राचीन काल के अनेक संशोधकों से विरोध होता ही रहेगा। भारत-वर्ष में मुख्य कर आत्म-विद्या के शोधक अनेक हो गये हैं। उन्होंने आज कल के शास्त्रियों के साधनों से विलक्षण साधनों की सहायता से चेतन पदार्थों की खोज की थी। उनके उस परिश्रम का फल, आज तक अन्य धर्म्मावलम्बियों की अनन्त आपत्तियों के होते हुए भी, दृढ़ स्तम्भ-रूप से विद्यमान है और संसार को अपनी सत्यता की सन्दिग्धता दूर करने का आह्वान दे रहा है।

जो भ्रमवादी हैं वे इन्द्रियों की क्रियाओं पर सन्दिग्ध दृष्टि से देखते हैं। इस मत के अनुयायी इस देश में तथा पाश्चात्य देशों में भी हुए हैं। भारत वर्ष में—"सर्वं ब्रह्ममयं जगत्" को माननेवाला समुदाय जगत् को रज्जु-सर्पवत् मानता है। वह चक्षु आदि इन्द्रियों का दोष बतला कर सांसारिक पदार्थों का अभाव सिद्ध करता है। सत्य तो यह है कि बनाने वाले ने जैसा काम देने को इन्द्रियाँ बनाई हैं वैसाही काम जब मूर्ख और विद्वान् दोनों की इन्द्रियाँ देती हैं तब फिर उनके कर्तव्य कार्य की सत्यता पर आशङ्का को स्थान ही कहाँ रहा! भले ही तार्किक वाक्-चातुर्य से प्रतिपक्षी को निरुत्तर कर दें; परन्तु सत्य तो सत्य ही रहेगा। सामान्य रीति से आबाल-वृद्ध जो घटपटादि का अनुभव इन्द्रियों द्वारा करते हैं वे कदापि असत्य नहीं हो सकते। सृष्टि-रचना के तीन साधन प्रकृति, जीव और परमात्मा तो सिद्ध ही हैं।

पाश्चात्य शास्त्र जीव को "जीवनाधार पदार्थ" (Protoplasm) का गुण मानता है। गुण गुणी से पृथक् नहीं होता। यह विज्ञान-शास्त्र का सिद्धान्त है। जब तक गुणी विद्यमान है तब तक उसका गुण वर्तमान रहेगा। यदि जीव "जीवनाधार पदार्थ" का गुण होता तो उस पदार्थ के विद्यमान होते हुए जीव उससे पृथक् न हो सकता। इस अवस्था में मृत्यु का कारण बतलाना कठिन ही नहीं, वरन असम्भव होगा।

यदि जीव को रासायनिक क्रिया का परिणाम मानें तो फिर वही प्रश्न उपस्थित होता है कि वियोग (मृत्यु) किस नियम से होगा। क्योंकि जिस कारण से जीव उत्पन्न हुआ उससे उसका वियोग नहीं हो सकता।

भारतवर्ष के ऋषि-मुनियों की दी हुई जीव की परिभाषा यह है कि जहाँ इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और ज्ञान जान पड़ते हों वहाँ जीव का अस्तित्व होगा। वैशेषिक-शास्त्रानुसार प्राण, अपान, निमेष, उन्मेष (आँखों की पलकों को खोलना, मूँदना) मन, गति, इन्द्रियों के आन्तरिक विकार, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न—ये आत्मा के लिङ्ग या चिह्न हैं। जितने जीवधारी पदार्थ हैं उन सब में ये चिह्न पूर्णरूप से नहीं दिखाई देते। स्थावरों में इनमें से बहुत ही थोड़े चिह्न जान पड़ते हैं। जङ्गमों में पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग आदि में उनसे कुछ अधिक जान पड़ते हैं। पाश्चात्य पदार्थ-विज्ञान पर आधार रखने वाले कह सकते हैं कि जैसा जीव मनुष्यों में है वैसा पशुओं में नहीं। तथा वृक्षों में तो है ही नहीं। यदि परमात्मा की न्याय-व्यवस्था पर विचार किया जाय तो निश्चय होजाता है कि जीव तो सब में एक सा ही है, परन्तु कर्मों की दशा के अनुसार उनकी इन्द्रियाँ, अधिक या न्यून, स्पष्टता से दिखाई देती हैं। परमात्मा के व्यवस्थानुसार जिस जीव ने वाणी से अधिक पाप किया हो उसको वाणी का दुःख होता है। जिसने हाथ-पैरों से अधिक पाप किया हो उसको हाथ-पैरों के अभाव या उनकी असम्पूर्णता का दुःख होता है। जिसने चक्षु से पाप किया हो उसको आँखों के अभाव का या उनकी असम्पूर्णता का दुःख सहन करना पड़ता है। इसी प्रकार अन्य इन्द्रियों का हाल है। अर्थात् जितना जिस इन्द्रिय से पाप किया हो उतना उसी इन्द्रिय का दुःख सहन

करना पड़ता है। इसी नियम के अनुसार वृक्षों को एक ही स्थान पर खड़े रहने का दुःख सहन करना पड़ता है। पशुओं को वाणी न होने से भूखे प्यासे बँधे रहना और मूक होकर जन्म व्यतीत करना पड़ता है। इन्द्रियों के न्यूनाधिक होने से ऐसा कदापि नहीं कहा जा सकता कि जीव है ही नहीं।

पञ्चमसिंह।
(अहमदाबाद)

विविध विषय।

१—कापी-राइट ऐक्ट।

पुस्तक, नक़शा, चित्र, फ़ोटो आदि के स्वत्व की रक्षा जिससे होती है उसे कापी-राइट ऐक्ट कहते हैं। इस देश का कापी-राइट ऐक्ट बहुत पुराना है। वह ईस्ट इंडिया कम्पनी के वक्त का है। उसमें शीघ्रही परिवर्त्तन होनेवाला है। इस परिवर्त्तन का कारण विलायती कापी-राइट ऐक्ट में किया गया परिवर्त्तन या प्रायः सम्पूर्ण संशोधन है। विलायत में यह ऐक्ट अभी हालही में पास हुआ है। इस ऐक्ट के अनुसार किसी पुस्तक या चित्र आदि से सम्बन्ध रखने वाला एकाधिकार लेखक या चित्रकार के जीवन-काल पर्य्यन्त तो रहेगा ही; पचास वर्ष तक उसके बाद भी रहेगा; और नहीं। यदि कोई लेखक आज एक पुस्तक लिख कर, क़ानून के अनुसार, उसके स्वत्व की रक्षा की रजिस्ट्री कराले और दस वर्ष बाद मर जाय तो आज से साठ वर्ष तक उस पुस्तक के किसी अंश को, उस रूप में, और कोई न प्रकाशित कर सकेगा। साठ वर्ष के बाद उसका वह हक़ जाता रहेगा। इस ऐक्ट के भारत में भी जारी हो जाने पर एक बात और भी महत्त्व की होगी। किसी अन्य भाषा के पत्रों और पुस्तकों में प्रकाशित चित्र दूसरी भाषा के पत्रों और पुस्तकों में प्रायः नक़ल कर लिये जाते हैं। अब ऐसा करना क़ानून के ख़िलाफ़ होगा। आर० आर० वैाकर (Bouker) नाम के एक साहब ने "Copyright, its History and its Law" नाम की एक पुस्तक प्रकाशित की है। उसमें क़ानून के सिवा इस विषय की सविस्तर विवेचना, आलोचना और इतिहास भी है। यह पुस्तक ग्रन्थ-कर्ताओं के देखने लायक़ है। दाम १६ रुपया है।

२—मक्खियों से मनुष्यों को हानि।

विज्ञानवेत्ताओं ने नाना प्रकार की यान्त्रिक परीक्षाओं से इस बात को निर्विवाद सिद्ध कर दिया है कि मक्खी, मच्छड़, पिस्सू आदि कीटक मनुष्य-जाति के घोर शत्रु हैं। साधारण तैार पर मनुष्यों को कष्ट पहुँचाने के सिवा ये कीड़े सान्निपातिक ज्वर, हैज़ा, प्लेग, क्षय रोग आदि को भी बढ़ाते हैं। इस संख्या में मक्खी का एक चित्र प्रकाशित किया जाता है। यह चित्र मक्खी के स्वाभाविक आकार से कई गुना बड़ा है। चित्र देखने से मालूम होगा कि मक्खी के पैरों में एक छोटी गद्दी सी होती है। वह जहाँ बैठती है, रोगों के कीटाणु उसके पैरों के बालों में लग जाते हैं। उन्हें वह पैर घिस घिस कर पोंछा करती है। पर सब कीटाणु नहीं गिर जाते। कुछ गद्दी पर चिपके रह जाते हैं। यही मक्खी जब किसी भोज्य वस्तु पर बैठती है तब वे कीटाणु उस वस्तु पर लग जाते हैं और उसके खाने वाले के शरीर में वही रोग उत्पन्न करते हैं जिसके कि वे बीज हैं। मक्खियाँ और मच्छड़ आदि जब मनुष्य को काटते हैं तब भी मनुष्य के रुधिर में रोगों के बीज चले जाते हैं। इस प्रकार भी रोगों की उत्पत्ति में ये कीटक सहायता देते हैं। अतएव इनसे यथासम्भव बचना चाहिए। मक्खी का बड़ा चित्र देखने से वह कैसा भयङ्कर मालूम होता है। उसके सिर पर एक नहीं तीन आँखें हैं। इसी से शायद वह त्रिलोचन शङ्कर की संहारकारिणी शक्ति रखती है। इन तीन के सिवा, मक्खी के सिर पर, पीछे की तरफ़, और भी न मालूम कितनी आँखें

होती हैं। वे सब एक दूसरी से मिली हुई होती हैं। यही कारण है जो उसके पास आप, चाहे जिस तरफ़, हाथ ले जायँ वह देख लेती है और तुरन्त उड़ जाती है।

३—ओलों से पहुँची हुई हानि भर देने वाली बीमा-कम्पनियाँ।

योरप में ओले बहुत पड़ते हैं। कोई साल ऐसा नहीं जाता जिसमें हज़ारों मील की खेती ओलों से नष्ट न जाती हो। इससे करोड़ों रुपये की हानि होती है। अनुमान किया गया है कि कोई छः करोड़ रुपये वार्षिक की हानि जर्मनी को और पाँच करोड़ रुपये वार्षिक की इटली को सहनी पड़ती है। पुराने ज़माने में, योरप में, ओले रोकने के बहुत से विकट उपाय किये जाते थे। घनघोर घटा उठते ही लोग अपने अपने भाले और तलवार आकाश की ओर उठाते थे, जिससे ओले न गिरने पावें। टोने टोटके भी किये जाते थे। उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में योरपनिवासियों का विश्वास था कि यदि बाँसों के सिरों को लोहे से मढ़ दें और उन्हीं मढ़े हुए सिरों को आकाश की ओर करके खेतों में गाड़ दें तो सिरे का लोहा हवा की बिजली को अपनी ओर खींच लेगा और ओले ज़मीन पर न गिरेंगे। १८९६ ईसवी में एक और उपाय लोगों को सूझा। वह यह था कि यदि घटा उठते ही आकाश की ओर तोपों की एक बाढ़ दाग़ी जाय तो ओले भूमि पर न गिरेंगे। १९०७ ईसवी में इस काम के लिए पाँच सौ तोपें फ़्रांस में, दो हज़ार आस्ट्रिया और हंगरी में, और दस हज़ार इटली में थीं। इन तोपों से प्रायः अङ्गूर के खेतों की रक्षा की जाती थी। अब विदित हुआ है कि इस चाँदमारी से कोई विशेष फ़ायदा तो नहीं होता, किन्तु आय से व्यय कहीं बढ़ जाता है। अठारहवीं शताब्दी में स्काटलेण्ड में एक ऐसी कम्पनी थी जो ओलों की हानि से खेतों का बीमा करती थी। धीरे धीरे इन कम्पनियों की वृद्धि होती गई। अब योरपवाले इस प्रकार की कम्पनियाँ अधिकता से खड़ी कर रहे हैं। वे खेतों का बीमा करती हैं। सो अब अन्न, पानी और मृत्यु की बीमा-कम्पनियों के सिवा ओलों की भी बीमा-कम्पनियाँ ज़ोर पकड़ रही हैं।

४—संयुक्त-राज्य, अमेरिका, के समाचार-पत्र।

समाचार-पत्रों का मान और प्रचार जितना पाश्चात्य देशों में है उतना और कहीं नहीं। केवल संयुक्त-राज्य, अमेरिका, ही में ढाई हज़ार दैनिक, सोलह हज़ार साप्ताहिक और सत्ताईस सौ मासिक पत्र प्रकाशित होते हैं। इनकी ग्राहक-संख्या भी हज़ारों नहीं, लाखों है। दैनिक-पत्रों में दो सौ ऐसे हैं जिनमें प्रत्येक की ग्राहक-संख्या पचास हज़ार से कम नहीं। पाँच मासिक-पत्र ऐसे हैं जिनमें प्रत्येक की ग्राहक-संख्या दस लाख से भी अधिक है। शायद ही कोई पत्र ऐसा होगा जिसके हज़ार दो हज़ार ग्राहक न हों। यदि यह अनुमान कर लिया जाय कि छोटे बड़े, हर प्रकार के, प्रत्येक पत्र की कम से कम दो ही हज़ार प्रतियों की खपत होती है तो भी, इस हिसाब से, संयुक्त राज्य, अमेरिका, के प्रत्येक परिवार के हिस्से में एक दैनिक, एक मासिक और एक साप्ताहिक पत्र पड़ता है।

पत्रों के कलेवर और विषयों की बात भी सुनिए। न्यूयार्क से एक पत्र निकलता है "न्यूयार्क टाइम्ज़"। इसमें १५४ कालम के २२ बृहदाकार पृष्ठ होते हैं। विज्ञापनों के चौरासी कालम छोड़ कर शेष सत्तर कालमों में हर प्रकार के मनुष्यों की रुचि के अनुसार राजनीति, युद्ध, अर्थ, धर्म, शिल्प, कला, नाटक, सङ्गीत, खेलतमाशे, समाज, पापाचार, मृत्यु आदि विषयों के समावेश के लिए अलग अलग स्थान निर्दिष्ट रहता है।

इन पत्रों की आमदनी भी थोड़ी नहीं। ग्राहकों से जो मूल्य मिलता है वह तो मिलता ही है। यथार्थ में इन्हें विज्ञापन देनेवालों से ही विशेष आमदनी होती है। कोई व्यापारी ऐसा नहीं जिसका व्यापार पत्रों में विज्ञापन दिये बिना चलता हो, और कोई

पत्र ऐसा नहीं जिसके ख़र्च का अधिक अंश विज्ञापनों की आमदनी से ही न निकल आता हो।

५—स्त्री-हीन राज्य।

रूम के एक सूबे का नाम मक़दूनिया (Macedonia) है। वह पहले ग्रीस के अधीन था। सिकन्दर वहीं का बादशाह था। मक़दूनिया के दक्षिण में एक छोटा सा प्रायद्वीप है। उसमें एथोस (Athos) नाम का एक पहाड़ी प्रान्त है। वहाँ ग्रीस के ईसाई धर्म्म के अनुयायी पादड़ियों के अनेक मठ हैं। उन मठों में कोई दस हज़ार पादड़ी रहते हैं। वे सब विरक्त हैं; घर-द्वार छोड़े हुए हैं; दार-परिग्रह के विकट वैरी हैं। यहाँ तक कि वे अपने प्रान्त की सीमा के भीतर किसी स्त्री को पैर तक नहीं रखने देते। उन्होंने अपनी निज की पुलिस रक्खी है। उसके जवान इस बात की ख़बरदारी रखते हैं कि वहाँ कोई स्त्री घुस न आवे। स्त्री क्या बाहरी पुरुष तक को वहाँ जाने की आज्ञा नहीं। कुस्तुंतुनिया में ग्रीस का जो बड़ा पादरी रहता है उसका अनुमति-पत्र दिखाये बिना कोई पुरुष भी इस पहाड़ी प्रान्त के भीतर प्रवेश नहीं कर सकता। सैकड़ों वर्ष से किसी भी स्त्री के पद-स्पर्श से यह प्रान्त पुनीत या दूषित नहीं हुआ। यह प्रान्त एक प्रकार का प्रजा-सत्ताक राज्य है। यहाँ के पादड़ी ही यहाँ के राजा हैं। इनके ऊपर न रूम ही का शासन है न ग्रीस ही का। ये लोग अपना शासन आप ही करते हैं। कारजेस (Karges) नाम का गाँव इनकी राजधानी है। कहते हैं, इस राज्य की स्थापना हुए कोई एक हज़ार वर्ष हुए। यहाँ के मठों में अत्यन्त प्राचीन पुस्तकों का बहुत बड़ा भाण्डार है। वे सब हाथ की लिखी हुई हैं।

६—गूँगों और बहरों के लिए टेलीफ़ोन।

अभी तक गूँगे और बहरे लोग टेलीफ़ोन से कोई लाभ न उठा सकते थे। परन्तु विलियम शा नाम के विलायत के एक गूँगे और बहरे साहब ने एक ऐसी युक्ति ढूँढ़ निकाली है जिससे अब गूँगे और बहरे आपस में अथवा किसी अन्य आदमी से टेलीफ़ोन द्वारा बातचीत कर सकेंगे। टेलीफ़ोन द्वारा बात-चीत करने में शब्द से काम लिया जाता है; परन्तु गूँगे और बहरे न सुन ही सकते हैं और न बोलही। इस लिए इस आविष्कार में शब्द के स्थान में बिजली के प्रकाश का व्यवहार किया गया है। इसमें तीन यन्त्र मुख्य हैं—एक समाचार भेजने का, दूसरा उसे प्रकट करने का और तीसरा उसके लेने का। समाचार भेजने के यन्त्र का काम टाइपरायटर मैशीन करती है। इसी मैशीन के पास ही मेज़ पर समाचार-सूचक यन्त्र रहता है। उसका रूप चतुष्कोण तख़्ती की तरह है, जो छः इंच लम्बी और छः ही इंच चौड़ी होती है। इसमें बिजली के ३६ लैम्प लगे होते हैं, जिन पर अक्षर और अङ्क अङ्कित रहते हैं। समाचार लेने का यन्त्र समाचार प्रकट करने के यन्त्र के सदृश ही होता है। उसमें भी बिजली के ३६ लैम्प होते हैं और उन पर अक्षर और अङ्क अङ्कित रहते हैं। अन्तर केवल इतना ही होता है कि इसकी तख़्ती छोटी होती है और इसके लैम्पों का प्रकाश बहुत अधिक होता है।

अब समाचार भेजने की रीति सुनिए। टाइपरायटर में एक बटन लगा रहता है। समाचार भेजने वाला मनुष्य उस बटन को दबाता है। उसके दबते ही समाचार पाने वाले के कमरे में बिजली का एक लैम्प जल उठता है और उसके प्रकाश से समाचार पाने वाले का ध्यान यन्त्र की ओर आकर्षित होजाता है। वह भी अपने बटन को दबाता है जिससे समाचार भेजने वाले के कमरे में भी एक लैम्प जल उठता है और वह समझ जाता है कि समाचार पाने वाला व्यक्ति समाचार लेने के लिए तैयार है। तब समाचार भेजने वाला टाइपरायटर के अक्षरों को दबा दबा कर समाचार भेजना आरम्भ करता है। यहाँ जो अक्षर दबाया जाता है लेने वाले के कमरे में उसी अक्षर का लैम्प जल उठता है। यह लैम्प उसी समय तक जलता रहता है जब तक दूसरा अक्षर नहीं दबाया जाता।

दूसरा अक्षर दबाते ही वह बुझ जाता है और वह लैम्प जल उठता है जिसका अक्षर दबाया जाता है। पहले इस प्रकार लैम्पों के प्रकाश से क्षण क्षण में प्रकट होकर गुप्त होजाने वाले अक्षरों को मिला कर समाचार पढ़ना बहुत ही कठिन होता है; परन्तु अभ्यास होजाने पर यह कठिनता दूर हो जाती है।

७—चीर-फाड़-सम्बन्धी एक नया डाक्टरी आविष्कार।

मनुष्य के किसी अवयव में चीर फाड़ करने के पहले रोगी को क्लोरोफार्म नामक ओषधि सुँघानी पड़ती है। इस ओषधि के प्रभाव से रोगी बेहोश हो जाता है और शरीर पर सर्जन की चाक़ू-क़ैंची की क्रिया निर्विघ्न होने देता है। जब तक वह बेहोश रहता है तब तक उसे चीर-फाड़ से कुछ भी वेदना नहीं होती। परन्तु होश में आने पर रोग और शस्त्र-क्रिया के परिमाण के अनुसार उसे थोड़ी बहुत वेदना अवश्य होती है। जब तक घाव अच्छा नहीं हो जाता तब तक कुछ न कुछ पीड़ा होती ही रहती है। इस पीड़ा से बचने का उपाय लन्दन के एक डाकृर ने निकाला है। आपका नाम है:—डाकृर रास। आपका कहना है कि जिस जगह चीर-फाड़ करनी हो उस जगह क्विनीन और यूरिया हाइड्रो-क्लोराइड नामक ओषधियों को पिचकारी में भर कर शरीर के भीतर प्रविष्ट कर देने से वह जगह निर्जीव सी हो जाती है और क्लोरोफार्म का असर दूर होने पर, घाव बिलकुल अच्छा होने तक भी, रोगी को कष्ट नहीं होता। यदि यह बात सच है तो इस आविष्कार से बहुत लाभ पहुँचने की आशा है।

८—बे तार के तार-यन्त्रों का प्रचार और उनमें सुधार।

बे तार के तार भेजने का प्रबन्ध गवर्नमेंट ने अब इस देश में भी कर दिया है। यह बात पाठक जानते ही होंगे। इस तार का विस्तार करने के इरादे से, सुनते हैं, बंगलौर में एक ऊँची जगह बनाई जा रही है, जहाँ बिजली की बहुत बड़ी शक्ति जमा की जायगी और बे-तार के तार भेजने के काम आवेगी। इसके लिए एक अत्युच्च स्तम्भ खड़ा करना पड़ेगा। नहीं मालूम यह कितना ऊँचा होगा। इँगलैंड, फ्रान्स, जरमनी, आस्ट्रिया आदि में तो ये स्तम्भ सौ सौ दो दो सौ फ़ीट ऊँचे हैं। उन्हीं की सहायता से बे-तार के तार दूर दूर भेजे जाते हैं। परन्तु इस विषय में अमेरिका सब से आगे रहना चाहता है। वहाँ वाले वाशिंगटन के पास दो बुर्ज ऐसे बनाने वाले हैं जो साढ़े चार चार सौ फ़ीट ऊँचे होंगे, और एक छः सौ फ़ीट ऊँचा होगा। इन पर बे-तार के यन्त्र रख कर अमेरिका के सामुद्री-सेना-विभाग के अफ़सर आटलांटिक महासागर में तीन हज़ार मील दूर तक के अपने जहाज़ों से बात चीत कर सकेंगे। ऐसेही बुर्ज़ सन फ़्रान्सिस्को नगर में भी बना कर वे प्रशान्त-सागर के जहाज़ों से भी बे-तार का सम्बन्ध जोड़ने का प्रबन्ध कर रहे हैं। सो अब कुछ दिनों में हज़ारों कोस दूर के जहाज़ों से भी वहाँ वाले बात चीत करने का सिलसिला जारी करके सारे संसार को चकित करने वाले हैं। और कहाँ तक कहें, वहाँ के वैज्ञानिकों ने बे-तार के तार द्वारा मनुष्य आदि के चित्र तक भेजने की कला ढूँढ़ निकाली है। उसका भी वे शीघ्र ही प्रचार करने की फ़िक्र में हैं।

९—जनरल नोगी की आत्महत्या।

जनरल नोगी ने मृत जापान-नरेश का अनुगमन करने के लिए आत्महत्या कर ली। उनकी स्त्री ने भी उनका अनुकरण किया। जनरल ने तलवार से अपनी गर्दन काट दी और उनकी स्त्री ने पेट में ख़ंजर घुसेड़ कर जान देदी। यह घटना गत १३ सितंबर को ठीक उस समय हुई जिस समय जापान-नरेश का शव दफ़न करने के लिए राजकीय महलों से उठाया गया। जापान-नरेश के चित्र को सामने रख कर पहले उन्होंने वे प्याले निकाले जिन्हें मिकाडो ने उन्हें उनकी वीरता और देश-सेवा के

उपलक्ष्य में भेट किया था । फिर उन्हों में उन्होंने संसार से अपनी अन्तिम विदाई सम्बन्धी पेय पान किया । यह कर के उन्होंने अपने जीवन की समाप्ति करदी। जिस दिन मिकाडो की मृत्यु हुई थी उस दिन भी एक राजभक्त ने अपनी जान दी थी। पर वह भक्त एक साधारण जन था। जनरल नोगी असाधारण भक्त थे। जापान में राजा के लिए इस प्रकार का जीवनदान बड़ाही सम्मान-जनक समझा जाता है। ये जनरल नोगी वही थे जिन्होंने अद्भुत वीरता और सहिष्णुता का परिचय देकर जापान के लिए पोर्ट आर्थर विजय किया था। ये वही महापराक्रमी सेनानायक थे जिन्होंने, पोर्टआर्थर के युद्धाग्नि-कुण्ड में, अपने दो पुत्रों के आहुत हो जाने पर भी, घेरा नहीं उठाया ; और, अन्त में, समस्त संसार को अपने युद्ध-कौशल से चकित करके पोर्ट आर्थर को रूस के पञ्जे से छीन ही लिया। ६२ वर्ष की उम्र में इन्होंने अपने हाथ से अपनी शरीर-समाप्ति की । लगातार ४० वर्ष तक इन्होंने जापान की सेवा की।

१०—एक बड़े भारी आविष्कार-कर्ता की मृत्यु।

व्योम-यान के सर्वप्रसिद्ध आविष्कार-कर्ता, अमेरिका-निवासी, विल्बर राइट का देहान्त होगया। बहुत दिनों से संसार के बड़े बड़े यन्त्रकार व्योम-यान के बनाने की चेष्टा कर रहे थे। इसी चेष्टा में लाखों रुपये ख़र्च हो गये और कितने ही यन्त्रकारों के प्राण भी नष्ट हुए। किसी को कुछ भी सफलता न हुई। आज से केवल नौ वर्ष पूर्व विल्बर राइट और उनके भाई आरबाइल राइट ने संसार के सब से पहले व्योम-यान की रचना की। किसी ने स्वप्न में भी यह ख़याल न किया था कि ये दोनों भाई, यन्त्र-कला के सम्बन्ध में जिनका कोई नाम तक न जानता था, और जिन्होंने किसी बड़े भारी यन्त्रकार के चरणों के पास बैठ कर यन्त्र-कला की शिक्षा भी न पाई थी, व्योम-यान ऐसी अद्भुत वस्तु का आविष्कार कर डालेंगे।

ये दोनों भाई संयुक्त-राज्य, अमेरिका, के ओहियो प्रान्त के डेटन नगर में बाइसिकल बनाने का काम किया करते थे। इन्होंने यन्त्र-कला की शिक्षा भी बहुत ही कम पाई थी । इनका ध्यान व्योम-यान-रचना की ओर आकर्षित हुआ। १९०३ में इन्हें इस काम में सफलता प्राप्त हुई। परन्तु पाँच वर्ष तक इन्होंने अपने इस यन्त्र को संसार के सामने पेश नहीं किया। सब से पहले, १९०८ में, संसार ने इनकी इस रचना को देखा। इनके बनाये हुए यन्त्र में जितने पुरज़े थे उन सब को, यहाँ तक कि कील-काँटों तक को, दोनों भाइयों ने स्वयं अपने हाथों से बनाया था। कोई पुर्ज़ा नया भी न था, सब पुराने ही थे और यन्त्रकारों के नित्य के कामों में आते थे।

विल्बर राइट व्योम-यान द्वारा आकाश-यात्रा तो ख़ूब किया करते थे, परन्तु उड़ने के पूर्व उसके कोने कोने को ठोंक पीट कर कई बार देख लिया करते थे। व्योम-यान की दौड़ की बाज़ी लगाने और उस पर चढ़ने के उन सब ढंगों को, जिनमें प्राण नष्ट होने का भय होता था, वे बहुत अनुचित समझते थे। यद्यपि वे व्योम-यान की सवारी में बहुत होशियारी रखना मुख्य काम समझते थे और लोग उनकी इस लिए हँसी भी उड़ाते थे, परन्तु उनके स्वभाव में भय का तनिक भी सञ्चार न था। यदि वे स्वभाव से डरपोक होते तो व्योम-यान का आविष्कार ही न कर सकते। वे धार्मिक भी बहुत थे। रविवार के दिन वे न स्वयं व्योम-यान पर चढ़ते और न अपने नौकरों ही को चढ़ने देते । वे बड़े ही नम्र और सुशील थे। बड़े बड़े सम्राट् और राज-पुरुष, राज-नीतिज्ञ और विज्ञान-वेत्ता, और विद्वान् और यन्त्र-कार उनका बड़ा आदर करते थे। परन्तु वे सदा सब से, बिना ऊँच-नीच के विचार के, नम्र भाव से मिलते थे। उनके हृदय में कभी इस प्रकार का गर्व न हुआ कि उन्होंने एक ऐसी चीज़ का आविष्कार किया है जो भविष्यत् में संसार का रूप ही पलट देगी।

११—महाकवि भास के ग्रन्थ।

हिन्दू-कालेज-मैगेज़ीन से मालूम हुआ कि ट्रावनकोर की राजधानी त्रिवेन्द्रम से एक संस्कृत-ग्रन्थ-माला निकलती है। एस० गणपति शास्त्री उसके सम्पादक हैं। आज तक अनेक दुर्लभ ग्रन्थ-रत्न उसमें प्रकाशित हो चुके हैं। यह सब महाराजा ट्रावनकोर के विद्यानुराग और कृपा का फल है। ट्रावनकोर एक ऐसा राज्य है जो मुसलमानों के आक्रमण से बचा रहा है। इससे वहाँ ऐसे हज़ारों दुष्प्राप्य ग्रन्थ विद्यमान हैं जो भारत में, नेपाल के सिवा, शायद और कहीं नहीं पाये जा सकते। जिस महाकवि भास का नाम कालिदास आदि प्राचीन पण्डितों ने लिखा है उसके तेरह ग्रन्थ गणपति शास्त्री ने ढूँढ निकाले हैं। उनमें से तीन ग्रन्थ उन्होंने अपनी संस्कृत-ग्रन्थमाला में प्रकाशित भी कर दिये हैं। इनमें से एक का नाम स्वप्न-वासव-दत्तम् है। इस ग्रन्थ की भूमिका में शास्त्रीजी ने सिद्ध किया है कि भास महाकवि ईसा के ४०० वर्ष पहले से भी अधिक पुराने हैं। इस खोज से पुरातत्त्व-वेत्ताओं की अनेक कल्पनायें निर्मूल सिद्ध हो जाने का ढंग दिखा रही हैं। ईसा की चौथी-पाँचवीं शताब्दी में बेचारे कालिदास के होने का यह भी कारण बताया जाता है कि ईसा के पहले तो कालिदास के ग्रन्थों की जैसी संस्कृत का प्रचार ही न था। परन्तु उनके भी पूर्ववर्ती भास के एक नहीं, तेरह तेरह, ग्रन्थ उस तरह की संस्कृत में निकल पड़े हैं। उन सब के प्रकाशित हो जाने पर अनेक नई नई बातें मालूम होंगी और कितनीहीं पुरानी कल्पनायें मिट्टी में मिल जायँगी।

१२—महाराज रत्नसिंहजी का पत्र।

इस विषय में हमारे पास कई पत्र आये हैं, जिनमें यह प्रमाणित किया गया है कि लार्ड आकलेंड को लिखा गया हिन्दी का पत्र बीकानेर-नरेश महाराज रत्नसिंहजी का ही था। उनमें से श्रीनागरी-भण्डारकार्य्यालय-सभा, बीकानेर, के फ़ार्म पर लिखा हुआ, राव-बहादुर राजा हरिसिंह का भेजा हुआ, ४ आक्टोबर का, पत्र नीचे प्रकाशित किया जाता है:—

श्रीमान्!

अगस्त सन् १९१२ ई० की सरस्वती पत्रिका (संख्या ८) में "बड़े लाट लार्ड आकलेंड को हिन्दी में पत्र" यह हेडिंग देकर जो श्रीयुत रामकुमार गोयेनका महोदय ने लेख छापा है उसमें श्रीमान् महाराज रत्नसिंहजी महोदय के पत्र (जो कि लार्ड आकलेंड की सेवा में उक्त महाराज साहब की ओर से भेजा गया था) का उल्लेख कर उस के विषय में सन्देह प्रकट किया गया है, यद्यपि आगे चल कर इतिहास के प्रमाण से यह लिख दिया है कि "उस समय बीकानेर के सिंहासन पर श्रीमान् महाराज रत्नसिंहजी सुशोभित थे। इससे सिद्ध है कि यह पत्र उन्हीं का है" इत्यादि।

इस विषय में लेखक को तथा पाठकों को किसी प्रकार से सन्देह न रहे, अतः सूचित किया जाता है कि वह पत्र तत्कालीन बीकानेर-नरेश श्रीमान् महाराज रत्नसिंहजी महोदय का ही था कि जिसकी अक्षरशः कापी यहां राज्य में मौजूद है।

किम्बहुना विज्ञेषु
कृपाकांक्षी
राव-बहादुर राजा हरिसिंह
मेम्बर कौंसिल स्टेट
बीकानेर।

१३—आत्मा।

गत जूलाई की संख्या में डाक्टर रामनारायण मिश्र, एल० एम० एस० का एक लेख आत्मा पर प्रकाशित हुआ है। उसमें डाक्टर साहब ने आत्मा को कोई चीज़ ही नहीं समझा। कितने ही पाश्चात्य विज्ञानवेत्ताओं के सिद्धान्तों के आधार पर डाक्टर साहब आत्मा को देश-काल (Environments) के अनुसार प्राप्त किये गये ज्ञानों या संस्कारों की एक गठरी मात्र समझते हैं। इसी बात को उन्होंने युक्तियों के द्वारा सिद्ध करने की चेष्टा अपने लेख में की है। इस पर कितने ही आत्मज्ञानी महाशय उन पर बिगड़ उठे हैं। आज तक डाक्टर साहब के लेख के खण्डन में हमारे पास कोई दो दर्जन लेख आ चुके हैं। परन्तु बड़े दुःख के साथ लिखना

पड़ता है कि उन में से एक भी लेख में डाक्टर साहब की दलीलों का यथोचित खण्डन नहीं किया गया। सब में प्रायः वही गीता, पातञ्जल, न्यायदर्शन आदि की दुहाई दी गई है। पर इन सब प्रमाणों से क्या डाक्टर साहब परिचित नहीं? उनके लेख का पहला ही वाक्य हैः—"पुराने शास्त्रवेत्ताओं ने आत्मा की परिभाषा कई प्रकार से की है"। इस से सिद्ध है कि भारत के शास्त्रवेत्ताओं के सिद्धान्तों को वे पूर्णतया नहीं तो अंशतः अवश्य ही जानते हैं। फिर उनके पिष्ट-पेषण की क्या आवश्यकता? आवश्यकता है उनकी Environment वाली दलील के खण्डन की। सो किसी ने भी अपने लेख में उसका युक्तिपूर्ण खण्डन नहीं किया। डाक्टर साहब विज्ञानवेत्ता हैं; यूरोप और अमेरिका घूमे हुए हैं; जिस शरीर में हम आत्मा का अधिष्ठान मानते हैं उसकी रग रग का ज्ञान प्राप्त किये हुए हैं। वे गौतम, पतञ्जलि और शङ्कराचार्य के प्रमाणों से क़ायल होनेवाले नहीं। यदि यह बात सम्भव होती तो इन नोटों का लेखक उनसे प्रार्थना करता कि वे उसके लिखे हुए 'आत्मा' नामक लम्बे लेख को पढ़ने की कृपा करें। यह लेख जनवरी १६०१ की सरस्वती में प्रकाशित हो चुका है। इसमें—

(१) ज्ञानाधिकरणमात्मा।

(२) पृथिव्यापस्तेजोवायुराकाशं कालो दिगात्मा मन इति द्रव्याणि।

(३) एष हि द्रष्टा, श्रोता, घ्राता, रसयिता, मन्ता, बोद्धा, कर्त्ता, विज्ञानात्मा पुरुषः।

(४) इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखादि ज्ञानान्यात्मनो लिङ्गम्।

(५) पूर्वाभ्यस्तस्मृत्यनुबन्धात् जातस्य हर्षभयशोकसम्प्रतिपत्तेः।

(६) प्रेत्याहाराभ्यासकृतात् स्तन्याभिलाषात्।

(७) प्रकृतिविकृतिभिन्नः शुद्धबोधस्वभावः
सदसदिति विशेषं भासयन्निर्विशेषः।
विलसति परमात्मा जागृदादिष्ववस्था-
स्वहमहमिति साक्षात् साक्षिरूपेण बुद्धेः॥

इत्यादि प्राचीन शास्त्रकारों के दिये हुए प्रमाणों द्वारा आत्मा का अस्तित्व, लक्षण, चिह्न और कार्य आदि सभी संक्षेप में दिखाया गया है। डाक्टर साहब आत्मसम्बन्धी प्राचीन शास्त्रों के चाहे ज्ञाता हों चाहे न हों, उनके लेख से यह झलक रहा है कि वे हमारे तत्त्ववेत्ता प्राचीन पण्डितों की बात मानने के नहीं। यदि कोई उन्हें वैज्ञानिक रीति से आत्मा का अस्तित्व सिद्ध करके, अथवा दलीलों से ही उनकी Environment वाली दलील को उड़ा दे, तो चाहे वे भलेही आत्मा की असलियत मान लें।

एक मात्र भारत ही ऐसा देश है जिसने आत्मा की खोज में सबसे अधिक सफलता प्राप्त की है। यदि उसी के आत्मदर्शी आचार्यों का कथन प्रामाण्य नहीं तो हो चुका। हमारी क्षुद्र बुद्धि तो यह कहती है कि आत्मा के अस्तित्व का पता विज्ञान द्वारा शायदही कभी लग सके। आत्म और परमात्म-तत्त्व के दर्शनों के और ही साधन हैं। वे बिरलेही को प्राप्त होते हैं। जिन एक आध महात्माओं की चरण-रज को अपने मस्तक पर लगाने का सौभाग्य इन पंक्तियों के लेखक को प्राप्त हुआ है उनसे उसने यही सुना है और यत्किञ्चित् × × × × × । परन्तु इस विषय में और अधिक लिखने की चेष्टा करना अनधिकार चर्चा होगी। अतएव, अलम्। आत्माही क्यों, परमात्मा भी कोई चीज़ न सही।

पुस्तक-परीक्षा।

१—गम्भीरा। मालदह (बङ्गाल) में एक जातीय शिक्षा-समिति है। श्रीहरिदास पालित उसके ऐतिहासिक अनुसन्धानकारी हैं। यह बँगला-पुस्तक आपही की खोज का फल है। इसमें गम्भीरा-पूजा का इतिवृत्त है। बँगला, संस्कृत, और अँगरेज़ी के अनेक ग्रन्थों का मन्थन करके पालित महाशय ने इसकी रचना की है। गम्भीरा-पूजा एक प्रकार की शिवार्चना है। बङ्गाल के कुछ ज़िलों में वह 'गाजना' के नाम से भी प्रसिद्ध है। परन्तु मालदह आदि में वह गम्भीरा अथवा 'आद्येर गम्भीरा' नाम से ही अभिहित है। इस पुस्तक में इस पूजा के धारावाहिक इतिहास के सिवा यह भी दिखाया गया है कि प्राचीन साहित्य में यह पूजा किस रूप में वर्णन की गई है और किन किन ग्रन्थों में इसका उल्लेख है। विद्वान् लेखक ने वैदिक साहित्य तक में इस पूजा का उल्लेख ढूँढ़ निकाला है। पालित-महोदय के अध्यवसाय और बहु-व्यापक पुस्तकावलोकन की जितनी प्रशंसा की जाय कम है। जातीय

इतिहास की सृष्टि के लिए ऐसी ही ऐसी पुस्तकों की आवश्यकता है। बङ्गाली विद्वान् अब इस ओर भी झुके हैं। आशा है, अपने देश के इतिहास की सामग्री एकत्र कर के शीघ्रही वे एक अच्छा इतिहास निर्म्माण कर डालेंगे। यह पुस्तक कोई साढ़े तीन सौ पृष्ठों की है और प्रयाग के इंडियन प्रेस में छपी है। अच्छी जिल्द बँधी हुई है। मूल्य इसका दो रुपया है। प्राप्ति-स्थान :—चक्रवर्ती चैटर्जी ऐंड कम्पनी, १५ कालेज स्क्वायर, कलकत्ता।

❋

२—श्रीमद्भगवद्गीता-पद्यावली, प्रथम भाग। मध्य-प्रदेश के चांदा-नगर में हिन्दी-साहित्य-प्रकाशक मण्डली नाम की कोई जन-संस्था है। उसीने इस पुस्तक को प्रकाशित किया है। इसमें गीता के पहले नौ अध्यायों का हिन्दी-पद्य में अनुवाद है। ऊपर श्लोक है, नीचे उसका अनुवाद दोहे में दिया गया है। भाषान्तर प्रायः शुद्ध है; पर कविता अच्छी नहीं। दोहों से मूल का भाव भी झट समझ में नहीं आता। टाइटिल पेज पर लिखा है-"महात्मा गुसांई तुलसीदासकृत"। पर दोही चार दोहे पढ़ने पर मन यह कहने लगता है कि ये दोहे तुलसीदास के से नहीं। यदि ये दोहे तुलसीदासही की रचना हैं तो, न मालूम, वे क्यों अच्छे नहीं। सम्भव है, यह उनकी पहले की रचना हो। यदि ये तुलसीदास के बनाये नहीं तो जिसने इन्हें तुलसीदास के नाम पर चलाना चाहा है उसने दंण्ड पाने का काम किया है। प्रत्येक अध्याय के अन्त में जो संस्कृत-वाक्य हैं वे प्रायः भ्रष्ट हैं। उदाहरण :—

इतिश्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादेऽक्षरब्रह्मयोगोनाम् (?) तथा च श्रीमद्गोस्वामी (?) तुलसीदासकृतभाषाछन्दोऽयम् (?) गीतायाः (?) अष्टोध्यायः (?)

पुस्तक की पृष्ठ-संख्या ८७ और मूल्य १० आने है ?

❋

३—वार्षिक विवरण। फीरोज़ाबाद में भारती-भवन नामक एक पुस्तकालय कुछ उत्साही सज्जनों ने खोला है। उसीका यह पहला वार्षिक विवरण है। पुस्तकालय को खुले अभी वर्षही डेढ़ वर्ष हुआ। पर इतनेही समय में इसके सञ्चालकों ने ७२४॥) क़ीमत की १०२५ पुस्तकें हिन्दी की एकत्र कर ली हैं। सब मिला कर ३९ पत्र हिन्दी के इसमें आते हैं। इस भवन के सभासदों की संख्या ७५ तक पहुँच गई है और २८८) मासिक सहायता सर्व-साधारण से इसे मिलती है। साल भर में इसे ६६३॥।-)॥ की आय हुई और ४८६-)। ख़र्च हुआ। विद्या-प्रचार के लिए ऐसे पुस्तकालयों की बड़ी ज़रूरत है। इनकी सहायता के लिए धन और पुस्तकादि का दान देना देश-हितैषियों का कर्तव्य है।

४—काश्ते-ज़ाफ़रान। यह १३ पृष्ठ की एक छोटी सी पुस्तक है। इसकी भाषा उर्दू है, लिपि फ़ारसी। कुँदरकी, ज़िला मुरादाबाद, के ज़मींदार बाबू कुञ्जविहारीलाल ने इसमें केसर की खेती के विषय में, अपने निज के तजरिबे से, अनेक बातें लिखी हैं। लोगों का अबतक यही ख़याल था कि काश्मीर के सिवा और कहीं केसर नहीं पैदा हो सकती। परन्तु इस पुस्तक के लेखक ने यह सिद्ध कर दिखाया है कि उचित प्रबन्ध और परिश्रम से अन्यत्र भी केसर पैदा हो सकती है।

❋

५—गढ़वाल-समाचार। दुगड्डा, गढ़वाल, से यह मासिक पत्र ६ वर्ष से निकलता है। इसके प्रत्येक अङ्क में २४ पृष्ठ रहते हैं। मूल्य केवल १) है। इसके सम्पादक पण्डित गिरिजादत्त नैथाणी हिन्दी के अच्छे लेखक हैं। पत्र के नामानुसार इसमें वे गढ़वाल से सम्बन्ध रखनेवाले लेख और नोटही अधिक देते हैं। पर अन्यान्य विषयों पर भी इसमें लेख रहते हैं। गढ़वालप्रान्त की आवश्यकताओं और न्यूनताओं को यह पत्र, समय समय पर, प्रकाशित करके अपने इति-कर्तव्य की यथेष्ट पूर्त्ति करता है।

❋

६—श्रीआद्यास्तुति। काशीनिवासी पण्डित नानकप्रसाद मिश्र ने इसकी रचना की है। आपका वर्त्तमान पता है :—नागपोखरी, नकसाल, नेपाल। पुस्तक में ५५ पृष्ठ हैं और मोटे टाइप में छपी है। मूल्य मालूम नहीं। सप्तशती में देवी की जैसी उत्पत्ति लिखी है वैसीही इसमें लिख कर मिश्रजी ने श्रद्धाभक्तिपूर्व्वक दोहा, चौपाई, हरिगीतिका और घनाक्षरी आदि में आद्या शक्ति की स्तुति की है। कविता सरस है। नमूना :—

माफ करि मेरी तकसीर मतवारी
मातु देरी ना लगाय मेरी मनसा पुराय दे।

सकल सुरन के समूह ते समेटि तेज
धरो जो स्वरूप सोई झलक दिखाय दे।
छोह करि जैसे निज दासन सों
बोलति है बानी सो मधुर मेरे श्रवण सुनाय दे।
नानक मों ओर देखि दृगन को ओर हँसि
हाथन सों मेरे निज पैयाँ पकराय दे॥

७—एकतादर्शन। कटनी-मुरवारा के बाबू हरिदास खण्डेलवाल ने इस एकतादर्शन नामक सातवें दर्शन-शास्त्र की उद्भावना की है। इसके पूर्व भाग में पन्द्रह अध्याय हैं और उत्तर भाग में नौ। आत्मविचार, ईश्वरनिरूपण, जगन्निरूपण, सृष्टिप्रकरण, ईश्वर और जीव की एकता, जड़ और चेतन की एकता, अद्वैतसिद्धि, तत्त्वज्ञान और मोक्ष आदि विषयों का लेखक महोदय ने साधु भाषा में सब के समझने योग्य निरूपण किया है। ईश्वरवाद और उपासना-विषयक मतभेद मिटाने और सबकी एकता दिखाने के लिए आपने यह परिश्रम किया है। आपका यह प्रयत्न प्रशंसनीय है। पुस्तक उत्तम है। भाषा भी अच्छी है। पृष्ठ-संख्या ८६। मूल्य ६ आना। खेद की बात है, इस पुस्तक के कर्ता का, अभी हाल में, शरीरान्त हो गया।

❋

८—माप-विद्या-प्रदर्शिनी। माप-सम्बन्धीय सचित्र पुस्तक है। बन्दोबस्त के कर्म्मचारी, पटवारी और पटवारियों के स्कूलों के विद्यार्थी इससे विशेष लाभ उठा सकते हैं। इसमें हुनर पैमायश, आलात पैमायश, हदबन्दी, किश्तबन्दी, नक़्शा बनाना, खसरा मुरत्तिब करना, रक़्बा निकालना आदि पैमायश से सम्बन्ध रखनेवाली अनेक उपयोगी बातें हैं। जगह जगह चित्र देकर विषय स्पष्टतापूर्व्वक समझाया गया है। पुस्तकान्त में पुस्तक-लेखक श्रीयुत माधवसिंह मेहता, भीलवाड़ा (मेवाड़) का चित्र और चरित्र भी है। अपना और अपने पिता, पितामह, भाई, भतीजे, स्त्री, पुत्र आदि के वृत्तान्त के लिए १३ पृष्ठ ख़र्च करने की मेहता जी ने न मालूम क्यों ज़रूरत समझी। लेखक ही से यह पुस्तक १२ आने में मिल सकती है।

❋

९—डाक्टर आर्थर रिचर्डसन का जीवन-चरित। लेखक, श्रीयुत हरिशङ्कर उपाध्याय, मिश्रपोखरा, काशी। पृष्ठ-संख्या २४—दाम ३ आने। काशी के सेंट्रल—हिन्दू—कालेज के प्रधान अध्यापक, परलोकवासी, डाक्टर रिचर्डसन् का यह संक्षिप्त चरित है। डाक्टर साहब के दो चित्रों से विभूषित है। पढ़ने लायक़ है।

❋

१०—घेरण्ड-संहिता। योग-विद्या-विषयक यह एक छोटा सा प्राचीन ग्रन्थ है। स्वामी रामचरणपुरीजी ने इसका अनुवाद हिन्दी में किया है। उसी को, मूल-संस्कृत-सहित, पण्डित धर्म्मदत्त त्रिपाठी (दूध-विनायक, काशी) ने प्रकाशित किया है। उन्हीं से यह मिलता है। दाम १) है। पृष्ठ-संख्या १४२ है। जिल्द बँधी हुई है। धोती, नेती, बस्ति आदि शोधन, तथा आसन, मुद्रा, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान और समाधि इन सात साधनों का वर्णन, संक्षेप में, इस ग्रन्थ में है। अनुवाद अच्छा हुआ है। पादटीकाओं में, जगह जगह पर, और भी अनेक उपयोगी बातें लिखी गई हैं।

❋

११—सच्चा सुधार—पाण्डेय-रामलोचन-शर्म्मा-कृत। इस निबन्ध में भारत की वर्तमान दशा, उसके कारण और सुधार पर विचार किया गया है। लेखक का मत है कि भारतवासियों की वर्त्तमान सामाजिक और नैतिक अवस्था बड़ी ख़राब है, जिसका कारण यह है कि आजकल वैदिक काल के आचार-विचार के अनुसार काम नहीं किया जाता। यदि ब्रह्मचर्य्य और वर्णाश्रम के नियमों का पालन करते हुए लोग धार्मिक और नैतिक शिक्षा पाने लगें तो भारत का शीघ्र ही सुधार हो जाय। लेखक ने इस निबन्ध में इस बात पर बिलकुल ही विचार नहीं किया है कि विज्ञान ने संसार के पूर्व्व रँग-रूप को बिलकुल ही पलट डाला है। अतएव भारतवासियों को वर्तमान भयङ्कर जीवन-संग्राम में जीवित रहने और अन्य उन्नत और सभ्य जातियों के बराबर चलने के लिए कौन कौन नई बातों को सीखना चाहिए। पुस्तक में १२४ पृष्ठ हैं; मूल्य पाँच आना है; छपाई और काग़ज़ अच्छा है। भागलपुर के बिहार-ऐंजल प्रेस एण्ड स्टोर्स से मिलता है।

❋

१२—कल्यानी। एक उपन्यास है। "पवित्र प्रेम क्या है। सुचाल और मर्य्यादाबद्ध पुरुष की परमेश्वर कैसे सहायता करता है और ऐश्वर्य-मदान्ध पुरुष को कैसा नीचा दिखाता है"

यही दिखाने के लिए लेखक ने इसमें प्रयत्न किया है। पुस्तक में छोटी साँची के १५६ पृष्ठ हैं। दाम लिखा नहीं। लेखक, बाबू शङ्करलाल अग्रवाल, स्टेशन मास्टर, कबरई, ज़िला हमीरपुर को लिखने से मिलती है।

※

१३—सोहऽम्। इस छोटी सी सोलह सत्रह पृष्ठ की पुस्तिका में 'सोऽहम्' की साधना का संक्षिप्त वर्णन है। योगाश्रम, हसनअब्दाल, पञ्जाब को लिखने से मुफ़् मिलती है।

१४—सभापति की वक्तृता। प्रयाग में गत वर्ष जो वैद्यक-सम्मेलन हुआ था उसी के सभापति कविराज श्रीगणनाथ सेन, एम० ए०, एल० एम० एस० की यह वक्तृता है। यह कोई सत्तर अस्सी पृष्ठ की एक छोटी सी पुस्तक है। इसमें आयुर्वेद-सम्बन्धिनी अनेक महत्त्वपूर्ण बातों का संग्रह है। इसे पढ़ने से भारत की प्राचीन वैद्य-विद्या पर श्रद्धा उत्पन्न हुए बिना नहीं रह सकती। आयुर्वेद-महामण्डल, प्रयाग, से ८ आने में यह पुस्तक मिलती है।

※

१५—नरमेधयज्ञ-मीमांसा-समालोचना। पण्डित भीमसेन शर्म्मा की बनाई एक पुस्तक है। उसका नाम है—नरमेधयज्ञ-मीमांसा। उसमें यह सिद्ध करने की चेष्टा की गई है कि वेदों में नरमेध का विधान नहीं। उसी पुस्तक का, लेखक की समझ के अनुसार, यह युक्तिसङ्गत खण्डन है। डभोई के पञ्जाबी पण्डित हंसराजशर्म्मा ने इसे लिख कर प्रकाशित किया है। दाम ३ पाई है।

चित्रपरिचय।

(१)
शाहेजहाँ का महल।

इस संख्या में जो रङ्गीन चित्र प्रकाशित किया गया है उसका नाम है 'शाहेजहाँ का महल'। बादशाह शाहेजहां अपने महलों में किस रँग ढँग से रहा करता था, यही भाव इस चित्र में दिखाया गया है। यह चित्र इस देश की पुरानी चित्रकारी का अच्छा नमूना है। जिस असली चित्र से इसका प्रतिबिम्ब लिया गया है, प्रयाग की प्रदर्शिनी में, उसकी बड़ी प्रशंसा हुई थी।

(२)
सीताकुण्ड।

विहार-प्रान्त में मुज़फ़्फ़रपुर ज़िले के अन्तर्गत सीतामढ़ी नाम की एक बस्ती है। वह बी० एन० डब्ल्यू० रेलवे का एक प्रसिद्ध स्टेशन है। उसी सीतामढ़ी में एक बड़ा कुण्ड है। कुण्ड क्या एक ख़ासा सरोवर है। कुण्ड के चारों ओर पक्की सीढ़ियाँ हैं; सुन्दर घाट बने हुए हैं। उस कुण्ड के समीप साधु-सन्तों की दो एक पर्णशालायें भी हैं; एक देव-मन्दिर भी है। सुनते हैं, यह वही पवित्र कुण्ड है जहाँ से, हल चलाते समय, राजर्षि जनक को श्रीसीताजी मिली थीं। इसीलिए यह कुण्ड सीताकुण्ड के नाम से विख्यात है। हिन्दुओं का यह पवित्र तीर्थ है। सतीशिरोमणि सीताजी के जन्मस्थान के दर्शन करने के लिए कितने ही हिन्दू प्रति वर्ष वहाँ जाते और सीताकुण्ड के दर्शन-स्पर्शन करके अपने जन्म को सफल मानते हैं। उसी सीताकुण्ड का सुन्दर चित्र सरस्वती की इस संख्या में प्रकाशित किया जाता है। इस चित्र का असली प्रतिबिम्ब प्रयाग के प्रसिद्ध फ़ोटोग्राफ़र श्रीविश्वकर्माजी से हमें प्राप्त हुआ है। एतदर्थ आपको अनेक धन्यवाद।

(३)
आदम और हौवा।

एडम ऐंड इव, अर्थात् आदम और हौवा, जो पश्चिमी देशों की धर्म्म-पुस्तकों में मानव-जाति के जनक-जननी माने जाते हैं, स्वर्ग में स्वर्गीय सुखोपभोग करते थे। ईश्वर की आज्ञा थी कि तुम अमुक वृक्ष के फल मत खाना। इस आज्ञा का उन्होंने उल्लङ्घन किया। इस कारण वे स्वर्ग से मर्त्य लोक में ढकेल दिये गये। यही दृश्य इस संख्या के आदम और हौवा नामक चित्र में दिखाया गया है। ऊपर स्वर्ग का सुन्दर दृश्य है; नीचे अन्धकारपूर्ण पृथ्वी का। आदम और हौवा स्वर्गच्युत होकर खड़े पश्चात्ताप कर रहे हैं। उनके उस समय के दुःख, खेद, नैराश्य आदि के भाव चित्र में बड़ी ही योग्यता से दिखाये गये हैं। लखनऊ-निवासी हकीम मुहम्मद-ख़ां साहिब ने इस चित्र की रचना की है। आपने कलकत्ते के आर्ट-स्कूल में चित्र-विद्या की शिक्षा पाई है। आप बड़े अच्छे चित्रकार हैं। विलायत तक के कई चित्रकारों ने आपकी प्रशंसा की है। नादिरशाह ने देहली में जो "बिज़न" बोला था उस पर आपने एक बहुत ही भाव भरा चित्र बनाया है। इस चित्र की प्रशंसा अरबिन्द बाबू अपने "कर्म्मयोगिन्" में जी खोल कर कर चुके हैं।

Printed and Published by Apurva Krishna Bose at the Indian Press, Allahabad.
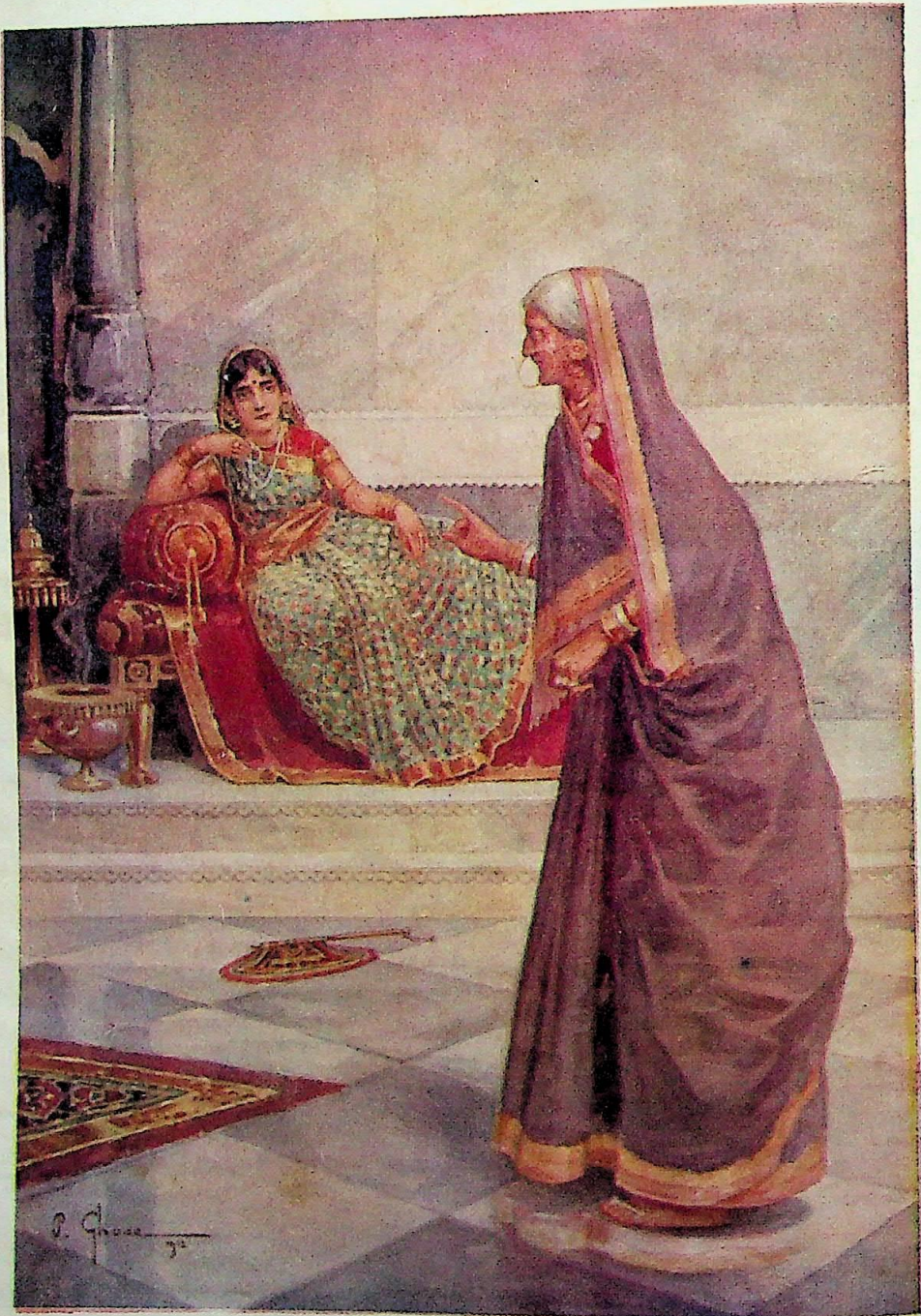
कैकेयी और मन्थरा।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।
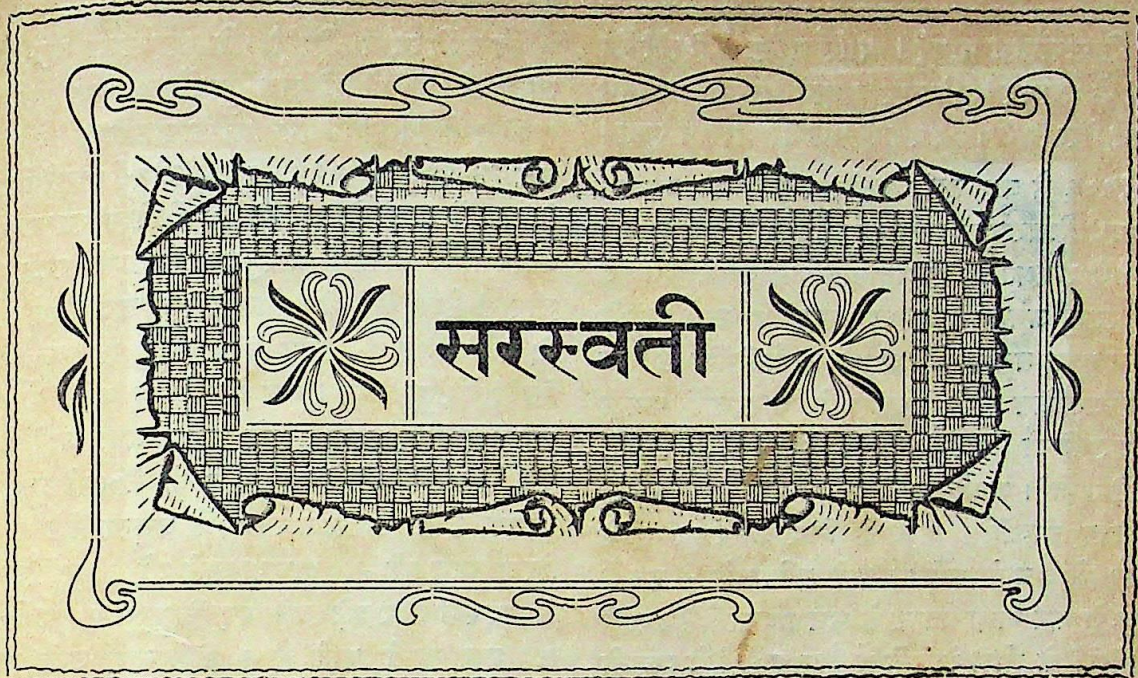
सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग १३] १ नवंबर, १९१२—कार्त्तिक कृष्ण ७, १९६९। [संख्या ११

पुरुषों के बराबर अधिकार माँगने वाली स्त्रियाँ।

[लेखक, श्रीयुत सुन्दर-राज, लन्दन]

एलिज़ाबेथ और विक्टोरिया, रज़िया बेगम और अहल्या बाई, क्लिओपेटरा और चीन की मृत विधवा महारानी टसी-हसी आदि ऐसी स्त्रियों के नामों की इतिहास में कमी नहीं जिन्होंने लाखों और करोड़ों स्त्रियों और पुरुषों पर शासन किया और अब भी कर रही हैं। परन्तु गत शताब्दी के पहले चरण तक स्त्रियों का पुरुषों के बराबर समझा जाना तो दूर रहा, उनको इस प्रकार समझने का ख़याल भी थोड़े ही से लोगों को हुआ था। तथापि पुरुषों के बराबर स्वत्व पाने की अभिलाषा स्त्रियों में बहुत दिनों से देख पड़ती है। अठारहवीं शताब्दी का अन्त भी न हुआ था कि फ़्रान्स और इँगलेंड की कुछ महिलाओं ने इस अधिकार की प्राप्ति के लिए चीख़ मचाई थी; पर उनकी संख्या इतनी थोड़ी थी और उनका आन्दोलन इतना निर्जीव था कि उनकी चीख़ बहुत कम लोगों ने सुनी।

सबसे पहली सभा—जिसका यह उद्देश था कि स्त्रियों को भी नागरिक के पूरे अधिकार प्राप्त हों, वे पार्लियामेन्ट में प्रवेश कर सकें, वोट दे सकें और किसी भी पद को पा सकें—१८५७ में, इँगलेंड के शेफ़ील्ड नगर में स्थापित हुई थी। दिन पर दिन इस आन्दोलन की उन्नति ही होती गई। कितने ही नगरों में इसी उद्देश से सभायें स्थापित हो गईं। उनकी ओर से पत्र निकाले गये। राजपुरुषों के ऊपर दबाव डाला गया। परन्तु १९०६ तक, इस काम में

कुछ भी सफलता न हुई। पार्लियामेंट में स्त्रियों को पुरुषों के बराबर अधिकार प्रदान करने के जितने प्रस्ताव पेश किये गये उनमें से एक भी पास न हुआ।

१९०६ के बाद इस आन्दोलन ने पलटा खाया। इसी वर्ष लिबरल दल को राज्याधिकार प्राप्त हुआ। स्त्रियों ने समझा कि शायद अब कुछ उनके मन की हो। परन्तु जब प्रार्थना और अनुरोध करने पर भी कुछ न हुआ तब उन्होंने अपनी कार्य्य-सिद्धि के लिए उचित-अनुचित सभी तरह की कारवाई करना निश्चित किया। पार्लियामेंट के चुनाव में वे बाधायें डालने लगीं। अपने आन्दोलन की ओर अधिकारियों का चित्त आकर्षित करने के लिए वे तरह तरह के उत्पात भी मचाने लगीं। अब वे पार्लियामेंट-भवन में एकत्र हो कर नाना प्रकार के ऊधम मचाती हैं। कहीं खिड़कियों के शीशे तोड़ती हैं और कहीं ढेले फेंकती हैं। इस उत्पात का उन्हें दण्ड भी मिलता है। बहुत सी स्त्रियाँ पकड़ी जा चुकी हैं। बहुधा उन पर जुर्माना किया गया; परन्तु उनमें से किसी ने भी कभी जुर्माना नहीं अदा किया। इस कारण उन्हें कारागार में जाना पड़ा। एक दो नहीं—सैकड़ों स्त्रियाँ इस प्रकार कारागार-वास-दण्ड भोग चुकी हैं। The National Women's Social and Political Union नाम की स्त्रियों की एक सभा है। अकेली इस सभा की ५०० स्त्री-सदस्य, १९१० की जनवरी से लेकर सितम्बर मास तक, इसी आन्दोलन के कारण, जेल की हवा खा चुकी थीं। अब तो इन लोगों को एक नई चाल सूझी है। जेल में भेजे जाने पर वे वहाँ भोजन करने ही से इनकार कर देती हैं। जब तीन चार दिन बीत जाते हैं और भूख से उनकी हालत शोचनीय हो जाती है तब लाचार होकर वे कारागार-मुक्त कर दी जाती हैं। सरकारी आज्ञा से डाक्टरों ने ज़बरदस्ती उनके उदर में भोजन पहुँचाने का भी विधान किया था; परन्तु इस ज़बरदस्ती से सर्व-साधारण में बड़ी नाराज़गी फैल गई और जिनकी सहानुभूति ऐसी स्त्रियों से कुछ भी न थी उनकी भी हो गई।

इस विषय में स्त्रियों की उद्दण्डता बढ़ती ही जाती है। वे बड़े बड़े राज-पुरुषों तक पर आक्रमण करने लगी हैं। समाचार-पत्रों के पाठक भूले न होंगे, गत १४ वीं जून १९१२ को एक वोट-भिखारिनी स्त्री ने हज़ारों आदमियों के सामने ब्रिटिश साम्राज्य के महा-मन्त्री, मिस्टर आस्कुइथ, के कन्धे पकड़ कर ज़ोर से हिला दिये थे। मिस्टर लायड जार्ज इँगलैंड के अर्थ-सचिव हैं। हाल ही में उन्हें भी कई बार स्त्रियों ने तङ्ग किया। एक बार तो वे गाड़ी में बैठ कर भाग गये; परन्तु दूसरी बार वे मार खाने से न बचे। मिस्टर चर्चिल इँगलैंड के नौ-सचिव हैं। आयरलैंड के डबलिन नगर में वक्तृता देते समय स्त्रियाँ आप की भी बाधक बनी थीं। पार्लियामेंट के सदस्यों और बड़े बड़े पदाधिकारियों को स्त्रियों की मार खानी पड़ी है। निस्सन्देह उन्हें अपने उपद्रवों के लिए उचित दण्ड मिलता है; परन्तु वे इस की कुछ भी परवा नहीं करतीं।

पुरुषों के बराबर स्वत्व चाहने वाली स्त्रियों की इँगलैंड में कितनी ही सभायें हैं। उनमें से The National Union of Women's Suffrage Society और The National Women's Social and Political Union नाम की दो सभायें मुख्य हैं। पहली सभा १८६७ में स्थापित हुई थी। उसकी दो सौ शाखायें देश भर में फैली हुई हैं। दूसरी सभा १९०६ में बनी थी। इस सभा की आमदनी बहुत बड़ी है। १९१० में इसकी आमदनी दस लाख रुपये थी। इस सभा की ओर से "Votes for Women" नाम का एक साप्ताहिक पत्र भी निकलता है। स्त्रियों के इस काम से सहानुभूति प्रकट करने और उन्हें सहायता देने के लिए पुरुषों की भी कितनी ही सभायें बन गई हैं। परन्तु, साथही, ऐसी सभाओं की भी कमी नहीं जो स्त्रियों के इस उद्देश का विरोध करती हैं। १९०८ से The National League for Opposing Women's Suffrage नाम की एक सभा स्थापित है। उसके सदस्यों में स्त्री और पुरुष—दोनों ही हैं। लार्ड क्रोमर

और लार्ड कर्ज़न तक उसके सदस्य हैं। इस सभा की ओर से "Anti-Suffrage Review" नाम का एक पत्र भी निकलता है। यह सभा नहीं चाहती कि स्त्रियों को पुरुषों के बराबर स्वत्व दिये जायँ। इसकी शाखा-सभायें भी जहाँ तहाँ स्थापित होती जाती हैं।

अब हम कुछ उन स्त्रियों का हाल सुनाते हैं जो इस आन्दोलन की जान हैं। उनमें, जो इस स्वत्व-प्राप्ति के संग्राम में अगुआ हैं, मिसेज़ इमेलाइन पैंकहर्स्ट मुख्य हैं। उनकी शिक्षा पेरिस में हुई थी। १८७९ में उनका ब्याह हुआ और १८८९ में वे विधवा हो गईं। उनका पति सार्वजनिक कामों में बहुत शरीक होता था। अतएव वे भी सार्व-जनिक कामों में योग देना सीख गईं। १९०३ में उन्होंने Women's Social and Political Union नाम की पूर्वोल्लिखित सभा की नींव डाली। इस सभा का काम वे बड़े उत्साह से करती हैं। १९०८ में उन्हें डेढ़ महीना कारावास-दण्ड इस लिए भोगना पड़ा कि उन्हों ने १३ स्त्रियों सहित पार्लियामेंट के हाउस आव् कामन्स (House of Commons) पर आक्रमण किया था। उसी वर्ष के अन्त में उन्हें फिर तीन महीने का जेल हुआ। इस बार उन पर लोगों को भड़काने का दोष लगाया गया। १९१० में वे चार सौ स्त्रियों को लेकर महा-मन्त्री मिस्टर आसक्विथ से मिलने गईं। रास्तेही में वे पकड़ ली गईं। परन्तु दूसरे ही दिन छोड़ भी दी गईं। हाल ही में वे एक उपद्रव के लिए फिर पकड़ कर जेल में डाल दी गई थीं; परन्तु उन्होंने वहाँ भोजन करने से इनकार कर दिया। अन्त में, चार पाँच रोज़ के बाद, उनकी दशा बहुत ही शोचनीय हो गई। तब वे छोड़ दी गईं। वे वक्तृता देने में बड़ी कुशल हैं। उन्होंने भ्रमण भी ख़ूब किया है। वे १९०९ में अमेरिका गई थीं। संयुक्त-राज और केनाडा में उनका बड़ा आदर हुआ था और लोगों ने उनकी वक्तृताओं को बड़ी ही श्रद्धा से सुना था।

इस आन्दोलन की दूसरी प्रधान स्त्री का नाम मिसेज़ ड्रूमंड है। स्वत्व चाहने वाली स्त्रियों ने उन्हें जनरल की पदवी प्रदान की है। उन का जन्म मेनचेस्टर में हुआ था। उन्हों ने सिविल सर्विस (Civil Service) की सब से उच्च परीक्षा पास की; परन्तु नवीन नियमों के अनुसार सवा पाँच फुट ऊँची न होने के कारण उन्हें कोई पद न मिला। उन्हों ने इस अन्याय का बहुत विरोध किया, परन्तु फल कुछ भी न निकला। तब वे इस आन्दोलन में शामिल हो गईं। १९०८ में, मिसेज़ पैंकहर्स्ट के साथ, हाउस आव् कामन्स (House of Commons) पर आक्रमण करने के अपराध में उन्हें भी तीन महीने तक जेल में रहना पड़ा। इस समय वे अधिकतर लन्दन ही में रहती हैं। वे इस आन्दोलन का एक मुख्य स्तम्भ हैं।

मिसेज़ पैंकहर्स्ट की बड़ी लड़की, कुमारी क्रिस्टाबेल पैंकहर्स्ट, एल० एल० बी० भी इस आन्दोलन की सञ्चालिकाओं में से हैं। उनका जन्म १८८० में हुआ था। उन्होंने मेनचेस्टर और स्वीटज़रलेंड में शिक्षा पाई है। उन्होंने क़ानून पढ़ना चाहा। इस लिए, १९०४ में उन्होंने क़ानून की शिक्षा देने वाली लिङ्कन-इन (Lincoln Inn) नाम की संस्था के अधिकारियों से प्रवेश प्राप्त करने के लिए प्रार्थना की। पर उन लोगों ने उन्हें उस संस्था में पढ़ाने से इनकार किया। इस पर उन्होंने अधिकारियों के इस फ़ैसले का घोर विरोध किया, जिस का फल यह हुआ कि वे क़ानून के कालेज में दाख़िल करली गईं। १९०५ में, उन्हें पारस्परिक राष्ट्रीय क़ानून की दक्षता के लिए पुरस्कार मिला। उसी वर्ष, आक्टोबर में, उन्होंने इँगलेंड के विदेश-सचिव, सर एडवर्ड ग्रे, की स्त्रियों की स्वत्व-सम्बन्धिनी नीति का खुल्लम खुल्ला तिरस्कार किया। इसलिए उन्हें कुछ दिन कारावास करना पड़ा। इसी वर्ष उन्होंने क़ानून की एल० एल० बी० परीक्षा पास की। उत्तीर्ण छात्रों में उन का स्थान दूसरा रहा। तत्पश्चात् वे इस आन्दोलन के काम करने लगीं। १९०७ में उन्हें पन्द्रह दिन तक कारावास करना पड़ा। १९०८ में वे अपनी माता और मिसेज़ ड्रमण्ड के साथ पकड़ी गईं। मुक़द्दमे में उनकी जिरह पर

बड़े बड़े क़ानूनदाँ लोगों तक को दाँतों तले उँगली दबानी पड़ी। इस बार उन्हें दस सप्ताह का कारा-वास-दण्ड हुआ। इसी वर्ष के मार्च में खिड़कियों के शीशे तोड़ने और दूसरी स्त्रियों को शीशे तोड़ने के लिए उत्तेजित करने के अभियोग में उन पर वारंट निकाला गया। पर वे पुलिस की आँखों में धूल झोंक कर भाग गईं और अब तक ला पता हैं।

मिसेज़ पेथिक लारेन्स भी इस आन्दोलन के सम्बन्ध में बड़ा काम कर रही हैं। १९०८ में दो महीने के लिए, और १९०९ में फिर दो महीने के लिए वे कारागार-वास कर चुकी हैं। नवम्बर १९११ में वे फिर पकड़ी गई थीं; परन्तु इस बार एक सप्ताह के कारागार-वास के बाद उन्हें रिहाई मिल गई। उनका पति "Votes for Women" नाम की पत्रिका का सम्पादक है। वे उस पत्र की संयुक्त-सम्पादिका हैं।

ये तो इँगलेण्ड की बातें हैं। अन्यान्य देशों में भी यह आन्दोलन किसी न किसी रूप में विद्यमान है। न्यूज़ीलेण्ड में १८९३ से स्त्रियों को वोट देने का अधिकार प्राप्त है। आस्ट्रेलिया में स्त्रियों को पार्लियामेंट आदि सब सभाओं में वैसेही स्वत्व प्राप्त हैं जैसे पुरुषों को। संयुक्त-राज्य, अमेरिका, में भी इस आन्दोलन ने ज़ोर पकड़ा है। वहाँ के कई राज्यों में स्त्रियों को बहुत से स्वत्व पुरुषों के बराबर प्राप्त हैं। और, जिन में नहीं हैं, अथवा कम हैं, वहाँ भी ज़ोरा-शोर से आन्दोलन किया जा रहा है। फिनलेंड में स्त्रियां और पुरुषों के राजनैतिक स्वत्व बराबर हैं। १९०६ में, वहाँ की महा-सभा में १९ स्त्रियाँ सदस्य थीं। नारवे में भी स्त्रियों को कुछ स्वत्व प्राप्त हो गये हैं। फ़्रान्स, रूस और स्वीडन आदि अन्य देशों में स्त्रियों की दशा अभी वैसी ही है, परन्तु वहाँ भी इस आन्दोलन का जन्म हो गया है। और भारत में—? पुरुष तो पहले अपने अधिकार प्राप्त कर लें!

कालिदास के विषय में जैन पण्डितों की एक निर्मूल कल्पना।

दक्षिण-हैदराबाद की रियासत में मालखेड़ नामक एक क़सबा है। कोई एक हज़ार वर्ष पहले यह स्थान बड़ी उन्नत अवस्था में था। राष्ट्रकूटवंशी राजाओं की वह राजधानी था। इसका पुराना नाम है—मान्य-खेट। यहाँ के राजाओं के अनेक शिलालेख और ताम्र-पत्र मिले हैं। वे इंडियन ऐंटिक्वरी आदि पत्रों में प्रकाशित हो चुके हैं। डाक्टर भाण्डारकर ने इन्हीं लेखों के आधार पर दक्षिण का एक इतिहास ही लिख डाला है। उसमें एक अध्याय आपने मालखेड़ के राष्ट्रकूट (राठौड़) राजाओं पर भी लिखा है।

मालखेड़ में अमोघवर्ष (प्रथम) नाम का एक राजा था। शिलालेखों और ताम्रपत्रों के आधार पर उसका शासन-काल ८१५ से ८७७ ईसवी तक निश्चित हुआ है। उसने कोई ६२ वर्ष राज्य किया। वह राजा बड़ा पण्डित था। प्रश्नोत्तर-रत्नमाला नामक पुस्तक उसीकी रचना है। पुरानी कनारी भाषा में कविराजमार्ग नामक अलङ्कार-शास्त्र-सम्बन्धिनी एक और पुस्तक भी उसके नाम से प्रसिद्ध है। जैन-साधु वीरसेन के शिष्य जिनसेनाचार्य इस राजा के गुरु थे। जैनियों के आदि-पुराण नामक ग्रन्थ के कर्ता जिनसेन ही हैं। इस पुराण के पूर्ण होने के पहले ही वे परलोकवासी हो गये। अतएव उनके शिष्य गुणभद्र ने उसकी पूर्ति की।

आचार्य जिनसेन का लिखा हुआ पार्श्वाभ्युदय नाम का भी एक काव्य है। वह ईसा की नवीं सदी का है। उसमें कालिदास-कृत मेघदूत के प्रत्येक श्लोक के एक एक चरण का—कहीं कहीं दो दो का भी—आवेष्टन करके पार्श्वनाथ का चरित वर्णन किया गया है। अर्थात् मेघदूत के श्लोक-पाद समस्या के

जनरल की पदवी धारिणी मिसेज़ ड्रमंड ।

मिसेज़ पेथिक लारेन्स ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।
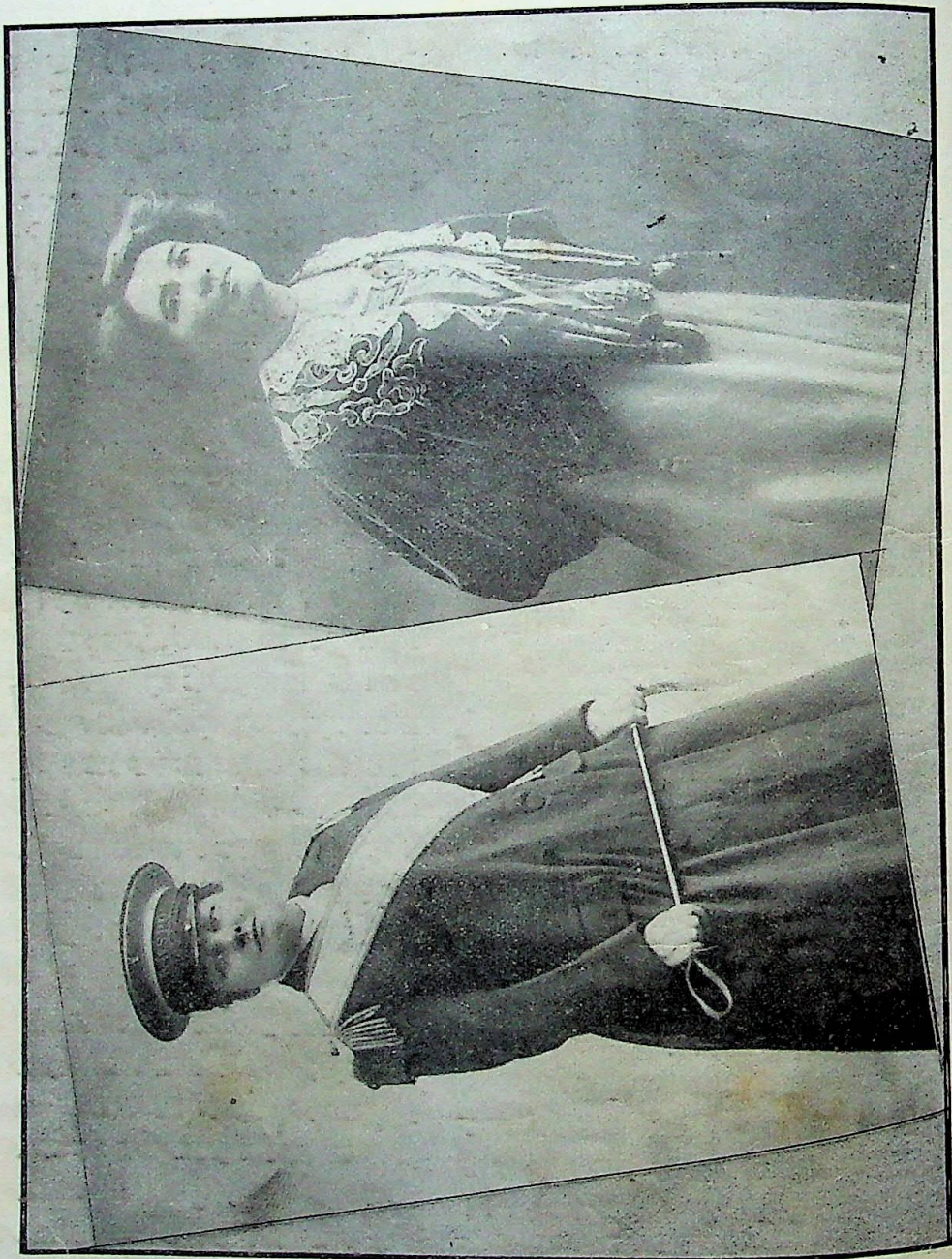
तौर पर पार्श्वनाथ के चरित-वर्णन में घटा दिये गये हैं। यथाः—

> श्रीमन्मूर्त्यां मरकतमयस्तम्भलक्ष्मीं वहन्त्या
> योगैकाग्र्यस्तिमिततरया तस्थिवांसं निदध्यौ ।
> पार्श्वं दैत्यो नभसि विहरन्बद्धवैरेण दग्धः
> कश्चित् कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारप्रमत्तः ॥

इसी तरह, सारे मेघदूत के आधार पर, यह पार्श्वाभ्युदय नामक काव्य चार सर्गों में समाप्त किया गया है । अन्त में इसके कर्ता जिनसेन ने लिखा है :—

> श्रीवीरसेनमुनिपादपयोजभृङ्गः
> श्रीमानभूद्विनयसेनमुनिर्गरीयान् ।
> तच्चोदितेन जिनसेनमुनीश्वरेण
> काव्यं व्यधायि परिवेष्टितमेघदूतम् ॥

अर्थात् वीरसेन मुनि के शिष्य विनयसेन की प्रेरणा से जिनसेन ने इसकी रचना की। जिनसेन भी वीरसेन के शिष्य थे। इस कारण जिनसेन और विनयसेन गुरु-भाई हुए।

अच्छा, विनयसेन ने क्यों ऐसी प्रेरणा की? अनुमान से मालूम होता है कि विनयसेन को मेघदूत बहुत पसन्द आया। परन्तु विरक्त होने के कारण उन्हें उसका विषय, जो शृङ्गार-रस से परिप्लुत है, अच्छा न लगा। उन्होंने शायद सोचा कि ऐसा अच्छा काव्य यदि किसी जैन तीर्थङ्कर पर घटा दिया जाय तो घटानेवाले के कविता-चातुर्य्य का भी प्रकाशन हो जाय और यह काव्य जैन-साधुओं के पढ़ने योग्य भी हो जाय। यह बात विनयसेन ने जिनसेन से कही होगी। इस सलाह को जिनसेन ने पसन्द करके ही, जान पड़ता है, पार्श्वाभ्युदय की रचना की है।

पण्डिताचार्य्य योगिराट् नामक एक जैन-पण्डित ने पार्श्वाभ्युदय की टीका लिखी है। मैसोर में एक स्थान श्रवण-बेलगुल नाम का है। वहाँ के जैन-मठ के वे गुरु थे। इन्होंने अपनी टीका में इरुगदण्डनाथ के बनाये हुए रत्नमाला नामक कोश का कई जगह हवाला दिया है। ये योगिराट् विजयनगर-नरेश हरिहर के समय में थे। अर्थात् ये शक-संवत् १३२१ (१३९९ ईसवी) में विद्यमान थे। इससे मालूम हुआ कि पार्श्वाभ्युदय के निर्म्माण के कोई पाँच सौ वर्ष बाद योगिराट् ने यह टीका बनाई।

इस टीका के अन्त में टीकाकार ने इस काव्य के निर्म्माण का कारण लिखा है। उसमें १८ श्लोक हैं। उनमें से पहले १६ श्लोक ज्यों के त्यों नीचे नक़ल किये जाते हैं :—

> श्रीजिनेन्द्रमताब्धीन्दुर्मूलसङ्घाम्बरांशुभान् ।
> वीरसेनाभिधानो वाऽवर्त्तिष्टाचार्यपुङ्गवः ॥ १ ॥
> तच्छिष्यो जिनसेनार्यो बभूव मुनिनायकः ।
> यत्कृतिर्भुवनेऽद्यापि चन्द्रिका प्रसरायते ॥ २ ॥
> बङ्कापुरे जिनेन्द्राङ्घ्रिसरोजेन्दिन्दिरोपमः ।
> अमोघवर्षनामाऽभून्महाराजो महोदयः ॥ ३ ॥
> स स्वस्य जिनसेनर्षिं विधाय परमं गुरुम् ।
> सद्धर्म्मं द्योतयंस्तस्थौ पितृवत्पालयन्प्रजाः ॥ ४ ॥
> कालिदासाह्वयः कश्चित्कविः कृत्वा महौजसा ।
> मेघदूताभिधं काव्यं श्रावयन्गणशो नृपान् ॥ ५ ॥
> अमोघवर्षराजस्य सभामेत्य मदोद्धुरः ।
> विदुषोऽवगणय्यैष प्रभुमश्रावयत्कृतिम् ॥ ६ ॥
> तदा विनयसेनस्य सतीर्थ्यस्योपरोधतः ।
> तद्विद्याहंकृतिच्युत्यै सन्मार्गोद्दीप्तये परम् ॥ ७ ॥
> जिनसेनमुनीशानस्त्रैविद्याधीश्वराग्रणीः ।
> विंशत्यग्रशतग्रन्थप्रबन्धश्रुतिमात्रतः ॥ ८ ॥
> एकसन्धित्वतस्सर्वं गृहीत्वा पद्यमर्थतः ।
> भूभृद्विद्वत्सभामध्ये प्रोचे परिहसन्निति ॥ ९ ॥
> पुरातनकृतिस्तेयात्काव्यं रम्यमभूदिदम् ।
> तच्छ्रुत्वा सोऽब्रवीद्रुष्टः पठतात्कृतिरस्ति चेत् ॥ १० ॥
> पुरान्तरे सुदूरेऽस्ति वासराष्टकमात्रतः ।
> आनाय्य वाचयिष्यामीत्यवोचद्यमिकुञ्जरः ॥ ११ ॥
> इत्येतदवलोक्याप सभापतिपुरोगमाः ।
> तथैवास्त्विति माध्यस्थ्यात्समयं चक्रिरे मिथः ॥ १२ ॥
> श्रीमत्पार्श्वार्हदीशस्य कथामाश्रित्य सोऽतनोत् ।
> श्रीपार्श्वाभ्युदयं काव्यं तत्पादार्धाद्विवेष्टितम् ॥ १३ ॥
> सङ्केतदिवसे काव्यं वाचयित्वा स संसदि ।
> तदुदन्तमुदीर्याथ कालिदासममानयत् ॥ १४ ॥

श्रीमद्बेल्गुलविन्ध्याद्रिप्रोल्लसद्दोर्बलीशिनः ।
श्रीपादाम्बुजमूलस्थः पण्डिताचार्य्ययोगिराट् ॥ १५ ॥
तन्मुनीन्द्रमतिप्रौढ़िप्रकटीकरणोत्सुकः ।
तद्व्याख्यां प्रार्थितश्चक्रे निजसुन्दरसूनुना ॥ १६ ॥

संक्षेप में इन पद्यों का मतलब यह है कि कालिदास नाम के किसी कवि ने मेघदूत नाम का एक काव्य बनाया। उसे वह बहुत से राजाओं को सुनाता फिरा। वह मदोन्मत्त कवि राजा अमोघवर्ष की सभा में भी आया और विद्वानों की अवमानना करके उसने राजा को अपना मेघदूत सुनाया। यह बात विनयसेन को अच्छी न लगी। अतएव, कालिदास के अहङ्कार को पूर्ण करने और सन्मार्ग की उद्दीपना के लिए, विनयसेन के अनुरोध से, जिनसेनाचार्य्य ने उस सभा में कालिदास का परिहास करते हुए कहा कि पुराने काव्य की चोरी करने से तुम्हारा यह काव्य रमणीय हुआ है। यह सुन कर कालिदास क्रुद्ध हुए और बोले कि यदि ऐसा है तो वह पुरानी कविता सुनाओ। इस पर जिनसेन ने कहा कि वह काव्य यहाँ से बहुत दूर एक नगर में रक्खा हुआ है। उसे मैं मँगाता हूँ। आठ रोज़ में वह आजावेगा। तब मैं सुना दूँगा। यह बात कालिदास और दरबार के अन्य सभासदों ने मंज़र कर ली। इतने में जिनसेन ने मेघदूत के एक एक दो दो चरणों से वेष्टित करके "पार्श्वाभ्युदय" नाम का काव्य बना डाला। आठवें रोज़ जब वे उसे सभा में सुना चुके तब कालिदास से यथार्थ बात उन्होंने कह दी और उनका बहुत कुछ सम्मान किया।

यह काव्यावतार नामक परिशिष्ट टीकाकार ने अपनी तरफ़ से इस काव्य के अन्त में लगा दिया है। श्रीयुत पन्नालाल वाकलीवाल ने इसे पार्श्वाभ्युदय के अन्त में ज्यों का त्यों रख कर इस काव्य को बम्बई से प्रकाशित कराया है। परन्तु पुस्तक के आरम्भ में, वाकलीवालजी की प्रार्थना पर, पूना के दक्षिण-कालेज के भूतपूर्व संस्कृताध्यापक, पण्डित काशिनाथ बापूजी पाठक, बी० ए० का लिखा हुआ एक छोटा सा उपोद्घात है। उसमें पाठक महाशय ने साफ़ साफ़ लिख दिया है कि टीकाकार का यह क़िस्सा सही नहीं है, क्योंकि कालिदास जिनसेन के बहुत पहले हुए हैं। पाठक महाशय की इस सम्मति को पार्श्वाभ्युदय के प्रकाशक ने, बिना किसी काट छाँट या टीका-टिप्पणी के, प्रकाशित कर दिया है। उनकी यह उदारता प्रशंसनीय है। जब पार्श्वाभ्युदय की कापी हमारे पास समालोचना के लिए आई तब हमने टीकाकार की पूर्वोक्त आख्यायिका को बिलकुल ही महत्त्व-हीन समझ कर, अपनी की हुई समालोचना के अन्त में, जो नवम्बर १९०९ की सरस्वती में प्रकाशित हुई है, केवल इतना ही लिखा :—

"पुस्तक के अन्त में टीकाकार ने इस काव्य के बनाये जाने का जो कारण लिखा है वह सर्व्वथा काल्पनिक है"।

परन्तु हम देखते हैं कि इस आख्यायिका के आधार पर जैन पण्डित ऐतिहासिक तत्त्व पर हरताल लगा कर कालिदास को जिनसेन का समकालीन बनाने और उनको अभिमानी—विद्वानों का अपमान करने वाला—सिद्ध करने की चेष्टा कर रहे हैं। यह चेष्टा श्रीजैनसिद्धान्तभास्कर नामक त्रैमासिक पत्र के सम्पादक ने की है। आरा में कोई जैन-सिद्धान्त-भवन है। उसी की उद्देश-सिद्धि के लिए यह पत्र अभी हाल में निकला है। जैनियों के इतिहास से सम्बन्ध रखने वाले लेख आदि प्रकाशित करने के लिए यह पत्र निकाला गया है। इस पत्र के सम्पादक महाशय ने पूर्वोक्त आख्यायिका को नक़ल कर के लिखा है "विनयसेन के अनुरोध से कालिदास के अभिमान-दमनार्थ जिनसेन ने मेघदूत के श्लोकों से परिवेष्टित करते हुए पार्श्वाभ्युदय रचा"।

पार्श्वाभ्युदय की प्रस्तावना में काशिनाथ बापूजी पाठक की सम्मति को देख कर भी जैन-भास्कर के सम्पादक का ऐसा लिखना बड़े साहस का काम है। जो पत्र ऐतिहासिक खोज का फल प्रकाशित करने के लिए निकाला गया है उस में ऐतिहासिक तत्त्वों का उद्घाटन बहुत सोच समझ कर करना चाहिए। भास्कर के सम्पादक ख़ुद ही लिखते हैं कि पार्श्वाभ्युदय की—"पूर्ति लगभग शक-संवत्

७३६ में हुई है"। अर्थात् यह काव्य लग भग ८१४ ईसवी का है। परन्तु—जैसा पाठक महाशय ने पार्श्वाभ्युदय की प्रस्तावना में लिखा है—इस समय के पहले के कवियों के लेखों में कालिदास का नाम आया है। शिला-लेखों और ताम्रपत्रों से यह निश्चित है कि थानेश्वर का राजा हर्ष-वर्द्धन सन् ईसवी के सातवें शतक में वर्तमान था। ६३४ ईसवी में सत्याश्रय पुलकेशी ने हर्ष का पराभव किया था। बाण-भट्ट इसी हर्षवर्धन के आश्रय में थे। उन्होंने हर्षचरित में कालिदास की प्रशंसा की है। यथा :—

> निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु।
> प्रातिर्मधुरसार्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते॥

अतएव सिद्ध हुआ कि कालिदास बाण भट्ट से पुराने हैं। इसके सिवा बीजापुर ज़िले में आयहोली नाम के गाँव में प्राप्त हुए शिला-लेख से भी यही बात सिद्ध होती है। इस शिलालेख में रवि-कीर्ति नामक जैनकवि ने कालिदास और भारवि का नाम लिया है और यह लिखा है कि मैं इन दोनों के सदृश ही कीर्तिशाली हूँ :—

> येनायोजि न वेश्म स्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म।
> स विजयतां रविकीर्त्तिः कविताश्रितकालिदासभारविकीर्तिः॥

इस शिला-लेख का समय शक-संवत् ५५६, अर्थात् ६३४ ईसवी, है। यह समय भी इसी शिला-लेख में खुदा हुआ है। देखिए:—

> पञ्चाशत्सु कलौ काले षट्सु पञ्चशतेषु च।
> समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजाम्॥

अतएव सिद्ध है कि कालिदास ६३४ ईसवी से पहले के हैं। फिर, बतलाइए, ८१४ ईसवी में पार्श्वाभ्युदय को समाप्त करनेवाले जिनसेन के समकालीन वे कैसे हो सकते हैं।

जिनसेन के कोई पाँच सौ वर्ष बाद पार्श्वाभ्युदय के टीकाकार हुए हैं। उन्होंने पूर्वोक्त आख्यायिका को योंही किसी से सुन कर विक्रम और कालिदास, अकबर और बीरबल की कहानियों की तरह लिख दिया है। वह समय ऐतिहासिक खोज का न था। बड़े बड़े कवियों और पण्डितों के सम्बन्ध की कहानियाँ धीरे धीरे कुछ का कुछ रूप प्राप्त कर लेती थीं। लोग उनके सत्यासत्य का निर्णय किये बिना ही उन्हें एक दूसरे से कहा करते थे। पण्डिताचार्य्य योगिराट् की कही हुई पूर्वोक्त कहानी भी ऐसी ही जान पड़ती है। कालिदास के पद्यों को पार्श्वाभ्युदय में गुम्फित देखकर किसी ने यह क़िस्सा गढ़ लिया होगा। वही परम्परा से टीकाकार महाशय के कान तक भी पहुँचा होगा। यदि टीकाकार का कथन सच होता तो जिनसेनाचार्य्य स्वयं ही उसका उल्लेख कर सकते थे। परन्तु उन्होंने पार्श्वाभ्युदय के अन्त में केवल इतना ही लिखा है:—

> इति विरचितमेतत्काव्यमावेष्ट्यमेघं
> बहुगुणमपदोषं कालिदासस्य काव्यम्।
> मलिनितपरकाव्यं तिष्ठतादाशशाङ्कं
> भुवनमवतु देवस्सर्वदाऽमोघवर्षः॥७०॥

इस के "मलिनितपरकाव्यं" पद से यही ध्वनि निकलती है कि इसकी रचना से मेघदूत मलिनित होगया। अर्थात् इसके सामने उसकी शोभा या सुन्दरता क्षीण होगई। और कुछ नहीं। परन्तु जिनसेन की राय में उसके "मलिनित" होजाने पर भी, दूसरी विलायतों तक में उसका प्रकाश पहुँच गया और पार्श्वाभ्युदय की विमलता की ज्योति जैन-भाण्डारों के भीतर ही चमकती रही।

सोचने की बात है कि टीकाकार के अनुसार जो जिनसेन "यमिकुञ्जर" "मुनीशान" और "त्रैविद्याधीश्वराग्रणी" थे वे कालिदास से झूठ कैसे बोल सकते थे कि तुम्हारा काव्य पुराना है। तुमने चोरी की है। पुराने काव्य की कापी एक गाँव में रक्खी है; मैं आठ रोज़ में मँगा कर दिखा दूँगा!

हिन्दी-पत्रों और पुस्तकों में पुरातत्त्वसम्बन्धी जो बातें प्रकाशित होती हैं उन पर इंडियन एन्टिक्वरी और एशियाटिक सोसाइटी के जरनलों में लिखने वाले विद्वानों की नज़र नहीं पड़ती। यदि किसी की पड़ती भी है और उसे कोई बात उन में भ्रम-पूर्ण मालूम होती है तो भी वह बहुधा उसे उपेक्षा की

दृष्टि से देख कर चुप रह जाता है। इससे भ्रम का विस्तार और भी बढ़ता है। यही समझ कर, इस भ्रममूलक आख्यायिका के विरुद्ध इस नोट के लिखने की आवश्यकता हुई। जैन पण्डित अपने आचार्यो की, अपने सिद्धान्तों की, अपने ग्रन्थों की ख़ुशी से प्रशंसा करें। यह बात वे जैनेतरों की निन्दा न कर के भी कर सकते हैं। जिनसेनाचार्य्य से कालिदास का दर्प-दलन न कराकर भी वे आचार्य्य महाराज की मनमानी स्तुति कर सकते हैं। प्राचीन जैन पण्डित जैनेतर विद्वानों के लिए "भट्टा निशाटा इव" इत्यादि वाक्य जो लिख गये हैं वही बहुत हैं। अधिक निन्दा करने की क्या आवश्यकता ?

हाँ एक बात कहना हम भूल ही गये। जैन-सिद्धान्त-भास्कर के सम्पादक कालिदास और जिनसेनाचार्य्य को सचमुच ही समकालीन समझते हैं। इस विषय के "पूरे प्रमाण" भी उनके पास मौजूद हैं। उन्हों ने अपने भास्कर के प्रथम भाग की प्रथम किरण में लिखा है:—

"यदि हो सकेगा तो भास्कर के अगले अङ्क में कविवर कालिदास और भगवज्जिनसेनाचार्य्य की समकालीनता पूरे प्रमाण के साथ हम प्रकाशित करेंगे"।

बड़ी अच्छी बात है। कीजिए। 'यदि' क्यों? प्रमाण प्रकाशित करने में रुकावट ही कौन सी हो सकती है? यदि आप कालिदास को जिनसेन का समकालीन सिद्ध कर देंगे तो कालिदास का समय निश्चित करने का यश भी अवश्य ही आपको मिल जायगा।

तपोबल।

(खण्डकाव्य)

पूर्वार्ध।

आज भारत का तपोबल स्वप्न की सी बात है।
किन्तु, उसकी पूर्व-महिमा विश्व में विख्यात है॥
तीन लोक, प्रचण्ड तप के तेज को थे मानते।
सिर उठाते थे न दुर्जन, जानते-पहचानते॥१॥

आत्मविद्या-पारदर्शी तपोनिष्ठ हज़ारहा।
सिद्ध योगी अति अलौकिक शक्तिशाली थे यहाँ॥
दर्शनों के ही प्रणेता वे तपस्वी थे नहीं।
इन्द्रियों को जीत कर ही वे यशस्वी थे नहीं॥२॥

इन्द्र का आसन डुलाना भी उन्हीं का काम था।
दृष्टि से नव-सृष्टि-रचना भी उहीं का काम था॥
आज ऐसेही ऋषीश्वर के तपोबल की कथा।
आपके आगे कहूँगा, शुभ समझ कर सर्वथा॥३॥

है मुझे आशा कि सुन सन्तोष होगा आपको।
शक्ति पाने के लिए कुछ जोश होगा आपको॥
जोश आने से कभी होगा प्रथम उद्योग भी।
फिर सफलता का मिलेगा स्वयं-प्राप्त सुयोग भी॥४॥

हुए भूप त्रिशङ्कु-नामक एक दिनकर-वंश में।
जो न कुछ कम थे पुरन्दर से किसी भी अंश में॥
शील में शशि, तेज में तो सूर्य के समकक्ष थे।
बुद्धि-वैभव में बृहस्पति-विष्णु ही प्रत्यक्ष थे॥५॥

धर्म के थे रूप उनके कर्म अनुकरणीय थे।
उच्च श्रेणी के विचार प्रशस्त आदरणीय थे॥
स्वावलम्ब, स्वदेश का अभिमान उनमें था भरा।
सब जगह उनके सुशासन से धरा थी उर्वरा॥६॥

नीच, नास्तिक या कृतघ्न न राज्य में था एक भी।
ईति-भीति, अकाल, मारी, भी कहीं न हुई कभी॥
यज्ञ से सन्तुष्ट सुरगण भी सभी अनुकूल थे।
हृष्ट परिजन और पुरजन भी नहीं प्रतिकूल थे॥७॥

नाम सुन पड़ता न था अन्याय, अत्याचार का।
था नहीं लवलेश भी कुविचार या व्यभिचार का॥
वेदपाठी विप्र थे, क्षत्रिय धनुर्धर वीर थे।
वैश्य थे व्यापार-रत, सब शूद्र सेवा-धीर थे॥८॥

ऐसे करते भूमि का भोग विभव-अनुरूप।
लगे सोचने एक दिन अपने मन में भूप॥९॥
"ईश-कृपा से आज हैं सब सुख मुझको प्राप्त।
सुयश चन्द्रिका के सदृश है त्रिभुवन में व्याप्त॥१०॥
आज्ञा-कारी पुत्र है, दारा है अनुकूल।
धर्म सुरक्षित हो रहा, जो उन्नति का मूल॥११॥
शत्रु, एक तो हैं नहीं, हुए निहत हत-दर्प।
जो हैं, हैं वे हस्तगत, भग्नदन्त ज्यों सर्प॥१२॥

रहे चिरस्मरणीय अब जिसमें मेरा नाम ।
ऐसा करना चाहिए कोई अद्भुत काम ॥ १३ ॥
मन्त्र-शास्त्र में विज्ञ गुरु हैं वशिष्ठ सर्वज्ञ ।
उनके आश्रित हो करूँ कोई ऐसा यज्ञ ॥ १४ ॥
जिसमें इसी शरीर से जाऊँ मैं स्वर्लोक ।
जहां जा सकें धर्मरत पुण्यश्लोक अशोक" ॥ १५ ॥
यों विचार कर भूप ने तुरत मँगाया यान ।
गुरु के आश्रम को किया उसी समय प्रस्थान ॥ १६ ॥
चले उत्साह-भरे नर-नाथ । सशस्त्र लिये कुछ सैनिक साथ ॥
बढ़े वर वाजि बजाते टाप । रहे फहराते केश-कलाप ॥ १७ ॥
सुशोभित बङ्किम ग्रीवा मोड़ । चले उड़ते ज्यों भू को छोड़ ।
पुरी की सीमा पर सुपवित्र । मिले ग्रामों के दृश्य विचित्र ॥ १८ ॥
सभी थे खेत अन्न-सम्पन्न । न था कोई भी वहां विपन्न ॥
सुखी सरला सुन्दरी अनेक । कुटिल कर्कशा न जिनमें एक ॥ १९ ॥
स्वदेशी मोटे पहने चीर । लिये घट जाती भरने नीर ॥
खड़ी कोई बालक ले गोद । रही कर उसे प्यार सामोद ॥ २० ॥
कहीं कामिनियां हो एकत्र । घरों से जाती थीं अन्यत्र ॥
मुदित कुछ कहीं रहीं थी झूल । कहीं कुछ चुनती थीं फल-फूल २१
किसानों के बालक स्वच्छन्द । दिखाई देते थे सानन्द ॥
चराने में पशुओं के प्रीत । बजाते बंशी गाते गीत ॥ २२ ॥
दुधारी गायें लापरवाह । घने वृक्षों की पाकर छांह ॥
पड़ी पागुर करतीं सानन्द । विचरते बछड़े भी स्वच्छन्द ॥ २३ ॥
भिड़े आपस में हो कुछ क्रुद्ध । बली बैलों में होता युद्ध ॥
खड़े खेतों में श्रमी किसान । सिंचाई करते गाते गान ॥ २४ ॥
लता-कुञ्जों में मुखिया लोग । धनी, मानी, न्यायी, नीरोग ॥
मज़े में करते थे विश्राम । सभी के हित के सोचें काम ॥ २५ ॥
सभी थे हृष्ट, पुष्ट, सन्तुष्ट । न उनकी चित्त-वृत्ति थी दुष्ट ॥
प्रजा को ऐसे देख निहाल । हुए हर्षित अतिही भूपाल ॥ २६ ॥
यथासमय गुरुदेव का शान्ति-कुटीर समीप ।
देख, शीघ्र रथ से उतर पड़े त्रिशङ्कु महीप ॥ २७ ॥
आज्ञा पाकर उस जगह ठहरे सैनिक लोग ।
भूपति भी आगे बढ़े मन में समझ सुयोग ॥ २८ ॥
सन्ध्या समझ सुहावनी, सूर्य हुए थे अस्त ।
चारु चन्द्र की ज्योति से तम हो रहा निरस्त ॥ २९ ॥
मुनिगण आँखें मूँद कर करते जप या ध्यान ।
सावधान कोई करें सरस साम का गान ॥ ३० ॥

आश्रम भर में भर रहा अग्निहोत्र का धूम ।
मची वहां सर्वत्र ही नित्य-कृत्य की धूम ॥ ३१ ॥
मृगशावक भी स्थिर हुए मुनि के शिष्य समान ।
वे भी जैसे कर रहे इष्ट-देव का ध्यान ॥ ३२ ॥
सुरभी-सिंह, मयूर-अहि आदिक भूले द्वेष ॥
भक्ति-भाव से वन्दना देख रहे अनिमेष ॥ ३३ ॥
पृथ्वीपति पुलकित चकित कर जोड़े कुछ काल ॥
खड़े देखते रह गये आश्रम का यह हाल ॥ ३४ ॥
मुनियों का जब हो चुका पूरा सन्ध्या-कृत्य ।
तब आये नृप के निकट मुनिवर के दो भृत्य ॥ ३५ ॥
"भो आयुष्मन् स्वस्ति"—कह कर प्रणाम स्वीकार ।
नृप को मुनिवर के निकट वे लेचले कुमार ॥ ३६ ॥
देखा नृप ने दूर से अग्नि-वेदिका-तीर ।
बैठे हैं ब्रह्मर्षिवर ज्यों पावक स-शरीर ॥ ३७ ॥
बिखरी जटायें चमकीली पीली पीली मानों ।
सूर्य-बिम्ब ऊपर किरण-जाल छाया है ।
भाल भस्म-भूषित विशाल शान्त लोचनों में
पूर्ण प्रतिभा का प्रतिबिम्ब रङ्ग लाया है ॥
वल्कल-वसन ऐसे सोहता शरीर पर
जैसे जीव-ज्योति-आवरण हुई माया है ।
अक्षमाला कर में, कमण्डलु निकट रक्खा,
पास ही हरिणशिशु ने भी स्थान पाया है ॥ ३८ ॥
देख, होती कल्पना—तपस्वियों का सारा तप
सिद्धि-सहचर शोभमान है निरभिमान ।
अथवा पुरन्दरादि देवों का प्रताप-पुञ्ज
गौरव-समष्टि मर्त्यलोक में है भासमान ॥
या है ब्रह्म-ज्योति का प्रशस्त प्रतिबिम्ब किंवा
ब्रह्मतेज सोहता है नित्य उपचीयमान ।
या यों कहो पूर्ण-ज्ञान-सम्मिलित मूर्तिमान
स्वयं ब्रह्मानन्द ऋषिरूप से है राजमान ॥ ३९ ॥
तब प्रणाम साष्टाङ्ग भूमिपति ने किया ।
मुनि ने भी आशीर्वाद उनको दिया ॥
फिर नृप से हित-हेतु वचन ऐसे कहे—
"आओ रविकुलकमल ! कहो, अच्छे रहे ? ॥ ४० ॥
प्रजा अनाकुल अभय सुखी अनुकूल है ?
शासन में तो नहीं कहीं कुछ भूल है ?

धर्म-ध्यान, कर्तव्य-ज्ञान तो ठीक है ?
सैनिकदल भी चिरानुगत निर्भीक है ? ॥ ४१ ॥
मन्त्री और अमात्य वृद्ध विश्वस्त हैं ?
राज-काज तो कहो न अस्त-व्यस्त हैं ?
धन-रत्नों से भरा तुम्हारा कोष है ?
स्त्री-पुत्रों से प्राप्त तुम्हें सन्तोष है ? ॥ ४२ ॥
सर्व-धर्म-साधन शरीर तो स्वस्थ है ?
चित्त तो न नरवर ! चिन्तित अस्वस्थ है ?
किस इच्छा से आज यहाँ आना हुआ" ?
बोले नृप—"क्या आपका न जाना हुआ ? ॥ ४३ ॥

तन मन धन से नाथ ! प्रजारञ्जन करूँ ।
दुष्टों को दे दण्ड भीति-भञ्जन करूँ ॥
सब इन चरणों के प्रताप से ठीक है ।
गुरुवर का आशीर्वाद न अलीक है ॥ ४४ ॥
इच्छा है बस यही अमर कर नाम को ।
इसी देह से प्राप्त करूँ सुर-धाम को ॥
ऐसा कोई यज्ञ आप बतलाइए ।
मुझ को अब सशरीर स्वर्ग पहुँचाइए" ॥ ४५ ॥
सुन त्रिशङ्कु के वचन मुनीश्वर ने कहा
"यह तो है आकाश-कुसुम दुर्लभ महा ॥
दिव्य देह के बिना न यह गति मिल सके ।
ज्ञान बिना ज्यों कभी न शुभमति मिल सके ॥ ४६ ॥
बस इतना ही यज्ञ सुफल दिखला सके ।
मरने पर यजमान स्वर्ग को जासके" ॥
नृप सुन मुनि के वचन सोच में पड़ गये ।
प्रबल प्रकृति के वश, प्रवृत्ति पर अड़ गये ॥ ४७ ॥

होनी होती कठिन, न टाले टल सके ।
बड़े बड़ों को अनायास वह छल सके ॥
गुरु की बात न मान, भूप ने फिर कहा—
"तो फिर मुनिवर, ब्रह्मतेज ही क्या रहा ? ॥ ४८ ॥
करामात क्या ? रहा यही उपसर्ग जो ।
बड़ी बात क्या ? मिला मरे पर स्वर्ग जो ॥
किसी तरह यह काम हमारा कीजिए" ।
बदले में धन, धाम, धरा सब लीजिए ॥ ४९ ॥
हँस कर मुनि ने कहा—"न बदला चाहिए ।
जीते हैं हम लोग तुम्हारे ही दिये ॥

ब्रह्मतेज का अमित असीम प्रताप है ।
नियम मिटाना किन्तु बड़ा ही पाप है ॥ ५० ॥
स्वर्गारोहण ही न मुख्य पुरुषार्थ है ।
कर्मयोग ही बस यथार्थ परमार्थ है ॥
धर्म करो निष्काम, दुराग्रह छोड़ दो" ।
प्रबल वृत्ति को तुम निवृत्ति से जोड़ दो ॥ ५१ ॥
मुनि का यह उपदेश न भाया भूप को ।
भाग्य-भोग ने भ्रान्त बनाया भूप को ॥
कहना ही कुछ चहा उन्होंने फिर अहो !
तब बोले मुनि हो विरक्त, "बस चुप रहो" ॥ ५२ ॥

राजा को व्यवहार न यह अच्छा लगा ।
हुई हृदय की वृत्ति और भी निम्न-गा ॥
गुरु-मर्यादा का विचार भी बह गया ।
घात और प्रतिघात क्षोभ का रह गया ॥ ५३ ॥
साधारण ही कर प्रणाम कुछ दूर से ।
चले वहाँ से नृप चिन्ता में चूर से ॥
इतने ही में वह निरस्त होते कहीं ।
तो भी होती कुशल, शाप पाते नहीं ॥ ५४ ॥
पर, मनुष्य तो चित्त-वृत्ति का दास है ।
अहो ! अहित-हित-हेतु यही उल्लास है ॥
जान बूझ कर मूढ़ इसीसे नर बने ।
पीछे पाता घोर कष्ट संकट घने ॥ ५५ ॥
सोचा नृप ने पुनः भूल कर्तव्य को ।
बिदा किया गुरुभक्ति-भाव अति भव्य को ॥
"गुरु-पुत्रों के पास जा करूँ प्रार्थना ।
वे चाहें तो काम सहज में दें बना ॥ ५६ ॥

इसमें शायद रोष न गुरुवर भी करें ।
स्वयं सम्मिलित हो सहायता ही करें" ॥
यों कर निश्चय उसी ओर भूपति फिरे ।
ज्यों पतङ्ग प्रिय-कारण पावक पर गिरे ॥ ५७ ॥
गुरु के सुत थे जहाँ वहाँ एकान्त था ।
सब प्रकार निर्विघ्न स्थान वह शान्त था ॥
शोभा ही थी और अहा उस प्रान्त की ।
ऋषिकुमार करते चर्चा वेदान्त की ॥ ५८ ॥
गद्गद पुलकित हुए सत्य के स्वाद में ।
बालक भी थे निरत ब्रह्म के वाद में ॥

उन्हें मिली जब अतिथि-आगमन-सूचना।
तब सब ने की आकर अति अभ्यर्थना ॥ ५९ ॥
गुरु-पुत्रों को भूप ने पहले किया प्रणाम।
फिर सादर सविनय कहा उनसे अपना काम ॥ ६० ॥

"सब आप हैं गुरु-पुत्र मेरे माननीय महान।
अब कीजिए निश्चिन्त मुझको प्रार्थना यह मान ॥
हूँ मैं शरण आया, किया चाहूँ सुखद सत्कर्म।
स्वीकार करना आपका है भक्तवत्सल-धर्म ॥ ६१ ॥

सुत ब्रह्मनिष्ठ वशिष्ठ के हैं शिष्ट इष्टद आप।
निज प्रबल पुण्य-प्रताप से मम मेटिए सन्ताप ॥
हे आर्य ! अद्भुत यज्ञ में कर आपको आचार्य।
मैं कर सकूँगा पूर्ण अपना मनोवाञ्छित कार्य" ॥ ६२ ॥

सुन भूप की यह बात, बोले शक्ति* यों साश्चर्य :—
"क्यों आप हमसे प्रार्थना करते प्रथम नृपवर्य ?
गुरुदेव वृद्ध वशिष्ठजी से कीजिए प्रस्ताव।
क्या आपसे उनका छिपा है योग-शक्ति-प्रभाव ? ॥६३॥

हों लाख, हम हैं पुत्र ही, उनकी अपेक्षा हीन।
हैं सर्वथा हम तुम उन्हींके शिष्य भक्त अधीन" ॥
कुछ अप्रतिभ हो तब कहा नृप ने प्रथम वृत्तान्त।
तब शक्ति करते भर्त्सना बोले—"हुए हो भ्रान्त ॥६४॥

जो काम कर न सके पिता उसको करेगा पुत्र।
सीखा कहाँ है आपने अन्याय का यह सूत्र ?
प्रिय पूज्यपाद पिता करें जो बात अस्वीकार।
वह है असम्भव, कर सकें हम भी न अङ्गीकार ॥६५॥

मङ्गल इसी में है करो गुरु-वाक्य पर विश्वास।
बस अन्यथा है सर्वथा सम्प्राप्त सत्यानाश" ॥
बोले नृपति फिर गिड़गिड़ा कर—"कीजिए न निराश।
मुझको किये हैं यह विवश अनिवार्य आशापाश ॥६६॥

यदि आप पहुँचा दें मुझे सुरलोक को स-शरीर।
तो आपका गुरु से अधिक सम्मान हो हे धीर !
जो बाप से बेटा बढ़े तो कुछ न है अन्याय।
हाँ, क्योंकि उससे बाप ही का नाम बढ़ता जाय" ॥६७॥

यह उक्ति सुन कर कूट-युक्ति-प्रयुक्त, शक्ति सशक्त।
अत्यन्त उत्तेजित हुए, वे थे पिता के भक्त ॥
है वृद्ध लोगों के लिए भी कठिन क्रोध-निरोध !
फिर युवा कैसे रोक सकते हैं समुत्थित क्रोध ? ॥६८॥

आँखें हुईं अरुण कम्पित अङ्ग सारे।
बोले मुनीश-सुत वाक्य बिना विचारे :—
"हो दूर दुष्ट, शठ, जा, हट जा यहाँ से।
आई कुबुद्धि तुझको इतनी कहाँ से ? ॥ ६९ ॥

कर्तव्य भूल हमसे हठ ठानता है।
दे यों प्रलोभन, विवेक बखानता है ॥
तेरा अधःपतन ज्ञात मुझे हुआ है।
'सम्राट् हूँ'—यह घमण्ड तुझे हुआ है ॥ ७० ॥

है एक रत्न अनमोल सुधर्म मेरा।
ऐश्वर्य और धन है सब तुच्छ तेरा ॥
क्या लोभ में पड़ स्वधर्म बिगाड़ दूँगा ?
तेरे कहे अति जघन्य अधर्म्म लूँगा ! ॥७१॥

चाण्डाल है अधम तू गुरुद्रोहकारी।
चाण्डाल ही इस घड़ी बन रे अनारी" ॥
दे शाप शक्ति निज आश्रम को सिधारे।
भूपाल के हत हुए अभिलाष सारे ॥ ७२ ॥

हो कल्पवृक्ष पर वज्रप्रहार जैसे।
या सूर्य को ग्रहण-रूप विकार जैसे ॥
त्यों शाप से नृप हुए अति ही मलीन।
श्री से विहीन विकृताकृति हर्ष-हीन ॥ ७३ ॥

स्वर्णाभूषण लोह के सब हुए, चण्डाल का वेश भी।
हा हा ! देव-समान कान्ति मिट के, फैले खुले केश भी।
होनी ने मति यों बिगाड़, उनको पापी बनाया अहो !
लोगो ! ब्राह्मणकोप से सँभलना, देखो, बचे ही रहो ॥७४॥

गुरु-विमुख न होना हाँ कभी भूल भाई !
कुगति यह उसीने भूप की है बनाई ॥
सब सुख मिटते हैं, दुःख की हो चढ़ाई।
इस विष-पुड़िया की है न कोई दवाई ॥ ७५ ॥

रूपनारायण पाण्डेय।

---

* शक्ति, वशिष्ठजी के बड़े बेटे का नाम था।

पृथ्वी की प्राचीनता।

पाश्चात्य विद्वान् बहुत दिनों से इस बात का पता लगाने की चेष्टा कर रहे हैं कि यह पृथ्वी कितने दिनों से इस तरह वर्त्तमान है। किन्तु अब तक वे लोग कोई सर्वमान्य सिद्धान्त स्थिर नहीं कर सके हैं। एक विद्वान् बहुत छान बीन करके एक सिद्धान्त स्थिर करता है, तो दूसरा फ़ौरन उसका खण्डन कर देता है। यह विवाद बहुत दिनों से चल रहा है। इस विवाद का परिणाम आशाजनक प्रतीत होता है। जहाँ पहले लोग केवल चार पाँच हज़ार वर्ष से ही सृष्टि का आरम्भ मानते थे वहाँ अब सात अरब पचास करोड़ वर्ष पहले से सृष्टि मानी जाने लगी है। यदि इस विषय की इसी तरह आलोचना होती रही तो आशा है कि कुछ दिनों में कोई सर्वसम्मत सिद्धान्त स्थिर हो जायगा। सम्भवतः अन्तिम सिद्धान्त वही ठीक होगा जो हमारे पूज्यपाद महर्षियों ने बहुत दिन पहले स्थिर किया था। इस लेख में हम संक्षिप्त रूप से यह दिखाना चाहते हैं कि पाश्चात्य विद्वानों ने कैसी कैसी युक्तियों द्वारा इस विषय में अपने सिद्धान्त स्थिर किये हैं और हमारे पूर्वज महर्षियों का इस विषय में क्या मत है।

डेस विग्नोलिस (Des Vignoles) नामक विद्वान् ने अपनी क्रानोलाजी-आव्-दी-सेकेंड-हिस्ट्री (Chronology of the Sacred History) नामक पुस्तक की भूमिका में लिखा है कि मैंने पृथिवी की प्राचीनता के सम्बन्ध में दो सौ से अधिक प्रकार की गणनाओं का फल एकत्र किया है। उनमें जो सबसे कम है उसमें केवल ३४८३ वर्ष पहले से सृष्टि मानी गई है और जो सबसे ज़ियादह है उसमें ६९८४ वर्ष पहले से। इस विषय में अनेक मत-भेद हैं। उन सब पर विचार करने से मालूम होता है कि ईसवी सन् से ४००४ वर्ष पहले सृष्टि का आरम्भ हुआ है। आर्क बिशप उशर (Archbishop Ussher) की राय में यही समय ठीक है।

किन्तु पदार्थ-विज्ञान-विशारद इस राय को नहीं मानते। उन्होंने पृथ्वी को ध्यान से देखा है, उसके आकार पर विचार किया है, उसकी गरमी की जाँच की है और उसकी गति का अन्दाज़ा लगाया है। फिर, पृथ्वी को सूर्य्य से ९० लाख मील की दूरी पर देख कर उसके घनत्व और उसकी गरमी के परिमाण के अनुसार गणना करके उन्होंने यह अनुमान किया है कि इस पृथ्वी की उम्र बीस लाख वर्ष से चालीस लाख वर्ष तक होगी। इसी सिद्धान्त के विषय में प्रसिद्ध गणित-शास्त्रवेत्ता हक्सले (Huxley) ने कहा था —"गणित-विद्या एक विलक्षण चक्की के समान है। उसके द्वारा तुम हर पदार्थ को जितना महीन चाहो पीस सकते हो। और, जैसे बहुत अच्छी चक्की से भी मटर के दाने से गेहूँ का आटा नहीं निकल सकता, उसी तरह यदि किसी प्रश्न का आधार ठीक न हो तो गणित के सैकड़ों नियमों का पालन करने पर भी उसका उत्तर ठीक न मिलेगा"।

भूगर्भ-विद्या के जानने वालों ने इस विषय की अपने ढंग पर आलोचना करके स्थिर किया है कि पृथ्वी को अपना वर्तमान रूप धारण करने में कोई दस कड़ोर वर्ष लगे होंगे। उन्होंने देखा कि पृथ्वी धीरे धीरे समुद्र की ओर बढ़ती जा रही है। बर्फ़ से पहाड़ों के किनारे की चटानें टुकड़े टुकड़े हो जाती हैं; आकर्षण शक्ति उन टुकड़ों को नीचे ले आती है, वहाँ वे नदी की धारा में गिरते हैं और वहाँ पिस कर कीचड़ बन जाते हैं। फिर नदी की धारा में मिल कर वे समुद्र में पहुँच जाते हैं। यह क्रम बहुत प्राचीन समय से जारी है। इसके कारण हिमालय की चोटी के पत्थर इस समय भारत-महासागर के गर्भ में जा पड़े हैं। समूची पृथ्वी को एक मान कर विचार किया जाय तो मालूम होगा कि यह कार्य बहुत धीरे धीरे होता है। ईसा के जन्म के समय से अब तक केवल आठ इञ्च मिट्टी पृथ्वी तल से धुल कर समुद्र में पहुँची है। पृथ्वी के पटल की मुटाई इस
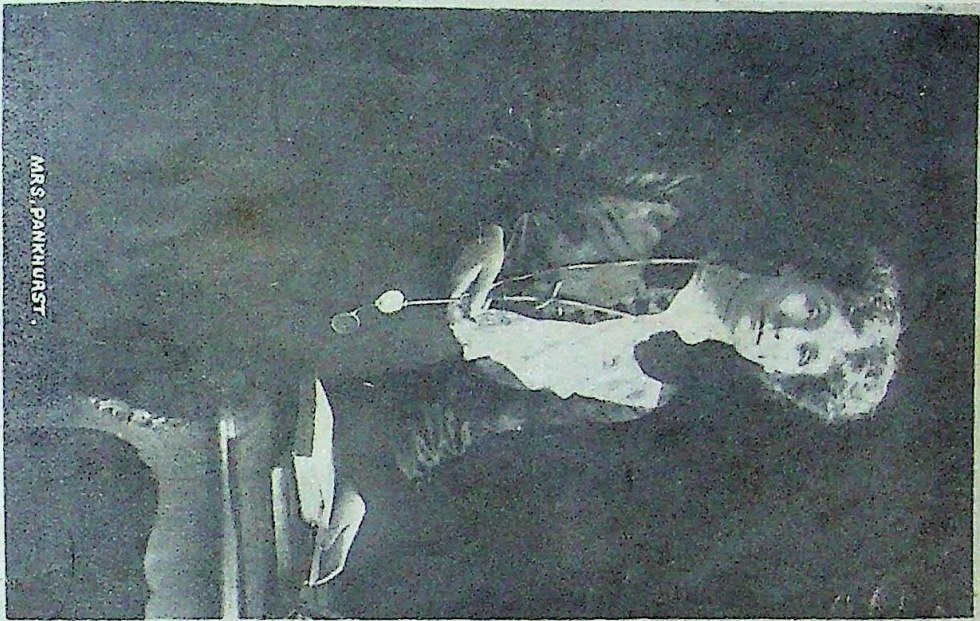
मिसेज़ इमेलाइन पैंकहर्स्ट ।

कुमारी क्रिस्टाबेल पैंकहर्स्ट, एल० एल० बी० ।

समय हज़ारों फ़ीट है और यह उक्त रीति से ही बनी है। पृथ्वीतल की बनावट के क्रम के अनुसार इसकी मुटाई का हिसाब लगाने से मालूम होता है कि दस करोड़ वर्षों में इसका यह रूप हुआ है। अध्यापक जोली [Professor Joly] ने भी एक दूसरे तरीक़े से जाँच करके इस कथन को सत्य प्रमाणित किया है। इसलिए विलायत की रायल सोसायटी (Royal Society) ने उन्हें स्वर्ण-पदक देकर सम्मानित किया है। अध्यापक जोली ने समुद्र के भिन्न भिन्न स्थानों के जल की परीक्षा करके उसके खारीपन का औसत हिसाब लगाया। फिर नदियों के जल की परीक्षा करके यह निश्चय किया कि हर-साल कितना नमक पृथ्वी-तल से समुद्र में जाता है। इन दोनों हिसाबों को मिला कर उन्होंने सिद्धान्त निकाला कि कोई दस करोड़ वर्ष में समुद्र का पानी इतना खारी हुआ है। पहले समुद्र में मीठा जल था।

रेडियम (Radium) नामक पदार्थ के तत्त्व-दर्शी वैज्ञानिकों की राय में यह पृथ्वी और भी बहुत पुरानी जँचती है। वे कहते हैं कि पृथ्वी पर सर्वत्र युरेनियम (Uranium) नाम की एक धातु पाई जाती है। उसीसे रेडियम की उत्पत्ति होती है। युरेनियम के परमाणुओं की परीक्षा करने से मालूम होता है कि वे असीमशक्ति-विशिष्ट हैं। कोई सत्ता-ईस मन युरेनियम में इतनी शक्ति होती है कि उसके द्वारा समूचे इँगलेंड में एक वर्ष तक रोशनी हो सकती है। एक प्याले युरेनियम की शक्ति ड्रेडनाट (Dreadnaught) नामक जहाज़ को ख़ूब तेज़ी के साथ पृथ्वी के चारों ओर चला सकती है। हम लोग इन बातों को सिर्फ़ जान सकते हैं। उस शक्ति को अपने वश में नहीं कर सकते। किसी निश्चित समय पर इस शक्ति के सहस्रों परमाणु आप ही आप ऐसी तेज़ी से भड़कते हैं कि वे एक सेकंड में हज़ारों मील चले जा सकते हैं। बन्दूक़ की गोली ढाई सेकंड में एक मील जाती है। किन्तु युरेनियम का एक परमाणु उतनी देर में पृथ्वी के चारों ओर जा सकता है। चटानों में इस धातु की स्थिति पर विचार करने से अनायास ही पृथ्वी की आयु का ज्ञान हो सकता है। यदि हम लोग युरेनियम की उम्र का पता लगा सकें तो वही अवश्यमेव इस पृथ्वी की उम्र मानी जायगी। युरेनियम से जिन पदार्थों की उत्पत्ति होती है उनका इतिहास बहुत वि-स्तृत है। युरेनियम से सर्वप्रथम रेडियम की उत्पत्ति होती है। उसे रेडियम में परिणत होने में सात अरब पचास करोड़ वर्ष लगते हैं। ऐसे तो यह संख्या अनुमान से परे प्रतीत होती है; परन्तु, वास्तव में, रेडियम की शक्ति से सम्बन्ध रखने वाले नियम के अनुसार गणना करने का यह प्रकृत फल है। उस नियम का तात्पर्य यह है कि यदि दो रेडियम-विशिष्ट पदार्थ भिन्न भिन्न परिमाण से किसी दूसरे पदार्थ में परिणत होते हों, तो उनके अंश-परिमाण से उन-की आयु का अन्दाज़ा होता है। हम लोग जहाँ जहाँ रेडियम देखते हैं वहाँ वहाँ एक नियमित परिमाण में युरेनियम भी पाते हैं। जहाँ एक चावल भर रेडियम मिलता है वहाँ अवश्य ही तीस लाख चावल भर युरेनियम पाया जाता है। रेडियम "इमेनेशन" नामक पदार्थ में परिणत होता है। उसी तरह युरे-नियम रेडियम में परिणत होता है। नियमानुसार हिसाब करने से मालूम होता है कि युरेनियम के एक परमाणु को रेडियम में परिणत होने में कम से कम सात अरब पचास करोड़ वर्ष लगते हैं। पृथ्वी की उम्र भी कम से कम इतनी ज़रूर होगी।

ऊपर जो भिन्न भिन्न श्रेणी के पाश्चात्य विद्वानों के मत उद्धृत किये गये हैं उन पर विचार करने से ज्ञात होता है कि इस विषय में जितनाही अधिक अनुसन्धान किया जाता है पृथ्वी की प्राचीनता उतनीही बढ़ती जाती है। अभी तक इसकी उम्र का ठीक पता नहीं लगा। परन्तु हमारे महर्षियों ने, जिनका बुद्धिबल उन्नति की चरम सीमा तक पहुँचा हुआ था, पृथ्वी की आयु के विषय में जो निश्चय किया है वह बहुत ठीक जान पड़ता है। महात्मा मनु कहते हैं:—

दैवे रात्र्यहनी वर्षं

अर्थात् देवताओं के एक रात-दिन में मनुष्यों का वर्ष होता है। तात्पर्य यह कि देवताओं का एक वर्ष मनुष्यों के ३६० वर्ष के बराबर है।

युगों के विषय में मनुजी कहते हैं:—

चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणान्तु कृतं युगम्।
तस्य तावच्छती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथा विधः॥

(मनु०, अ० १, श्लो० ६९)

चार हज़ार देव-वर्षों का कृतयुग होता है और चार चार सौ वर्ष के उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांश होते हैं। मतलब यह कि सत्ययुग की पूरी संख्या ४८०० देववर्ष या १७२८००० मनुष्य-वर्ष है। इसी तरह उन्होंने त्रेता की संख्या ३६०० देववर्ष अथवा १२९६००० मनुष्य-वर्ष, द्वापर की संख्या २४०० देववर्ष अथवा ८६४००० मनुष्य-वर्ष और कलियुग की संख्या १२०० देववर्ष या ४३२००० मनुष्य-वर्ष बताई है। इस प्रकार एक चतुर्युगी ४३,२०,००० मनुष्य-वर्ष की हुई।

आगे चल कर मनुजी कहते हैं,

यदेतत्परिसंख्यातमादावेव चतुर्युगम्।
एतद्द्वादशसाहस्रं देवानां युगमुच्यते॥
दैविकानां युगानां तु सहस्रं परिसंख्यया।
ब्राह्ममेकमहर्ज्ञेयं × × ×

(मनु०, अ० १, श्लो० ७१-७२)

बारह हज़ार चतुर्युगों का एक दैविक युग होता है और हज़ार दैविक युगों का ब्रह्मा का एक दिन। इस हिसाब से दैविक युग ५१,८४,००,००,००० मनुष्य वर्षों का और ब्राह्म दिन ५,१८,४०,००,००, ००,००० मनुष्य-वर्षों का हुआ है। इस समय ब्रह्मा का द्वितीय प्रहरार्द्ध जा रहा है। अतएव पृथ्वी की वर्तमान आयु का परिमाण १,९४,४०,००, ००,००,००० वर्ष के क़रीब सिद्ध होता है।

इस संख्या से पाश्चात्य वैज्ञानिकों की संख्या अभी बहुत कम है। परन्तु उनके विचार-स्रोत की गति पर ध्यान देने से मालूम होता है कि इस विषय में इसी तरह अनुसन्धान होता रहा तो कुछ ही दिनों में वैज्ञानिक मण्डली द्वारा हमारे पूर्वजों का सिद्धान्त सत्य प्रमाणित होजायगा।

युद्ध-सम्बन्धी अन्तर्जातीय नियम।
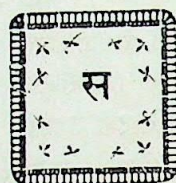
सभ्य राष्ट्रों ने मिल कर कुछ ऐसे नियम बनाये हैं जिनका पालन उन्हें युद्ध के समय करना पड़ता है। ट्रिपली के सम्बन्ध में टर्की और इटली का युद्ध शान्त हुआ ही था कि टर्की और बाल्कन प्रदेश के मानटिनिगरो, सरविया, बलगेरिया और ग्रीस में युद्ध छिड़ गया। अतएव ऐसे अवसर पर उन नियमों का प्रकाशित किया जाना असामयिक न होगा। वे नियम, संक्षेप में,नीचे दिये जाते हैं:—

जब कोई राष्ट्र किसी अन्य राष्ट्र को किसी तरह की हानि पहुँचाता है या उसका अपमान करता है तब उससे कहा जाता है कि हानि का बदला दो और अपमान के लिए माफ़ी माँगो। यदि सहज ही में यह काम हो जाता है तो युद्ध की तैयारी नहीं होती। हानि और अपमान करने वाले के शासन के लिए युद्ध अन्तिम साधन है। अन्य उपायों से जब तक काम चल सकता है तब तक युद्ध नहीं ठाना जाता। राज़ी-नामा कर लेना, किसी अन्य राष्ट्र का बीच में पड़ कर मेल करा देना, अथवा पञ्चायत द्वारा झगड़े का निपटारा हो जाना आदि बातों की ही, युद्ध के पहले, शरण लेनी पड़ती है। यदि इनसे कार्य्य सिद्ध न हुआ तो वह राष्ट्र जिसका अपमान आदि होता है बाहु-बल का प्रयोग करता है। इस समय तक भी यथार्थ में युद्ध नहीं छिड़ता; शत्रु केवल तङ्ग किया जाता है। जहाज़ों द्वारा उसके बन्दरगाह और समुद्र-तट घेर लिये जाते हैं तथा उसके जहाज़ों और माल-असवाब पर अधिकार कर लिया जाता है। जब कोई समुद्र-तट या बन्दरगाह

घिरा होता है तब किसी अन्य राष्ट्र का भी कोई जहाज़ घेरे के बीच से नहीं निकल सकता। घेरे के बीच से बाहर निकलते अथवा भीतर जाते हुए पकड़ जाने पर वह ज़ब्त कर लिया जा सकता है। यदि युद्ध न हुआ, मेल हो गया, तो जितने जहाज़ अथवा जो माल हाथ लगता है, वह सब जिनका होता है उनको लौटा दिया जाता है। शत्रु के समुद्र में फिरने वाले उसके अथवा उसकी प्रजा के जहाज़ भी पकड़ लिये जाते हैं। इस काम को Reprisal (अर्थात् बदला) कहते हैं। यह "बदला" दो प्रकार से लिया जाता है। राष्ट्र अपने शत्रु और उसकी प्रजा के जहाज़ों और आदमियों को पकड़ने के लिए अपने कर्म्म-चारियों को आज्ञा, और ग़ैर-सरकारी लोगों को भी ऐसा ही करने के लिए अधिकार, देता है। परन्तु इस प्रकार के बदले की प्रथा अच्छी नहीं समझी जाती। युद्ध के पूर्व तो उसका अवलम्बन बहुत ही कम किया जाता है।

इतना होने के बाद या तो मेल हो जाता है या युद्ध छिड़ जाता है। यदि युद्ध हुआ तो ऐसी अवस्था में शत्रु को युद्ध की सूचना देने की कोई आवश्यकता नहीं। १८९४ ईसवी में चीन-जापान में युद्ध हुआ था। छेड़ छाड़ २५ जूलाई से आरम्भ थी। इसी तारीख़ को चीन का एक जहाज़ डुबो दिया गया था और दूसरा जापान ने छीन लिया था। परन्तु युद्ध-घोषणा, जिसकी फिर कोई आवश्यकता न थी, जापान ने पहली अगस्त और चीन ने दूसरी अगस्त को की थी। ऐसी ही बात गत रूस-जापान-युद्ध में भी हुई थी। ६ फ़रवरी १९९४ को रूस और जापान का राजनैतिक सम्बन्ध टूट चुका था। तदनन्तर रूसियों की तरफ़ से कुछ छेड़छाड़ भी हुई। परन्तु जापान ने युद्ध की घोषणा ११ फ़रवरी १९०४ को की।

जो सैनिक अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर लड़ने के लिए तैयार रहते हैं वही युद्ध में शरीक योद्धा समझे जाते हैं। युद्ध के नियमों के अनुसार शत्रु-दल के योद्धा मारे जाने और शरीर-दण्ड पाने के पात्र समझे जाते हैं। शरण आने पर वे युद्ध के क़ैदी समझे जाते हैं और वैसाही व्यवहार भी उनके साथ किया जाता है। १८७४ में ब्रसल्स की सभा में तै पाया था कि वही लोग योद्धा समझे जायँ जो किसी ज़िम्मेदार अफ़सर के नेतृत्व में हों, युद्ध के नियमों को जानते हों और किसी विशेष चिह्न से पहचाने जा सकते हों।

कुछ विशेष अवस्थाओं को छोड़ कर अन्य सब अवस्थाओं में शरण चाहने वाले शत्रु-दल के योद्धाओं को शरण अवश्य दी जाती है। परन्तु शरण मिल जाने ही से शत्रु-दल के योद्धा दण्ड से नहीं बच सकते। यदि शत्रु ने स्वयं ही युद्ध के नियम तोड़े हैं अथवा अपने विपक्षियों को शरण न देने की सम्मति प्रकट की है तो उसके योद्धाओं को भी दण्ड मिलता है। शत्रु यदि कोई ऐसा कठोर या नृशंस काम करता है जिसका बदला देना आवश्यक समझा जाता है तो इस कारण भी शरण में आये हुए उसके योद्धा दण्ड के पात्र समझे जा सकते हैं। गत चीन-जापान युद्ध में जापान ने शरण चाहने वाले शत्रु-दल के प्रत्येक सैनिक को शरण दी थी। परन्तु एक दुर्घटना अवश्य हुई थी। वह यह थी कि पोर्टआर्थर पर जापानियों का अधिकार हो जाने के बाद चार दिन तक नर-हत्या हुई थी। तथापि जापानियों के कथनानुसार उनके योद्धाओं ने यह नृशंसता नहीं की थी; किन्तु उनकी सेना के कुलियों ने शराब के नशे में की थी।

रोगी और घायल सैनिकों की—चाहे वे किसी दल के हों—उचित शुश्रूषा की जाती है। जब तक वे अस्पतालों अथवा अस्पताली जहाज़ों में रहते हैं तब तक वे किसी दल के नहीं समझे जाते। जितने डाक्टर घायलों की सेवा के लिए नियत रहते हैं वे भी किसी पक्ष के नहीं समझे जाते। दोनों पक्ष उनकी रक्षा के लिए एक से बाध्य हैं। अस्पतालों पर भी आक्रमण नहीं किया जाता। गत रूस-जापान-युद्ध में जापानियों का व्यवहार अपने रूसी क़ैदियों के प्रति साधारणतः, और उनमें से जो

रोगी अथवा घायल थे उनके प्रति मुख्यतः, बहुत ही अच्छा था। योरप और अमेरिकावालों तक ने जी खोल कर जापान के इस सद्-व्यवहार की प्रशंसा की। जापानियों के इस सद्-व्यवहार की एक घटना का यहाँ उल्लेख कर देना अनुचित न होगा। कीनलीनचेङ्ग के युद्ध में एक रूसी सैनिक की आँखें घायल हो गईं। वह अपने एक साथी की सहायता से सेना के बाहर निकल आया। इतने ही में अचानक दो जापानी सैनिक, घायलों की सेवा-शुश्रूषा करने वाले सेवक-समुदाय की झण्डी लिये हुए, उस स्थल पर पहुँचे। एक जापानी ने पिस्तौल द्वारा सङ्केत करके घायल रूसी के साथी से चले जाने को कहा। जब वह चला गया तब दोनों ने मिल कर घायल रूसी सैनिक की आँखें धोईं, उन पर पट्टी चढ़ाई और तत्पश्चात् उसे उसके साथियों के पास पहुँचा दिया। जापानी सैनिक अपने रूसी क़ैदियों के आराम का बहुत ही ख़याल रखते थे। बहुधा वे लोग रूसी क़ैदियों को अपनी सिगरेट और शराब दे कर प्रसन्न रखने का प्रयत्न करते थे।

युद्ध के क़ैदी, युद्ध जारी रहते हुए, धन लेकर भी छोड़ दिये जा सकते हैं। दोनों पक्षवाले अपने अपने क़ैदियों को बदल भी लेते हैं। वर्त्तमान युद्ध में शरीक न होने की शर्त पर क़ैदी छोड़ दिये जाते हैं। यदि कोई क़ैदी भागे तो वह भागने की अवस्था में मार डाला तक जा सकता है; परन्तु फिर पकड़े जाने पर उसे केवल इतना ही दण्ड दिया जा सकता है कि उस पर विशेष चौकसी रक्खी जाय। यदि वह अन्य क़ैदियों के भगाने के षड्यन्त्र में सम्मिलित हो तो फिर वह प्राण-दण्ड का ही पात्र समझा जाता है। क़ैदियों को यथा-सम्भव अच्छा भोजन, वस्त्र और स्थान दिया जाता है; किसी किसी अवस्था में उनके जेब-ख़र्च का भी प्रबन्ध किया जाता है।

युद्ध में पकड़े तो सभी जा सकते हैं, परन्तु समाचार-पत्रों के संवाद-दाताओं के लिए यह नियम ढीला कर दिया जाता है। वे लोग केवल उस समय तक रोके जा सकते हैं जब तक उनके न रोकने से किसी प्रकार की हानि पहुँचने की सम्भावना हो। गत रूस-जापान-युद्ध में एक ऐसी ही घटना हो गई थी। अमेरिका के किसी समाचार-पत्र के संवाद-दाता के जहाज़ को रूसियों ने पकड़ लिया। कुछ काल तक उक्त संवाद-दाता को रूसियों की हिरासत में रहना पड़ा। अन्त में वह छोड़ दिया गया।

युद्ध में किसी को धोखे से मारना मना है; परन्तु एक दल के सैनिकों का दूसरे दल वालों पर छिप कर छापा मारना मना नहीं। शत्रु के खाने-पीने की चीज़ों में विष मिला देना, विष से बुझे शस्त्रों का प्रयोग करना और तोपों में नाल, शीशे और विविध धातुओं के टुकड़े तथा इसी प्रकार की अन्य चीज़ें भरना आदि बातें भी नियम-विरुद्ध समझी जाती हैं। ज्वालाग्राही पदार्थों से भरे हुए गोले बड़े ही भयङ्कर होते हैं। जहाँ एक भी ऐसा गोला गिरता है वहाँ सफ़ाया ही हो जाता है। गोले जितने छोटे होंगे उतने ही अधिक एक बार में चलाये जा सकेंगे। और जितने ही अधिक गोले होंगे, जहाँ तहाँ गिर कर, उतना ही अधिक भयङ्कर संहार वे करेंगे। इसी लिए आध सेर से कम वज़न के ज्वाला-ग्राही-पदार्थ-युक्त छोटे गोले युद्ध में नहीं चलाये जाते। १८७४ में, ब्रसेल्स में, एक सैनिक सभा हुई थी। उस में तै पाया था कि योद्धाओं को यह अधिकार नहीं है कि वे जिस तरह चाहें अपने शत्रुओं को मार डालें। इसलिए, भविष्यत् में, युद्ध के समय अब ऐसे गोले न व्यवहार में लाये जायँ जिनका काम फूट कर हवा को विषैला बनाना ही हो। सभा की इस बात को सब राष्ट्रों ने स्वीकार कर लिया।

समुद्र में बारूद की सुरङ्गें लगा कर शत्रु के जहाज़ नष्ट कर दिये जाते हैं। समुद्र में तट से तीन मील तक इस प्रकार की सुरङ्गें लगाने का हर राष्ट्र को अधिकार है। परन्तु ये सुरङ्गें होती बड़ी भयङ्कर हैं। यदि किसी प्रकार ढीली पड़ जायँ तो बहती बहती कहीं की कहीं पहुँच जायँ और केवल सैनिक जहाज़ों को ही नहीं, किन्तु उनसे टकरा जाने वाले

व्यापारी जहाज़ों तक को नष्ट कर दें। इन सुरङ्गों की निरङ्कुशता पर सैनिक समुदाय भयभीत हो रहा है। हेग के महा-न्यायालय में इस विषय पर शीघ्र ही विचार होने वाला है।

जो सैनिक शान्तिसूचक झण्डियाँ लेकर या शत्रु के सैनिकों की वर्दी पहन कर शत्रुओं को धोखा देते हैं वे यथार्थ में रण-नीति के विरुद्ध कार्य्य करते हैं। नियम है कि जिस सैनिक के हाथ में शान्ति की झण्डी हो उस पर न तो वार किया जाय, न उसे किसी और प्रकार से कष्ट पहुँचाया जाय, और न वह क़ैदही किया जाय। गत रूस-जापान-युद्ध में रूसियों ने एक बार इस नियम का उल्लङ्घन किया था। नान-शन में युद्ध हो रहा था। रूसियों ने शान्ति के सुफ़ेद झण्डे ऊपर उठाये। जापानियों ने समझा कि वे शरण चाहते हैं। युद्ध बन्द कर दिया गया। जापानी उन्हें क़ैद करने के लिए आगे बढ़े। पास पहुँचते ही रूसियों ने उन पर बन्दूक़ की बाढ़ें छोड़ीं। सैकड़ों जापानी मुफ़्त में मारे गये। परन्तु अन्त में मैदान जापानियों ही के हाथ रहा।

अरक्षित और चहारदिवारी से न घिरे हुए नगर पर गोले-बारी नहीं की जाती। यदि ऐसे नगर का किसी सैनिक अड्डे से विशेष सम्बन्ध हो, अथवा उसमें रसद रुकी पड़ी हो, तो फिर उस पर भी गोला-बारी की जा सकती है। जिस स्थान पर गोला-बारी की जाने को होती है वहाँ के निवासियों को सूचना द्वारा वहाँ से चले जाने की आज्ञा दे दी जाती है। परन्तु इस प्रकार की सूचना देना अथवा न देना आक्रमण-कारी पक्ष की इच्छा ही पर छोड़ दिया गया है। अपने अधीन रहने वाली असभ्य जातियों से लड़ाई में सहायता लेना अनुचित नहीं, परन्तु इन जातियों की सेना का आधुनिक ढँग पर शिक्षित होना आवश्यक है।

शत्रु-पक्ष की टोह जासूस ले सकते हैं, परन्तु पकड़ जाने पर उन्हें फाँसी मिलती है। पहले तो गुब्बारे द्वारा उड़ने वाले लोगों तक को, युद्ध के समय पकड़ लिये जाने पर, जासूसों ही की तरह दण्ड मिलता था; परन्तु अब वह बात नहीं रही।

शत्रु-पक्ष के जहाज़ों पर, चाहे वे सामरिक हों चाहे व्यापारिक, उन्हीं स्थानों पर आक्रमण किया जा सकता है जो शत्रु अथवा आक्रमण-कारी पक्ष के अधीन हो। किसी तटस्थ राष्ट्र के अधीन समुद्र में, अथवा बन्दर पर खड़े हुए, शत्रु-पक्ष के जहाज़ पर आक्रमण करने का अधिकार किसी को नहीं। जो जहाज़ वैज्ञानिक खोज के लिए निकले हों, जिनमें बदले हुए युद्ध के क़ैदी जा रहे हों, अथवा जिनमें रोगी और घायल तथा उनकी चिकित्सा का सामान हो—चाहे वे किसी पक्ष के हों—पकड़े नहीं जाते। शत्रु की प्रजा के उन जहाज़ों को छोड़ कर जो युद्ध के आरम्भ होने के पूर्व्व से ही दूसरे पक्ष के समुद्र अथवा बन्दर में पड़े हों, अन्य सब जहाज़ युद्ध-काल में पकड़े और ज़ब्त कर लिये जाते हैं। समुद्र-तट के निकट रहने पर तो नहीं, परन्तु समुद्र-तट से दूर गहरे समुद्र में पहुँच जाने पर मछलियों का शिकार खेलने वाली शत्रु-पक्ष की नावें भी पकड़ ली जाती हैं। युद्ध आरम्भ होने पर यदि कोई जहाज़ शत्रु-पक्ष के बन्दर पर माल लाद रहा हो, अथवा शत्रु-पक्ष के किसी बन्दर से चल कर उसी के अथवा किसी तटस्थ राष्ट्र के बन्दर की ओर जा रहा हो, तो वह एक नियमित समय तक नहीं पकड़ा जाता। बहुधा शत्रु-पक्ष के उन जहाज़ों को, जिनमें दूसरे पक्ष के किसी बन्दर का कुछ माल हो, उक्त बन्दर में आने और एक नियत काल के भीतर वहाँ से सकुशल लौट जाने की आज्ञा मिल जाती है।

युद्ध आरम्भ हो जाने पर अन्य राष्ट्रों के जहाज़ों तक की बहुधा तलाशी ली जाती है। यह तलाशी इसलिए ली जाती है जिसमें जहाज़ की यथार्थ राष्ट्रीयता का पता लग जाय और यह मालूम हो जाय कि उसमें किस प्रकार का माल है और वह कहाँ जाता है। इस प्रकार की तलाशियाँ केवल युद्ध-काल में ही ली जाती हैं, शान्ति के समय में नहीं। तटस्थ राष्ट्रों के सैनिक जहाज़ कभी नहीं देखे जाते,

हाँ—उनके व्यापारी जहाज़ों की तलाशी बहुधा ली जाती है। तलाशी लेने के लिए जहाज़ पहले रोके जाते हैं। फिर उनका माल देखा जाता है कि वह ऐसा तो नहीं जिसका ले जाना युद्ध-काल में वर्जित है। सामुद्रिक डाकुओं के जहाज़, अथवा ऐसे जहाज़ जिन पर डाकुओं के होने का सन्देह हो, किसी भी समय पकड़े जा सकते हैं। व्यापारी जहाज़ राष्ट्रीय सेवा के लिए सैनिक जहाज़ का रूप धारण कर लिया करते हैं। परन्तु जो व्यापारी जहाज़ घर से तो व्यापारी बन कर निकलता है और रास्ते में सैनिक बन जाता है—उसकी हैसियत सामुद्रिक डाकुओं के जहाज़ ही की तरह समझी जाती है।

युद्ध आरम्भ होते ही एक प्रश्न बड़े ही महत्त्व का उत्पन्न हो जाता है। वह यह कि कौन राष्ट्र तटस्थता की नीति का अवलम्बन करेगा और कौन दो पक्षों में से किसी एक की सहायता करेगा। तटस्थ राष्ट्र का कर्तव्य है कि वह दोनों पक्षों में से किसी को भी किसी प्रकार की सहायता न दे। लड़ने वाले पक्षों का कर्तव्य है कि वे तटस्थ राष्ट्रों के अधिकारों की कभी अवहेलना न करें। तटस्थ राष्ट्र किसी पक्ष को शस्त्रों से सहायता नहीं दे सकता, चाहे उसने युद्ध के पूर्व इस प्रकार की सहायता देने का किसी पक्ष को वचन ही क्यों न दिया हो। वह किसी पक्ष को ऋण भी नहीं दे सकता। वह किसी पक्ष की सेना को भी अपनी भूमि पर से नहीं निकलने दे सकता। वह जहाज़ या किसी प्रकार के शस्त्र नहीं बेंच सकता। नियम है कि वह अपनी भूमि और अपने समुद्र पर दोनों पक्ष वालों को लड़ने न दे। यदि किसी पक्ष की सेना उसकी भूमि पर से निकलना चाहे तो उसे तितर बितर कर दे, उसके शस्त्र छीन ले और उसकी सीमा में .क़ैद किये गये किसी पक्ष के सैनिक क़ैदियों को छुड़वा दे। लड़ने वाले दलों का भी कर्तव्य है कि तटस्थ राष्ट्र के राज्य में किसी प्रकार का उत्पात न करें, न वहाँ सिपाही भरती करें और न वहाँ से किसी प्रकार की रसद ही लें। उनके जहाज़ों को, यदि उनमें कोई सन्देहजनक माल न हो, वे न छेड़ें। यदि किसी प्रकार से उनके हाथों से तटस्थ राज्य को कोई क्षति पहुँचे तो उसकी पूर्ति करने और उसके लिए क्षमा माँगने को वे तैयार रहें।

उन्हीं जहाज़ों की तलाशी ली जाती है और वही जहाज़ पकड़े जाते हैं जिन पर "वर्जित" सामान हो। वर्जित सामान से युद्ध-सम्बन्धी वस्तुओं ही का मतलब है। घोड़े, गन्धक, शोरा, जहाज़ के बनाने का सामान—जैसे शहतीरें, इञ्जिन, मस्तूल, बादवान, इञ्जिन की कलें, रस्सियाँ, ताँबा, राल और सन आदि चीज़ें वर्जित समझी जाती हैं। जहाज़ पर रुपया, पहनने के कपड़े और कच्ची धातुओं का होना भी वर्जित मान लिया गया है। कोयला भी वर्जित वस्तु है, परन्तु उसका वर्जित होना इस बात के .फ़ैसले पर अवलम्बित है कि उसका व्यवहार किस काम में होगा। यदि उसका व्यवहार किसी औद्योगिक काम के लिए नहीं, किन्तु किसी युद्ध-कार्य में होने वाला हो, तो उसकी गणना भी, रण-नीति के अनुसार, वर्जित वस्तुओं में होगी। गत रूस-जापान-युद्ध में रूस और जापान दोनों ने कोयले की गणना वर्जित वस्तुओं में ही की थी। उसी युद्ध में रूस ने कच्ची कपास को भी "वर्जित" बतलाया था। जब राष्ट्रों में इस विषय पर बड़ी हलचल मची तब रूस ने अपनी दूसरी घोषणा में यह कहा कि कच्ची कपास ज्वाला-ग्राही पदार्थों के बनाने में काम आती है। इसलिए वह "वर्जित" समझी जाती है। परन्तु सूत आदि शुद्ध कपास की चीज़ें, जिनसे कपड़ा बुना जाता है, "वर्जित" नहीं।

शत्रु के राज्य में फैले हुए तार तोड़े और उसके खम्भे नष्ट भ्रष्ट किये जा सकते हैं, परन्तु जिस तार-द्वारा शत्रु का और किसी तटस्थ राज्य से सम्बन्ध हो उसका वही भाग तोड़ा जा सकता है जो शत्रु की भूमि पर हो। दो तटस्थ राष्ट्रों के बीच में लगे हुए सामुद्रिक तार पर लड़ने वाले दल हस्तक्षेप नहीं कर सकते, परन्तु बहुधा ऐसा होता है कि लड़ने

वाला वह राष्ट्र जो ऐसे तार के विशेष निकट हो उस पर इतना अधिकार प्राप्त कर लेता है कि जब चाहे तब वह उससे भेजी जाने वाली ख़बरों की जाँच पड़ताल कर सके। शत्रु के काग़ज़-पत्रों की गणना वर्जित वस्तुओं में है। जहाँ ऐसे काग़ज़-पत्र मिलते हैं, तुरन्त ज़ब्त कर लिये जाते हैं।

तमिस्रा ।

है शुक्ल पत्त रजनी, तिथि पञ्चमी दो
बीते अभी प्रहर दो सुख से निशा के।
देके प्रकाश अपना कुछ काल चन्द्र
है हो गया गगन से अब अस्त देखो ॥ १ ॥
तारे सभी निज प्रकाश बढ़ा बढ़ा के।
स्पर्धा शशाङ्क-छवि की करते विमूढ़।
होती न किन्तु उनकी वह आस पूरी,
होते बिना बल सदैव सभी निराश ॥ २ ॥
देखा जभी तिमिर ने रवि-चन्द्र-शून्य,
आकाश में तब किया उसने निवास।
सर्व प्रकार अवलम्बनहीन होके
निस्तब्ध है पति-विहीन विभावरी भी ॥ ३ ॥
खद्योत हैं फिर रहे वन में असंख्य;
मानों उतार गहने निशि फेंकती है।
या मूर्खता निरख के उडु-मण्डली की
है अन्धकार करता क्षण अट्टहास ॥ ४ ॥
हैं शान्त मानव, विहङ्गम आदि सारे;
हैं शान्तिहीन रजनीचर हिंस्र जीव,
घू घू निनाद करके सहसा उलूक
हैं रात्रि की शठ भयङ्करता बढ़ाते ॥ ५ ॥
अत्यन्त वेगयुत मारुत के झकोरे
दोलायमान करते विटपावली को।
होता प्रतीत उनके रव से यही है—
मानों दुखी रुदन है करती तमिस्रा ॥ ६ ॥

"मधुर"

नर्त्तकाचार्य्यजी के विषय में विज्ञप्ति।

सरस्वती की गत सितम्बर मास की संख्या में "नर्त्तकाचार्य्य की अमेरिका में चाह" नामक नोट मैंने पढ़ा। पण्डित गिरिधारीलाल तिवारी के कृत्यों का समाचार सुन कर अमेरिका वालों का आश्चर्य्य-चकित होना कोई अस्वाभाविक बात नहीं। जहाँ के मनुष्य प्रत्यक्ष प्रमाण पर ही विश्वास करनेवाले हैं वहाँ वाले भला सुनी हुई बात पर कैसे सहसा विश्वास कर सकते हैं—फिर, इस देश की बात पर जो दुर्भाग्य-वश अन्य देशों से कोसों पीछे पड़ा हुआ है।

एक समय था जब कला-कौशल में भारतवर्ष सबसे बढ़ा चढ़ा था। परन्तु दिनों के फेर से—काल की कुटिल गति की करामात से—अब वे बातें स्वप्न सी हो गई हैं। तथापि अब भी कहीं कहीं नर्त्तकाचार्य्य जैसे महात्मा दिखाई दे जाते हैं। हमारे यहाँ के मामूली बाज़ीगर ऐसी करामातें करते हैं जिनको देख कर दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है। हमने कई दफ़े इन लोगों को कपड़े पर चलते और उछलते देखा है। बीस पचीस सेर वज़नी पत्थर का गोला पैरों से उछाल कर गर्दन पर गिरा देना तो इनके लिए कोई बात ही नहीं।

हमारे यहाँ शान्ति की बड़ी महिमा है। इसीसे जिनमें आश्चर्यकारक शक्तियाँ हैं वे उन्हें दिखाते नहीं फिरते। वे चुपचाप परमार्थ-साधन में लगे रहते हैं। यदि कहीं ऐसे लोगों की प्रवृत्ति ऐहलौकिक होती तो ये दिगन्त तक अपनी यशो-रूपी पताका उड़ाये बिना न रहते। परन्तु इन लोगों के दर्शन तक दुर्लभ हैं।

बात यह है कि यहाँ गुणग्राही लोग कम हैं। आश्चर्य्यजनक-शक्ति-सम्पन्न लोग प्रायः शान्त, एकान्तसेवी और भोले भाले होते हैं। ये लोग पुराने ढँग से रहते हैं। विशेष पढ़े लिखे भी नहीं होते। उन्हें अपने गौरव-लाघव का भी विशेष ख़याल नहीं रहता।

इन लोगों की पहुँच शिक्षित समाज तक बहुत कम होती है। और इन्हें अशिक्षित समझ कर शिक्षित समाज इनकी परवा भी नहीं करता। इसीसे इन लोगों की करामातों का हाल प्रकाशित नहीं होता।

पण्डित गिरिधारीलालजी भी पुराने ढर्रे के आदमी हैं। उनकी कीर्ति सुन कर जब मैं उनका वृत्तान्त जानने के लिए उनके पास गया तब वे बहुत चकराये। मुश्किल से मेरे यहाँ आने और मुझसे अपना हाल बताने के लिए वे राज़ी हुए। सम्भव है, पहले उन्होंने मुझे कोई जासूस समझा हो।

यदि तिवारीजी अमेरिका का निमन्त्रण स्वीकार करके वहाँ जाने की कृपा करें तो भारतवासी अपना गौरव समझेंगे, इसमें सन्देह नहीं। मेरा उनसे पत्र-व्यवहार नहीं; नहीं तो मैं उन्हें अवश्य ही पत्र लिख कर अमेरिका जाने की प्रार्थना करता। मुझे तो सन्देह है कि पण्डितजी ने अपना चरित-सम्बन्धी लेख ही न देखा होगा। मैंने उन्हें सरस्वती की वह संख्या, उनका पता आने पर, भेजने का वचन दिया था। परन्तु, शोक है कि पण्डितजी ने जाने के बाद कोई पत्र ही नहीं भेजा। अब यह भी आशा नहीं कि पण्डितजी को किसी के बिना बताये इस निमन्त्रण का भी समाचार ज्ञात हो सकेगा। इसलिए मैं फ़र्रुख़ाबाद और लखनऊ की शिक्षित मण्डली से सविनय निवेदन करता हूँ कि वे पण्डितजी का पता लगा कर उन्हें उनका चरित-सम्बन्धी लेख तथा निमन्त्रण-पत्र दोनों दिखावें और उनसे अमेरिका जाने के सम्बन्ध में पूँछ करके उनका उत्तर सरस्वती-सम्पादक के पास भेजने की कृपा करें। तब तक मैं अमेरिकावाले बन्धुओं के देखने के लिए तिवारीजी का एक और चित्र प्रकाशित करता हूँ। उसमें पण्डितजी बीचवाली थाली पर एक पैर पूरा जमाये और एक की पड़ी उठाये खड़े होकर नृत्य करने को तैयार हैं। इसके अतिरिक्त और भी कई फ़ोटो निकाले गये थे, परन्तु उनमें से यही कुछ अच्छा था। यह भी मुझे पसन्द नहीं। इसीसे मैंने इसे पहले नहीं प्रकाशित किया था।

यह चित्र पण्डित नाथूराम, जबलपुर, से प्राप्त हुआ है। अतएव मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

गणेशराम मिश्र।

कृत्रिम प्राणसञ्चार की चेष्टा।

अध्यापक शैफ़र वैज्ञानिक संसार में एक बड़े ही प्रसिद्ध पुरुष हैं। इँगलेंड में ब्रिटिश एसोसियेशन नाम की जो बड़ी भारी वैज्ञानिक सभा है उसके वे सभापति हैं। पहले वे लन्दन के यूनीवर्सिटी-कालेज में अध्यापक थे; और, अब, १८९९ से, वे एडिनबर्ग-विश्वविद्यालय में शरीर-धर्म्म-विद्या के अध्यापक हैं। संसार के कितने ही बड़े बड़े विश्वविद्यालयों ने अपनी उपाधियों से उनके नाम को विभूषित किया है। इन्हीं अध्यापक शैफ़र ने स्काटलेंड के डंडी नगर में, गत ४ सितम्बर को, बड़े बड़े वैज्ञानिकों और विद्वानों की एक सभा में जीवन की व्युत्पत्ति के विषय पर एक गवेषणा-पूर्ण वक्तृता दी। उसमें उन्होंने कहा कि वह समय अधिक दूर नहीं जब मनुष्य रसायन-शास्त्र की सहायता से अपनी इच्छा के अनुसार जीवधारियों की सृष्टि करने लगेगा। उनकी इस वक्तृता ने संसार भर में धूम मचा दी है। लोग उनकी वक्तृता पर अपना अपना मत प्रकट कर रहे हैं। धार्म्मिक संस्थाओं के सञ्चालकों ने तो उनकी बे-तरह ख़बर ली है। परन्तु वैज्ञानिक विद्वान् उनके इस भाषण को सुन कर और भी गहरे सोच में पड़ गये हैं। अध्यापक शैफ़र के कथन की सत्यता अथवा असत्यता सिद्ध होने के लिए समय दरकार है। पर, यदि, भविष्यत् में, किसी भी समय, उनका कथन पूर्णतया न सही, किसी अंश में ही, सत्य सिद्ध हो गया तो इसमें सन्देह नहीं कि संसार की काया पलट ही हो जायगी। मनुष्य मनुष्य को न बना पावे; पशुओं को अथवा पशुओं में भी अति-क्षुद्र पशुओं को ही यदि वह बना सके, और इस पर भी वह अपने रचे हुए
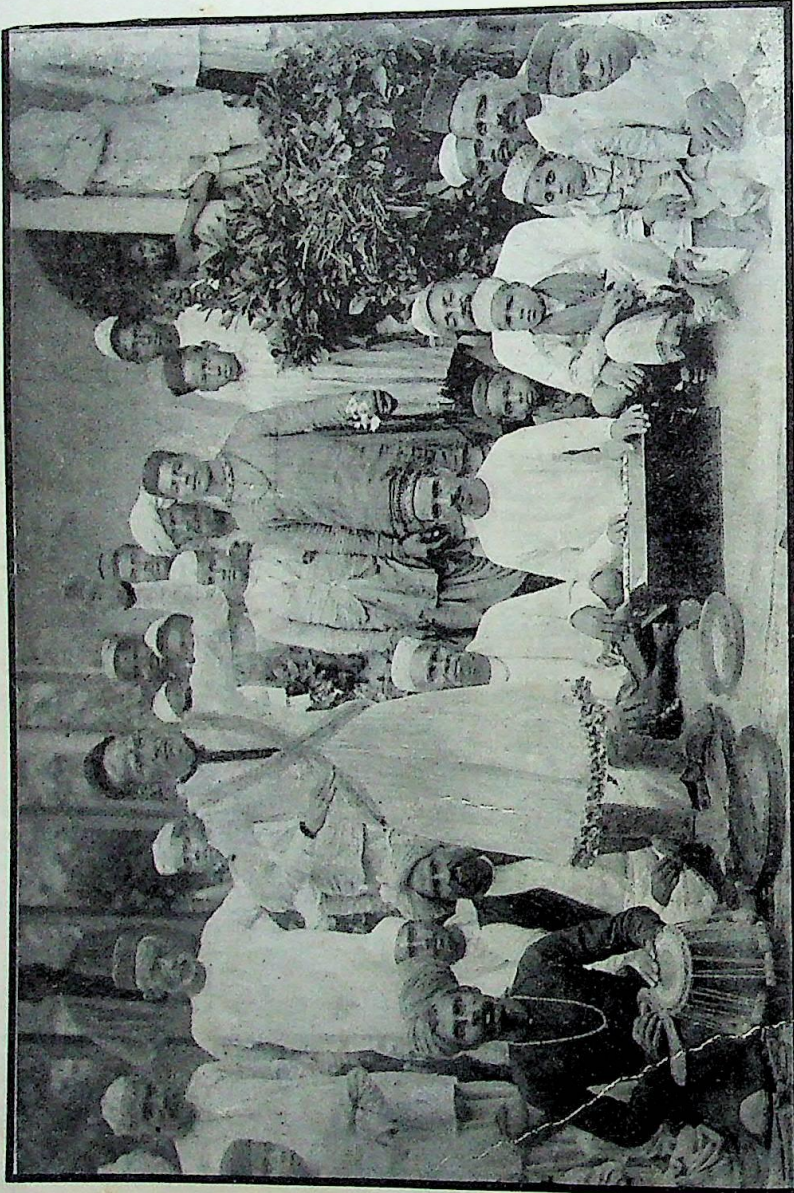
नर्त्तकाचार्य्य पण्डित गिरिधारीलाल की नृत्य-लीला।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

जीवों को अधिक नहीं, दो चार वर्ष नहीं—किन्तु केवल दो चार दिन अथवा दो चार घंटे ही यदि जीवित रख सके—तो भी संसार में जो घोर परिवर्तन हो जायगा उसका अनुमान करना अधिक कठिन नहीं।

शैफ़र साहब का कथन सत्य निकलेगा या असत्य, इसका अभी कुछ ठिकाना नहीं है; परन्तु यदि उनका कथन असत्य ही निकले तो भी संसार को उनकी हँसी उड़ाने का कोई हक़ नहीं। शैफ़र ही पहले वैज्ञानिक नहीं जिनके हृदय में इस विषय पर विचार उठे हों; मनुष्य के मस्तिष्क में यह विषय बहुत दिनों से चक्कर मार रहा है। उस अति-प्राचीन काल से लेकर जिसकी तारीख़ और सन् बतलाने में इतिहास असमर्थ है—आज तक बड़े बड़े विचार-शील विज्ञान-शास्त्र-वेत्ता इस फेर में पड़े रहे हैं। उन्हें सफलता नहीं हुई, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि यदि वे इस फेर में न पड़ते तो प्रकृति की गाँठें उतनी न सुलझी होतीं जितनी सुलझी वे आज देख पड़ती हैं और प्राकृतिक शक्तियाँ मनुष्य के सङ्केत मात्र पर उसकी वह सेवा करती हुई न देख पड़तीं जो आज कर रही हैं। अस्तु। अध्यापक शैफ़र की संसार भर में हलचल मचा देने वाली वक्तृता "सरस्वती" के पाठकों के मनोरञ्जन का कारण अवश्य होगी। अतः उसका सार हम नीचे देते हैं :—

किस चीज़ को हम सजीव कह सकते हैं और किस चीज़ को निर्जीव, इस बात को अभी तक विद्वान् तै नहीं कर पाये; परन्तु विज्ञान की उन्नति हमें यह बतला रही है कि निर्जीव और सजीव चीज़ों में उतना अन्तर नहीं है जितना अभी तक समझा जाता था। बहुत से लोग उस चीज़ को सजीव कहते हैं जिसमें वे समझते हैं कि—"आत्मा" है; और उसे निर्जीव समझते हैं जिसमें उनके विचारानुसार "आत्मा" नहीं है। इसी कारण बहुधा लोग "आत्मा" और "जीव" को एक ही समझते हैं। मेरी वक्तृता से "जीव" का मतलब वह नहीं जो लोग "आत्मा" से लेते हैं। सजीव चीज़ें पदार्थ-संगठित होती हैं। विज्ञान उन्हें पदार्थ से बिलग नहीं समझ सकता। वैज्ञानिक खोज़ों से सिद्ध है कि सजीव और निर्जीव, दोनों ही चीज़ें, एक ही प्रकार के नियमों के अधीन हैं।*

सजीव वस्तुओं के विषय में जितना ही अधिक हम विचार करते हैं उतना ही अधिक हमें यह विश्वास होता जाता है कि उनकी सृष्टि में किसी अज्ञात शक्ति की सहायता की आवश्यकता नहीं। सजीव चीज़ों की सजीवता का प्रमाण उनके हिलने डुलने से मिलता है। जब हम किसी आदमी, कुत्ते अथवा पक्षी को हिलते डुलते देखते हैं तब हम समझते हैं कि वह सजीव है। जब हम एक बूँद पानी में सूक्ष्म-दर्शी यन्त्र द्वारा हज़ारों छोटे छोटे कण इधर उधर तेज़ी से दौड़ते हुए देखते हैं तब हम समझते हैं कि वे कण जीवधारी हैं। ठीक इसी तरह की चलने फिरने वाली कलल-कणिकायें (Cells) हमारे शरीर में भी हैं। वे चलती फिरती हैं; और बनती तथा नष्ट होती रहती हैं। इसलिए हम समझते हैं कि वे सजीव हैं।

परन्तु ऐसी चीज़ें भी हिलती डुलती देखी जाती हैं जिन्हें कोई भी बुद्धिमान् सजीव न कहेगा। तेल की बूँदें स्तब्ध पानी पर छोड़ दीजिए। वे हिलती हुई पानी पर फैल जायँगी। परन्तु इससे यह नतीजा नहीं निकाला जा सकता कि तेल में जीव है। तेल की यह गति रासायनिक क्रिया के कारण है। उसका गतिमान् होना उसे सजीव नहीं बनाता। गतिमान् होना सजीवता का मुख्य चिह्न भी नहीं।

पाचन-शक्ति भी जीवन का चिह्न मानी जाती है। परन्तु ऐसी वस्तुओं में भी पाचन-शक्ति विद्यमान है जिन्हें कोई भी सजीव नहीं कह सकता। इन सब बातों पर विचार करते हुए हम अन्त में इस नतीजे

* हमारे देश के सब से बड़े रसायन-शास्त्र-वेत्ता, अध्यापक जगदीश चन्द्र वसु, पहले ही सिद्ध कर चुके हैं कि संसार की सभी चीज़ें सजीव हैं, निर्जीव कोई नहीं। पाठक देखें कि अध्यापक शैफ़र भी इसी नतीजे के निकट पहुँचते जाते हैं।

पर पहुँचते हैं कि जितने परिवर्तन होते हैं—चाहे सजीव वस्तुओं में हों चाहे निर्जीव में—वे सब आप से आप रासायनिक क्रियाओं से ही हो जाते हैं।

सजीव वस्तुओं के विषय में यह भी कहा जाता है कि वे बढ़ती हैं और अपनी ही दूसरी सजीव वस्तु को उत्पन्न भी करती हैं। परन्तु ये दोनों गुण निर्जीव वस्तुओं में भी पाये जाते हैं। कई चीज़ें ऐसी हैं जिनमें वे सब रासायनिक पदार्थ नहीं, जो जीवन के लिए आवश्यक हैं। परन्तु वे बढ़ती हैं और यदि उन्हें उचित "भोजन" मिले तो उनसे उन्हीं की तरह की दूसरी चीज़ें भी उत्पन्न हो सकती हैं। कितने ही सामुद्रिक जानवरों के अण्डे रासायनिक और वैद्युतिक क्रियाओं द्वारा बढ़ाये जा सकते हैं और यथासमय वे सजीव शरीर में भी परिवर्तन किये जा सकते हैं।

जीवधारियों की शरीर की सजीव कलल-कणिकाओं पर ही उनका जीवन अवलम्बित है। अध्यापक मीशर और कोसेल ने सिद्ध कर दिया है कि वे कणिकायें जिन रासायनिक पदार्थों से संयुक्त हैं उनका जानना कठिन नहीं। हम सब लोग चाहे उच्च कोटि के जीवधारी हों, चाहे पशु या वनस्पति हों, इन्हीं जीवन-कणिकाओं से बने हुए हैं। कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन, नाइट्रोजन और फ़ास्फर आदि ही जीवन की जन्म-दात्री रसायनें हैं। इन्हीं के साथ एक यथेष्ट मात्रा में जल और कुछ नमक की और आवश्यकता है। इन सब चीज़ों का मिश्रण एक ऐसी चीज़ को उत्पन्न करता है जिसे हम जीवन की रासायनिक नीव कह सकते हैं। जब रसायन-वेत्ताओं को अनुभवों द्वारा यह ज्ञात हो जायगा कि किस चीज़ को किस मात्रा में मिलानी चाहिए तब वह समय दूर न रह जायगा जब ऐसी चीज़ें बनने लगें जिन्हें हम सजीव कहते हैं।

विज्ञान हमें यह मानने की आज्ञा नहीं देता कि जीवन की रचना किसी अज्ञात शक्ति द्वारा हुई। हमें यह मानना पड़ता है कि निर्जीव वस्तुओं में शनैः शनैः ऐसे परिवर्तन होते गये जिनसे उनकी अवस्था बदलती गई और अन्त में वे सजीव हो गईं। यह कदापि नहीं कहा जा सकता कि प्राचीन काल ही में ये परिवर्तन हुए थे, अब नहीं होते। अब भी इस प्रकार के परिवर्तन अवश्य हो रहे होंगे, परन्तु दुःख से कहना पड़ता है कि हम उन्हें नहीं जानते। यदि भूत काल में निर्जीव चीज़ें परिवर्तित होती होती सजीव हो सकती थीं तो कोई बात आज ऐसी नहीं देख पड़ती जिससे कहा जा सके कि इस प्रकार का परिवर्तन वर्तमान-काल में नहीं हो रहा है और भविष्यत् में न होगा। पहले इस प्रकार का परिवर्तन कहाँ हुआ और आज कल वह कहाँ हो रहा है—ये प्रश्न कठिन अवश्य हैं, परन्तु ऐसे नहीं कि हल न हो सकें। एक बार निर्जीव वस्तु का रूप बदल कर सजीव हो जाने की देर है, फिर उसके लिए अपनी ही तरह की वस्तुओं को उत्पन्न करके अपनी संख्या बढ़ाना अनिवार्य्य हो जायगा।

कहा जा चुका है कि जीवधारियों के शरीर की कलल-कणिकायें ही उनका जीवन-धन हैं। ये कणिकायें सदा ही बनती और बिगड़ती रहती हैं। साधारण कणिकाओं के नाश से तो जीवधारी को कोई हानि नहीं पहुँचती। पर हृदय, अथवा किसी और मुख्य स्नायु-सम्बन्धिनी कणिकाओं के नाश से ही मृत्यु होती है एक बात और भी देखने में आई है। वह यह कि देखने में तो शरीर निर्जीव हो जाता है, परन्तु उसकी बहुत सी जीवन-कणिकायें मृत्यु के बाद भी घंटों तक और कभी कभी कई दिन तक जीवित अवस्था में पाई गई हैं। कई मनुष्यों के हृदयों की कलल-कणिकायें उनकी मृत्यु के अठारह घन्टे बाद तक जीवित देखी गई हैं। एक रसायनशास्त्री ने तो हाल ही में एक और नई बात खोज निकाली है। उसने एक मेंढ़क को मारा और उसके रक्त के सुफ़ेद कणों को यत्न-पूर्वक रख छोड़ा। फल यह हुआ कि एक वर्ष के बाद भी उन कणों में सजीव कणिकायें मौजूद थीं। कैरल नाम के विद्वान् ने तो इससे भी बढ़ कर एक बात का पता लगाया है। उसने एक पशु की मृत्यु की बाद उसका एक अव-

यव काट लिया और उसे दूसरे जीवित पशु के उसी अवयव के स्थान पर लगा दिया। फल यह हुआ कि वह अवयव जीवित पशु के शरीर में ठीक ठीक काम देने लगा। यह भी सिद्ध हो चुका है कि कोई अवयव शरीर से काट कर यदि यत्न-पूर्वक रक्खा जाय तो उसमें घंटों तक जान रहती है।

ये कलल-कणिकायें रासायनिक क्रियाओं द्वारा बन सकती हैं। रसायन-शास्त्र के विद्वानों ने एक चीज़ बड़े महत्त्व की ढूँढ़ निकाली है। जीवन के लिए वह भी बड़ी आवश्यक है। वह कलल-कणिकाओं में एक प्रकार की तेज़ी उत्पन्न करती है। उसका नाम हारमोन्स (Harmones) है। वह बन ही चुका है। अब वह समय दूर नहीं जब रासायनिक संसार कलल-कणिकाओं की भी रचना करने लगेगा।

यह अध्यापक महोदय की वक्तृता का सार है और यही उनकी जीवन-कणिकाओं की कथा है। इसे सुनने के अनन्तर, वहीं भरी सभा में, कितने ही विद्वानों ने आपकी बे तरह हँसी उड़ाई और आपके कृत्रिम-प्राण-सञ्चार की कल्पना को शेख़-चिल्ली की कहानी बताया। तब से आज तक अनेक पत्रों और पत्रिकाओं में इस विषय की चर्चा बराबर हो रही है। चर्चा करने वालों में अधिक संख्या उन्हीं लोगों की है जो कृत्रिम-प्राण-सञ्चार की आशा को मनोमोदक मात्र समझते हैं। जो लोग विद्या के बल से जीवधारियों की कृत्रिम सृष्टि करने का प्रयत्न कर रहे हैं वे यदि आत्मा को द्रव्यत्वहीन और काल्पनिक समझें तो कोई आश्चर्य नहीं।

चाँद बीबी।

देश उत्तरी जीत पाल नृप-नीति निराली।
महा मुग़ल ने नींव राज की गहरी डाली॥
फिर इच्छा बढ़ चली और भी जय की जय से।
बढ़ता है ज्यों लोभ अधिक धन के सञ्चय से॥१॥

तृष्णा ने कर दिया अन्ध अकबर के मन को।
ठाना उसने उचित लूटना विधवा-धन को॥
राज-लोभ से चढ़ी कुटिलता से उतराती।
मुग़ल-फ़ौज की नदी बही तट, ग्राम बहाती॥२॥

दक्षिण में उस समय महा अन्याय मचा था।
दक्षिण-पति ने समररूप नरमेध रचा था॥
लुटता था धन-धान्य गाँव ऊजड़ होते थे।
अथाइयों में बैठ श्वान-जम्बुक रोते थे॥ ३ ॥

बोकर खेत किसान लड़ाई पर जाते थे।
पर न लौट कर साख काटने को आते थे॥
दुष्टों ने इस काल पुराना वैर निकाला।
भाई का घर किसी बालि ने मिल कर घाला॥४॥

एक मुकुट ने मूँड़ हज़ारों ही कटवाये।
कई कुलों के चिह्न वृथा जग से मिटवाये॥
दो को लड़ते देख तीसरे की बन आई।
फिर वह भी मर मिटा लूट चौथे ने पाई॥ ५ ॥

जो लड़ते थे सो न राज के थे अधिकारी।
धर्म-मूल पर नहीं हुई थी हत्या सारी॥
ब्रह्मा ने युवराज रचा था जिस को सच्चा।
लिये काठ का खंग खेलता था वह बच्चा॥ ६ ॥

बहुत समय तक रुकी न जब लोहू की धारा।
मंत्री, सेना, प्रजा,—तीन ने किया किनारा॥
राज उन्हों ने दिया उसी का था जो स्वामी।
प्रतिनिधि मानी गई चाँद सुलताना नामी॥७॥

बीजापुर के राज-पुत्र की विधवा रानी।
सुलताना थी बाल-भूप की बुआ सयानी॥
निज भाई का पुत्र पुत्र-सम पाल रही थी।
राज-नीति से राज-बखेड़े टाल रही थी॥ ८ ॥

उसका यह अधिकार जिन्हों ने उचित न जाना।
वे वैरी से मिले समझ निज लाभ बिराना॥
लख पर-घर की फूट सेंत में पाय सहाई।
अहमदपुर पर मुग़ल-फ़ौज की हुई चढ़ाई॥ ९ ॥

अबला हो डर नहीं चाँद बीबी ने माना।
बाल-भूप के लिए प्राण भी देना ठाना॥
सरदारों से कहा द्वेष आपस का त्यागो।
सोचो निज कर्त्तव्य देश-रक्षा-हित जागो॥ १० ॥

तीन सुरङ्गें बड़ी वैरियों ने खुदवाईं।
सुलताना ने तल-सुरङ्ग से दो मिटवाईं॥
उड़ी तीसरी दुर्ग-भीत का भाग उड़ाती।
धड़की निज घर-फूट देख वीरों की छाती॥ ११॥

तब कर में तलवार लिये बिजली सी नङ्गी।
पहने पूरा झिलम साज सब साजे जङ्गी॥
घूंघट घाले घटा-रूप सुलताना धाई।
गोलों की बरसात भीत में से मचवाई॥ १२॥

सब लोहा चुक गया, तोप की बाढ़ न चूकी।
तांबा फूँका गया, गई फिर चांदी फूँकी॥
फिर तोपों ने बड़े चाव से फूँका सोना।
फिर रत्नों ने किया अन्त में रण अनहोना॥१३॥

वैरी ठहर न सके प्रबल आगी के आगे।
पल में घेरा उठा छोड़ कर जी सब भागे॥
जाग रात-भर आप भीत उसने जुड़वाई।
नारी-पौरुष देख लाज पुरुषों को आई॥ १४॥

जब दक्षिण की ओर सहायक सेना आई।
पहले से भी अधिक मुग़ल-सेना घबराई॥
फिर मुराद ने लखा रसद दिन दिन घटती है।
जय की आशा छोड़ फौज पीछे हटती है॥ १५॥

सब प्रकार से समझ हीन अपने को बल में।
करली उसने सन्धि चांद बीबी से पल में॥
अकबर को यह हार बुढ़ापे में यों खटकी।
दक्षिण को वह चला बाट भूला, मरघट की॥ १६॥

डाल दिया बुरहानपूर में उसने डेरा।
फिर से अहमदनगर-दुर्ग सेना ने घेरा॥
इस अवसर पर भी न चाल निज चूके द्रोही।
मुग़लों की भी बाट न हत्यारों ने जोही॥ १७॥

धन के बदले महा घोर अघ करने वाले।
बच्चे के भी प्राण सहज में हरने वाले॥
कई दुष्ट जा घुसे महल में सुलताना के।
धोखे में ले लिये प्राण पल में अबला के॥ १८॥

जिस आशा से पाप किया था सरदारों ने।
पूरी की वह मुग़ल-फ़ौज की तलवारों ने॥
देश-द्रोह, नृप-घात, लूट—सब का फल पाया।
पाप-लदे सब कटे और परलोक नसाया॥ १९॥

भला बुरा कुछ नहीं जगत का जिसने जाना।
जिस के कारण मरी अमर होकर सुलताना।
किसी समय जो राज-कोश का स्वामी होता।
बन्दी बन सब छोड़ गया वह बालक रोता॥ २०॥

अकबर की यह जीत हुई ऐसी फलदाई।
चौथेपन की शान्ति न उसने पल भर पाई॥
मरने तक वह रहा दुखी सुत की करनी से।
वैसा ही उठ गया अचानक इस धरनी से॥ २१॥

कामताप्रसाद गुरु।

भूगर्भ-विद्या।

[ले० साहित्याचार्य्य पण्डित रामावतार शर्म्मा, एम० ए०.]

(१)

भूगर्भ-विद्या।

से आयुर्वेद, गान्धर्ववेद आदि बहुत प्राचीन हैं, भूगर्भ-वेद वैसा प्राचीन नहीं है। यह नरशास्त्र आदि के सदृश एक नई विद्या है। सौराण्ड, अर्थात् ब्रह्माण्ड, से पृथक् होने पर पृथ्वी में किन कारणों से कैसे कैसे तह पड़ते गये जिससे आज पृथ्वी वर्त्तमान रूप में पहुँची है, इसका यथाशक्ति निर्णय करना ही भूगर्भ-वेद का काम है। प्रायः सौ वर्ष से इस विद्या का ठीक आविर्भाव समझना चाहिए। इङ्गलैण्ड देश में पहले पहल कुछ लोग इसके निर्म्माण में तत्पर हुए। अब पाश्चात्यों में यह विद्या एक स्वतन्त्र शास्त्र हो चली है। जब तक किसी शास्त्र की एक आध बातें पृथक् पृथक् मालूम रहती हैं, पर उनका परस्पर-सम्बन्ध न ज्ञात होने के कारण कोई अनुगम नहीं दिये जा सकते, तब तक ऐसी बिखरी हुई बातों को शास्त्र का नाम नहीं दिया जा सकता। गोबर इत्यादि कई पदार्थों पर बिजली आसानी से गिरती है, चुम्बक सूई को खींचता है, इत्यादि बातें प्राचीन वैदिकों को तथा चीन आदि देशवालों को भले ही

मालूम थीं। पर इतने से उनमें विद्युद्विद्या का प्रचार था, यह नहीं कहा जा सकता। इसी तरह, भूगोल के भीतर पृथ्वी देवी का नरकासुर से समागम हुआ; तब पृथ्वी से मङ्गल ग्रह उत्पन्न हुआ; इसी लिए मङ्गल का 'भौम' नाम हुआ—यह सब मझले पुराण वालों ने कहा है। यदि पौराणिक अतिशयोक्ति को छोड़ दें तो इस उक्ति का मूल यही मालूम पड़ता है कि पृथ्वी पहले भयानक अग्नि (नरक) से सम्बन्ध रखती थी और इसके तपे हुए वृहद्गोलक से 'मङ्गल' का आविर्भाव हुआ। इसी तरह समुद्र के भीतर बड़े बड़े अग्निपर्वतों की स्थिति का कुछ आभास पाकर पौराणिकों ने बड़वानल अग्नि की कल्पना कर ली थी। इन बातों से जान पड़ता है कि भूगर्भ की स्थिति की एक आध बातें हज़ारों वर्ष पहले से लोगों को विदित थीं। इसमें सन्देह नहीं है। पर पृथक् पृथक् ऐसी एक आध बातों के ज्ञान को विद्या या शास्त्र नहीं कह सकते। मछली, कछुआ, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध आदि क्रम से पृथ्वी में जीवों की उत्पत्ति कहने वालों को ऐसी झलक अवश्य थी कि पहले जलचर, फिर उभयचर, फिर स्थलचर, तब भयानक जंगली मनुष्य, तब छोटे छोटे विकृत मनुष्य, फिर लड़ाके अर्ध सभ्य लोग, फिर पूरे सभ्य वीर, फिर कर्म-कौशल रखने वाले योगी, और फिर जाति के क्षीण होने के समय संन्यासी-वैरागी उत्पन्न होते हैं। इस बात को विकास और विकासोपरोध से सम्बन्ध अवश्य है; पर फिर भी ऐसी बातों के ज्ञान को विकासविद्या नहीं कह सकते। भूगर्भ का और भूतल के जन्तुओं का क्रम-विकास ठीक ठीक समझने का, और उसे शास्त्र में परिणत करने का, सौभाग्य आधुनिक ही ऋषियों को प्राप्त हुआ है। इसलिए इस शास्त्र के आविष्कारक (ऋषि) आधुनिक ही हैं। पहले के लोग यह समझते थे कि अपने हाथों अथवा इच्छा या ध्यान आदि से, किसी साकार या निराकार व्यक्ति या शक्ति ने, जिसने तारा-आकाश आदि को बनाया है, पृथ्वी के तहों को भी बनाया है और उसी ने अपनी इच्छा से इस पर जन्तुओं को भी बनाया है। इसके लिए प्रमाण सिवा क़िस्सा-कहानियों के और कुछ नहीं है। असली बातों का पता या तो प्रत्यक्ष ज्ञान से होता है या अनुमान से। जैसे पहाड़ पर उठा हुआ धुवाँ देखने से मनुष्य कहता है कि पहाड़ पर आग है। या और जगह धुआँ और आग का नियत सम्बन्ध देख कर यदि वह पहाड़ पर धुआँ देखे तोभी मनुष्य अनुमान करता है कि वहाँ आग है। परन्तु अनुमान के खुले शत्रु चार्वाक लोग और उनके अनुगामी अन्य छिपे हुए शत्रु प्रायः कहते हैं कि प्रत्यक्ष-अनुमान से सब कुछ नहीं मालूम हो सकता। क्योंकि अतीत, अनागत सब वस्तुओं को किसी मनुष्य ने नहीं देखा। यहाँ पर 'मनुष्य' शब्द से पुराने और नये सिद्ध, ऋषि, महर्षि आदिकों का ग्रहण नहीं है। क्योंकि अनुमान के शत्रु लोग प्रायः ऐसे लोगों को अमानुष समझते हैं। इन लोगों का यह सिद्धान्त है कि जब दुनिया भर की अतीत, अनागत और वर्त्तमान सारी आग और धुआँ को किसी नें नहीं देखा, तब यह कैसे कहा जाय कि धुआँ है तो आग भी अवश्य है। सम्भव है कि कोई प्राचीन विश्वामित्र या नवीन मुद्गरानन्द तप कर रहा हो और उसके माथे से धुआँ निकल रहा हो। ऐसे अनुमान के विरोधी या तो केवल प्रत्यक्ष ही पर रह जाते हैं या 'बाबावाक्यं प्रमाणम्' बकते रहते हैं। ये यह नहीं समझते हैं कि अनुमानवादी, प्रत्यक्ष-अनुमान से सभी कुछ देखा जाय, यह कभी नहीं कहता। सब लड़कों के माँ-बाप को मैंने देखा है, यह कौन कह सकता है। तथापि अनुमान यही है कि जन्तुओं के माँ-बाप उन्हीं के सदृश जन्तु होते हैं; सिल, लोढ़ा आदमी का माँ-बाप नहीं हो सकता। कहने वाले भलेही कहें कि अगस्त्यजी घड़े से उत्पन्न हुए थे; अग्नि, वायु, प्रजापति, आदि ऋषि शून्य में से चले आये थे; शुकदेव जी आग निकालने की लकड़ियों से पैदा हुए थे। पर ऐसी बातें चाहे किसी की हों, इस देश की हों या अन्य देश की हों, पुरानी हों या

नई हों, कोई विचारवान् इन्हें मान नहीं सकता। यदि कोई पूछे कि जिन जंगलों में हम नहीं गये हैं वहाँ के फल क्या होते हैं, तो यही कहना चाहिए कि और जन्तु वहाँ के फल खा जाते हैं या वे सड़ गल जाते हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि उन जंगलों के फल पिशाच खा जाते हैं, जैसा लड़के आपस में बहुधा कहा करते हैं कि शहर की मिठाइयाँ रात को जिन लोग ख़रीद ले जाते हैं। इसी से प्रत्यक्षानुमानप्रिय वैज्ञानिक लोगों ने, विशेष निर्माणवाद को वादहवाई बातें समझ कर, देखी जाती हुई कार्य्य-कारण की बातों से भूगर्भ और जन्तुओं की स्थिति के निश्चय करने की चेष्टा का प्रारम्भ हाल में किया है। भाफ़ निकलने से जल होता है, यह प्रत्यक्ष सिद्ध है। आग पर पानी का बर्तन यदि रक्खा जाय और खौलते हुए पानी के बर्तन के कुछ ऊपर कटोरा आदि रक्खा जाय तो उस पर जल के कण आ जाते हैं। ऐसे ही दिन भर की गरमी से उड़े हुए पानी के कण रात को खिड़की के शीशे पर लग जाते हैं, जिन्हें देख कर कवियों ने चन्द्रकान्त-मणि की कल्पना कर ली थी। ऐसे ही, गरमी में उड़ा हुआ भाफ़ ऊपर ठंढी वायु में जाकर पानी या बनौरी के आकार में नीचे गिरता है। ऐसी बातों से वैज्ञानिकों ने यह अनुमान किया है कि सौराण्ड से निकलने के बाद चिरकाल तक भाफ़ निकलते निकलते जब भूतल ख़ूब ठंढा हो गया और चारों ओर की हवा भी ठंढी हो चली तब भाफ़ पानी के रूप में परिणत हुआ। पृथ्वी प्रायः जलमयी हो चली। गरमी उसके भीतर ही भीतर रह गई। अब प्रत्यक्ष निर्णीत बातों से यह देखना चाहिए कि पृथ्वी के ऊपर आज जो पदार्थ हैं उनकी स्थिति, गति आदि का ठिकाना बिना विशेष निर्माण के किस प्रकार हुआ। क्योंकि विशेष निर्माण यदि कोई बात होती तो आज भी जहाँ तहाँ अद्भुत वस्तु और वे माँ-बाप के ऋषि आदि उत्पन्न हो जाया करते। प्रत्यक्ष निर्णीत बातों से यह देखने में आया है कि जल के प्रवाह से कहीं कहीं तो पृथ्वी घिसती जाती है और कहीं उस पर पांक जमती जाती है। इससे एक अनुमान यह हुआ कि जल के व्यापार के कारण पृथ्वी के तल पर बहुत से अदल बदल हुए हैं। दूसरी बात यह देखने में आई है कि कहीं कहीं अग्निगर्भ-पर्वतों के भीतर से दहकती हुई चीज़ें निकलती हैं, जो पृथ्वी के तल पर ढेर की ढेर पड़ी रहती हैं। तो अग्नि और जल ये दोनों पृथ्वी के अदल बदल के मुख्य कारण हुए। पृथ्वी की सरदी, गरमी आदि बदलने के कुछ और भी कारण ऐसे हैं जिन्हें पृथ्वी की गति से सम्बन्ध है। वैज्ञानिकों ने यह अनुमान किया है कि पृथ्वी की अक्षयष्टि सूर्य्य से एक ही सम्बन्ध नहीं रखती; कभी कभी बदल भी जाती है। इस बदलने के कारण पृथ्वी के कुछ भागों में अकस्मात् सरदी या गरमी के बढ़ जाने की सम्भावना रहती है। ऐसे ही कारणों से ध्रुव-प्रदेश के चारों ओर किसी समय इतनी बर्फ़ पड़ी कि वहाँ के मनुष्य, रोमशहस्ती आदि अनेक जीव बर्फ़ में जम गये। आज तक भी ध्रुव के चारों ओर कुछ दूर तक यह बर्फ़ वर्त्तमान है।

ऊपर कहे हुए कारणों में पहले पहल वैज्ञानिकों ने दो मुख्य कारणों का अवलम्बन किया। आज से प्रायः सौ वर्ष पहले इन वैज्ञानिकों ने अपने दो दल कर डाले। कुछ तो सुतनु नामक विद्वान् का पक्ष लेकर अग्नि के उद्भेद के कारण ही पृथ्वी में सब परिवर्त्तन हुए, ऐसा मानने लगे। ये वैवस्वत दल वाले कहे जाते हैं। दूसरे दल वाले बरनर साहब के अनुसारी थे। ये जल को ही सारे परिवर्त्तन का कारण समझते थे। ये वारुण दल वाले कहे जाते हैं। अन्ध-हस्ति-न्याय से दोनों दल वाले सत्य के दो अंशों को लेकर चिरकाल तक नाहक़ आग्रह में पड़े थे। परन्तु अब भूगर्भ-विद्या वालों ने ख़ूब समझ लिया है कि न केवल जल से और न केवल अग्नि ही से, किन्तु दोनों ही के कारण भूतल में अदल बदल होते रहते हैं।

संक्षेप से इस प्रकार यहाँ भूगर्भ-विद्या के आविर्भाव का वृत्तान्त दिया गया। इस विद्या के अनेक अङ्ग हैं। पृथ्वी-ग्रह का सूर्य्य आदि से क्या सम्बन्ध है और पृथ्वी को सौराण्ड से अलग हुए कितने दिन हुए, ऐसी ऐसी बातों का निश्चय करना इस विद्या का पहला उद्देश है। वायुमण्डल, जल-मण्डल और पाषाणमण्डल पृथ्वी के तीन अङ्ग हैं। इन अङ्गों में क्या क्या द्रव्य हैं और उनकी संघटना कैसी है, इन बातों का निश्चय करना इस विद्या का दूसरा उद्देश है। अग्नि और जल के कारण कैसे कैसे परिवर्त्तन पृथ्वी-तल में होते हैं, इसका निश्चय करना इसका तीसरा उद्देश है। भूगर्भ के गठन का निश्चय करना चौथा उद्देश है। किस क्रम से वर्त्तमान पृथ्वी-तल बना, इस बात का निश्चय करना इस विद्या का पाँचवाँ उद्देश है। उद्भिद् और जीवों का विकाश किस क्रम से पृथ्वी के अतीत और वर्त्तमान तल पर हुआ, इसका निश्चय करना विकाश-विद्या का उद्देश है। विकाश-विद्या वस्तुतः एक स्वतन्त्र ही शास्त्र है, तथापि भूगर्भ-विद्या से उसका ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध है कि यहाँ दोनों पर एक ही साथ विचार करना उचित समझा गया है।

१—पृथ्वी की सृष्टि।

पाणिनि के अनुसार सृष्टि का अर्थ है अलग होना। उपनिषदों में भी आत्मा से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से ओषधियाँ, ओषधियों से जीव हुए—यही बोली रक्खी गई है। पर श्लोक बनाने वाले भृगु आदि धर्मशास्त्रियों ने और मझले पौराणिकों ने मनुस्मृति, भागवत आदि की कविता में सब वस्तुओं में स्त्री-पुरुष-भाव का आरोप करके एक ऐसा रूपक खड़ा किया है जिससे कुम्हार और बढ़ई आदि जैसे कृत्रिम वस्तुओं को बनाते हैं वैसे ही पृथ्वी, आकाश, उद्भिद्, जीव आदि को भी किसी कारीगर ने बनाया है, ऐसा ख़याल बहुतेरों को पैदा हो जाता है। दर्शन और विज्ञान से कम परिचय रखने के कारण मतवाद वाले सभी जगह ऐसे ही रूपकों का झण्डा खड़ा करते हैं। अब यदि कविता के रूपकों और अतिशयोक्तियों को छोड़ें और दर्शन और विज्ञान की रीति से असली बात का यथाशक्ति निश्चय करना चाहें तो सौराण्ड से पृथ्वी कब निकली, इसका अनुमान इन बातों से हो सकता है:—(१) ताप किस हिसाब से तप्त पदार्थ से बाहर होता है। (२) प्रतिवर्ष कितनी मोटी पाँक कितने जल के प्रवाह से जमती है। (३) पानी में नमक आदि ख़ास ख़ास द्रव्यों का कितना अंश कितने दिनों में इकट्ठा होता है। (४) पृथ्वी की गति और मेरुओं का चिपटा होना। (५) सूर्य्य के ताप का समय। ऐसी ही ऐसी बातों से सौराण्ड से पृथ्वी की सृष्टि, अर्थात् उसके पृथक् होने के समय, का किसी तरह कुछ अन्दाज़ा हो सकता है। इन गणनाओं में बहुत सन्देह और मत-भेद होने की सम्भावना है। पर करें क्या? ऐसी गणना तो प्रत्यक्ष पर अवलम्बित है और प्रत्यक्षमय लौकिक बातों में कोई गड़बड़ हो तो आश्चर्य्य ही क्या है। आश्चर्य्य तो इस बात पर होता है कि दिव्य पुस्तकों में भी दिव्य दृष्टि वाले वक्ता भी, सर्वज्ञ होने पर भी, परस्पर विरुद्ध बातें कहते हैं। पच्छिमी लोग सृष्टि को हुए चार ही पाँच हज़ार वर्ष मानते हैं। पूर्वी लोग सृष्टि हुए अनेक करोड़ वर्ष मानते हैं। पैर से चलते चलते फिसलें भी, या रेल से चलते चलते गाड़ी टकराने से मर भी जायँ तो सिर से चलने या प्राणायाम से चलने की चेष्टा कैसे करें। प्रत्यक्ष-अनुमान से धोखा खाते खाते भी, बादहवाई बाबा-वाक्यों पर विश्वास करके, दो दिन की या दो करोड़ वर्ष की सृष्टि कैसे मानें। बादहवाई बातों को छोड़ कर गणित आदि के सीधे रास्ते से चलते चलते जहाँ तक पहुँचें वहीं ठीक है। निश्चय-भूमि में जायँ तो भी अच्छी बात है; सन्देह-भूमि में जायँ तो भी अच्छी बात है।

जो चार पाँच गणनायें भूसृष्टि के निश्चय-सम्बन्ध में, अवलम्बरूप, ऊपर सूचित की गई हैं उनके अनुसार कलवीण आदि महर्षियों ने

अनुमान किया है कि प्रायः दस करोड़ वर्ष पहले पृथ्वी सौराण्ड से अलग हुई थी। इन वैज्ञानिकों ने यह दिखलाया है कि यदि पृथ्वी दस करोड़ वर्ष से इधर की होती तो उसके भीतर जैसी गरमी आज है उससे बहुत अधिक होती। इतने समय से बहुत अधिक पुरानी भी यदि पृथ्वी होती तो भी गणित के अनुसार ताप नीचे बढ़ता हुआ न पाया जाता, जैसा कि आज कल पाया जाता है। समुद्र के ज्वारभाटा के आकर्षण के कारण पृथ्वी की परिवर्त्तनगति पहले से क्रमशः धीमी होती जाती है। यदि पृथ्वी एक अर्बुद वर्ष (अर्थात् १० करोड़) से बहुत पुरानी होती तो प्रबल वेगवती परिवर्त्तन-गति के कारण ध्रुव-प्रदेश इस समय जितने चिपटे हैं उससे कहीं ज़ियादह चिपटे होते। सूर्य्य की गरमी पृथ्वी पर कितने दिनों से आ रही है, इसकी गणना करने के लिए भी कितने ही लोगों ने चेष्टा की है। पर इस विषय का गणित ठीक नहीं हो सकता। रदीय नामक द्रव्य हाल में एक ऐसा ज्ञात हुआ है जिससे सम्भव है कि पृथ्वी के भीतर की गरमी बहुत दिनों से एक ही प्रकार की रही हो। इस द्रव्य के ज्ञात होने से कलवीण आदि वैज्ञानिकों की गणना में बहुत कुछ सन्देह हो गया है। इसलिए भूगर्भ-वेदियों का अनुमान है कि पृथ्वी की आयु एक अर्बुद वर्ष से कहीं अधिक हुई। नदियों के प्रवाह से एक जगह की ज़मीन किस हिसाब से घिसती है और दूसरी जगह किस हिसाब से पाँक जमती है, इसके गणित से भी भूमि की अवस्था का कुछ अन्दाज़ा लग सकता है। अमेरिका की मिश्रशिप्रा नदी प्रति वर्ष सामान्यतः एक फुट के षटसहस्रांश ($\frac{१}{६०००}$) के हिसाब से अपने तल को घिस कर मिट्टी समुद्र में ले जाती है। अर्थात् ६००० वर्ष में १ फुट ज़मीन वह खा जाती है। अब यद्यपि यह सम्भव है कि प्राचीन समयों में अग्नि-गर्भ पर्वतों या नदियों का वेग आज से कहीं बढ़ चढ़ कर रहा होगा, तथापि मिश्रशिप्रा के व्यापार को देखने से यह जान पड़ता है कि कई करोड़ वर्षों में एक समूचा महाद्वीप एक जगह से कट कर दूसरी जगह बन सकता है। इसी प्रकार योग्यतम जन्तुओं की रक्षा और विकास के क्रम से एक जाति के जन्तुओं से दूसरी जाति के जन्तु बनने के लिए कितने अधिक समय की अपेक्षा है, इसका ख़याल करने से भी पृथ्वी की अवस्था अनेक कोटि वर्ष की होने का अनुमान होता है। तथापि इन बातों से पृथ्वी की अवस्था का कुछ पता नहीं लगा। बात अभी सन्देह ही में रह गई। इससे कुढ़ कर कितने ही दिव्यदृष्टि वाले समझेंगे कि इस अनिश्चय से तो दिव्यदृष्टि ही के द्वारा सब बातों का निश्चय अच्छा। पर यह बात वैसे ही है जैसे 'मुद्गर-दूत' के नायक श्रीमान् मूर्ख-देवजी ने लोगों को उपदेश दिया था कि लड़के बहुत जल्दी जल्दी बीमार हो जाते हैं और मर जाते हैं। इस लिए पत्थर या लोहे के लड़के रक्खे जायँ तो बहुत सुभीता हो। वैज्ञानिकों का यह नियम है कि जिस काम के लिए जो वस्तु मिल सके वह चाहे कितनी ही अपूर्ण क्यों न हो उसी से काम लेना चाहिए, जब तक कोई ठिकाने की चीज़ उससे अच्छी न मिले। ये लोग गप्पों से कभी काम नहीं लेते। रेल का टिकट लेने में कितनी ही धक्कम-धुक्की हो, खड़ाऊँ पर उड़ने का, या पिनिक की समाधि में ध्यान से चाहे जहाँ चले जाने का, यत्न ये लोग नहीं करते। यहाँ केवल राह दिखला दी गई है कि ऐसी ऐसी बातों के मूल पर पृथ्वी की अवस्था का अनुमान हो सकता है। इसी रीति से लोग अन्वेषण कर रहे हैं और अन्वेषण करना ही चाहिए। बिना मूल के जैसा जी में आवे वैसा निश्चय कर देना और लोगों को वैसाही उँटवा पकड़ पकड़ा देना विज्ञान का काम नहीं है। राह दिखलाने वाले का यही काम है कि छोटे बड़े शहरों की टूटी फूटी राह, जैसी वस्तुतः, वर्त्तमान हो, दिखला दे। शुद्ध सोने के शहरों में पहुँचने के लिए शुद्ध हीरे कुटी हुई सड़कें बतलाना उन लोगों का काम है जिनके यहाँ चिन्तामणि, कल्प-वृक्ष आदि अधिकता से हुआ करते हैं।

(असमाप्त)

चांद बीबी।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।
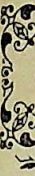
धातुओं का इतिहास ।

[लेखक बाबू जगन्मोहन वर्म्मा]

(२)

गम् = गति

किसी भारी वस्तु के ऊपर से गिरने में 'गम्'-'धम्' आदि शब्द होते हैं। इसी के अनुकरण पर संस्कृत में 'गम्' धातु बना है। इसी गम् धातु से गमन आदि शब्द निकले हैं। गति करने ही से गाय को 'गो' कहते हैं। गोला भी लुढ़काने से लुढ़कता है। इसी लिए गोले को भी संस्कृत-भाषा में 'गो' कहते हैं। समस्त गति का आधार पृथिवी को भी प्राचीनों ने 'गो' कहा है। 'गो' शब्द की व्युत्पत्ति करते समय यास्काचार्य्यजी निरुक्त में कहते हैं:—'यच्चास्यां भूतानि गच्छन्ति'। गति ही की प्रधानता से वेदों में सूर्य्य, रश्मि, बाण, इन्द्रियादि को 'गो' कहा गया है। गाय 'गै गै' शब्द करती है।। इसी से 'कै' और 'गै' दो धातुओं की सृष्टि हुई; और वे दोनों शब्द के अर्थ में लिये गये, जिनसे 'गान', 'गन्धर्व' आदि कितने शब्द निकले। 'गम्' का 'गाङ्' होकर गति के अर्थ में रहा। घम् से 'घम्व गतौ' गत्यर्थक धातु निकला। इस प्रकार 'गम्'-'घम्' शब्द के अनुकरण पर संस्कृत-भाषा के कितने ही धातुओं की सृष्टि हुई।

गच्छ् = गति

कोई वस्तु यदि ऊँचे स्थान से नीचे को गिरे और नीचे की भूमि गीली या पङ्किल हो तो उसके गिरने से 'गच्च, गच्छ,' आदि शब्द होते हैं। इस शब्द का अनुकरण रूप 'गच्छ' धातु गति अर्थ में लिया गया। यह धातु वैदिक काल में स्वतन्त्र धातु था। इसी से 'गच्छ' शब्द बना है, जिसका अर्थ वृक्ष है। इसी से प्रान्तिक भाषा का शब्द 'गाछ' बना है, जिसका प्रयोग बिहार और बङ्गाल में अब तक वृक्ष के अर्थ में होता है। जगत् शब्द भी गच्छ के अन्त-वर्ण के स्थान पर 'त' आदेश करने तथा आदि में 'ज' का आगम करने से बना है। इसी धातु के 'ग' के स्थान में 'ज' और 'च्छ' के स्थान में 'क्ष' आदेश करने से 'जक्ष' धातु गत्यर्थक बना, जो पीछे से भक्षण के अर्थ में इस कारण प्रयोग होने लगा कि खाने में भी मुख के अवयवों में गति होती है। पाणिनि आदि प्राचीन संस्कृत के वैयाकरणों ने जब देखा कि संस्कृत में विद्वान् लेखक 'गम्' धातु के वर्तमानकालिक रूप 'गमेति' आदि का प्रयोग न करके 'गच्छति' आदि का प्रयोग करते हैं तब 'गमयमांछ' सूत्र से 'गम्' के स्थान में 'गच्छ' कर डाला। पर पाली भाषा में गम और गच्छ दोनों पृथक् पृथक् धातु माने गये हैं और दोनों के सब रूपों का प्रयोग त्रिपिटक आदि ग्रन्थों में मिलता है।

दम्-धम् = आघात

किसी वस्तु से पृथिवी पर आघात पहुँचाने से धम्-धम्, दम्-दम् आदि शब्द होते हैं। इस शब्द के अनुकरण पर संस्कृत-भाषा के 'दम्' धातु की कल्पना की गई। पहले 'दम्' धातु का प्रयोग आघात पहुँचाने के अर्थ में होना प्रारम्भ हुआ। पीछे से जब यह देखा गया कि जिस प्राणी पर आघात पहुँचाया जाता है वह शिथिल होकर वशीभूत हो जाता है तब इसका प्रयोग वशीभूत करने के अर्थ में होने लगा। यह भी देखा गया कि विशेष आघात पहुँचने से पदार्थों के अङ्ग भङ्ग हो जाते हैं और वे टूट फूट जाते हैं; तब यह अर्थ भी इसके साथ जोड़ दिया गया। इसका उदाहरण 'दन्त' शब्द है। दाँतों को दन्त इसी लिए कहने लगे कि दाँतों से ही अन्न या खाई हुई वस्तु कुचल कर खाने योग्य होती है। इसी 'दम्' धातु का तदाकार शब्द 'दम' है, जिसका प्रयोग दण्ड के अर्थ में होता है। दाँतों से पदार्थों को काट भी लेते हैं। इस प्रकार बार बार देखने से लोगों ने इसी 'दम्' के 'म्' के स्थान में 'श' आदेश कर 'दश्' धातु काटने के अर्थ में लिया। इसी 'दश्' धातु से बने

हुए 'दंश', 'दंष्ट्रा', आदि कितने ही शब्द अब तक संस्कृत-भाषा में मिलते हैं। जब 'दश्' या 'दंश्' धातु काटने के अर्थ में प्रयोग होने लगा तब बहुत पीछे 'श्' का लोप हो गया और 'द' के स्वर को दीर्घत्व होकर 'दा' धातु काटने के अर्थ में प्रयोग होने लगा। फिर 'अ' का 'ओ' होकर 'दो' धातु खण्डन करने के अर्थ में प्रत्युक्त होने लगा, जिससे 'द्वि' शब्द बना। पदार्थों को काटने से उनके दो टुकड़े हो जाते हैं। इसी से 'द्वि' शब्द दो के अर्थ में प्रयोग होने लगा। पहले लोगों के पास इतनी समाग्रियाँ न थीं कि कोई पदार्थ वे समूचा का समूचा किसी अपने इष्ट मित्र आदि को दे सकें। उनके घर न था; वे खेती न करते थे और न अन्न ही संग्रह करते थे। केवल फल आदि खाते थे। और यदि कोई इष्टमित्र आ जाय तो उसे उसी में से काट कर प्रेमपूर्वक देते थे। इसी आशय को लेकर 'दा' या 'दो' खण्डनार्थक धातुओं से 'दा' धातु का दान के अर्थ में ग्रहण होने लगा।

इस प्रकार 'दम्' से अनेक शब्दों और धातुओं की सृष्टि हुई। पहले 'दम' शब्द का प्रयोग आघात पहुँचाने के अर्थ में होता था। उसी का अनुकरण 'धम्' धातु भी धौंकने के अर्थ में प्रयुक्त होता है। पूर्व काल में 'दम्' और 'धम्' धातुओं के अर्थों में उतना अन्तर न था जितना अब है। स्वयं वेदों में 'धम्' धातु का प्रयोग आघात पहुँचाने के अर्थ में कई स्थलों में मिलता है। "स बहुभ्यांधमति सं पतत्रैः" आदि कितने ही उदाहरण हैं। अग्नि पर मुख द्वारा वायु का आघात पहुँचाया जाता है। इसी लिए 'धम्' धातु फूँकने के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। गीता में 'शङ्खं दध्मौ' पद है। वहाँ 'धम्' या 'ध्मा' धातु साधारण फूँकने या मुख की वायु से आघात पहुँचाने के अर्थ में लिया गया है। पीछे यह भी देखा गया कि अग्नि या अन्य पदार्थ, जिस पर मुँह की वायु आदि से आघात पहुँचाया जाता है, काँपने लगते हैं। इस अर्थ को लेकर 'धम्' या 'ध्मा' से 'धू', 'धु' आदि धातु 'कम्पन' अर्थ में लिये गये। आग से धुआँ जब निकलता है तब काँपता हुआ निकलता है। इसी से उसे 'धूम' कहते हैं। अथवा फूँकने या वायु के आघात पहुँचाने से आग सुलगती है; तब धुआँ होता है; इसलिए उसे धूम कहने लगे हैं। आघात यदि किसी प्राणी पर पहुँचे तो उसे चोट भी लगती है। इस भाव को लेकर 'धुर्व' धातु हिंसा के अर्थ में लिया गया। हिन्दी-भाषा की 'धुरना' या 'थुरना' क्रिया इसी से निकली है। अग्नि को फूँकने से गरमी और प्रकाश उत्पन्न होता है। इस भाव को लेकर 'धूप' धातु का ग्रहण दीप्ति और ताप के अर्थ में किया गया। इसी धातु से हमारी हिन्दी-भाषा की क्रिया 'धूपना' निकली है, जिसका अर्थ दुःख उठाना है। लोग कहते भी हैं—'बहुत दौड़े धूपे तब उसका पता लगा'। घाम के अर्थ में 'धूप' इसी धातु से बना है, जिसका प्रयोग यद्यपि संस्कृत-ग्रन्थों में नहीं मिलता, पर लोक में अब तक होता है। जब किसी पर आघात पहुँचाया जाता है तब वह उस आघात को रोकता है, या उस वस्तु को, जिससे आघात पहुँचाया जाय, पकड़ने की चेष्टा करता है, अथवा पकड़ ही लेता है। इस भाव को लेकर, इसी अनुकरण से, 'धा' 'धर' (धृ) आदि धातु धारण करने के अर्थ में प्रयुक्त होने लगे। फिर इनसे सहस्रों शब्द निकले। इस प्रकार साधारण आघात के—'दम्, धम्' अनुकरण पर हमारी संस्कृत-भाषा के अनेक धातुओं की सृष्टि हुई।

वच=शब्द

गीली भूमि पर या कीचड़ में ऊपर से किसी वस्तु के गिरने से 'पच', 'फच' या 'वच' शब्द होता है और गिरने के आघात से कीचड़ इधर उधर फैल जाता है। इन अनुकरण शब्दों को लेकर प्राचीनों ने अनेक धातुओं की सृष्टि की। पहले 'वच' धातु की कल्पना केवल शब्द करने के अर्थ में की गई। उसी से हमारी प्राचीन भाषा के शब्द 'वचन', 'वाक्', 'वक्तृ' आदि लिये गये। फिर यह विचार कर कि गति

से ही यह शब्द हुआ है 'वज' 'विज', 'व्रज' आदि अनुकरणों का प्रयोग गति के अर्थ में होना प्रारम्भ हुआ। इन धातुओं से हमारे वज्र, विघ्न, व्रज आदि कितने ही शब्द बने हैं। फिर उन लोगों का ध्यान कीचड़ के फैलाव की ओर गया और 'वच' के ही अनुकरणरूप 'पच' धातु को विस्तार के अर्थ में लिया, जिससे 'पङ्क' 'पक्ष' आदि शब्द बने हैं। विस्तार किये जाने या फैलने ही से 'पक्ष' अर्थात् पंख या डैने को पक्ष कहते हैं। पक्ष फैला कर ही पक्षी उड़ते हैं। पक्षियों के दो पक्ष होते हैं, एक एक ओर दूसरा दूसरी ओर। इसी अर्थ को लेकर 'पक्ष' पीछे से 'ओर' के अर्थ में लिया गया। तदाकार होने से कन्धों को भी 'पक्ष' कहने लगे, और महीने के दो भाग होने से लोगों ने 'पखवारे' को भी 'पक्ष' कहना प्रारम्भ किया। बाण में पक्षियों के पर लगते हैं। इस लिए बाण को भी पक्षी कहते हैं। इसी धातु से 'पच' शब्द बना है, जिसका अर्थ पहले विस्तार था, पीछे वह पाँच की संख्या में रूढ़ माना गया। हाथों की उँगलियों को फैलाने से पाँचों उँगलियाँ पृथक् पृथक् दिखाई पड़ती हैं। इसी भाव को लेकर 'पञ्च' शब्द पाँच की संख्या का बोधक माना गया। पूर्व-काल में भोजन पात्रों में नहीं पकाते थे; किन्तु आग पर फैला फैला कर भून लेते थे। इस भाव को लिये हुए 'पच्' धातु का प्रयोग पकाने के अर्थ में होने लगा। पकने पर वस्तुओं का पानी सूख जाता है और वे खाने योग्य हो जाती हैं। इस अर्थ को लेकर पूर्वजों ने 'पच्' धातु में यह अर्थ और भी जोड़ लिया और डाल के पके हुए फल को भी वे 'पक्का' कहने लगे। अथवा यह विचार कर पेड़ों के फलों के लिए इस धातु का प्रयोग हुआ कि वे पक जाने पर गिर पड़ते हैं। पीछे से कच्चे फलों को भूनने के लिए भी 'पच्' धातु का प्रयोग आरम्भ हुआ। भूनने से चीज़ें जल भी जाती हैं। अतः जलने या जलाने के अर्थ में भी 'पच्' धातु का प्रयोग होने लगा और 'इष्टिकां पचति' आदि प्रयोग होने लगे। अन्न खाने पर जीर्ण हो जाता है; और, वस्तुओं की अवस्था भी पकने पर बदल जाती है। इस आशय को लेकर खाना हज़म होने के अर्थ में भी 'पच्' धातु के प्रयोग का प्रारम्भ हुआ और पचाने की शक्ति को 'पाचन' शक्ति कहने लगे। पकने पर पदार्थ शुद्ध हो जाता है। इस भाव को लेकर 'पाचक' शब्द से 'पावक' शब्द, 'च' के, स्थान में 'व' आदेश करके बना। 'पच्' से 'पाव' (पू) धातु पवित्र करने के अर्थ में लिया गया; और, वायु सुखाता है, इससे उसको 'पवन' कहने लगे। 'पच्' धातु का तदाकार ही 'पज्' धातु गति के अर्थ में लिया गया। (पू) धातु पवित्र करने के अर्थ में लिया गया। पीछे से यह देख कर कि पङ्क अर्थात् कीचड़, जो किसी वस्तु के गिरने से इधर उधर फैलता है, कुछ देर में सूख जाता है, 'पच्' धातु का अर्थ काठिन्य हो गया। पज्र शब्द, जो वज्र से बिलकुल मिलता जुलता है, कठिन के अर्थ में वेदों में मिलता है। इसी धातु के आदिम विस्तार के अर्थ को लेकर संस्कृत-भाषा का 'पञ्जर' शब्द बना है, जिसका अर्थ पसली है। इसी शब्द से हमारा 'पांजर' शब्द बना है। पीछे से पञ्जर ठटरी के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। इसी शब्द के अनुकरण पर संस्कृत का 'पिस्' धातु 'च' के स्थान में 'स' करने से विस्तार और गति के अर्थ में लिया गया। फिर यह देख कर कि भारी वस्तु गिरने पर नीचे की नरम वस्तु चूर चूर हो जाती है 'पिष्' धातु 'चूर्ण' करने के अर्थ में लिया गया और 'पिष्ट' आदि शब्द उससे निकले। इसी अर्थ को लिये हुए 'पिश्' धातु, पीछे से, काटने आदि के अर्थ में लिया गया। उन लोगों ने यह भी देखा कि जो वस्तु गीली मिट्टी अथवा कीचड़ में गिरती है वह वहाँ घुस जाती है। इस भाव को लेकर उन्होंने 'पिश्' के 'प' के स्थान में 'व' करके 'विश्' धातु प्रवेश आदि अर्थों में लिया। इसी विश से 'विष्' धातु, गति अर्थ में, वस्तु की गति के भाव को लेकर, निकाला गया। इसी 'विश्' के 'श' को 'ध'

करके 'विध्'धातु वेधने के अर्थ में लिया गया। 'विश्' धातु की 'इ' को 'अ' से बदल कर 'वस्' धातु का प्रयोग बसने, ठहरने आदि अर्थों में होने लगा, जिससे वसु, वस्तु आदि कितने ही शब्द निकले। पीछे यह भी देखा गया कि जो जहाँ बहुत दिनों तक रहता है उसे उससे प्रेम हो जाता है। इस भाव को लेकर 'वस्' धातु का प्रयोग प्रीति के अर्थ में होना प्रारम्भ हुआ। लोग जिससे प्रीति रखते हैं उसी को अपने यहाँ या पास बैठाते, या धारण, ग्रहण आदि करते हैं। इस भाव से 'वस्' धातु धारण आदि अर्थों में प्रयुक्त होने लगा। यह सब होने पर भी 'वस्' धातु अपने विस्तार के अर्थ को लिये रहा। इसी लिए 'वस्त्र' 'वसा' 'विवस्वान्' आदि शब्द अपने विस्तार अर्थ को ग्रहण किये हुए हैं। वस्त्र फैलता है; वसा या चिकनाई किंवा चर्बी, गरमी पाकर फैलती है, सूर्य्य प्रकाश को फैलाता है। इसी से पूर्वजों ने 'वस्' धातु को, सूर्य्य के प्रकाश फैलने के भाव को लेकर, प्रकाश के अर्थ में लगाया। फिर इसी से वासर आदि कितने ही शब्द उन्होंने बनाये। इसी 'वस्' धातु से 'उष्' धातु ज्वलन अर्थ में लिया गया और उससे उषा, उष्ण आदि कितने ही शब्द बनाये गये। प्रकाश में ही कोई काम करने की इच्छा होती है। अतएव 'वश' धातु का प्रयोग 'इच्छा' आदि अर्थों में भी हुआ और इसीसे 'व' को 'इ' करके 'इष्' धातु इच्छार्थक निकला। इस प्रकार 'पच्' 'वच्' आदि के अनुकरण पर कितने ही धातुओं की कल्पना हुई।

भाषा-शिक्षा।

(२)

अन्यान्य भाषाशिक्षा-प्रणाली

अन्यान्य भाषाओं के सीखने के लिए भी मातृभाषा की शिक्षा-प्रणाली का ही अनुसरण करना होगा। उस भाषा को मातृभाषा की तरह ही समझ कर, सारे विषयों में, उसी शिक्षा-प्रणाली का ग्रहण करना होगा जो शिक्षा-प्रणाली अपनी मातृभाषा सीखने में व्यवहृत होती है। सब कोई लिखना पढ़ना सीखने से पहले अपनी मातृभाषा में ही बात कह कर अपना भाव प्रकट करते हैं। अन्यान्य भाषाओं के सीखते समय भी उसी प्रकार उसी भाषा में अपने मनोभिप्राय के प्रकाश करने की चेष्टा पहले करनी होगी।

जो भाषा सीखनी हो उसकी शब्द-शिक्षा को गौण-भाव से रख कर पहले उसी भाषा में बातचीत करना सीखना होगा। उस भाषा की वर्णमाला सीखने से पहले उसके वाक्यों को सुन सुनकर उनका उच्चारण सीखना होगा। और केवल बार बार उच्चारण के द्वारा शब्दों का अभ्यास हो जाने पर, उन्हीं शब्दों से उस भाषा में भाव प्रकाश करने की जो विशेष प्रणाली है, जिस ढंग से उस भाषा के बोलने वाले लोग वाक्य-रचना और पदयोजना करते हैं, ठीक उसी प्रणाली का अच्छी तरह ज्ञान प्राप्त करके, उसकी सहायता से, अपने आप ही अपने प्रयोजन के लिए वाक्य-रचना की चेष्टा करनी होगी।

केवल किसी एक विषय की वाक्यरचना में ही उस प्रणाली का प्रयोग करके सन्तुष्ट न रह कर जगत् के प्रत्येक विषय में उसका व्यवहार करना होगा। पहले छोटे छोटे, असम्बद्ध और स्थूल भाव को प्रकाश करने में अभ्यास करते करते क्रमशः जटिल, सुसम्बद्ध और सूक्ष्मभाव प्रकाश करना सीखना होगा। इसी उपाय से धीरे धीरे भाषा के वाक्यों की रचना करके प्रबन्ध और साहित्य में अधिकार-प्राप्ति की चेष्टा करनी होगी।

इस प्रकार भाषा में प्रवेश हो जाने पर भाषा के नियम, इतिहास, और साहित्य के विषयों का परिचय प्राप्त करना उचित होगा।

भाषा साहित्य नहीं है

क्या मातृभाषा, क्या और भाषा—किसी की भाषा के सीखने वाले को यह बात सदा अच्छी तरह समझ रखनी चाहिए कि भाषा और साहित्य दोनों स्वतन्त्र पदार्थ हैं। भाषा और चीज़ है और

साहित्य और। भाषा का सीखना और साहित्य का सीखना एक बात नहीं है। मन का भाव प्रकट करना ही भाषा का काम है। बस, जहाँ मन का भाव प्रकट कर पाया तहाँ भाषा का काम सिद्ध हो गया। यही भाव-प्रकाश जिस उपाय से बहुत अच्छी रीति से सम्पन्न हो सके वही उपाय सर्वोत्कृष्ट भाषा है। इसलिए भाषा सीखने वाले को उसी उपाय का ज्ञान प्राप्त करना होगा। जब मनुष्य सर्वोत्कृष्ट प्रणाली से अपना भाव-प्रकाश करने लगता है तभी समझना चाहिए कि उसने बड़ी उत्तम भाषा का प्रयोग किया। भाषा के ही उत्कर्ष-साधन से भाव का उत्कर्ष सिद्ध नहीं हो सकता। क्योंकि निकृष्ट भाव-समूह भी, भद्दे भाव भी, उत्कृष्ट भाषा में प्रकाशित हो सकते हैं।

भावों का समुदाय ही साहित्य का उपादान है। उच्च अङ्ग के उत्कृष्ट भावों की शिक्षा प्राप्त कर लेने पर ही उच्च साहित्य की शिक्षा होती है। यही साहित्य भाषा के भीतर प्रविष्ट होकर विशद-रूप से प्रकाशित हो सकता है। और, उत्कृष्ट भाव होने से ही भाषा उत्कृष्ट नहीं हो सकती। बड़े सुन्दर भाव भी निकृष्ट भाषा में प्रकाशित किये जा सकते हैं।

तात्पर्य यह निकला कि भाव के क्रम-विकाश से साहित्य की पुष्टि होती है और भाव-प्रकाश के उपायों के क्रम-विकाश से भाषा का उत्कर्ष होता है। इस प्रकार भाषा और साहित्य की गति के दो अलग अलग मार्ग हैं। भाषा का दूसरा मार्ग है और साहित्य का दूसरा।

(२)

भाषाशिक्षा और साहित्यशिक्षा के स्वातन्त्र्य की रक्षा करनी होगी

भाषा सीखने के लिए वाक्य-रचना करते समय चिन्ताशक्ति के विकाशोपयोगी जो भाव-प्रकाश करने की शिक्षा मनुष्य प्राप्त करता है, उसी के द्वारा, उसी के साथ साथ साहित्य में भी प्रविष्ट हो जाता है। इस रीति से एक साथ ही भाषा और साहित्य की शिक्षा के बाद, जिस अवस्था में भाषा की व्युत्पत्ति पैदा होने की आशा की जाय, उसी अवस्था में, मुख्यरूप से, साहित्यशिक्षा के लिए स्वतन्त्र व्यवस्था करनी होगी। उस समय भाषा के नियम और इतिवृत्त की शिक्षा के लिए अलग प्रबन्ध करना होगा; और साथ ही साथ कोश के द्वारा शब्द-सम्पत्ति बढ़ाने की चेष्टा भी करनी ठीक होगी। इससे भाषा और साहित्य का स्वातन्त्र्य पहले से ही अनुभूत हो जाता है।

(३)

लिखने पढ़ने और हिज्जे सीखने से पहले भाषा का व्यवहार करना होगा

भाषा प्रधानतः वाचनिक एवं मौखिक है। ध्वनि ही भाषा का प्राण है। कान ही जताने वाले हैं। इसलिए भाषाशिक्षा में ध्वनि-प्रकाशक मौखिक बात-चीत का सहारा ही प्रधानतया ग्रहण करना होगा। लिखने पर भाषा बिलकुल नई हो जाती है। इससे भाषा की सार्थकता जाती रहती है। इसलिए शिक्षार्थी को भाषा लिखना आरम्भ करने पर मालूम होगा कि उसको बिलकुल एक नये विषय की शिक्षा आरम्भ करनी पड़ी है। यह माना कि दूसरे उपाय की अपेक्षा लिखने के द्वारा भाषा सीखने में यथेष्ट सहायता मिलती है, और यह भी ठीक है कि भाषा सीखने के साथ ही साथ लिखना सीखने की भी आवश्यकता है, परन्तु केवल भाषा सीखने के लिए लिखना सीखने की शुरू में कोई ज़रूरत नहीं। इस कारण लिखना सीखने से पहले ही ज़बानी भाषा की शिक्षा प्राप्त करनी होगी। इसीसे भाषा-शिक्षा के उद्देश की रक्षा होगी और यही प्रणाली जीवन्तरूप से कार्य करेगी।

भाषा-वैचित्र्य।

भाषा-पद्धति की विचित्रिता अर्थात् वाक्यों और पद-समूहों के मध्य में सम्बन्ध स्थापन का विभिन्न उपाय

मानव-समाज भिन्न भिन्न स्थान में जगत् के पदार्थों के सम्बन्ध में भिन्न भिन्न प्रणाली से मनोभाव प्रकट करते हैं। इसी कारण विभिन्न भाषा-पद्धति और वाक्य रचना-प्रणाली की उत्पत्ति हुई है। यह माना कि सब जगह पदार्थ के साथ पदार्थ

का तुलनासाधन और संयोग-विधान करके पदार्थ का गुणनिर्णय और परिचय प्रदान किया जाता है और इसी लिए उद्देश के अनुकूल शब्दयोजना द्वारा शब्द के साथ शब्द का सम्बन्ध स्थिर करके वाक्य-रचना की जाती है; किन्तु सब जगह कोई एक ही उपाय से और एक ही नियम से पदार्थों के धर्म-प्रकाश के उपयोगी पदों का सम्बन्ध स्थापित नहीं करते। यदि किसी पदार्थ के विषय में कोई बात कहनी हो तो उस पदार्थ का और जो कहना हो उसका—इन दोनों का—संयोग-साधन भिन्न भिन्न समाज में भिन्न भिन्न प्रणाली से सम्पन्न होता है। भाषा के उपादान और लक्षण-स्वरूप वाक्यों के उक्त दोनों अंश (अर्थात् विषयवाचक और वक्तव्यवाचक) सब समाजों में एक ही रीति से संयुक्त नहीं होते।

तीन प्रकार की वाक्यरचना-प्रणाली

इस वाक्यरचना-प्रणाली के वैचित्र्य में तीन प्रकार की श्रेणियाँ पाई जाती हैं। इस कारण भाषा-पद्धति तीन प्रकार की है। वाक्य के अन्तर्गत विषय-वाचक और वक्तव्यवाचक शब्दों का सम्बन्ध तीन प्रकार की प्रणाली से सिद्ध हो सकता है।

(१)

उच्चारण-क्रम द्वारा पदों का सम्बन्ध स्थिर करना

१—एक प्रकार की पद्धति है, जिससे वक्तव्य-ज्ञापन करने के लिए जिस जिस शब्द-व्यवहार का प्रयोजन हो उसकी आकृति में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं करना पड़ता; शब्दों में किसी प्रकार का वैचित्र्य नहीं घटाना होता। शब्द केवल किसी निर्दिष्ट क्रम के अनुसार उच्चारित होकर वाक्यों की सृष्टि करते हैं। पर तो भी भिन्न भिन्न अर्थ जताने के उद्देश से शब्द, भिन्न भिन्न स्थान में, प्रयुक्त किये जाते हैं। इस प्रकार वाक्य में कभी एक विशेष अर्थ के प्रकट करने के लिए व्यवहार किया गया कोई एक शब्द क्रमभङ्ग होकर स्थानान्तर में चला जाय तो वह बिलकुल एक नये भाव-प्रकाश का और नई वाक्यसृष्टि का कारण हो जाता है। इसलिए भाषा-पद्धति के सन्निवेश-स्थान द्वारा ही शब्द का अर्थ प्रकाशित होता है। शब्दों के उच्चारण करने का क्रम ही वाक्य में उनका परस्पर सम्बन्ध निर्णय कर देता है।

(२)

रूप-परिवर्त्तन के द्वारा शब्दों का सम्बन्ध स्थिर करना

२—कुछ भाषापद्धतियाँ ऐसी हैं जिनसे विषय-वाचक और वक्तव्य-वाचक शब्दों में भिन्न प्रकार का सम्बन्ध स्थिर करके भिन्न प्रकार का अर्थ प्रकाशित करने के लिए शब्दों का रूप-परिवर्तन करना पड़ता है। जो लोग इस प्रणाली का अवलम्ब लेकर वाक्यों का व्यवहार करते हैं उनको किसी निर्दिष्ट शब्द को किसी निर्दिष्ट स्थान में सन्निविष्ट नहीं करना पड़ता। क्योंकि प्रत्येक पद के अङ्ग में, उसके साथ अन्य शब्दों का सम्बन्ध-प्रकाशक चिह्न लगा रहता है। इस कारण वाक्य में शब्द चाहे जिस स्थान में प्रयुक्त क्यों न हों और चाहे जिस क्रम से उच्चारित क्यों न हों, तो भी उनके अर्थ में किसी प्रकार की त्रुटि नहीं आती। आकृति का परिवर्तन करने वाली जो चिह्नस्वरूप सारी विभक्तियाँ शब्दों के अङ्गों में लगी रहती हैं वे सब विभक्तियाँ, वे सब चिह्न, शब्दों के बीच में परस्पर सम्बन्ध स्थिर करके भाव-प्रकाश में बड़ी सहायता देते हैं।

(३)

संयोजन द्वारा शब्दों का सम्बन्ध स्थिर करना

३—एक प्रकार की और भाषा होती है जिससे भाव-प्रकाश करने पर, सब स्वतन्त्र प्रणाली से ही वाक्यरचना करनी पड़ती है। इसमें शब्दों का रूप-परिवर्तन नहीं करना पड़ता और अपरिवर्तित शब्दों के सन्निवेशस्थान द्वारा भी उनका भाव प्रकाशित नहीं होता। शब्दों में सम्बन्ध स्थापन करके अर्थ-प्रकाश करने के लिए कुछेक संयोजनाओं का आश्रय ग्रहण करना होता है। इन्हीं संयोजनाओं के द्वारा पद शृङ्खलीकृत होकर वाक्यों की सृष्टि करते हैं।

संस्कृत-भाषा का विशेषत्व

संस्कृत-भाषा विभक्ति-मूलक है

पहले वाक्यरचना-प्रणाली के तीन भेदों का वर्णन किया जा चुका है। संस्कृत-भाषा उन तीनों श्रेणियों में से दूसरी श्रेणी के अन्तर्गत है। इसमें विभक्तियों के योग द्वारा शब्दों का रूप बदल कर पदसमूहों में सम्बन्ध स्थापन करना होता है। एक ही शब्द के भिन्न भिन्न रूपों की सहायता से भिन्न भिन्न वाक्यों की सृष्टि होती है। बिना रूप बदले किसी शब्द का प्रयोग नहीं किया जाता और बिना विभक्ति लगाये और किसी उपाय से पदयोजना नहीं की जा सकती।

(१)

विषयवाचक शब्द

पहले विषयवाचक शब्दों को लेकर देखना चाहिए। ये दो श्रेणियों के अन्तर्गत हैं—कुछ विशेष्य हैं और कुछ सर्वनाम।

शब्दों का लिङ्ग

प्रत्येक शब्द का अपना कोई लिङ्ग होता है। संस्कृत-भाषा में प्रकृति-गत लिङ्ग के साथ शब्द के लिङ्ग का कोई सम्बन्ध नहीं। इस भाषा में व्याकरण के नियमों से एक नवीन रीति से लिङ्ग-भेद की सृष्टि हुई है। इसी कारण प्रत्येक विशेष्य और सर्वनाम शब्द में एक एक प्रकार का लिङ्ग विद्यमान है।

त्रिविध लिङ्ग

लिङ्ग तीन प्रकार का होता है। प्रत्येक लिङ्ग की रूप-प्रणाली भिन्न भिन्न प्रकार की होती है। इसलिए शब्दों के लिङ्गानुसार रूपभेद और विभक्ति-योग होता है।

विशेष्य शब्द

प्रत्येक विशेष्य शब्द दो भागों में विभक्त है। स्वरान्त और व्यञ्जनान्त। इन दोनों भागों की रूप-प्रणाली भिन्न भिन्न होती है। इसलिए केवल लिङ्ग-भेद से ही शब्दों के रूपों में परिवर्तन नहीं होता, किन्तु शब्दों के स्वरान्त या व्यञ्जनान्त होने के कारण भी रूपों में अन्तर हो जाता है।

(क)—तीन प्रकार के लिङ्ग और दो प्रकार के अन्त्य वर्ण, इस प्रकार सब मिलाकर विशेष्य शब्द की छः श्रेणियां हैं

तात्पर्य यह निकला कि लिङ्ग और अन्त्य वर्ण ही विशेष्य शब्द की रूप-परिवर्तन-प्रणाली निर्दिष्ट करके प्रत्येक शब्द का स्वातन्त्र्य-विधान करते हैं। लिङ्ग और अन्त्य वर्ण के बिना देखे शब्द का विशेष अस्तित्व और स्वातन्त्र्य निर्धारित नहीं किया जा सकता। इस कारण समस्त विशेष्य शब्द लिङ्ग और अन्त्य वर्ण के भेद से छः प्रकार की श्रेणियों के अन्तर्गत हैं। जैसेः—

पुंलिङ्ग { स्वरान्त, व्यञ्जनान्त }

स्त्रीलिङ्ग { स्वरान्त, व्यञ्जनान्त }

नपुंसक लिङ्ग { स्वरान्त, व्यञ्जनान्त }

इनकी प्रत्येक श्रेणी में रूप-परिवर्तन की प्रणाली भिन्न भिन्न प्रकार की होती है।

(ख)—प्रत्येक श्रेणी के विशेष्य शब्द के रचनानुसार तीन प्रकार के रूप होते हैं

इन छः प्रकार के विषय-वाचक विशेष्य शब्दों में भी प्रत्येक की संख्या के अनुसार और तीन प्रकार के रूप होते हैं। एक पदार्थ के सम्बन्ध में वक्तव्य-ज्ञापन करने के लिए वाक्यरचना करने पर शब्द के साथ जिस विभक्ति का योग करते हैं, दो पदार्थों के सम्बन्ध में कुछ कहना हो तो उस पदार्थवाचक शब्द के साथ उसी प्रकार की विभक्ति नहीं लगाई जायगी। इसी प्रकार उस शब्द की बहुत संख्याओं के विषय में वाक्यरचना करनी हो तो उसमें और ही प्रकार की विभक्ति लगानी होती है। मतलब यह है कि विषयवाचक शब्द संख्या-नुसार भिन्न भिन्न तीन प्रकार के चिह्न धारण करता है। संस्कृत-भाषा के वैयाकरणों ने इस संख्या-भेद की रूप-प्रणाली का नाम 'वचन' रख छोड़ा है। इसके सिवा, किसी

वस्तु या व्यक्ति को सम्बोधन करके पुकारने पर संख्यानुसार शब्द की आकृति में तीन प्रकार के परिवर्तन करने पड़ते हैं।

(असमाप्त)

अनुवादक—पण्डित रामजीलाल शर्म्मा।

महाकवि क्षेमेन्द्र और अवदान-कल्पलता।

प्रतिष्ठा पाने के लिए बड़े भाग्य की आवश्यकता है। योग्यता होने पर भी बहुत लोगों को प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त होती। क्षेमेन्द्र निस्सन्देह महाकवि थे। उनकी रचनाशक्ति अत्यन्त प्रखर थी। उनके शब्दों में माधुर्य, अर्थों में गाम्भीर्य और उपमाओं में वैलक्षण्य भरा हुआ है। जब हम उनके बनाये ग्रन्थों पर ध्यान देते हैं तब उनको "महा-कवि" या "कवि-शिरोमणि" कहने में ज़रा भी सङ्कोच नहीं होता। अनुमानतः इस महाकवि ने, सब मिला कर, पचास हज़ार श्लोक बनाये होंगे। अवदान-कल्पलता के १०८ पल्लव हैं। प्रत्येक पल्लव में कोई २०० श्लोक हैं। इस हिसाब से केवल इसी एक ग्रन्थ में बीस हज़ार श्लोक हो जाते हैं। और भी अनेक ग्रन्थ क्षेमेन्द्र के बनाये हुए हैं, जिनकी श्लोक-संख्या तीस हज़ार से कम न होगी।

अष्टादश पुराण वेदव्यास के बनाये माने जाते हैं। उनमें चार लाख श्लोक * हैं। आदिकवि महर्षि वाल्मीकि-रचित आदि-काव्य रामायण में चौबीस हज़ार श्लोक हैं। कवि-कुल-गुरु कालिदास के बनाये ग्रन्थों में सब मिला कर लग भग पचासही हज़ार श्लोक होंगे।

कवियों में कालिदास की प्रधानता सर्व-सम्मत है। मेरे विचार में कालिदास के बाद क्षेमेन्द्र ही का स्थान होना उचित है। दूसरे विद्वान् यदि इस बात को स्वीकार न करें तो भी क्षेमेन्द्र को महाकवि कहने में, आशा है, वे सङ्कोच न करेंगे।

जान पड़ता है कि क्षेमेन्द्र में रचनाशक्ति स्वाभाविक थी। पद-योजना में उनको कुछ भी परिश्रम न पड़ता था। उनकी लेखनी गङ्गा-प्रवाह के समान विच्छेद-रहित और प्रतिघात-शून्य चलती थी। उनके ग्रन्थों में जितने शब्द और पद हैं वे सभी प्रायः सरल, सुगम, सुबोध, सरस और मनोहर हैं। इनकी रचना में लम्बे लम्बे समास नहीं हैं। बलात्कार से घसीटे हुए अव्यवहृत, अप्रसिद्ध और क्लिष्ट शब्द भी नहीं हैं। इनकी रचना निस्सन्देह बहुगुणसम्पन्न है।

क्षेमेन्द्र १०२८ ईसवी में वर्त्तमान थे। कल्हण-कृत राजतरङ्गिणी में काश्मीर के एक राजा का नाम अनन्त लिखा है। वह राजा इसी सन् में अपने राज्यासन पर बैठा था। क्षेमेन्द्र उसी के आश्रित कवि थे। अनन्तदेव के बाद उसका पुत्र कलशदेव, १०६३ ईसवी में, कश्मीर का राजा हुआ। उसके राज्यकाल में भी क्षेमेन्द्र वर्त्तमान थे। कश्मीर के राजा जयापीड़ के मन्त्री का नाम नरेन्द्र था। नरेन्द्र के पुत्र भोगीन्द्र, भोगीन्द्र के सिन्धु, सिन्धु के प्रकाशेन्द्र और प्रकाशेन्द्र के पुत्र क्षेमेन्द्र थे। क्षेमेन्द्र के पुत्र सोमेन्द्र ने अवदान-कल्पलता के एक सौ आठवें, अर्थात् अन्तिम, पल्लव में अपने वंश का परिचय देने के लिए निम्न-लिखित श्लोक लिखे हैं, जिनसे कवि के विषय में बहुत सी बातों का पता लग जाता है:—

नरेन्द्रनाम्नः सुमतेः श्रीजयापीडमन्त्रिणः।
वंशे बभूव भोगीन्द्रो भोगीन्द्र इव भोगवान्॥१॥
तस्य सत्वनिधेः श्रीमान् गुणरत्नगणाश्रयः।
सूनुर्वाणीसुधासूतिः सिन्धुः सिन्धुरिवाभवत्॥२॥
तस्य पुत्रः प्रकाशेन्द्रः प्रकाशेन्द्रनिभो भुवि।
बभूव दानपुण्येन बोधिसत्वगुणोचितः॥३॥

---

*३२ अक्षरों का एक श्लोक माना जाता है। इसी हिसाब से ग्रन्थों के श्लोकों की गिनती की जाती है। लेखक।

नहाने के समय का दृश्य।
श्रीबटेश्वरनाथ का मन्दिर और विश्रान्त (आगरा—यू० पी०)

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

क्षेमेन्द्रस्तनयस्तस्य कवीन्द्रः कीर्तिचन्द्रिका ।
चन्द्रस्येवोदिता यस्य मानसोल्लासिनी सताम् ॥४॥

क्षेमेन्द्र ने स्वयं ही कई जगह लिखा है कि वे अनन्तदेव के समय में थे । समयमातृका नामक अपने एक काव्य के अन्त में वे लिखते हैं :—

तस्यानन्तमहीपतेर्विरजसः प्राज्याधिराज्योदये
क्षेमेन्द्रेण सुभाषितं कृतमिदं सत्पक्षरक्षाक्षमम् ।

किसी किसी का ख़याल है कि क्षेमेन्द्र बौद्ध थे। यह भ्रम जान पड़ता है । दशावतार-चरित नामक काव्य के अन्त में क्षेमेन्द्र ने ख़ुद ही लिखा है।

स्तुतिसङ्कीर्तनाद्विष्णोर्विपुलं यन्मयार्जितम् ।
तेनास्तु सर्वलोकानां कल्याणकुशलोदयः ॥

इसी के आगे क्षेमेन्द्र ने लिखा है :—

एकाधिकेऽब्दे विहितश्चत्वारिंशे सकार्त्तिके ।
राज्ये कलशभूभर्त्तुः कारमीरेष्वच्युतस्तवः ॥

इससे यह भी सिद्ध हुआ कि कश्मीर के लौकिक संवत् ४१, अर्थात् १८६६ ईसवी, में कलशदेव नरेश के समय में उन्होंने दशावतार-चरित बनाया । उस समय वे वृद्ध हो गये थे और एकान्तवास करते थे । तभी उन्होंने दशावतार-चरित के वाक्-पुष्पों से विष्णु की पूजा की थी । दशावतार-चरित के विषय में आप लिखते हैं :—

इत्येष विष्णोरवतारमूर्तेः कथामृतास्वादविशेषभक्त्या ।
श्रीव्यासदासाख्यतमाभिधेन क्षेमेन्द्रनाम्ना विहितः स्तवाग्र्यः ॥

बौद्ध की "विशेष भक्ति" विष्णु में नहीं हो सकती । सम्भव है, क्षेमेन्द्र किसी समय बौद्ध हो गये हों । पर जिस समय उन्होंने दशावतार-चरित लिखा है उस समय तो बहुत करके वे विष्णु-भक्त ही थे । पूर्वोद्धृत श्लोक से यह भी सूचित हुआ कि क्षेमेन्द्र का दूसरा नाम व्यासदास था ।

क्षेमेन्द्र ने स्वयं भी दशावतार-चरित में अपना वंश-वर्णन लिखा है । देखिए :—

काश्मीरेषु बभूव सिन्धुरधिकः सिन्धोश्च निम्नाशयः
प्राप्तस्तस्य गुणप्रकर्षयशसा पुत्रः प्रकाशेन्द्रताम् ।
विप्रेन्द्रप्रतिपादिताक्षधनभूगोसंघकृष्णाजिनैः
प्रख्यातातिशयस्य तस्य तनयः क्षेमेन्द्रनामाभवत् ॥

क्षेमेन्द्र के बनाये हुए ग्रन्थों में सबसे बड़ा ग्रन्थ अवदान-कल्पलता है । इसके १०७ पल्लव तो क्षेमेन्द्र के बनाये हुए हैं; आठवाँ (अन्तिम) पल्लव क्षेमेन्द्र के पुत्र सोमेन्द्र का बनाया है । सोमेन्द्र ने लिखा है :—

अस्मत्पित्राऽवदानानां कृते सप्तोत्तरे शते ।
सोमेन्द्रेण मयाप्येक कृतं मङ्गलपूरणम् ॥

सोमेन्द्र ने, अपनी भूमिका में, ग्रन्थ-निर्माण का समय इस प्रकार लिखा है:—

संवत्सरे सप्तविंशे वैशाखस्य सितोदये ।
कृतेयं कल्पलतिका जिनजन्ममहोत्सवे ॥ १ ॥
कीर्तिस्तारा भृकुटिरुदिता पापशत्रुप्रमाथे ।
दिव्योत्साहः किमपि सुगतो लोकनाथश्च यस्य ॥
तस्मिन् क्षोणीपतिपरिवृढे शासति क्ष्मामनन्ते ।
सन्तोषाय प्रशमसुखिनां निर्मितोयं प्रबन्धः ॥ २ ॥

* इस से सिद्ध होता है कि जब राजा अनन्त सत्ताईस वर्ष राज्य कर चुके तब वैशाख के शुक्ल पक्ष में यह ग्रन्थ समाप्त हुआ ।

अवदान-कल्पलता की रचना के विषय में ऐसी कथा प्रसिद्ध है कि तथागत ने "नक्क" नामक ब्राह्मण को दूत बना कर क्षेमेन्द्र के पास भेजा और यह सँदेसा कहला भेजा कि आप कृपा करके तथागत-कथा लिखिए । इस बात को स्वीकार करके क्षेमेन्द्र ने केवल तीन पल्लव बनाकर छोड़ दिया । इस रचना में कवि ने और लोगों से भी कुछ कुछ सहायता ली । फिर, कुछ दिनों बाद, स्वप्न में जिन ने और पल्लवों के बनाने की आज्ञा दी । इसी आज्ञा के अनुसार कवि ने उक्त ग्रन्थ के और पल्लव भी बनाये । अन्त में सब मिल कर १०७ पल्लव हो गये । ये बातें निम्न लिखित श्लोकों से भलीभाँति प्रकट होती हैं ।

---

* कश्मीर में पुरानी चाल यह थी कि जब कोई राजा सिंहासन पर बैठे तभी से अपना संवत् चलावे । उसके बाद फिर जब दूसरा राजा हो तब वह फिर नया संवत् प्रारम्भ करे । इस कारण वहाँ का संवत् ५० या ६० वर्ष से अधिक दिनों तक नहीं चलता था ।

लेखक ।

यस्य रामयशाः सर्व-प्रबन्धप्रेरको द्विजः ।
प्रयातः सज्जनानन्दः पुण्यः प्रथमदूतताम् ॥ १ ॥
तं कदाचित् सुखासीनं सुहृद् गुणवतां वरः ।
सैागतः ख्यातसुकृतो नक्कनामा समभ्यधात् ॥ २ ॥
एकमार्गानुसारिण्यः परं गाम्भीर्यकर्कशाः ।
विस्तीर्णवर्णनाः सन्ति जिनजातकमालिकाः ॥ ३ ॥
अवदानक्रमेणैव त्वन्तु संक्षेपविस्तरैः ।
रम्यैस्तथागतकथाः कोमलाः कर्त्तुमर्हसि ॥ ४ ॥
इत्युक्तस्तेन विनयात् तां कथां कर्त्तुमुद्यतः ।
अवदानत्रयं कृत्वा विरराम।तिदैर्घ्यतः ॥ ५ ॥
ततः स्वप्ने भगवता जिनेन प्रेरितः स्वयम् ।
सोऽग्रहीत् पुनरुद्योगं अवदानार्थसंग्रहे ॥ ६ ॥

जान पड़ता है, पूर्वोक्त कथा के द्योतक इन श्लोकों के कारण ही कुछ लोग क्षेमेन्द्र को बौद्ध समझते हैं। पर इनमें क्षेमेन्द्र के बौद्ध होने की कोई बात नहीं है।

अवदान-कल्पलता के श्लोकों के भाव, अर्थ, पद, शब्द तथा उपमायें कहीं कहीं कालिदास, बाण आदि महाकवियों के भावादि से मिल जाती हैं। यह बात जान बूझ कर की गई है अथवा संयोग से हुई है—इस विषय में हम निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कह सकते। सम्भव है, यह बात दैव-संयोग ही से हुई हो। कारण यह कि ऐसे महाकवि दूसरे कवियों की वस्तु लेकर अपनी वस्तु बनाने का साहस कभी नहीं कर सकते। बहुधा अनेक महाकवियों की उक्तियाँ एकसी हो जाया करती हैं। यश को धवल, मुख को चन्द्रमा के समान, कामिनी को लता के समान, इत्यादि बातें सभी कवि अनादि काल से लिखते आये हैं। अस्तु। हम दो चार उदाहरण ऐसे देना उचित समझते हैं जहाँ इस कवि की उक्ति अन्य कवियों की उक्ति से मिल गई हैः—

रघुवंश के—

उमावृषाङ्कौ शरजन्मना यथा यथा जयन्तेन शचीपुरन्दरौ ।
तथा नृपः सा च सुतेन मागधी ननन्दतुस्तत्सदृशेन तत्समौ ॥
सर्ग २, श्लो० २२

इस श्लोक का अवदान-कल्पलता के पल्लव २ के निम्नलिखित श्लोक—

पौलोमीव जयन्तेन जननी पूज्यजन्मना ।
बभौ तेन कुमारेण कुमारेणेव पार्वती ॥

से मिलान हो जाता है। इसी प्रकार रघुवंश के—

अथ नयनसमुत्थं ज्योतिरत्रेरिव द्यौः
सुरसरिदिव तेजो वह्निनिष्ठ्यूतमैशम् ।
नरपतिकुलभूत्यै गर्भमाधत्त राज्ञी
गुरुभिरविनिविष्टं लोकपालानुभावैः ॥
२ सर्ग, ७५ श्लो०

की एकता अवदान-कल्पलता के पल्लव ३, श्लोक १५-

काले कल्याणनिलयं भर्तुः सा गर्भमादधे ।
भूत्यै भुवनपद्मस्य दिवाकरमिवादितिः ॥

से हो जाती है। इसी प्रकार रघुवंश, सर्ग ५ श्लो० १ और अवदान-कल्पलता, पल्लव ३ श्लोक ८५ भी आपस में मिलते हैं। बाणभट्ट-रचित कादम्बरी-कथा-मुख के वाक्य—"कलिकालभयपुञ्जीभूतकृतयुगानुकारिणी" (राजधानी) की अवदान-कल्पलता, पल्लव ३ श्लोक ६—

सदा सदाश्रयार्हेण कलिकालापहारिणा ।
कृतः कृतयुगेनेव येन धर्मपरो जनः ॥

से समानता हो जाती है। कादम्बरी के पूर्वोक्त-प्रकरण-लिखित—"दिग्गज इवानवरतप्रवृत्त दानार्द्रीकृतकरः" वाक्य की अवदान-कल्पलता के पल्लव ३ श्लो० ३४ः—

तस्य भद्रगिरिर्नाम बभूव गजपुङ्गवः ।
प्रभोरिवानुकारेण दानार्द्रकरपुष्करः ॥

से एकता हो जाती है। इसी प्रकार और दूसरे कवियों की उक्तियों से भी क्षेमेन्द्र की उक्तियाँ कभी कभी मिल जाती हैं।

क्षेमेन्द्र की रचना कैसी मनोहारिणी होती है, इस बात को बताने के लिए हम यहाँ पर दो चार श्लोक देते हैंः—

नीतिः प्रभुगुणेनेव त्यागेन श्रीरिवोज्ज्वला ।
रराज राजचन्द्रेण सा शीलेनेव चारुता ॥

अर्थात्—जिस प्रकार स्वामी के गुण से नीति, दान से प्रकाशित लक्ष्मी, और शील से सुन्दरता शोभा पाती है उसी प्रकार उस राजा से उस रानी की शोभा हुई।

ततः कालेन सम्पूर्णं द्यौरिवामृतदीधितिम्।
असूत दारकं देवी जगत्तिमिरदारकम्॥

अर्थात्-जिस प्रकार पन्द्रह दिनों में पूरे जगत् का अन्धकार नाश करने वाले, तथा अमृत की वर्षा करने वाले चन्द्रमा को आकाश उत्पन्न करता है उसी प्रकार दस महीनों में पूरे प्रजा के दुःख दूर करनेवाले, अपनी बालक्रीड़ा से माता-पिता को अमृत के समान तृप्त करने वाले पुत्र को रानी ने उत्पन्न किया।

इमामुहूर्त्तनर्त्तक्यः कालमेघतडिल्लताः।
संसारसर्परसनाः विलासचपलाः श्रियः॥

ये सम्पत्तियाँ थोड़े समय की नर्त्तकियाँ हैं, (अर्थात् बहुत थोड़े दिनों तक रहने वाली हैं) संसाररूपी बादल की सौदामिनियाँ हैं, संसाररूपी साँप की जीभें हैं, और देखते ही देखते नष्ट हो जाने वाली हैं।

सर्वोपजीव्या करुणा न लक्ष्मीः धर्मः प्रकाशः सततं न दीपाः।
यशांसि रम्याणि न यौवनानि स्थिराणि पुण्यानि न जीवितानि॥

करुणा ही सब से अधिक रक्षा करने योग्य है, धन नहीं। धर्म ही प्रकाश करता है, दीप नहीं। यश ही सुन्दर लगता है यौवन नहीं। और पवित्र कर्म ही सदा रहने वाले हैं, प्राण नहीं।

बस इतने ही उदाहरणों से क्षेमेन्द्र की रचना-शक्ति, नीतिज्ञता, धार्मिकता और बहुज्ञता भली भाँति प्रकट हो जाती है। इन पद्यों से शब्द-विन्यास, यमक, अनुप्रास, भावगाम्भीर्य आदि गुणों का भी परिचय मिलता है।

क्षेमेन्द्र ने इस पुस्तक में पुराणों कीसी कथायें विशेषतः लिखी हैं। जैसे "सिर फाड़ कर मणि निकाल ली," "अपने शरीर का मांस राक्षस को खिला दिया," "मणि से सुवर्ण टपक पड़ा" इत्यादि। इस ग्रन्थ में जितनी कथायें हैं सभी "अहिंसा परमो धर्मः"—सिद्धान्त के अनुकूल हैं। उन सब कथाओं के लिखने के ढंग भी ठीक पुराणों ही के समान हैं।

क्षेमेन्द्र ने अनेक ग्रन्थों की रचना की है। नीति, उपदेश, कला, साहित्य आदि बहुत विषयों पर क्षेमेन्द्र के रचे ग्रन्थ मिलते हैं। इस से इस कवि की बहुज्ञता प्रकट होती है।

अब हम क्षेमेन्द्र के बनाये ग्रन्थों की सूची देते हैं। इन ग्रन्थों की समालोचना भी, यदि हो सका, तो करने का हमारा विचार है:—

१—अवदान-कल्पलता	८—औचित्य-विचार-चर्चा
२—बृहत्कथामञ्जरी	९—सुवृत्त-तिलक
३—भारतमञ्जरी	१०—सेव्य-सेवकोपदेश
४—रामायणमञ्जरी	११—चारु-चर्या
५—दशावतार-चरित	१२—कवि-कण्ठा-भरण
६—समयमातृका	१३—चतुर्वर्ग-संग्रह
७—कलाविलास	१४—दर्प-दलन

सम्भव है, इनके अतिरिक्त और ग्रन्थ भी क्षेमेन्द्र ने बनाये हों; किन्तु अब तक वे प्रकाशित नहीं हुए।

अक्षयवट मिश्र

बटेश्वर का मेला।

कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा को प्रति वर्ष भारत-वर्ष के भिन्न भिन्न स्थानों में गङ्गा, यमुना आदि पवित्र नदियों के तट पर मेले होते हैं। इसी समय युक्त-प्रान्त के ज़िला आगरा की तहसील बाह—राज्य भदावर—में बटेश्वर का मेला होता है। बटेश्वर एक ऊँचे स्थान पर, यमुना के तट पर, क़िले के पास (जो लाल पत्थर का अब भी टूटी फूटी हालत में बे-मरम्मत पड़ा है) तहसील बाह से पाँच मील, रेलवे स्टेशन जसवन्त-नगर से २६ मील, और शिकोहाबाद स्टेशन से बारह मील पर, बसा हुआ है। दोनों स्टेशन ई० आई० आर० पर हैं। शिकोहाबाद से आठ मील सड़क पक्की है;

बाक़ी यमुना तक कच्ची और रेतीली है। यमुना पर मेले के दिनों में नावों या पीपों का पुल बाँध दिया जाता है। घाट के पास ही मेला होता है। दूसरा रास्ता जसवन्तनगर से बराबर कच्ची सड़क का है। व्यापारी विशेष कर शिकोहाबाद से ही आते जाते हैं। क्योंकि वहाँ पर सवारियाँ—किराये पर गाड़ियाँ, इक्के, शिकरम, बहली आदि बहुत मिलती हैं। इस मेले में युक्त-प्रान्त के अतिरिक्त पञ्जाब आदि के भी व्यापारी एकत्र होते हैं। हाथी, घोड़े, ऊँट, बैल, खच्चर, भैंसे, बकरी आदि जानवर; लकड़ी, लोहे, पत्थर, चमड़े इत्यादि के सामान; हर प्रकार के ऊनी, रेशमी, सूती कपड़े; सोने-चाँदी के ज़ेवर; गिलट, फूल और पीतल के सामान; पुस्तकें; खाद्य पदार्थ—सभी कुछ बिकने के लिए आता है। प्राचीन समय में यह मेला लक्खी मेले के नाम से विख्यात था। इसमें सब प्रकार की चीज़ें लाख के क़रीब एकत्र होती थीं। इसी लिए इसे लक्खी कहते थे।

यहाँ अब भी बहुत बड़ा हजूम होता है। नाटक, थियेटर, सभाओं और जलसों की धूम रहती है। यमुनाजी के तट पर संन्यासी, वैरागी, ब्रह्मचारी आदि भजन गाते और धूनी रमाये दिखाई देते हैं। दीप-मालिका के बाद से ही मेले का प्रबन्ध सरकार की तरफ़ से आरम्भ हो जाता है। मनुष्यों और पशुओं के इलाज के लिए शफ़ाख़ाने और चोर-उचक्कों और दङ्गा-फ़साद करने वालों के दमनार्थ पुलीस का विशेष प्रबन्ध रहता है। वैसे तो बटेश्वर में ब्रांच पोस्ट आफ़िस है; परन्तु मेले पर डाक का और भी अच्छा प्रबन्ध होजाता है और व्यापारियों की सुगमता के लिए नवीन पोस्ट आफ़िस खोल दिया जाता है। घाटों पर जहाँ जहाँ जल गहरा होता है वहाँ वहाँ बाँसों का घेरा लगा दिया जाता है। नहाने के घाटों पर भी, गहरे स्थानों पर, बाँस की बल्लियाँ गाड़ दी जाती हैं। नहान के दिन रात ही से घाटों और मन्दिरों के आसपास, सड़कों पर, पैदल और सवारों का कड़ा पहरा रहता है, जिससे मनुष्यों को किसी तरह का कष्ट न हो। इस मेले में विशेष कर पुरुष ही अधिक जमा होते हैं।

बटेश्वर का प्राचीन हाल ठीक ठीक ज्ञात नहीं होता। परन्तु शिवजी के मन्दिर के पास अब भी एक प्राचीन वट-वृक्ष है। इससे अनुमान होता है कि वट-वृक्ष के समीप होने ही से शिवजी बटेश्वर (बट-ईश्वर) कहलाये और वह बस्ती भी बटेश्वर के नाम से विख्यात हुई। वट-वृक्ष में पीपल और नीम के वृक्ष एक दूसरे से ऐसे लिपटे हुए हैं मानो एक-रूप होकर दर्शन करनेवालों को भी एकता का उपदेश कर रहे हैं। इस वृक्ष में बहुत से घंटे लटके हुए हैं। यहाँ पर श्रावण में भी दूर दूर के पण्डित और पुजारी आकर पूजा-पाठ और हवन आदि बड़े उत्साह से करते हुए प्राचीन ऋषियों के आश्रमों का स्मरण कराते हैं।

यह ठीक ज्ञात नहीं कि यह मेला कब से आरम्भ हुआ। जनश्रुति है कि जब मुसलमान-बादशाहों की राजधानी दिल्ली में थी तब महाराजा भदावर वहाँ बादशाह से मिलने गये। दरबार में बादशाह ने पूछा कि यमुना बटेश्वर के क़िले के इस पार है या उस पार। महाराज ने कह दिया कि उस पार। यह सुन कर सब दरबारियों ने कहा कि महाराज भूलते हैं, यमुना इसी पार है। परन्तु जो कह चुके थे महाराज ने उसी को फिर पुष्ट किया। बादशाह ने दो तरह की बातें सुन कर कहा कि महाराज, बरसात बाद हमों वहाँ जाकर निर्णय कर लेंगे। महाराज ने अपनी बात रखने के लिए दिल्ली से आतेही एक महराबदार खाई ऐसी बनवाई कि यमुना अपना असली बहाव छोड़ कर, जो पूर्व से उत्तर को था, पश्चिम की ओर क़िले का चक्कर देती हुई अपनी असली धार से मिल गई। वह सदा के लिए क़िले के इस पार के बजाय उस पार बहने लगी। जब बादशाह आये तब महाराज ने उन्हें यमुना के पुराने बहाव की रेती में ही ठहराया। उस घटना की यादगार में उसी स्थान पर मेला लगाया, जो अबतक प्रति वर्ष होता है। यह भी सुना

वामन-भिक्षा ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

यद्यपि सदा परमार्थ ही में स्वार्थ थे हम मानते,
पर कर्म्म से फल-कामना करना न हम थे जानते।
विख्यात जीवन-व्रत हमारा लोकहित एकान्त था;
आत्मा अमर है, देह नश्वर, यह अटल सिद्धान्त था॥६॥
हम दूसरों के दुःख को थे दुःख अपना मानते,
हम मानते कैसे नहीं, जब थे सदा यह जानते—
जिसने बनाया है हमें वे भी उसीसे हैं बने;
हैं कर्म्म भिन्न, परन्तु सब हैं तुल्य तत्त्वों से सने॥७॥
बिकते ग़ुलाम न थे यहाँ, हम में न ऐसी रीति थी।
सेवक-जनों पर भी हमारी नित्य रहती प्रीति थी।
वह नीति ऐसी थी कि चाहे हम कभी भूखे रहें;
पर बात क्या जीते हमारे जो कभी वे दुख सहें॥८॥
अपने लिए भी आज हम क्यों जी न सकते हों यहाँ,
पर दूसरों ही के लिए जीते सभी थे हम यहाँ।
यद्यपि जगत में हम स्वयं विख्यात जीवन-मुक्त थे,
करते तदपि जीवन-मृतों को दिव्य-जीवन-युक्त थे॥९॥
थी दूसरों की आपदा-हरणार्थ अपनी सम्पदा;
कहते नहीं थे किन्तु हम करके दिखाते थे सदा।
नीचे गिरे को प्रेम से ऊँचा चढ़ाते थे हमीं;
पीछे रहे को घूम कर आगे बढ़ाते थे हमीं॥१०॥
संयम-नियम-पूर्वक प्रथम बल और विद्या प्राप्त की;
होकर गृही फिर लोक की कर्तव्य-रीति समाप्त की।
हम अन्त में भव-बन्धनों को थे सदा को तोड़ते;
आदर्श, भावी-सृष्टि-हित थे मुक्ति-पथ में छोड़ते॥११॥
हमको विदित थे तत्त्व सारे नाश और विकाश के,
कोई रहस्य छिपे न थे, पृथ्वी तथा आकाश के।
थे जो हज़ारों वर्ष पहले जिस तरह हमने कहे;
विज्ञान-वेत्ता अब वही सिद्धान्त निश्चित कर रहे॥१२॥
"है हानिकारक नीति निश्चय निकट-कुल में ब्याह की;
है लाभकारक रीति शव को गाड़ने से दाह की"।
यूरोप के विद्वान भी अब इस तरह कहने लगे;
देखो कि उलटे स्रोत सीधे किस तरह बहने लगे॥१३॥
निज कार्य प्रभु की प्रेरणा ही थे नहीं हम जानते;
प्रत्युत उन्हें प्रभु का किया ही थे सदा हम मानते।
भय था हमें तो बस उसीका और हम किससे डरे?
हाँ जब मरे हम तब उसीके प्रेम से विह्वल मरे॥१४॥

था कौन ईश्वर के सिवा जिसको हमारा सिर झुके?
हाँ कौन ऐसा स्थान था जिसमें हमारी गति रुके?
सारी धरा तो थी धराही, सिन्धु भी बँधवा दिया;
आकाश में भी आत्म-बल से सहजही विचरण किया॥१५॥
हम बाह्य उन्नति पर कभी मरते न थे संसार में,
बस मग्न थे अन्तर्जगत के अमृत-पारावार में।
जड़ से हमें क्या-जब कि हम थे नित्य चेतन से मिले,
है दीप क्या उसके निकट जो पद्म दिनकर से खिले॥१६॥
रौंदी हुई है सब हमारी भूमि इस संसार की,
फैला दिया व्यापार करके धूम धर्म-प्रचार की।
कप्तान कोलम्बस कहाँ था उस समय कोई कहे
जबके सु-चिह्न अमेरिका में हैं हमारे मिल रहे॥१७॥
हम देखते फिरता हुआ जोड़ा न जो दिन रात का,
करते कहो वर्णन भला फिर किस तरह उस बात का।
हम वर-बधू की भाँवरों से साम्य उसका कर चुके;
अब खोजने जाकर जिसे कितने विदेशी मर चुके॥१८॥
आरम्भ जब जो कुछ किया हमने उसे पूरा किया;
था जो असम्भव भी उसे सम्भव हुआ दिखला दिया।
कहना हमारा बस यही था विघ्न और विराम से—
करके हटेंगे हम कि अब मरके हटेंगे काम से॥१९॥
यह ठीक है पश्चिम बहुतही कर रहा उत्कर्ष है,
पर पूर्व-गुरु उसका यही पुरु-वृद्ध भारतवर्ष है।
जाकर विवेकानन्द सम बहु साधुजन इस देश से—
करते उसे कृतकृत्य हैं अब भी अतुल उपदेश से॥२०॥
वे जातियाँ जो आज उन्नति-मार्ग में हैं बढ़ रहीं,
संसार की स्वाधीनता की सीढ़ियों पर चढ़ रहीं।
यह तो कहें यह शक्ति उनको प्राप्त कब कैसे हुई?
यह भी कहें वह दार्शनिक चर्चा वहाँ कैसे हुई?॥२१॥
यूनान ही कहदे कि वह ज्ञानी, गुणी कब था हुआ?
कहना न होगा, हिन्दुओं का शिष्य वह जब था हुआ।
हमसे अलौकिक ज्ञान का आलोक यदि पाता नहीं—
तो वह अरब यूरोप का शिक्षक कहा जाता नहीं॥२२॥
संसार भर में आज जिसका छा रहा आतङ्क है,
नीचा दिखा कर रूस को भी जो हुआ निःशङ्क है।
जयशील जो वर्द्धक हुआ है एशिया के हर्ष का
है शिष्य वह जापान भी इस वृद्ध भारतवर्ष का॥२३॥

यूरोप भी जो बन रहा है आज कल धार्मिकमना
यह तो कहे उसके ख़ुदा का पुत्र कब धार्मिक बना ?
था हिन्दुओं का शिष्य ईसा यह पता भी है चला;
ईसाइयों का धर्म बहुधा बौद्ध साँचे में ढला ॥२४॥

संसार में जो कुछ जहाँ फैला प्रकाश-विकास है
इस जाति की ही दीप्ति का उसमें प्रधानाभास है।
करते न उन्नति-पथ परिष्कृत आर्य्य जो पहले कहीं
सन्देह है तो विश्व में विज्ञान बढ़ता या नहीं ॥२५॥

अनमोल आविष्कार यद्यपि हैं अनेकों कर चुके;
शिक्षा तथा निज सभ्यता की वृद्धि का दम भर चुके।
हैं पीटते सिर अन्य देशी आज भी जिस शान्ति को—
थे हम कभी फैला चुके उसकी अलौक कान्ति को॥२६॥

है आज पश्चिम में प्रभा जो, पूर्व से ही है गई;
खोते अँधेरा यदि न हम होती न खोज नई नई।
इस बात की साक्षी प्रकृति भी है हमारी सब कहीं,
होता प्रभाकर पूर्व से ही उदित पश्चिम से नहीं ॥२७॥

अन्तिम प्रभा का है हमारा विक्रमी संवत् यहाँ,
है किन्तु औरों का उदय इतना पुराना भी कहाँ ?
ईसा, मुहम्मद आदि का जग में न था तब भी पता—
कब की हमारी सभ्यता है, कौन सकता है बता ॥२८॥

सर्वत्र अनुपम एकता का इस प्रकार प्रभाव था;
थी एक भाषा, एक मन था, एक सब का भाव था।
सम्पूर्ण भारतवर्ष मानों एक नगरी थी बड़ी—
पुर और ग्राम-समूह-संस्था थी मुहल्लों की लड़ी ॥२९॥

हैं वायु-मण्डल में हमारे गीत अब भी गूँजते;
निर्झर, नदी, सागर, नगर, गिरि, वन सभी हैं कूजते।
देखो, हमारा विश्व में कोई नहीं उपमान था—
नरदेव थे हम और भारत देवलोक समान था ॥३०॥

अतीत भारत के आदर्श पुरुष।

आदर्श जन संसार में इतने कहाँ पर हैं हुए ?
सत्कार्य-भूषण आर्यगण जितने यहाँ पर हैं हुए।
हैं रह गये यद्यपि हमारे गीत आज रहे सहे,
पर दूसरों के वचन सब साक्षी हमारे हो रहे ॥३१॥

गौतम, वशिष्ठ-समान मुनिवर ज्ञान-दायक थे यहाँ,
मनु, याज्ञवल्क्य समान सत्तम विधि-विधायक थे यहाँ।
वाल्मीकि-वेदव्यास से गुण-गान-गायक थे यहाँ,
पृथु, पुरु, भरत, रघु से अलौकिक लोकनायक थे यहाँ ३२

लक्ष्मी नहीं, सर्वस्व जावे; सत्य छोड़ेंगे नहीं;
अन्धे बनें, पर सत्य से सम्बन्ध तोड़ेंगे नहीं।
निज सुत-मरण स्वीकार है; पर सत्य की रक्षा रहे;
है कौन जो उन पूर्वजों के शील की सीमा कहे ? ३३

सर्वस्व करके दान जो चालीस दिन भूखे रहे,
अपने अतिथि-सत्कार में फिर भी न जो रूखे रहे।
पर-तृप्ति कर निज तृप्ति मानी रन्तिदेव नरेश ने;
ऐसे अतिथि-सन्तोष-कर पैदा किये किस देश ने॥३४॥

आमिष दिया अपना जिन्होंने श्येन भक्षण के लिए,
जो बिक गये चाण्डाल के घर सत्यरक्षण के लिए।
देदीं जिन्हों ने अस्थियाँ परमार्थ-हित ज्ञानी जहाँ,
शिव, हरिश्चन्द्र, दधीच से होते रहे दानी कहाँ ॥३५॥

सत्पुत्र पुरु से थे जिन्हों ने तात हित सब कुछ सहा;
भाई भरत से थे जिन्हों ने राज्य भी त्यागा अहा।
जो धीरता के वीरता के प्रौढ़तम पालक हुए;
प्रह्लाद, ध्रुव, कुश, लव तथा अभिमन्यु-सम बालक हुए ३६

वह भीष्म का इन्द्रिय-दमन उनकी धरा सी धीरता;
वह शील उनका और उनकी वीरता गम्भीरता।
उनकी सरलता और उनकी वह विशाल विवेकता;
है एक जन के अनुकरण में सब गुणों की एकता ॥३७॥

वर वीरता में भी रसिकता वास करती थी यहाँ,
पर साथ ही वह आत्म-संयम था यहाँ का सा कहाँ ?
आकर करे जो अङ्ग-अर्पण उर्वशी सी कामिनी,
फिर कौन ऐसा है कहे जो—"मत कहो यों भामिनी" ३८

यदि भूल कर अनुचित किसी ने काम कर डाला कभी
तो वह स्वयं नृप के निकट दण्डार्थ जाता था तभी।
अब भी लिखित मुनि का चरित वह लिखित है इतिहास में
अनुपम सुजनता सिद्ध है जिसके अमल आभास में ३९

मैथिलीशरण गुप्त।

विविध विषय ।

१—बाबू मैथिलीशरण गुप्त का एक नया काव्य ।

सरस्वती के सिद्ध-कवि बाबू मैथिलीशरण गुप्त ने एक नवीन काव्य की रचना की है। उसे समाप्ति को पहुँचे अभी कुछ ही दिन हुए हैं। उसका नाम है भारत-भारती। अपूर्व काव्य है। "हाली" साहब के मुसद्दस के ढँग का है। उससे बढ़ कर नहीं, तो उससे कम भी किसी बात में नहीं। पद्य-संख्या ७०० के लग भग है। उसमें भारत के उत्थान ग्रोर पतन आदि का वर्णन है। शीघ्र ही छप कर प्रकाशित होगा। तब तक उसके विशेष विशेष स्थल सरस्वती की हर संख्या में निकलेंगे। आरम्भ इसी संख्या से किया जाता है। गुप्तजी की इस कविता का उत्तरोत्तर हृदय-विदारक अंश पढ़ने के लिए पाठक अपना हृदय अभी से कड़ा कर रक्खें। ऐसी अच्छी कविता लिखने के लिए, हम नहीं जानते, किन शब्दों से हम गुप्तजी का अभिनन्दन करें:—

येनेदमीदृशमकारि महामनोज्ञं
शिक्षान्वितं गुणगणाभरणैर्भृतञ्च ।
काव्यं, कृती कविवरः स चिरायुरस्तु
श्रीमैथिलीशरणगुप्त उदारवृत्तः ॥

२—रामचरितमानस में हनुमन्नाटक की छाया ।

श्रीयुत बाबू आदित्यनारायणसिंह ने धोरानी टोला, मुकामा, से एक विस्तृत लेख भेजा है। उसमें लेखक महाशय ने हनुमन्नाटक के अनेक पद्य उद्धृत करके उनसे गोस्वामी-तुलसीदास-कृत रामायण के उन उन अंशों से सम्बन्ध रखने वाली उक्तियों की तुलना की है ग्रोर यह दिखाया है कि गोस्वामीजी ने रामायण की रचना में हनुमन्नाटक से बहुत सहायता ली है; यहाँ तक कि कहीं कहीं पर उन्होंने इस नाटक के पद्यों का प्रायः ज्यों का त्यों अनुवाद कर दिया है। लेखक महाशय का कहना बहुत ठीक है। गोस्वामीजी ने हनुमन्नाटक ही से क्या जिस ग्रन्थ में उन्हें अपने मतलब की बातें मिली हैं उन सभी से सहायता लेने—कहीं उनकी उक्तियों का प्रतिबिम्ब, कहीं उनकी छाया ग्रोर कहीं उनका अनुवाद करने—में सङ्कोच नहीं किया। इस बात के उन्होंने रामायण के आरम्भ में स्वीकार भी किया है। आदित्यनारायणजी का लेख मनोरञ्जक है। परन्तु बहुत बड़ा है। अतएव, खेद है, वह प्रकाशित नहीं किया जा सका।

३—पटने के खँडहर ।

पुराना पाटलीपुत्र अर्थात् नया पटना बहुत प्राचीन नगर है। चन्द्रगुप्त, अशोक ग्रोर समुद्रगुप्त आदि प्रसिद्ध राजाओं ने वहीं से भारत का शासन किया था। पटना उनकी राजधानी थी। ग्रीक राजाओं के राजदूत वहीं रहते थे ग्रोर वहीं से भारत की ऊर्जितावस्था ग्रोर विद्याविभव का वर्णन लिख लिख कर अपने देश के भेजते थे। इस पटना के आस पास कोसों तक पुरानी इमारतों के भग्नावशेष पड़े हुए हैं। यथार्थ में वे भग्नावशेष भी नहीं; ईंट ग्रोर मिट्टी के धुस्स मात्र हैं। अनुमान है कि उनके नीचे बहुमूल्य ऐतिहासिक पदार्थ दबे पड़े हुए हैं। यदि वे निकाले जायँ तो अनेक नई नई ऐतिहासिक बातों का पता लगे। यही सोच कर बम्बई के धनकुवेर श्रीयुत रतनजी ताता ने पुराने पाटलीपुत्र के ध्वंसावशेष खुदाने के लिए बीस हज़ार रुपया दिया है। सुनते हैं, अब खुदाई का काम शीघ्र ही आरम्भ होगा। बहुत सम्भव है खोदने पर चाणक्य ग्रोर चन्द्रगुप्त आदि के समय के चिह्न मिलें ग्रोर भारत के ऐतिहासिक तत्त्वों के आविष्कार में विशेष सहायता दें।

४—माल-असबाब ढोनेवाले व्योम-यान।

व्योम-यानों से सबसे अधिक लाभ संसार के भिन्न भिन्न देशों का सैनिक विभाग उठा रहा है, और भविष्यत् में भी उठायेगा। शत्रु-सेना की संख्या जानने और उस पर गोले बरसाने का काम तो आज कल व्योमयानों से थोड़ा बहुत लिया ही जाता है, भविष्यत् में और भी अधिक लिया जायगा। परन्तु अब थोड़े ही दिनों में उनके द्वारा सेनाओं में कोसों दूर से रसद पहुँचाने का काम भी लिया जाने वाला है। सेना के साथ अब रसद लिये लिये फिरने की आवश्यकता न रह जायगी। दो दो चार चार सौ मील के घेरों में रसद के एक ही 'डिपो' से काम चल जाया करेगा। एक छोटा व्योमयान साढ़े पाँच मन बोझा लाद सकेगा। यदि एक हज़ार आदमियों की एक सेना शत्रुओं का सामना करने के लिए रसद के डिपो से सौ मील दूरी पर पड़ी होगी और उनके पास खाने पीने का कुछ भी सामान न होगा तो पाँच व्योमयान चालीस मील फी घन्टा सफ़र करके एक सेर फ़ी आदमी के हिसाब से एक हज़ार से अधिक आदमियों के लिए खाने की चीज़ें उक्त सेना में केवल ढाई घन्टे में आसानी से पहुँचा देंगे। ऐसा होने से एक लाभ और भी होगा। सेना के आगे निकल जाने और रसद के पीछे पीछे आने से शत्रुओं के द्वारा रसद के लूटे जाने का बड़ा भय रहता है। यह भय अब व्योम-यानों की बदौलत दूर हो जायगा।

५—अफ़रीक़ा के सहारा को समुद्र बनाने का प्रस्ताव।

अफ़रीक़ा-महाद्वीप में सहारा नाम का एक बड़ा भारी रेतीला मैदान है। वह लगभग दो हज़ार मील लम्बा और एक हज़ार मील चौड़ा है। उसका क्षेत्र-फल कोई छत्तीस लाख वर्ग मील है। उसके उत्तर-पूर्व वाले कोने को छोड़ कर, जिस पर टर्की और इटली का कुछ अधिकार है, शेष सारा मैदान फ़्रान्स के अधीन है। वह प्रायः जन-शून्य पड़ा है। उसमें इधर उधर कुछ जङ्गली जातियाँ तो रहती हैं; परन्तु सभ्य जातियों का उसमें गुज़र ही नहीं। लाखों वर्ग-मील भूमि अभी तक ऐसी है जिसमें सभ्य जाति के किसी मनुष्य का चरण तक नहीं पड़ा। भयङ्कर उष्णता, खाद्य-पदार्थों और पानी की दुर्लभता और रेतीले तूफ़ानों की अधिकता ही उसे अभी तक अगम्य बनाये है।

इस बड़े भारी मरु-स्थल से फ़्रांस को कोई लाभ नहीं। बहुत दिनों से फ़्रांस के बड़े बड़े विज्ञान-वेत्ता इस चिन्ता में थे कि किस प्रकार सहारा उपयोगी बनाया जाय। हाल ही में वहाँ के एक विज्ञान-वेत्ता ने सहारा से लाभ उठाने का एक प्रस्ताव अपने देश वालों के सामने उपस्थित किया है। उसका कथन है कि अफ़रीक़ा के उत्तरी समुद्र-तट से पचास मील लम्बी नहर निकाल कर सहारा से मिला दी जाय। सहारा का अधिकांश समुद्र की सतह से नीचा है। वह इस नहर के पानी से भर जायगा और उसका जो भाग समुद्र की सतह से ऊँचा है वह कितने ही छोटे-बड़े द्वीपों के रूप में परिवर्तित हो जायगा। पानी की कमी के कारण ही सहारा में कोई वनस्पति नहीं उत्पन्न होते। परन्तु इन द्वीपों में, जो इस प्रकार बनेंगे, पानी का टोटा न रहेगा। अतएव उनमें घास-पात और बड़े बड़े पौधे अच्छी तरह पैदा होंगे। उन द्वीपों में पैदा हुई तर-कारी आदि मार्सेलीज़ तक जहाज़ पर और तत्पश्चात् रेल पर लद लद कर लगभग ४० घंटे में पेरिस के बाज़ार में भी विक्रयार्थ पहुँच सकेगी। योरप की घनी बस्ती को छोड़ कर लोग इन द्वीपों में बस जायँगे। सहारा में इतना पानी भर जाने से अफ़रीक़ा का जल-वायु भी अच्छा हो जायगा। "सहारा-समुद्र" में जहाज़ चलने लगेंगे और व्यापार की वृद्धि होगी। ऐसा हो जाने पर फ़्रांस को निस्सन्देह बड़ा लाभ होगा। बहुत से विद्वान् इस प्रस्ताव से सहमत हुए हैं।

परन्तु कुछ लोगों को भय है कि अफ़रीक़ा के जल-वायु में परिवर्तन होते ही योरप का जल-वायु

बिगड़ जायगा। यदि अफ़रीक़ा की भयङ्कर उष्णता शीत में परिवर्तित हो गई तो उत्तरी योरप के इँगलैंड, डेनमार्क, बेलजियम आदि देशों में ग्रीनलैंड की तरह विकट जाड़ा पड़ने लगेगा। वे बर्फ़ से ढके रहा करेंगे और वहाँ के निवासी या तो भाग कर अन्य देशों में जा बसेंगे, या ग्रीनलैंड के इस्कीमो जाति की तरह वे भी अपना जीवन बितावेंगे। इस प्रस्ताव के विरोधियों का यह भी कथन है कि सम्भव है कि भूमध्य-समुद्र से इतना जल निकल कर सहारा में पहुँच जाने से भूमण्डल की स्थिति पर कोई बुरा असर पड़े। परन्तु गणितज्ञों ने हिसाब लगा कर बताया है कि भूमध्यसागर से बह कर सहारा में पानी भर जाने से पृथ्वी की स्थिति पर कुछ भी असर न पड़ेगा, क्योंकि उधर अटलान्टिक-महासमुद्र भूमध्य-समुद्र की कमी को पूर्ण कर देगा। पृथ्वी की गति पर भी कोई प्रभाव न पड़ेगा, क्योंकि संसार भर के समुद्रों के पानी के सामने प्रस्तावित सहारा-समुद्र का पानी घड़े में एक बूँद के ही बराबर होगा। उत्तरी योरप के देशों के जल-वायु में भी कोई अन्तर न पड़ेगा, क्योंकि उनके जल-वायु की वर्तमान अवस्था उन सामुद्रिक उष्ण लहरों पर अवलम्बित है जो उनके तटों पर टकराती हैं। चाहे सहारा समुद्र बन जाय, चाहे रेतीला मैदान ही रहे, जब तक ये उष्ण लहरें उन देशों के तटों पर टकराती रहेंगी तब तक उनका जल-वायु वैसा ही बना रहेगा जैसा अभी है।

६—अमेरिका में चौदह सौ वर्ष की पुरानी इमारतें।

अमेरिका की प्राचीन जातियाँ बिलकुल ही असभ्य न थीं। दक्षिण और मध्य-अमेरिका में बहुधा उनकी सभ्यता के चिह्न मिला करते हैं। हाल ही में, मध्य अमेरिका के गुआटीमाला नाम के राज्य में अमेरिका की प्राचीन जातियों की सभ्यता के कुछ चिह्न और प्राप्त हुए हैं। क्यूरीगुआ नाम के एक प्राचीन नगर के उजड़े हुए स्थल के पास ही १०५ फुट लम्बा और ३२ फुट ऊँचा एक टीला था। अमेरिका के पुरातत्त्व-वेत्ताओं की एक समिति ने उसे खुदाना आरम्भ किया। बड़ी बड़ी दो इमारतें निकलीं। बनावट के ढंग से एक तो मन्दिर मालूम होती है और दूसरी रहने का साधारण घर। इन इमारतों के एक कमरे में पत्थर के भालों की दो बहुत ही सुन्दर नोकें और एक दर्जन से अधिक पत्थर के पात्रों के टुकड़े प्राप्त हुए हैं। एक कमरे में पत्थर के तीन और एक में दो सिर मिले हैं। इन सिरों की पूजा होती रही होगी। शिलाओं पर उत्कीर्ण लेख भी मिले हैं। वे अमेरिका की एक प्राचीन भाषा में हैं। वे अभी तक अच्छी तरह पढ़े नहीं गये। अमेरिका के किसी प्राचीन संवत् की उनमें कई तिथियाँ हैं। वे अच्छी तरह पढ़ ली गई हैं। उनसे पता लगता है कि ये इमारतें चौदह सौ वर्ष की पुरानी हैं।

७—आदम के समय के मनुष्यों की ठठरियाँ।

संयुक्त-राज्य, अमेरिका, की राजधानी वाशिङ्गटन नगर के पास एक गाँव में बाबा आदम के समय के मनुष्यों के ग्यारह ढाँचे मिले हैं। वे भूमि में सात आठ गज़ नीचे गड़े थे। पथरीली होने के कारण भूमि में ज़रा भी नमी न थी। इससे ये ठठरियाँ सड़ने गलने से बच गईं। ठठरियों के सिरों की बनावट कुछ विचित्र सी है। साधारण मनुष्य का माथा सीधा होता है, परन्तु उनका माथा आँखों से ही पीछे की ओर बहुत ढला हुआ है। उनके ऊपरी जबड़े में कुछ दाँत अवश्य हैं, पर नीचे वाले में एक भी दाँत नहीं। जो दाँत हैं भी वे कठोर और कच्ची चीज़ों के खाने से बहुत घिस गये हैं। हड्डियाँ बहुत बड़ी बड़ी हैं। जंघा की हड्डी ही बीस इञ्च है, जिस से पता चलता है कि उनके शरीर की लम्बाई अस्सी इञ्च से कम न रही होगी। उनके ढले हुए माथे इस बात के सूचक हैं कि उनमें बहुत ही कम बुद्धि थी।

८—जल-हस्ती का आविष्कार।

अफ़रीक़ा के काँगो प्रदेश में एक विलक्षण जल-जन्तु का पता लगा है। पेरिस के अजायबघर के अध्यक्ष ली पेरिट साहब अफ़रीक़ा की सैर को गये थे। वहाँ, काँगो प्रान्त की लियेपोल्ड नामक झील के किनारे वे घूम रहे थे कि उन्हें पाँच बड़े ही अजीब जानवर देख पड़े। साहब को देखते ही वे झील में कूद गये। वे बिलकुल हाथी की शकल के थे; पर डील-डौल में हाथी से कुछ छोटे थे। कान भी उनके कुछ छोटे थे; परन्तु गरदन उनकी हाथी की गरदन से लम्बी थी। उनकी लम्बाई कोई छः फुट रही होगी। वहाँ के निवासियों से पूछने पर मालूम हुआ कि वे लोग इस जन्तु से बहुत अच्छी तरह परिचित हैं। उसका नाम वे जल-हस्ती बतलाते हैं और यथार्थ में वह है भी हाथी ही की जाति का जानवर। कुछ, विद्वानों की राय है कि इस प्रकार के जन्तु पहले बहुत थे। पर अब वे नष्टप्राय हैं। कुछ समय हुआ, एक जानवर की ठठरी एक भूगर्भ-शास्त्र के विद्वान् को मिली थी। उसके आधार पर उसने उसकी सजीवावस्था का जो अनुमान किया था वह अनुमान इस जलहस्ती के शरीर के संगठन से मिलता जुलता है। अतएव, सम्भव है, वह अस्थिपञ्जर इसी जाति के किसी जन्तु का होगा।

९—जल के भीतर ही भीतर चलने की तरकीब।

योरप और अमेरिका में नित नये आविष्कार हो रहे हैं। किस के विषय में लिखें और किस के विषय में न लिखें। कुछ समय हुआ, सरस्वती में एक ऐसी खड़ाऊँ बनाई जाने की सूचना प्रकाशित हुई थी जिसे पहन कर मनुष्य पानी की सतह पर आराम से चल सकता है। अब मालूम हुआ है कि फ़्रांस के एक इंजिनियर ने एक ऐसी कल ईजाद की है जिसे लेकर वह पानी के भीतर ही भीतर ज़मीन पर आराम से चल सकता है। यह कल इतनी छोटी है कि एक फ़ुट लम्बे, छः इञ्च चौड़े और छः ही इञ्च मोटे बकस में आ जाती है। इसमें एक नली रहती है। वह पानी के ऊपर रहती है। उसी के द्वारा मनुष्य साँस लेता है। सीन नामक नदी में इस आविष्कारक ने अपनी कल लगा कर दस पन्द्रह मिनट तक जल के भीतर ही भीतर गमन किया। किनारे पर खड़े हुए लोग इस आश्चर्य्यमय घटना को देख कर स्तम्भित हो गये। पानी से एम० फरनेज़—यही इन आविष्कारक महाशय का नाम है—के निकलने पर दर्शकों ने हर्ष-सूचक घनघोर करतालध्वनि की।

१०—एक विचित्र बँदरिया।

अमेरिका के पेन्सिलवेनिया-विश्वविद्यालय के अध्यापक शार्नर बन्दरों की बोली समझने के लिए बहुत प्रसिद्ध हैं। उनके पास कई प्रकार के कितने ही बन्दर हैं। वे उन्हें मनुष्यों की तरह रहने की शिक्षा देते हैं। गोरिला जाति की एक बँदरिया को तो उन्होंने बहुत कुछ सिखा पढ़ा भी लिया है। वह एक अलग कमरे में रहती है। उसकी शिक्षा का पूरा प्रबन्ध है। वह कपड़े पहनती है। पहले तो वह कपड़े पहनाने पर बहुत ही अप्रसन्न हुई; परन्तु अब उसकी यह दशा है कि रात को सोने के समय के सिवा किसी समय भी वह कपड़े उतारती ही नहीं। वह स्वयं ही कपड़े पहन लेती है और स्वयं ही उतार भी देती है। वह मनुष्यों की तरह कुरसी पर बैठ कर काँटे छुरी से भोजन करती है। बिदा होते समय वह हाथ मिलाती है। रङ्गों को वह बहुत अच्छी तरह से पहचानती है। कई रङ्ग के छोटे छोटे सन्दूक़चे उसके सामने रख दिये जाते हैं। जिस रङ्ग का सन्दूक़चा उससे माँगा जाता है उसे ही वह तुरन्त उठा देती है। वह लड़कों के साथ खेलती भी है। वह छिप जाती है और लड़के उसे ढूँढ़ते हैं; लड़के छिप जाते हैं और वह उन्हें ढूँढ़ती फिरती है। लड़के दौड़ते हैं और वह उन्हें छूने के लिए लपकती है; वह दौड़ती है और लड़के उसे

छूने का प्रयत्न करते हैं। वह कभी कभी ऊँचे खम्भों पर चढ़ जाती है; परन्तु लड़कों को उन पर न चढ़ सकते देख उसे बड़ा आश्चर्य्य होता है। कभी कभी वह किसी छोटे लड़के को खम्भे के पास ले जाती है और उसे उस पर चढ़ाना चाहती है। परन्तु जब वह किसी प्रकार नहीं चढ़ पाता तब वह अपने नेत्रों से और भी अधिक आश्चर्य्य का भाव प्रकट करती है।

११—रेडियम धातु का मूल्य।

आस्ट्रिया, स्वोडन, वेल्स और संयुक्त-राज्य, अमेरिका—इन्हीं चार देशों की खानों से रेडियम अभी तक प्राप्त हुआ है। आस्ट्रिया में वह सबसे अधिक मिला है। संसार में इस समय तक जितना रेडियम प्राप्त हुआ है वह वज़न में पाँच छः तोले से अधिक नहीं। एक अँगरेज़ी कम्पनी ने, जो धातुओं का व्यापार करती है, इस पाँच छः तोले रेडियम का दाम सत्तरह करोड़ रुपया कूता है। रेडियम फोड़ों की चिकित्सा में उपयोगी सिद्ध हुआ है। इस लिए डाकृरों को उसकी बहुधा आवश्यकता पड़ा करती है। योरप और अमेरिका में कितने ही ऐसे बैङ्क स्थापित हो गये हैं जो रेडियम को किराये पर दिया करते हैं। डाकृर लोग इन्हीं बैङ्कों में से, डेढ़ दो सौ रुपये प्रतिदिन के किराये के हिसाब से, काँच की एक छोटी सी नली में रेडियम का एक कण किराये पर लेते हैं। यह कण इतना छोटा होता है कि सूक्ष्म-दर्शक यन्त्र की सहायता बिना दिखाई भी नहीं पड़ता। इससे यह बात अच्छी तरह सिद्ध होती है कि रेडियम कितना बहुमूल्य पदार्थ है।

१२—एक चित्र पर मेरा वक्तव्य।

सितम्बर की सरस्वती में एक चित्र छपा था। उसके नीचे लिखा हुआ था "अलमोड़े की एक सुन्दरी मन्दिर में पूजा करने जा रही है" यह चित्र कुँवर योगेन्द्रपालसिंह साहब के "संयुक्त-प्रान्तों की पत्थर की कारीगरी" शीर्षक लेख के साथ 'शायद मन्दिर की कारीगरी दिखाने के लिए, प्रकाशित हुआ है। पर मन्दिर का अंश इस चित्र में बहुत ही कम व्यक्त हुआ है।

मेरा वक्तव्य इस चित्र के विषय में इतना ही है कि इस प्रकार का "फ़ैशन" अलमोड़े क्या सारे कूर्म्माञ्चल विभाग में प्रचलित नहीं है। कोई स्त्री इस प्रकार सिर नंगा किये, साढ़ी पहने घर के बाहर नहीं जाती। यदि किसी विरला स्त्री ने इस प्रकार का फ़ैशन ग्रहण कर भी लिया तो वह आदर्श कदापि नहीं कही जा सकती। मैं स्वयं कूर्म्माञ्चली हूँ। इससे कूर्म्माञ्चल-प्रदेश की स्थिति को भली भाँति जानता हूँ। एक दो गृह-नारियों ने अपने पति के आदेश से इस प्रकार का फ़ैशन धारण किया है सही, पर वे भी इस हद को नहीं पहुँची हैं कि सारा सिर नंगा हो। न वे इस बात को जानती हैं कि "देवार्चन" किसको कहते हैं।

प्रत्येक स्वदेशानुरागी इस बात का पक्षपाती होगा कि स्त्रियों में उच्च भाव उत्पन्न हों और अज्ञान का पर्दा दूर हो जाय। इस दृष्टि से यह चित्र बड़े महत्त्व का है। पर इसका वर्तमान समय से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि यह भेष कूर्म्माञ्चल में प्रचलित नहीं।

बदरीदत्त पाँडे।

पुस्तक-परीक्षा।

१—शास्त्रार्थ का विवरण। गत जुलाई में, अजमेर में, आर्य्यसमाज के अनुयायी स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती और जैन धर्म के अनुयायी श्रीयुत गोपालदासजी बरैया में, परस्पर, हिन्दी में, मौखिक शास्त्रार्थ हुआ था। सिकन्दराबाद-गुरुकुल के अध्यापक पण्डित यज्ञदत्त शास्त्री और न्यायाचार्य पण्डित माणिकचन्द जैन से भी कुछ देर तक संस्कृत में शास्त्रार्थ हुआ था। वही इस पुस्तक में लेखबद्ध प्रकाशित हुआ है। परन्तु इस १२१ पृष्ठों की पुस्तक के केवल ४५ ही पृष्ठों पर शास्त्रार्थ का प्रकाश पड़ा है। अवशिष्ट ७६ पृष्ठ अन्याय, अपलाप, प्रलाप, कुत्सा और वितण्डावाद से पूर्ण विज्ञापनों,

लेखों और उत्तर-प्रत्युत्तरों से घिरे हुए हैं। यदि इस विवरण में लिखी हुई बातें सच हैं तो पक्षपातरहित पाठक के हृदय में इसके पाठ से यह धारणा हुए बिना नहीं रह सकती कि सभ्यताविरहित व्यवहार और वितण्डा में आर्य्यसमाज जितना आगे बढ़ा हुआ है, न्यायानुमोदित शास्त्रार्थ या विचार में वह उतनाही पीछे है। इस से यह न समझना चाहिए कि आर्य्यसमाजियों का पक्ष निर्बल और जैनियों का सबल था। आर्य्यसमाजियों का पक्ष था—सृष्टि का कर्त्ता ईश्वर है। जैनियों का था—सृष्टि का कर्त्ता ईश्वर नहीं। सभ्य और शिक्षित मनुष्य-समुदाय का अधिकांश पहलेही पक्ष का समर्थक है, दूसरे का नहीं। इससे सूचित होता है कि पहलेही पक्ष की सत्यता का अधिक आधार है। परन्तु सत्य की खोज निकालना और उसका स्वीकार करना एक बात है, और किसी को हरा देने के अभिप्राय से शास्त्रार्थ करना दूसरी बात। न्यायशास्त्र का अच्छा पण्डित असत्पक्ष को भी लेकर, सत्पक्ष का आश्रय लेने वाले, पर न्याय-शास्त्र में कम योग्यता रखनेवाले, पण्डित को सहज ही में परास्त कर सकता है। यही कारण है जो इस शास्त्रार्थ में जैनियों के पक्ष का समर्थन अधिक पाण्डित्यपूर्ण और अधिक सबल युक्तियों से किया हुआ मालूम पड़ता है। यह पुस्तक जैनियों ही की छपाई हुई है और श्रीयुत चन्द्रसेन जैन वैद्य, मन्त्री, श्रीजैन-तत्त्वप्रकाशिनी सभा, इटावा से ढाई आने में मिलती है।

❊

२—प्रकाश-पुस्तकालय की पुस्तकें। कैसरगंज, अजमेर के प्रकाश-पुस्तकालय से तीन पुस्तकें, इंडियन प्रेस की मारफ़त, समालोचना के लिए आई हैं। उनके नाम हैं:—(१) विलायती रमणी (२) जापानी राज्यव्यवस्था (३) भारत-मही। पहली और दूसरी पुस्तक ठाकुर गदाधरसिंह की रचना है। तीसरी में ठाकुर साहब ही की दी हुई 'भारतमही' नामक समस्या की पूर्त्तियाँ, हैं जो हरदोई ज़िले के ही पाँच सात कवियों के क़लम से निकली हैं। पूर्त्तियाँ भारतभूमि की प्रशंसा में हैं। अतएव अवश्य ही एक दफ़े पढ़जाने के लायक़ हैं। हां ६।७ और ८ पृष्ठ पर शिखरिणी छन्द में जो पूर्त्तियाँ छपी हैं वे न छपतीं तो ही अच्छा था, क्योंकि उनमें एक नहीं अनेक छन्दो-भङ्ग दोष हैं। इस २८ पृष्ठ की छोटी सी पुस्तक का मूल्य एक आना है। विलायती रमणी स्त्रीशिक्षा-सम्बन्धिनी अच्छी पुस्तक है। इसमें विलायती स्त्रियों की सांसारिक शिक्षा, समर-शिक्षा, धात्री-शिक्षा, साहित्य, राजनीति, खेल-कूद, स्वास्थ्य-सौन्दर्य्य और परिधान-प्रपञ्च आदि अनेक बातों का संक्षिप्त वर्णन है। इसके आरम्भ में यदि एक विषय-सूची भी देदी गई होती तो अच्छा होता। आकार छोटा, छपाई काग़ज़ अच्छा, पृष्ठ-संख्या १५६, दाम ६ आना है। जापानी राज्यव्यवस्था नामक पुस्तक का नाम ही उसके विषय की सूचना दे रहा है। परन्तु इसमें जापान की प्रतिनिधि-सत्ताक राज्यव्यवस्था के संक्षिप्त वर्णन के सिवा अपनी सेना को दी हुई मिकाडो की पाँच आज्ञाओं का भी उल्लेख है। पुस्तक पठनीय है। इस में छोटे आकार के ६२ पृष्ठ हैं। छपाई लखनऊ की है। मूल्य ४ आना है। तीनों पुस्तकें पूर्वोक्त प्रकाश-पुस्तकालय से मिल सकती हैं।

❊

३—स्त्री-शिक्षा-विषयक पुस्तक-चतुष्टय। १६०७ की फ़रवरी में इन प्रान्तों के शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर ने विज्ञापन द्वारा कन्या-पाठशालाओं के लिए कुछ पुस्तकें माँगी थीं। कई लोगों ने पुस्तकें भेजीं थीं। उन में से इंडियन प्रेस और नवलकिशोर प्रेस की रीडर्स मंज़ूर हो गईं। वही आज कल पढ़ाई जाती हैं। डाइरेक्टर साहब की आज्ञा पाकर इलाहाबाद के क़ायम मुक़ाम डिपटी इन्सपेक्टर, मदारिस, लाला महानन्दजी ने भी पुस्तकें लिखी थीं। वे अब क्रम क्रम से छप कर प्रकाशित हो रही हैं। उनके नाम और मूल्य आदि नीचे देखिए:—

(१) महानन्द-सुताप्रबोध—प्रिप्रेटरी कक्षा ब के लिए ≡)
(२) महानन्द-विद्याङ्कुर—लोअर प्राइमरी कक्षा १ के लिए ।)
(३) महानन्द-बालाबोधनी—लोअर-प्रायमरी कक्षा २ के लिए ।)
(४) महानन्द-गौरी-बोधनी-अपर प्राइमरी कक्षा ४ के लिए ।-)

ये चारों पुस्तकें लाला साहब ने समालोचना के लिए भेजी हैं। ये "Direct Method of Teaching" के उद्देश को ध्यान में रख कर बनाई गई हैं। विषय-निर्वाचन और शिक्षण-प्रणाली से जहाँ तक सम्बन्ध है, इन पुस्तकों के अनेक अंश अच्छे हैं। भाषा भी सरल है। पर दुःख के साथ कहना पड़ता है कि इनकी भाषा बहुत अशुद्ध है; जगह जगह पर अशुद्ध शब्दों की भरमार है। दो पुस्तकों का नाम तक अशुद्ध है। 'बालबोधनी' की जगह बालाबोधिनी और 'गौरीबोधनी' की जगह गौरीबोधिनी चाहिए। जो कवितायें इन में दी गई हैं वे भी अच्छी नहीं। और और दोषों के
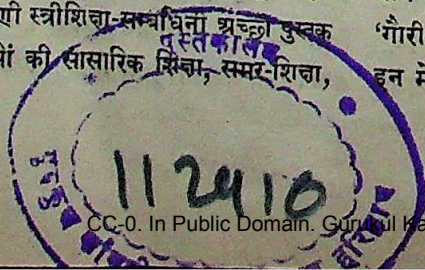
सिवा उनमें छन्दोभङ्ग तक की बहुलता है। विद्याङ्कुर में गायत्री-मन्त्र की बड़ी ही दुर्दशा हुई है। सन्ध्या और हवन करना, ओङ्कार का ध्यान धरना, प्राणायाम का साधन सीखना भी इनमें है। यदि ये पुस्तकें लड़कियों के सभी स्कूलों में जारी हो जायँ तो आर्य-समाज का उद्देश सिद्ध होने में बहुत दिन न लगें।

☼

४—भारतीय-ज्योतिष-यन्त्रालय-वेध-पथ-प्रदर्शक लेखक जयपुर के राज-ज्योतिषी पण्डित गोकुलचन्द्र भावन। अठारहवीं शताब्दी के मध्य-काल में जयपुर-नगर के निर्म्माता, और ज्योतिष-शास्त्र के धुरन्धर पण्डित, इतिहास-प्रसिद्ध आमेर-नरेश महाराजा सवाई जयसिंह ने जयपुर, काशी, देहली, मथुरा और उज्जयिनी मे ज्योतिष-सम्बन्धिनी एक एक बेध-शाला बनवाई थी। जयपुर की बेधशाला की तो बीच बीच में मरम्मत भी होती रही; परन्तु अन्य बेध-शालायें जीर्णशीर्णावस्था में ही पड़ी थीं। हाल ही में जयपुर के वर्तमान नरेश ने जयपुर, देहली और काशी की बेध-शालाओं की मरम्मत करा दी है। यह पुस्तक इन्हीं बेध-शालाओं की पथ-प्रदर्शक है। जयपुर की बेधशाला में उन्नीस, देहली की बेधशाला में चार और काशी की बेधशाला में आठ यन्त्र हैं। इस पुस्तक में इन्हीं यन्त्रों का विवरण है। अन्त में ज्योतिष के पारिभाषिक शब्दों का स्पष्टीकरण और पण्डित-वैद्यनाथ-रचित तारा-विलास नामक, २४ श्लोकं का, तारावर्णन-विषयक एक संस्कृत-निबन्ध भी है। ऐसी पुस्तक की हिन्दी में बड़ी आवश्यकता थी। इसे लिख कर लेखक महाशय ने बड़ा अच्छा काम किया। इसमें यन्त्रों के कुछ चित्र और नक़्शे भी हैं। पृष्ठ-संख्या १०४ है। मूल्य आठ आना है। होली टीबा, जयपुर के पते पर लेखक महाशय को लिखने से यह पुस्तक मिल सकती है।

☼

५—अभिनवनिघण्टु—इस नाम का एक निघण्टु पहले छप चुका है। उसी का यह दूसरा भाग है। इसका दूसरा नाम है—यूनानी द्रव्य-गुण-संग्रह। पण्डित नारायण-दत्त चौबे, मानिक चौक, मथुरा ने इसे तैयार किया है और वही २।।) में बेचते हैं। पुस्तक जिल्द बँधी हुई २६६ पृष्ठ की है। काग़ज़ और छपाई ख़ासी है। ६३१ पदार्थों के नाम इसमें हैं। नाम यथासम्भव संस्कृत, फ़ारसी, अरबी और अँगरेज़ी में भी दिये गये हैं; हिन्दी में तो हैं ही। प्रत्येक वस्तु का स्वाद, स्वरूप, पहचान, स्वाभाविक गुण, सेवन की मात्रा और प्रयोग भी लिखा है। उसके अभाव में कौन चीज़ देनी चाहिए, यह भी है। पुस्तकारम्भ में कुछ वस्तुओं के चित्र भी हैं। निघण्टु अच्छा है; वैद्यों के संग्रह-योग्य है।

☼

६—नूतन चिकित्सा-चक्रवर्त्ती। नाम बड़े रोब का है। मुजर्रबात अकबरी नामक यूनानी-चिकित्सा-पुस्तक का अनुवाद है। अनुवादक कौन है, मालूम नहीं। पर अभिनव-निघण्टु के रचयिता पूर्वोक्त पण्डित नारायणदत्त चौबे ने इसे भी छपा-कर प्रकाशित किया है। इसमें १४२ पृष्ठ हैं और दाम इसका १) है। इसमें एक एक रोग पर अनेकानेक नुसख़े हैं। अनुवाद कहाँ तक ठीक है और नुसख़े कहाँ तक गुणकारी हैं, यह बात बिना परीक्षा के नहीं मालूम हो सकती। यह पुस्तक यूनानी दवाइयों की जाँच करने और उनसे लाभ उठाने की इच्छा रखनेवाले वैद्यों के अवश्य काम की है। पुस्तक की जो कापी चौबे जी ने हमें भेजी है उसमें ग्यारहवाँ फ़ार्म नहीं है।

☼

७—कलियुग-नाटक। लेखक बाबू आनन्दप्रसाद खत्री, ब्रह्मनाल, बनारस। शेक्सपियर के "किंग लियर" नामक नाटक के आधार पर यह पुस्तक लिखी गई है। इस नाटक की शैली प्राचीन नाटकों की सी नहीं, किन्तु पारसी ढंग की है। नाटक अभिनय के योग्य है। काग़ज़ और छपाई साधारण है। ६८ पृष्ठ की इस पुस्तक का मूल्य छः आना है। बाबू जगमोहनदास साह, साहु गोपालदास स्ट्रीट, बनारस सिटी, से मिलती है।

☼

८—शान्ता। पृष्ठ-संख्या १२६। मूल्य आठ आने। लेखक पण्डित ओङ्कारनाथ वाजपेयी। मिलने का पताः—ओङ्कार-प्रेस, इलाहाबाद। यह एक कहानी है। इसमें—"एक आदर्श सच्चरित्रा कन्या का जीवन-वृत्तान्त लिखा गया है"। कहानी अच्छी है; स्त्रियों के पढ़ने लायक़ है। पर चरित्र-चित्रण में कहीं कहीं अस्वाभाविकता, और भाषा में कहीं कहीं शब्दाशुद्धि और विराम-चिह्नों का अभाव खटकता है।

९—सरस-कथामाला। श्रीयुत गनेशीलाल लक्ष्मीनारायण ने लक्ष्मीनारायण-यन्त्रालय, मुरादाबाद से इस नाम की एक मालिका निकालना आरम्भ किया है। इसका पहला फूल है:—द्रौपदी-स्वयम्बर। इसका विषय इसके नाम ही से व्यक्त है। यह एक मराठी पुस्तक का अनुवाद है। पर मूल पुस्तक के लेखक का नाम नहीं। अनुवादक इसके श्रीयुत कृष्णानन्द लीलाधर जोशी हैं। दूसरे फूल का नाम है:—राजा कर्ण की कथा। इसके भी अनुवादक पूर्वोक्त जोशी जी हैं। यह पण्डित विश्राम लक्ष्मण कोरेगांव की मराठी-पुस्तक का अनुवाद है। दोनों पुस्तकों की भाषा सीधी सादी है। कथायें उपदेशपूर्ण और मनोरञ्जक हैं। छोटे छोटे बच्चों और स्त्रियों के लिए विशेष उपयोगिनी हैं। इस तरह की पुस्तकों का जितनाही प्रचार हो उतनाही अच्छा। थोड़े में भारत की प्रसिद्ध प्राचीन घटनाओं और पुरुषों से बच्चों का परिचय करा-देना परमावश्यक बात है।

❋

१०—वैष्णवाचार-प्रदीप। दारागञ्ज, प्रयाग के श्रीरामकृष्णानन्द गिरि बाघम्बरी ने इस ३३ पृष्ठ की पुस्तक की रचना की है। इसमें लेखक महोदय ने अपने मत का मण्डन और श्रीवैष्णव तथा वैष्णव वैरागी आदि को कल्पित मतावलम्बी कह कर उनके आचारादि का खण्डन किया है। मूल्य पुस्तक पर लिखा नहीं।

❋

११—हल्दी घाटी की लड़ाई। लेखक और प्रकाशक, बाबू हरिदास माणिक, मिश्र-पोखरा, बनारस। पृष्ठ-संख्या २०-मूल्य मालूम नहीं। हल्दी घाटी के प्रसिद्ध युद्ध का यह पद्यात्मक वर्णन है। आरम्भ में वीरवर राना प्रताप-सिंह का चित्र है। माणिक महाशय जो माणिक-ग्रन्थमाला निकालते हैं उसका यह दूसरा नम्बर है। कविता में सरसता की कुछ कमी है।

❋

१५—योगमार्गोपदेशिका। पण्डित शिवदत्त शर्म्मा ने इसका सङ्कलन हिन्दी में किया है और श्रीयुत गङ्गाराम उबाना, मन्त्री, आर्य्य-समाज, नसीराबाद (राजपूताना) से दो आने में मिलती है। इसमें योग की मोटी मोटी बातें थोड़े में अच्छे ढँग से लिखी गई हैं।

चित्रपरिचय।

(१)

कैकेयी और मन्थरा।

गत दशहरे पर भारतवर्ष के कई प्रान्तों में रामलीला की खूब धूम मची। समस्त हिन्दू अपने साम्प्रदायिक भेद-भावों को भूल कर रामचन्द्रजी की पवित्र लीलाओं का अनु-करण करने में एक-मन और एक-प्राण हो गये थे। सैकड़ों नहीं, हज़ारों, लाखों वर्ष बीत जाने पर भी, आज हिन्दू-जाति अपने प्राचीन रामराज्य का मानस-सुख अनुभव करके फूली नहीं समाती। यदि रामायण को एक पुष्पित, फलित और हरा भरा वृक्ष माना जाय तो कैकेयी और मन्थरा की संवाद-घटना को उसकी जड़ मानना बहुत ही ठीक होगा। यदि मन्थरा के बहकाने से कैकेयी राम को वनवास की आज्ञा न दिलाती, तो यह स्पष्ट सिद्ध है कि रामायण में ऐसा चमत्कार कदापि न दिखाई देता। इसी कारण कैकेयी और मन्थरा रामायण-रूपी उच्च प्रासाद की मूलाधार मानी गई हैं। सर-स्वती की इस संख्या का रङ्गीन चित्र 'कैकेयी और मन्थरा' ही है। पाठक इस चित्र को देखें और इस घटना से सम्बन्ध रखने वाली रामायणी कथा का स्मरण करें तो चतुर चित्र-कार के चातुर्य का चमत्कार दिखाई देगा।

(२)

वामनभिक्षा।

इस चित्र को बने कोई ३०० वर्ष हुए। इसका प्रति-बिम्ब इसी संख्या में अन्यत्र दिया जाता है। चित्र का विषय सर्वश्रुत है। वामनजी का पुराने ढँग का छाता देखने लायक है। चित्रकार ने सम्मुख खड़े हुए शुक्राचार्य्य का चित्र अङ्कित करने में आचार्य्य का ज़रा भी मुलाहज़ा नहीं किया।

(३)

प्रमीला से मेघनाद की अन्तिम बिदा।

लक्ष्मणजी के साथ अन्तिम युद्ध में प्रवृत्त होने के लिए मेघनाद जाने को तैयार है। अतएव वह अपनी प्रियतमा पत्नी प्रमीला से बिदा हो रहा है। यही इस चित्र का विषय है। इसमें इंडियन प्रेस के चित्रकार बाबू उपेन्द्रकुमार मित्र ने पति-पत्नी दोनों के आन्तरिक भाव बड़ी ही सुन्दरता से अङ्कित किये हैं। यह चित्र मित्र महाशय की ललितकला-कुशलता का अच्छा नमूना है।

Printed and Published by Apurva Krishna Bose at the Indian Press, Allahabad.